आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य
का
स्वरूप और विकास

(१९२० ई० से १९६० ई० तक)

डॉ० आशाकिशोर
रीडर, हिन्दी विभाग,
बिहार विश्वविद्यालय,
मुजफ्फरपुर

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

शिक्षकों के आदर्श एवं भारतीय साहित्य के मर्मज्ञ

ऋषितुल्य श्री शारदाकुमार वर्मा

को

जो मेरी माँ भी थे, पिता भी

दो शब्द

महत्त्वपूर्ण शोध-ग्रन्थोंके प्रकाशनार्थ विश्वविद्यालय अनुदान आयोगने जो राशि बिहार विश्वविद्यालयको दी है, उसमेंसे १२५० रुपये बिहार विश्वविद्यालयके हिन्दी विभाग की उपाचार्या (रीडर) डॉ० आशा किशोरके शोध-ग्रन्थ 'आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका स्वरूप और विकास' (१९२०-६० ई०) के लिए प्रदान किये गये हैं। इस शोध-कार्यपर उन्हें सन् १९६५ में इस विश्वविद्यालयसे डी० लिट्० की उपाधि प्रदान की गयी थी। इस ग्रन्थका प्रकाशन हिन्दी-विभागकी ओरसे वाराणसीकी प्रसिद्ध प्रकाशन-संस्था 'विश्वविद्यालय प्रकाशन' कर रहा है।

मैं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अपने कुलपति डॉ० ताराभूषण मुखर्जी, एवं शोध-समितिके सदस्योंके साथ ही इसके प्रकाशनके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ।

श्यामनन्दन किशोर
डी० लिट्०
विश्वविद्यालय-आचार्य, हिन्दी-विभागाध्यक्ष
एवं
अधिष्ठाता, कला-निकाय

बिहार विश्वविद्यालय,
मुजफ्फरपुर, ११ नवम्बर १९७१

निवेदन

किसी शोध-ग्रन्थका प्रणयन एक यज्ञ है, जिसकी सफलताके लिए प्रभुकी प्रेरणा, गुरुजनोंके आशीर्वाद और आन्तरिक साधनाकी आवश्यकता होती है। प्रायः सोलह वर्षोंके अध्ययन-अध्यापनका यह प्रतिफल आज मुझे पूर्ण सन्तोष देकर विद्वानोंके समक्ष प्रस्तुत हो रहा है।

संगीतसे अभिरुचि रहने, एक गीतकारकी संगिनी होने एवं आधुनिक हिन्दी काव्यपर गीतिकाव्यके व्यापक व्यक्तित्वके आच्छादनके कारण मैं छात्र-जीवनसे ही गीतोंके प्रति विशेष रूपसे आकृष्ट रही। संस्कार और रुचिकी इसी पृष्ठभूमिमें मैंने अपने शोधका विषय 'आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्योंका स्वरूप और विकास' रखा। छायावाद हिन्दी गीतिकाव्यका स्वर्णकाल रहा है, इसलिए मैंने उसके आविर्भाव काल-को ही इसकी प्रारम्भिक सीमा रखी। अन्तिम सीमा विश्वविद्यालय द्वारा विषयकी स्वीकृतिका काल है। इस तरह मैंने प्रायः चार दशकोंकी हिन्दी कविताकी एक विशेष विधाके अध्ययनका प्रयास किया है।

गीतिकाव्यका आधुनिक काल मैंने इसलिए चुना कि सूर, तुलसी, मीरा आदिके काव्यालोचनके माध्यमसे प्राचीन हिन्दी गीतोंपर कुछ न कुछ प्रकाश पड़ चुका था, पर आधुनिक गीतिकाव्यपर कोई सम्यक् अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। सत्य तो यह है कि काव्यकी इस विधापर ही विशेष अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया गया था। मैंने नवम प्रकरणमें यह दिखलानेका प्रयास किया है। इस क्षेत्रमें केवल एक ही पुस्तक कुछ हदतक उपयोगी है—डॉ० रामखेलावन पाण्डेयका 'गीतिकाव्य'। पण्डित लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी'की पुस्तक 'गीतिकाव्यका विकास' वस्तुतः संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश काव्योंका विवेचन है। उसमें आधुनिक कालपर एक स्थूल विहंगम दृष्टिमात्र है। श्री ओम्प्रकाश और श्री सच्चिदानन्दकी पुस्तकें छात्रोपयोगी 'नोट्स' हैं, जिनमें वैज्ञानिक दृष्टि या विस्तृत विवेचनका प्रश्न ही नहीं उठता। डॉ० पाण्डेयकी पुस्तकमें गीतिकाव्यके तत्त्वोंका विवेचन है, पर उसकी पीठिकामें छायावादोत्तर गीतोंका विस्तृत आधार नहीं है। साथ ही उनका उद्देश्य गीतिकाव्यका परिचयात्मक ग्रन्थ उपस्थित करना है। शोधकी वैज्ञानिक दृष्टिका उसमें समावेश नहीं है।

मैंने हिन्दी गीतिकाव्यके आधुनिक कालका सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत करनेका प्रयास किया है। मैंने गीतिकाव्यके अंतरंग और बहिरंगका परीक्षण किया है और १९२० के पूर्वकी गीतिधाराका सबल आधार लिया है। मैंने आधुनिक गीतोंको अतीतकी परम्परासे विच्छिन्न करके नहीं देखा है। निष्कर्षोंकी पुष्टिमें मुझे इससे बड़ा बल मिला है।

आधुनिक हिन्दी गीत प्राचीनकी अपेक्षा अधिक व्यापक पृष्ठभूमिपर रचे गये हैं, उनके परिपार्श्व अधिक विस्तृत हैं। उनमें बहुत अधिक विविधताएँ हैं, उनमें सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक तत्त्वोंकी ग्राहिका शक्ति है, उनमें वैयक्तिकताका प्रबल विस्फोट है और मानव-जीवनके अधिक रागात्मक स्तरोंका चित्रण है। प्रकृतिके रूप-रंगकी इन गीतोंमें अधिक सूक्ष्म लकीरें हैं और मनोवैज्ञानिक विश्लेषणकी कसौटीपर आधुनिक गीतकार बहुत अधिक खरा उतरते हैं।

सांगीतिकताकी दृष्टिसे शब्दोंकी सूक्ष्म पहचान, प्रबल अनुरागात्मकता और नाद-सौन्दर्यकी विविधताके होते हुए भी गेयताकी मात्रा प्राचीन भक्त्यात्मक गीतोंमें ही अधिक है। मैंने इसके कारणोंका भी विवेचन किया है।

छन्दोंकी विविधता प्राचीन पद-परम्पराकी अपेक्षा बहुत अधिक मात्रामें आधुनिक गीतोंमें है। मैंने उन स्रोतोंका भी उल्लेख किया है जिनसे ये गीत प्रभावित हैं। आधुनिक गीतोंके अधिकांश छन्द प्राचीन छन्दोंके ही परिवर्तन या मिश्रण हैं। जीवनके विभिन्न भावोंके चित्रणके लिए छन्दोंके नये आरोह-अवरोह, यति-गति बड़े उपयुक्त सिद्ध हुए हैं।

अपने विषयके प्रतिपादनके लिए पाश्चात्य सिद्धान्तों, गीति-पद्धतियों और शिल्प-विधिके साथ ही इस देशकी मिट्टीमें जन्म लेनेवाले विभिन्न भाषाभाषी कवियोंके गीत-विधान और गतिविधिको भी दृष्टिपथपर रखा गया है। फलतः मेरे शोधकी दृष्टि अधिक परिमार्जित हो सकी है।

यह शोध नौ प्रकरणोंमें विभक्त है। छोटे-छोटे प्रकरणोंको बढ़ाकर प्रकरणोंकी संख्या-वृद्धिको मैंने अनावश्यक मान एक प्रकरणके अन्तर्गत एक दृष्टिबिन्दुको पूर्णतः विकसित होनेका अवसर दिया है। प्रथम प्रकरण विषयकी पृष्ठभूमि उपस्थित करता है। विषय-प्रवेश भी इसी प्रकरणमें सम्मिलित है। इसमें मैंने मानव-जीवनके विकासमें काव्यकी उपयोगिताका उल्लेख करते हुए गीतोंके आदिरूप लोकगीतोंका वैज्ञानिक विवेचन करते हुए यह प्रमाणित किया है कि कलागीतोंके वे ही पूर्वरूप हैं। फिर मैंने आदिकालसे लेकर रीतिकालतक खड़ी बोलीके पूर्वके गीतोंका विवेचन किया है तथा १९२० से पूर्व भारतेन्दु और द्विवेदी-युगोंका भी गीतात्मक स्वरूप उपस्थित किया है। अन्तमें मैंने आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका तथ्यनिरूपण, उसके स्वरूप-विकासके अध्ययनका औचित्य तथा विषयकी परिधि और सामग्रीका विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

द्वितीय प्रकरणमें आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यकी ऐतिहासिक दृष्टिका विश्लेषण उपस्थित किया गया है। इसमें समकालीन परिस्थितिकी पृष्ठभूमिमें आधुनिक गीतोंकी प्रवृत्तियोंका विश्लेषण है।

तृतीय प्रकरणमें गीतिकाव्यकी परिभाषाओं और प्रेरक तत्त्वोंका आलोचनात्मक अध्ययन है। पाश्चात्य और पौरस्त्य दृष्टिबिन्दुओंके सन्तुलनकी परख की गयी है और उन मौलिक तत्त्वोंका विवेचन किया गया है जिनसे आधुनिक गीत समृद्ध हैं।

चतुर्थ प्रकरणमें आधुनिक गीतिकाव्यकी अभिव्यक्तियोंका शिल्प विधानात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमें गीतिकाव्यके विभिन्न रूपोंका सूक्ष्म अन्तर स्पष्ट किया गया है एवं प्रबन्धकाव्यों एवं नाटकोंमें प्रयुक्त गीतोंका वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

पंचम प्रकरण—पूरा एक अध्याय गीतिकाव्यके स्वर्णकाल 'छायावाद'के विवेचन, विश्लेषण, उपलब्धियों एवं दुर्बलताओंके अध्ययनके लिए प्रस्तुत किया गया है। गीतिकाव्यकी विभिन्न मुद्राओंका सांगोपांग विवेचन इस प्रकरणमें किया गया है।

षष्ठ प्रकरणमें पूर्व प्रकरणोंके सैद्धान्तिक पक्षके आधारपर व्यावहारिक आलोचना प्रस्तुत की गयी है। आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यके स्वरूप और विकासकी दृष्टिसे प्रतिनिधि कवियोंका मूल्यांकन किया गया है। केवल गीतिकाव्यकी दृष्टिसे इतने कवियोंका सांगोपांग विवेचन अन्यत्र नहीं मिलता।

सप्तम प्रकरणमें आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है। परम्परागत शास्त्रीय दृष्टिसे आधुनिक गीतोंकी सभी मौलिकताओंके उद्‌घाटनका प्रयास इस प्रकरणमें मिलेगा। यहाँ भी पाश्चात्य और पौरस्त्य दृष्टियोंका आधार लिया गया है।

अष्टम प्रकरणमें प्रभावोंका आकलन उपस्थित करते हुए देशी-विदेशी सभी सूत्रोंका आधार लिया गया है तथा न केवल हिन्दीपर पड़े प्रभावोंका विवेचन हुआ है, बल्कि दूसरी भाषाओंपर पड़े हिन्दी गीतोंके प्रभावका भी उल्लेख किया गया है।

नवम प्रकरणमें आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यके स्वरूप और विकासका निष्कर्ष उपस्थित करते हुए काव्यकी इस लोकप्रिय विधाके भविष्यपर विचार किया गया है। परिशिष्ट 'एक'में चित्रपट जगत्‌के गीतोंपर विचार किया गया है; क्योंकि चलच्चित्र जगत्‌में भी कुछ अच्छे गीत और गीतकार मिलते हैं।

मैंने सभी प्रकरणोंमें अपने विचारोंकी पुष्टिके लिए बड़े उपयुक्त उदाहरणोंको परिश्रमपूर्वक ढूँढ़-ढूँढ़कर उपस्थित किया है। एक छोटेसे तथ्यके उदाहरणके लिए मुझे कभी-कभी अनेक पुस्तकोंको बार-बार पढ़ना पड़ा है। मैंने उदाहरण देते हुए सिद्ध और प्रसिद्ध तथा नवोदित—सभी प्रकारके कवियोंकी पंक्तियोंको चुना है। शोधके छात्रको पूर्वग्रहसे मुक्त होना ही चाहिये।

सम्भवतः मेरे इस शोधके द्वारा हिन्दी काव्यके एक महत्त्वपूर्ण अंगके अभावकी पूर्ति हो सकी है। इसमें अनेक मतमतान्तरोंके बीच मैंने सुलझे हुए विचारोंको रखनेका प्रयास किया है। कई स्थानोंपर पहलेसे चली आती हुई भ्रान्तियोंको भी दूर करनेका प्रयत्न किया गया है। प्राचीन तथ्योंकी नवीन व्याख्या भी कई स्थलोंपर प्रस्तुत की गयी है।

मैं सबसे अधिक कृतज्ञ हूँ अपने निर्देशक हिन्दीके महान् साहित्यकार पद्मभूषण डॉ० रामकुमार वर्माजीका, जिन्होंने पग-पगपर मेरी कठिनाइयोंको सहल करनेकी

कृपा की है। उन्होंने अपने अत्यन्त कार्य-व्यस्त जीवनके बहुमूल्य क्षणोंका दान देकर मुझे उपकृत किया है। उनके वात्सल्यकी मैं चिरऋणी हूँ।

मैं बिहार विश्वविद्यालयके अधिकारियोंके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ जिन्होंने मुझे दो वर्षोंका अवकाश देकर शोधवृत्ति प्रदान की। यदि मुझे यह सुविधा न मिली होती, तो भारतके बड़े-बड़े पुस्तकालयोंमें जाकर एवं हिन्दीके श्रेष्ठ गीतकारों-से मिलकर अपने अध्ययनकी सामग्रियोंको परिमार्जित करनेकी सुविधा नहीं मिलती। मैंने प्रायः ८ वर्षोंमें सामग्री-संकलन एवं दो वर्षोंमें लेखन कार्य किया है। इस शोध-प्रबन्धपर मुझे १९६५ में बिहार विश्वविद्यालयसे डी० लिट्० की उपाधि मिली।

मैं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, बिहार विश्वविद्यालयके कुलपति श्रद्धेय डॉ० ताराभूषण मुखर्जी एवं शोध-समितिके मान्य सदस्योंकी आभारी हूँ जिन्होंने इस शोध-ग्रन्थको महत्त्वपूर्ण मानकर इसके प्रकाशनके निमित्त १२५०) का अनुदान दिया है।

मैं एक बार पुनः उन सभी महान् साहित्यकारों, गुरुजनों एवं सहयोगियोंके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिनकी सहायता मुझे मिली है।

मैं विश्वविद्यालय प्रकाशनके अध्यक्ष श्री पुरुषोत्तम मोदीजीकी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने बहुत कम समयमें सुन्दर सुरुचिपूर्ण रीतिसे इसका प्रकाशन किया है।

एक नारी होनेके नाते मेरी सीमाएँ और असुविधाएँ अनन्त हैं। इस नाते भी मैं अपनी त्रुटियोंके लिए सहज क्षम्य हूँ।

रीडर, हिन्दी विभाग,
बिहार विश्वविद्यालय

आशाकिशोर

विषय-सूची

अध्याय १

अध्याय २

अध्याय ३

अध्याय ४

अध्याय ५

अध्याय ६

अध्याय ७

अध्याय ८

अध्याय ९

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य
का
स्वरूप और विकास

अध्याय १

पृष्ठभूमि

मानव-जीवनके विकासमें काव्यकी उपयोगिता

"एकोऽहं बहुस्याम्"के अभिलाषी ब्रह्मकी सर्वाधिक चेतनासम्पन्न सन्तान मानव भला असामाजिक कैसे हो सकता है। उसकी लीला-भूमि उसके आस-पासका वह समस्त समाज है, जिसमें इसके कार्य-व्यापारका विस्तार होता है। मानव कितना भी स्वार्थ-लोलुप क्यों न हो जाय, वह अपने सुख-दुखको दूसरोंतक पहुँचाये बिना नहीं रह सकता। वह अपने अलौकिक, सुख-दुखमय, नवीन और आश्चर्यचकित अनुभवोंको अपने सहचरोंके बीच संक्रमित करना चाहता है। वह न तो अकेले सुख भोगना चाहता है और न दुख। वह अपने सुख-साधनको विभक्त न भी करना चाहे, लेकिन इतना तो अवश्य ही चाहता है कि दूसरे उसके सुखकी मात्राका अनुभव करें। मानव अपने आनन्दके वितरण और प्रकाशन द्वारा एक पारलौकिक सुखका अनुभव करता है। अपने सुख-दुखके प्रकाशनकी इसी अनिवार्यताने काव्यको जन्म दिया है। भावोंकी तीव्रताके आधारपर ही साहित्यके विभिन्न वर्गोंका पुरानापन सिद्ध होता है। जैसे, गद्यमें पद्यकी अपेक्षा कम तीव्रानुभूति होती है, अतएव, गद्यसे पद्य प्राचीन माना गया है। पद्य-साहित्यके भीतर भावोंकी सर्वाधिक तीव्रता गीतोंमें मिलती है। अतः गीतिकाव्य सर्वाधिक प्राचीन काव्य-प्रकार माना गया है। गीतोंमें भी लोकगीतोंमें भावोंकी तीव्रता अधिक नैसर्गिक, अनलंकृत और अकृत्रिम होती है। अतः काव्य क्या साहित्य मात्रका आदि स्वरूप लोकगीत ही है।

मानव-जीवनके विकासमें काव्यकी सर्वाधिक उपयोगिता उसकी अनिवार्यता है। मानव परिस्थिति-जन्य सुख-दुख, आशा-निराशा, क्रोध-आक्रोश आदि शत-शत भावोंको काव्य-कलाके माध्यमसे अधिक सहजतासे व्यक्त कर पाता है। स्वाभाविक अनुभूतियों-का यह कलात्मक माध्यम काव्य, मानवकी अमोघ वाणी है। काव्यकी दूसरी उपयोगिता है, एकके भावको दूसरेमें तदनुरूप संक्रमित करनेकी शक्ति। इस प्रकार एकका आनन्द अनेकके आनन्दका कारण होता है। इसके द्वारा मानवकी आत्माका विस्तार होता है। 'स्व'की सीमासे उठकर मानव लोक सामान्य भाव-भूमिपर विचरण करता है।

वाणीकी चरम सिद्धि उस अवस्थामें प्राप्त होती है जब मनुष्य कम-से-कम शब्दोंमें अधिक-से-अधिक कह पाता है। साहित्यकी सम्पूर्ण विधाओंमें काव्य ही इस कसौटीपर सर्वाधिक सफल उतरता है। अभिव्यक्तिके क्षिप्रतम और तीव्रतम माध्यमके रूपमें काव्य-की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है। आदिग्रन्थ 'वेद' जो कि भावोंसे अधिक विचारोंके पोषक हैं, वे भी छन्दोबद्ध हैं। इसकी महत्ताको ध्यानमें रखकर ही व्याकरणाचार्य

पाणिनिने वेदको 'छन्द' कहा है। अपनी महत्त्वपूर्ण छन्दमयता और सांगीतिकताके कारण काव्य मानव-मनको अधिकाधिक अनुरंजित भी करता है। मानवकी रागात्मक वृत्तियोंको अधिक-से-अधिक झंकृत कर सकनेमें यह समर्थ है। कविता बाह्य प्रकृति और अन्तःप्रकृतिकी संगम-भूमि है।

मानव-जीवनमें उपयोगकी दृष्टिसे कविताका महत्त्व इसलिए भी है कि इसमें न केवल मूर्त्त आधारकी न्यूनता होती है, बल्कि इसकी अभिव्यंजनाकी परिधि अधिक सूक्ष्म और विशाल होती है। इसके द्वारा मानव-जीवनकी सर्वाधिक प्रभावशाली और सचित्र व्याख्या होती है। अन्य कलाओंकी अपेक्षा काव्यकला जीवनकी विविध परिस्थितियों, विभिन्न स्तरों एवं अन्तर्दशाओंकी तीव्र अभिव्यक्ति करती है। वस्तुतः काव्य जीवन और जगत्की रागात्मक व्याख्या है। संसारके सभी सुख सीमित और क्षणिक माने जाते हैं, पर काव्यानंद लोकोत्तर माना जाता है। अतः मानवको अलौकिक सुख देनेवाले काव्यकी महत्ता अक्षुण्ण है। काव्यकी पैठ सजीवतक ही नहीं, निर्जीवमें भी है। वह जड़-चेतनका समान रूपसे उपकारक है।

कविता हमारा शब्द-जीवन है। क्योंकि कवि देश-कालसे घिरे जीवनको विभिन्न स्तरोंमें अनुभूत करता हुआ ही उसे शब्द-बद्ध करता है। कविकी साधनाकी समस्या है लौकिक जीवन और उसका समाधान है अनश्वर परमानन्द। सत् और चित्का अपूर्ण पूर्ण होता है आनन्दमें। कविता शरीरकी क्षणभंगुरतासे आत्माकी अमरताकी ओर महाभिनिष्क्रमण है। शरीरकी क्षुधा भौतिक उपलब्धियोंसे शान्त होती है, पर अशान्त और अभावग्रस्त आत्माको साहित्यमें ही शान्ति मिलती है। वह उस विशेष अतृप्तिको दूर करता है, जिसे मिटा सकनेमें न तो राजनीतिक प्रभुता समर्थ होती है और न कुबेरकी सम्पत्ति। जीवनके आनन्दसे साहित्यका आनन्द इसीलिए श्रेष्ठ होता है।

मानव-जीवनके विकासमें काव्यकी उपयोगिताएँ अनेक हैं, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, लेकिन ऐसा नहीं होता कि कवि इन उपयोगिताओंका ध्यान रखकर काव्य-रचना करता है। उपयोगिताएँ अपने आप साहित्यमें समाहित रहती हैं। दूधमें चीनीकी तरह इनका भान ऊपरसे नहीं हो सकता। साहित्यकी हर प्रक्रिया स्वचालित होती है। साहित्य-सृजनके क्षणोंमें आत्मा वर्ण्य-विषयके साथ एकाकार हो जाती है। जैसे, माता किसी सन्तानको उसकी उपयोगिता समझकर जन्म नहीं देती है, वह उसके रक्त-मांस-विचारका अंग बनकर जन्म लेती है, उसी तरह काव्यकी उपयोगितासे कविका स्वार्थ-सम्बन्ध नहीं होता। कविताकी उपयोगिताका विचार उसके जन्मके बाद प्रारम्भ हुआ।

मानव-जीवनके लिए उपयोगी होनेके कारण काव्यका विवेचन आवश्यक है। हमने भी काव्यकी एक विशेष विधा गीतिकाव्यका विश्लेषण और अध्ययन प्रस्तुत करनेका विचार किया है। इस संदर्भमें गीतिकाव्यके आदिस्वरूप लोकगीतोंका परिचय आवश्यक है।

लोकगीतोंका जन्म और स्वरूप-विकास

लोकगीत किसी भी शिष्ट साहित्यके अमरत्व और शाश्वत स्वरूपका मूल स्रोत है। जैसे कोई पौधा धरतीसे सम्बद्ध हुए बिना पूर्णतः विकसित नहीं हो सकता, उसी तरह लोकगीतोंकी परम्परासे विच्छिन्न होकर किसी भी देशका काव्य-साहित्य आगे नहीं बढ़ सकता। लोक-गीतोंका विकास कभी अवरुद्ध नहीं होता। जिस समय किसी देशके काव्यका शिष्ट रूप अपने कला-विकासके शीर्षबिन्दुपर स्थापित रहता है, उस समय भी ग्राम-गीतोंके रूपमें लोक-गीत अनन्त कंठोंमें ध्वनित-प्रतिध्वनित होते रहते हैं।

लोकगीतोंके आदिरूपका सम्बन्ध मानवकी उस अवस्थासे है, जब शब्दोंका ज्ञान नगण्य था। केवल आवेगमय भावात्मक अवस्थामें मानव सहज ही गुनगुना उठता था। लय-ताल-सम्बन्ध स्वर ही उसकी भावाभिव्यक्तिके प्रथम सोपान हैं। लयसंयुक्त यह आवेग ही लोक-गीतोंका जनक है। पहले केवल लोकधुनोंका निर्माण हुआ। आगे चलकर शब्दों, विचारों और लोकधुनोंका साथ-साथ विकास हुआ। एक कंठसे दूसरे कंठतक पहुँचते हुए लोकगीत परिवर्द्धित होते रहते हैं। लोक-गीतोंका अर्थ तर्ककी अपेक्षा सम्वेगसे अधिक सम्बद्ध होता है। लोकगीत जन-मानसकी विभूति है। जब कभी आदि मानव सुख-दुखकी अतिरेकावस्थामें पहुँच जाता था तब सहज ही उसका कंठ शत-शत स्वरोंमें फूट पड़ता था। कुछ लोग लोकगीतोंका जन्म रति और भयकी क्रोड़से मानते हैं। किन्तु वस्तुतः इन दो रागोंके अतिरिक्त उत्साह और श्रमसे भी लोकगीत सम्बद्ध है। ये लोकगीत निर्वैयक्तिक होनेके कारण सहज अनुभूतिगम्य होते हैं। लोक-गीतोंमें व्यक्ति उपलक्ष्य होता है, लक्ष्य होता है भावोंकी स्वच्छन्द-निर्द्वन्द्व अभिव्यक्ति। लोक-गीतोंमें एक ऐसी प्रभावोत्पादकता, रहस्यमयता एवं सहजता होती है, जो व्याख्येय नहीं अनुभव-गम्य है। लोकगीत देशकालसे प्रभावित एक सांस्कृतिक वैभव है। यद्यपि लोकगीतोंके निर्माणका सम्बन्ध समूहसे है तथापि उनमें किसी श्रोता-मंडलीको प्रभावित करनेका उपयोग परिलक्षित नहीं होता[१], क्योंकि, निर्माणकी अवस्थामें लोकगीतके श्रोता और निर्मातामें कोई भेद नहीं होता।

प्रारम्भमें ये गीत ऐसे उदार और प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा निर्मित हुए होंगे, जिनकी वैयक्तिकता जन-समाजसे एकाकार हो गयी होगी। उन्हें न तो अपने नाम और यशका मोह था और न उनकी भावनाएँ समाजसे भिन्न थीं। अतः जनकंठ द्वारा निरन्तर परिष्कृत होते-होते वे रचनाएँ जनसमाजकी हो गयीं। वर्त्तमान रूपमें उपलब्ध लोकगीतों का मूलरूप कैसा था, यह जानना अत्यन्त कठिन है। जन-समाजने अपनी आवश्य-कताओं, परिस्थितियों और प्रवृत्तियोंके अनुरूप उनका आकार दे दिया। अतः ये गीत

---

१. ......The folk-singer is "never conscious of his audiance...he never, therefore, strives after effect, nor endeavours in this or in any other way to attract the attention, much less the admiration of the hearers.—*Poetry and the People,* Kenneth Richmond, p. 188.

किसी एक व्यक्तिकी नहीं पूरे समाजकी भावनाओं, आदर्शों एवं परिस्थितियोंका प्रतिनिधित्व करते हैं। ये गीत आदिम मानवकी अभिव्यक्ति हैं। इनमें निरन्तर परिवर्तित-विकसित भारतीय लोक-संस्कृति परिलक्षित होती है। इन गीतोंमें हमारी विशाल सभ्यता अन्तर्निहित है। इनमें व्यक्त भावनाएँ भी सार्वभौम हैं। विभिन्न प्रान्तों, यहाँतक कि विभिन्न देशोंके लोकगीतोंमें बाह्य भेदोंके रहते हुए भी समान भावधाराके दर्शन होते हैं। कहीं-कहीं तो इन भावोंकी अभिव्यक्तिमें अद्भुत साम्य दीखता है। इनमें जीवनके इतने सहज, स्वस्थ, प्रकृत मनोवेगोंकी अभिव्यक्ति है कि हम सहज ही इन गीतोंसे अपना सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। ये गीत हमारी आत्माकी सहज अभिव्यक्ति हैं।

लोकगाथाएँ साहित्यिक रूपमें ढलकर प्रबन्ध काव्य बनीं और लोकगीतोंका साहित्यिक रूप गीतकाव्य और प्रगीतमुक्तकमें प्रकट हुआ। तात्पर्य यह कि लोकगीतोंका विकास बनता-सँवरता कला-गीतके रूपमें हुआ। जैसे प्रारम्भिक अवस्थामें लोकगीतोंमें संगीतात्मकताकी प्रधानता थी, उसी प्रकार प्रारम्भमें विषय-विधान भी गौण था। इस कालमें व्यक्ति और समूहके भावोंका पृथक्करण सम्भव नहीं दीखता। लोकगीतोंमें काव्यके शास्त्रीय तत्त्वोंकी उपेक्षाके कारण एक ऐसी स्वाभाविकता, आत्मीयता और संवेदनात्मकता आ जाती है जो बादके विकसित प्रगीतोंमें नहीं मिलती। स्वभावतः ग्राम-गीतोंमें बुद्धि-संबलित मस्तिष्ककी अपेक्षा भाव-प्रवण हार्दिकताकी प्रधानता होती है।

लोकगीतोंके विकासके अध्ययनसे यह सिद्ध होता है कि भिन्न-भिन्न भूमि-खण्डोंमें व्याप्त संस्कृति, धर्म, आस्था, परम्परा और क्रिया-कलापोंके भाव-चित्रके रूपमें विशुद्ध जनतांत्रिक हृदयके भावोच्छ्वास से इन गीतोंका जन्म हुआ। ये प्रारम्भिक अवस्थामें लिपिबद्ध न होकर जनकंठमें प्रवाहित रहे। इन लोकगीतोंमें एक ओर जहाँ प्राचीन संस्कृति और जीवन-स्वरूप के दर्शन होते हैं, वहाँ दूसरी ओर नितनवीन रहनेवाली शाश्वत भावधाराओंके चित्र मिलते हैं। यही जनकाव्य साहित्यिक इतिहासका प्रथम पृष्ठ है। भावनाओंकी हिलोरोंपर मचल-मचलकर लोकगीत विकसित होते रहे हैं। भावातिरेकके सरगमपर शब्द थिरकते हुए पंक्तिबद्ध होते रहे। इन गीतोंमें वैसी ही नैसर्गिकता है जैसी पिकके पञ्चममें। जैसे ऋतुओंके आग्रहसे वन-प्रांतोंमें हरे-भरे पेड़-पौधे स्वतः उग आते हैं, वैसे ही लोकगीत जनवाणीसे फूट पड़े। गीतोंकी यह सरलता-तरलता इन्हें लोक-कण्ठोंमें उतार देती है। निरलंकृत होकर भी ये गीत सहज-सुन्दर हैं।[१]

लोकगीत आदिमानवके सामाजिक जीवनकी अभिव्यक्ति होते हुए भी ललित-

---

१. एक-एक बहूके चित्रणपर रीतिकालकी सौ-सौ मुग्धाएँ, खण्डिताएँ और धीराएँ, निछावर की जा सकती हैं; क्योंकि ये निरलंकार होकर भी प्राणमयी हैं और वे अलंकारोंसे लदी होकर भी निष्प्राण हैं। ये अपने जीवनके लिए किसी शास्त्रकी मुखापेक्षी नहीं हैं। ये अपने आपमें ही परिपूर्ण हैं।—'हिन्दी-साहित्यकी भूमिका', डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १३०।

सुन्दर तथा शिष्ट होते हैं। ये लोकमानसका मनोरंजन करनेके साथ ही प्रेरणाके आरम्भ-स्रोत भी थे। लोकगीतोंकी धुनोंका आधार लेकर ही शास्त्रीय राग-रागिनियाँ बनीं। इनकी कलात्मकताका इससे बढ़कर प्रमाण और क्या हो सकता है। लोकगीतोंमें जीवन-का उन्मुक्त विकास परिलक्षित होता है। जीवनके नवीनतम तत्त्वोंको अपनेमें समाहित करते रहनेके कारण लोकगीतोंमें एक जीवन्तगति है, जिसमें जीवनके नित-नूतन आदर्श प्रतिष्ठित हैं। लोकगीतोंका विकास साक्षी है कि ये गीत भावात्मक और कलात्मक दोनों ही दृष्टियोंसे सुन्दर हैं।

लोकगीतोंका वर्ण्य-विषय मुख्यतः पारिवारिक जीवन है। आदिकालमें छोटे-छोटे कुनबे और टोलियाँ परिवार-स्वरूप थे। खेत जोतते हुए, चक्की चलाते हुए, धान कूटते हुए, सूत कातते हुए, मिलते हुए, बिछुड़ते हुए जीवनके विभिन्न प्रसंगोंसे लोकगीतोंका सम्बन्ध है। पर्वों-त्योहारों, धार्मिक अनुष्ठानों, सामाजिक उत्सवों तथा अन्य अवसरोंपर भी लोकगीतोंका विकास हुआ। मुख्यतः जीवनके उपर्युक्त कोमल अवसरके गीत नारी-कण्ठोंके शृंगार हैं। वीर-भावोंसे पूर्ण युद्धगीतोंका सम्बन्ध मुख्यतः पुरुष-वर्गोंसे है। प्रेमके दोनों ही पक्षोंका हृदयग्राही चित्रण लोकगीतोंमें मिलता है, जिनके गायक दोनों वर्गोंके लोग होते हैं। प्रेमके प्रसंगमें इन गीतोंमें प्रकृतिके साथ तादात्म्य सम्बन्ध मिलता है। महलोंकी रानियाँ लोकगीतोंमें सामान्य मानवकी तरह खग-मृग वृक्ष-लतासे रागात्मक रूपसे सम्बद्ध दीखती हैं। लोकगीतोंके पात्र मानव ही नहीं पशु-पक्षी भी होते हैं। प्रकृति दूत तक का काम करती है। इन गीतोंमें समयकी सीमा गणितके सहारे नहीं, प्रकृति-सम्बद्ध भावचित्रोंके सहारे होती है।[1]

सामाजिक वैषम्यके कारण पारिवारिक जीवनमें जो रूक्षता, कटुता, दुःखात्मक स्थिति आ जाती है, उसके अगणित मर्मस्पर्शी चित्र लोकगीतोंमें मिलते हैं। कन्यादानकी असह्य पीड़ा, सासके अत्याचार, जमींदारों-महाजनोंकी शोषण-वृत्ति, वैधव्यका शोक, वृद्ध-विवाहका उत्पीड़न आदि अनेक विषयोंका समावेश इन गीतोंमें होता है। विषयकी विविधता और भावोंकी विशालताके कारण इन गीतोंमें सभ्यताका उद्घाटन, पौराणिक परम्पराका निर्वाह और आर्यपूर्व सभ्यताका ज्ञान होता है।[2]

लोकगीतोंका वर्गीकरण और उनकी विशेषता

लोकगीतोंके विकासके अध्ययनसे यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि जीवनकी विभिन्न

---

१. ग्राम-गीतोंमें कालकी अवधिको बतानेके लिए साधारण इतिवृत्तात्मक ढंगका प्रयोग न कर, गोचर प्रत्यक्षीकरण रूपका व्यवहार प्रायः सर्वत्र पाया जाता है।—'जीवनके तत्व और काव्यके सिद्धान्त', डॉ० सुधांशु, पृ० १९७-९८।

२. इनका एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य है एक विशाल सभ्यताका उद्घाटन जो अबतक या तो विस्मृतिके समुद्रमें डूबी हुई या गलत समझ ली गयी है।…… जिस प्रकार वेदों द्वारा आर्य सभ्यताका ज्ञान होता है उसी प्रकार ग्रामगीतों द्वारा आर्यपूर्व सभ्यताका ज्ञान होता है।
—'छत्तीसगढ़ी लोकगीतोंका परिचय', भूमिका, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी।

परिस्थितियोंके अनुरूप ही विभिन्न प्रकारके गीतोंका निर्माण हुआ। अतः उनके अनेक प्रकारके (भेद) हैं। मुख्यतः इनके भेदोंके निम्नलिखित आधार हैं :—

१. संस्कारोंकी दृष्टिसे
२. धार्मिक अनुष्ठानोंकी दृष्टिसे
३. कार्य-कलापोंकी दृष्टिसे
४. ऋतुओंकी दृष्टिसे
५. समसामयिकताकी दृष्टिसे
६. आयुकी दृष्टिसे
७. लिंगकी दृष्टिसे
८. जातिकी दृष्टिसे
९. पारिवारिक सम्बन्धोंकी दृष्टिसे
१०. रसकी दृष्टिसे
११. इतिहास और समाजकी दृष्टिसे
१२. मिश्रित दृष्टिसे।

१. संस्कारोंकी दृष्टिसे—जन्मसे लेकर मरणतक भारतीय जीवन अनेक धार्मिक संस्कारोंसे आपूरित है। मनुके अनुसार संस्कारोंकी संख्या बारह है। यों इनकी संख्या सोलह भी मानी जाती है। इनमेंसे पुत्र-जन्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत तथा विवाहके अवसर पर स्त्रियाँ सुन्दर गीतों द्वारा अपने हर्षके आवेगको अभिव्यक्त करती हैं। मृत्युके अवसर पर भी अत्यन्त करुण गीतों द्वारा मृतात्माके गुणोंका हृदय-विदारक वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। संस्कार विषयक गीतोंमें सोहर, अन्नप्राशन, मुण्डन, जनेऊ, विवाह, द्विरागमन, गृह-प्रवेश आदिके गीत सम्मिलित किये जाते हैं।

२. धार्मिक अनुष्ठानोंकी दृष्टिसे—धार्मिक विश्वास एवं आस्था भारतीय जन-जीवनकी मुख्य विशेषता होनेके कारण अधिकांश व्रत लोकगीतोंसे सम्बद्ध हैं। इन व्रत-गीतोंमें प्रत्येकसे सम्बद्ध देवी-देवताओंकी वन्दना भी रहती है। ये गीत मुख्यतः स्त्रियाँ गाती हैं और इष्ट साधनाके लिए याचना करती हैं। तीज, गोधन, छठ, शीतलामाता, बहुरा आदिके गीत इसके उदाहरण हैं।

३. ऋतुओंकी दृष्टिसे—कहते हैं लोकगीत मुख्यतः प्रकृतिके गीत हैं। सामान्य लोक-मानस पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेशसे प्रभावित होकर उसकी शोभा-सुषमाको चित्रित करता है। इन ऋतु-गीतोंमें नैसर्गिक प्रकृतिके साथ मानव-प्रकृतिका चित्रण रहता है। झरते हुए मेघ प्रिय दर्शनके लिए विकल आँखोंसे होड़ लेते हैं और प्रोषित-पतिका नायिकाएँ वसन्तके अवसरपर कातर दीखती हैं। प्रत्येक बोलीके लोकगीतोंमें पाये जानेवाले बारह मासोंमें दोनों ही प्रकृतियोंका अत्यन्त प्रभावोत्पादक सामंजस्य दिखलाई पड़ता है। वर्षामें कजली, फागुनमें फगुआ, चैतमें चैता किसे नहीं मुग्ध कर लेते।

४. कार्यकलापोंकी दृष्टिसे—गीत और संगीत मानवका मनोरंजन उसके कार्यरत जीवनमें भी करते हैं। युद्धके अवसरपर वाद्ययन्त्र शक्तिका संचार करते हैं। काम करते

समय गाते रहनेसे कार्यमें प्रगति होती है और मनको शांति मिलती है। धान रोपते हुए, उसे सोहते हुए, चक्की पीसते हुए, तेल पेरते हुए, प्रत्येक स्थितिमें श्रम-परिहार और मनोरंजनके लिए गाया जाता है। क्रिया या कार्यकलापोंके आधारपर रोपनी, सोहनी, जँतसार आदिके गीत प्रचलित हैं।

५. समसामयिकताकी दृष्टिसे—कभी-कभी जन-मानसको आंदोलित करनेवाली घटनाओंका सूत्रपात लोकगीतोंको प्रभावित करते हैं। सत्तावनके गदर, बयालीसकी क्रांति तथा विश्वमहायुद्धोंसे सम्बद्ध कितने ही गीत आज भी प्रचलित हैं।

६. आयुकी दृष्टिसे—कुछ लोकगीत आयु-विशेषसे सम्बद्ध होते हैं। जैसे लोरी और टेसूके गीतका सम्बन्ध बच्चोंसे तथा फागुन रसिया आदि लोकगीत युवकोंसे सम्बद्ध हैं।

७. लिंगकी दृष्टिसे—यों तो लोकगीतोंका विशेष सम्बन्ध स्त्रियोंसे ही है, परन्तु कुछ लोकगीत विशेष रूपसे पुरुषोंसे सम्बद्ध हैं। जैसे—शीतलामाताका गीत, ढोला, आल्हा आदि।

८. जातिकी दृष्टिसे—भारतकी वर्ण-व्यवस्थाके फलस्वरूप प्रत्येक जातिकी अपनी विशेषता एवं भावनाएँ होती हैं। ये गीत किसी जाति विशेषकी भावनाओंको अभिव्यक्त करते हैं। गोंड़, चमार, धोबी आदिके अश्लील गीत विवाह आदि शुभ अवसरोंपर गाये जाते हैं। अहीरोंके विरहामें शृंगार तथा अनेक ओजस्वी भावोंकी भी अभिव्यक्ति हुई है। यह अहीरोंकी वैवाहिक योग्यताका मानदण्ड माना जाता है। दुसाध बीमार हो जाता है तब उसी जातिके किसी वृद्ध द्वारा 'पचड़ा' गाया जाता है, ताकि इस प्रार्थनापरक गीतको सुनकर देवता प्रसन्न हो उसे नीरोग कर दें। ऐसे ही रिमझिम पावसमें नटोंके द्वारा ढोल बजा-बजाकर 'आल्हा' गाना किसे नहीं रुचता! गैरिक वसन साईं गोपीचन्द और भरथरीके गीत गाते हैं।

९. पारिवारिक सम्बन्धोंकी दृष्टिसे—पारिवारिक सुख-दुःखसे आपूरित गीतोंमें गार्हस्थ्य-रसका आनन्द मिलता है। भाई-बहनके प्रेमके गीत सामा-चकवाके नामसे गाये जाते हैं। इसी तरह ननद-भौजाई, सास-पतोहू या पति-पत्नीसे सम्बद्ध अनेक गीत हैं।

१०. रसकी दृष्टिसे—प्रत्येक रससे सम्बद्ध लोकगीत मिलते हैं परन्तु इनमें सर्वाधिक प्रमुखता श्रृङ्गारकी है। पुनः क्रमशः करुण, वीर, हास्य और शान्त रसकी प्रधानता होती है। सोहर, जनेऊ, विवाह आदिके गीतोंमें श्रृङ्गारकी; जँतसार, निर्गुण, पूर्वी, गौना आदिमें करुण रसकी तथा आल्हा, ढोला आदिमें वीर रसकी प्रधानता होती है। वैवाहिक गीतों, झूमर आदिमें हास्यका पुट होता है। निर्गुण, गंगा मइया और तुलसी माताके गीतों, शिवजीकी नचारियों, संझापराती आदिमें प्रार्थना, वन्दनाके कारण शान्त रसकी प्रधानता होती है।

११. इतिहास और समाजकी दृष्टिसे—वीरगाथात्मक प्रवृत्तियोंके कारण समाज

और इतिहासको नयी गति देनेवाले महापुरुषोंसे सम्बद्ध अनेक गीतोंकी रचना भिन्न-भिन्न बोलियोंमें हुई। ये गीत सामाजिक स्थितिके साथ ही थोड़ा-बहुत ऐतिहासिक प्रमाण उपस्थित करते हैं। इन गीतोंका मुख्य उद्देश्य जनतामें वीररसका संचार करना है। बिहारमें बाबू कुँवर सिंहके गीत बड़े ओजस्वी हैं। ऐसे ही गांधी और जवाहर जैसे जन-नायकोंपर भी कुछ लोक-गीत रचे गये हैं। गोरा-बादलके गीत भी उत्साह वर्धन करते हैं। इन सामाजिक-ऐतिहासिक गीतोंमें प्रेमके तराने भी रहते हैं, जो किसी आदर्श प्रेमीसे सम्बद्ध होते हैं। जैसे—सारंगा-सदाबृज, हीर-राँझा आदिके गीत।

१२. मिश्रित दृष्टिसे—अन्य लोकगीतोंमें खेल-कूद पहेली, लावनी आदिके नाम लिये जा सकते हैं, जिनके लिए किसी विशिष्ट वर्गीकरणकी आवश्यकता नहीं। कृषि-जीवनसम्बद्ध अनेक गीत भी इसीके अन्तर्गत हैं। लोकगीतोंकी संख्या अपरिमित है और उन्हें सूक्ष्म रूपसे सहस्रों श्रेणियोंमें विभाजित किया जा सकता है। निस्संदेह लोक-गीतोंके इतने प्रकार इस बातको सिद्ध करते हैं कि इनके वृत्तमें सम्पूर्ण मानव-जीवन समाहित है।

लोकगीत और कलागीतका अन्तर

लोकगीत यदि पुष्प है, तो कलागीत फल; एक विकासका पूर्वपक्ष है तो दूसरा उत्तर पक्ष। यह कहना भ्रांतिमूलक है कि लोकगीतोंका रचयिता कोई व्यक्ति नहीं होता; कलागीतोंका रचयिता व्यक्ति विशेष होता है। प्रारम्भमें स्पष्ट किया जा चुका है कि लोकगीतकारोंके नाम अज्ञात हैं। इसका मुख्य कारण लोकगीतोंका मौखिक होना है। कलागीत लिखित होनेके कारण व्यक्तियोंसे सदैव सम्बद्ध और जनसमाज द्वारा स्मृत होते हैं। इसी आधारपर यह भी कहा जा सकता है कि मौखिक होनेके कारण लोकगीतोंमें परिवर्तन-परिवर्धनके कारण पाठ-भेद होते रहते हैं। कलागीतोंमें इसका अवकाश बहुत कम रहता है।

ज्यों-ज्यों सभ्यताका विकास होता गया, कलागीतोंकी प्रवृत्ति बढ़ती गयी। कला-गीत ग्राम-गीतोंकी विरासतके रूपमें बहुत सारे तत्त्व समाहित किये हुए हैं। एक अन्तर की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाता है कि लोकगीतोंमें स्त्री-पक्ष प्रधान है और प्रायः स्त्रियाँ ही पुरुष प्रेमके प्रति सक्रियता प्रदर्शित करती हैं। पर कलागीतोंमें इस दिशामें पुरुषोंका पक्ष प्रधान है।[१] मेरी समझमें इसका कारण यह है कि लोकगीतोंके लिए अध्ययन और किसी भी प्रकारकी शिक्षा-दीक्षाकी आवश्यकता नहीं होती, किन्तु कला-गीतोंके रचयिताको भाषा आदिपर अपेक्षाकृत अधिक अधिकार रहता है। स्वभावतः स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुष वर्गमें शिक्षा-दीक्षाका अधिक प्रसार-प्रचार होनेके कारण अधिकांश

---

१. ग्रामगीतसे कलागीतके परिवर्तनमें एक बात उल्लेखनीय रही है कि ग्रामगीतमें रचनाकी जो प्रकृति स्त्रैण थी वह कलागीतमें आकर कुछ पौरुषपूर्ण हो गयी।

'जीवनके तत्त्व और काव्यके सिद्धान्त', David Daiches के *Literature and Society* के आधारपर डॉ० ल० ना० सुधांशुके विचार, पृ० १७७, प्र० आवृत्ति १९४२ ई०।

पुरुष ही कलागीतकार हुए। पुरुषोंके मन में स्त्रियोंके प्रति आकर्षण रहना नैसर्गिक है। सम्भवतः इसीलिए कलागीतोंमें लोकगीतोंकी अपेक्षा पुरुष-भावकी प्रधानता रहती है। कलागीतोंकी अपेक्षा लोकगीतोंमें अतिमानवीय शक्तियोंका अधिक समावेश रहता है। देवी-देवताओं, भूतों-प्रेतों, नाग-नागिनियों, पशु-पक्षियों आदिका उल्लेख लोकगीतोंमें ही अधिक रहता है। कलागीतोंमें मुख्यतः भक्त्यात्मक गीतोंमें देवी-देवताओंका उल्लेख तो रहता है, लेकिन भूत-प्रेतों आदिका उल्लेख कला-गीतोंमें न के बराबर रहता है। लोकगीतोंमें पशु-पक्षियोंसे काम लिया जाता है। सुग्गे वर खोजनेका काम करते हैं और काग प्रियतमको सन्देश पहुँचानेका। कलागीतोंमें लोकगीतोंकी अपेक्षा जीवनका सभ्य रूप समाहित रहनेके कारण अधिक कृत्रिमता रहती है, जीवन-प्रवाहकी प्रच्छन्न गतिका उसमें अभाव रहता है।

शब्द-प्रयोग, व्याकरण, छन्द, यति-गति आदिके जितने बन्धन कलागीतोंमें होते हैं, लोकगीतोंमें नहीं। नियमोंकी कारामें नैसर्गिकता बन्दिनी हो जाती है। अतः लोक-गीत यदि गंगा है, कलागीत जलाशय, एक यदि विराट वन है, तो दूसरा उपवन। लोकगीतोंकी निर्वैयक्तिकताके कारण श्रोताओं या पाठकोंकी व्यक्तिगत रुचि किसी कवि विशेषसे सम्बद्ध नहीं हो पाती, कलागीतोंमें यह बात नहीं होती। निराला, रामकुमार, महादेवी, बच्चन किसीकी रचनाके साथ हम अपनी व्यक्तिगत रुचिका परिचय दे सकते हैं। किन्तु नामकी छापसे अछूते लोकगीतोंमें यह कैसे सम्भव है! लोक-भाषा विकास पाकर साहित्यिक भाषा बन जाती हैं, लोकगीत नागर जीवनके परिपार्श्वमें परिष्कृत और परिवर्धित होकर कलागीतका स्वरूप पा लेते हैं। लोकगीतोंकी भूमि ग्रामीण या अर्द्ध-सभ्य समाज है, कलागीतोंका वातावरण सुसभ्य है। काव्यके दो पक्ष—अनुभूति और अभिव्यक्तिमें, लोकगीतमें प्रथमकी और कलागीतमें द्वितीयकी प्रमुखता होती है। काव्य-कला और अपने व्यक्तित्वके प्रति सचेष्टता रहनेके कारण वह भावुकता नहीं रहती, जो लोकगीतोंके सहज स्वरूपमें होती है।

कलागीत और लोकगीतका अन्तर उपस्थित करते हुए इन दोनोंको दो विपमधर्मी नहीं माना जा सकता। ये दोनों एक-दूसरेसे पूर्णतः सम्बद्ध हैं। कलागीतोंके निर्माणके साथ ही अज्ञात नामाकवियों द्वारा लोकगीतोंका निर्माण होता रहता है। आज तो ज्ञात कविगण हिन्दीकी प्रत्येक बोलीमें सहस्रों लोकगीतोंकी रचना कर रहे हैं। यद्यपि ये गीत लोकगीत कहे जाकर भी कलागीतोंकी सीमाओंमें बद्ध हैं, तथापि इतना तो सिद्ध हो ही जाता है कि आजके सुसंस्कृत और सभ्य कहे जानेवाले श्रोता और पाठक लोकगीतोंके प्रति कितने आकृष्ट हैं। आकाशवाणी और कवि-सम्मेलनों द्वारा लोकगीतों और लोक-धुनोंपर आधारित रचनाओंका रंग कलागीतोंसे कुछ कम नहीं जमता। ऐसे भी बड़े-बड़े नगरोंमें आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रमोंके अवसरोंपर जन-जीवनमें प्रचलित लोकगीतोंका रसास्वादन रुचिके साथ किया जाता है। आगे चलकर यथावसर प्रभावोंके आकलन-के प्रसंगमें मैं इन कलागीतोंपर इन लोकगीतोंके प्रभावका मूल्यांकन भी किया जायगा।

खड़ी बोलीके पूर्वके गीत

खड़ी बोली काव्यका स्पष्ट स्वरूप भारतेन्दु-युगमें प्रकट हुआ। व्रजभाषाके प्रभावसे लचकती-मचलती शृङ्गारमयी हिन्दी कविता इस युगमें भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियोंसे आधुनिक हो गयी थी। उसमें कमनीय भावनाओंका स्थान रुक्ष समस्याएँ और अनुप्रासयुक्त कोमलकान्त पदावलीका स्थान खड़ी बोलीका खरापन ले रहे थे। खड़ी बोली गीतिकाव्यके पूर्व हिन्दी पदोंकी एक विशाल परम्परा मिलती है। जयदेव जैसे संस्कृत कवियोंके प्रभावसे ही नहीं स्वतन्त्र रूपसे हिन्दीके गीत प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओंमें रूप ग्रहण कर रहे थे। आधुनिककालमें खड़ी बोली गीतोंके पूर्व आदिकाल और वीरगाथाकालमें शान्त, शृङ्गार और वीररसके पद मिलते हैं। लोकगीतोंकी सभी विशेषताओंसे सम्पन्न काव्य रचनेवाले विद्यापतिकी रचनाओंमें हिन्दी गीतिकाव्यका वास्तविक रूप प्रकट हुआ। रसकी दृष्टिसे तो नहीं, किन्तु कालकी दृष्टिसे ये वीरगाथाकालमें ही आते हैं। भक्तिकाल हिन्दी कविताका ही नहीं प्राचीन गीतिकाव्यका भी स्वर्णयुग है। सन्तोंके वैराग्य और चेतावनी भरे पदों एवं कृष्णभक्तिके शृङ्गार और वात्सल्य पगे गीतोंमें गीतिकाव्यका अत्यन्त उत्कृष्ट रूप मिलता है। प्रेममार्गी शाखामें प्रबन्धात्मकताके कारण पदोंकी रचना नहीं हुई। रामभक्तिशाखाके अन्तर्गत न केवल प्रबन्धके क्षेत्रमें बल्कि गीतिकाव्यके क्षेत्रमें भी तुलसी सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। रीतिकालमें मुक्तकोंकी प्रधानता होते हुए भी संगीतात्मकता-प्रधान गीतिकाव्यकी प्रचुरता नहीं है। संक्षेपमें खड़ी बोलीके पूर्वकी गीतिशैलीपर विचार कर लेना आवश्यक है।

आदिकाल और वीरगाथाकालकी पदशैलीमें रचे गये गीतोंका स्वरूप-विवेचन विद्यापतिके गीतोंकी विशेषताएँ:—

मेघदूतको भारतीय वाङ्मयका प्रथम गीतिकाव्य कहा जा सकता है। इसके पश्चात् बारहवीं शतीमें जयदेवका गीतगोविन्द द्वितीय महत्त्वपूर्ण गीतिकाव्य है। वास्तवमें गीतगोविन्दमें ही गीतिकाव्यका आदर्श रूप प्रगट हुआ। हिन्दीके प्रथम गीतिकार विद्यापतिको उनकी सरस पदावलिके लिए जयदेवकी कोटिमें ही रखा जाता है। विद्यापतिके पूर्व हिन्दीमें आदिकालके सिद्धों तथा योगियों द्वारा जो पद लिखे गये उनकी भावधारा पृथक् थी।

भगवान् तथागतने अपने सिद्धान्तोंको जनजीवनतक पहुँचानेके लिए लोकभाषा अपनायी थी। किन्तु आगे चलकर अश्वघोष, दिङ्नाग आदि बौद्धोंने संस्कृतकी व्यापकताको ध्यानमें रखकर उसे ही महत्त्व दिया। पुनः वज्रयानी सिद्धोंने लोकभाषाका आश्रय लिया। इनमेंसे अनेक सिद्धोंने अपने सम्प्रदायके सिद्धान्तोंको लोक-हृदयतक पहुँचानेके लिए कविताका सहारा लिया। गीतोंका संस्कार जनहृदयमें पूर्व प्रतिष्ठित होनेके कारण इन सिद्धोंके गीतोंका व्यापक प्रभाव जनतापर पड़ा। उन्होंने दोहा छन्दको सर्वाधिक महत्त्व दिया। इनकी भाषा पूरबी मिश्रित अपभ्रंश है तथा इनमें शृंगार और शांत रसकी प्रमुखता है। इनके गीतोंमें लोकसंगीत तथा शास्त्रीय संगीत दोनोंका

सामंजस्य है। यथा—सरहपाके पदोंमें गुजरी, देशाख, भैरवी, मालशी; शवरपाके पदोंमें विवाड्डी; डोम्बियाके पदोंमें धनसी आदि रागोंका समन्वय मिलता है। सिद्धोंके ये गीत हिन्दीके प्रथम लिखित गीत हैं। लोकजीवनसे प्रेरित होनेपर भी इनके काव्यमें लोक-जीवनकी स्वाभाविकताके स्थानपर अस्वाभाविक साम्प्रदायिक सिद्धान्तोंकी अभिव्यक्ति हुई है। सरहपा, शवरपा, कण्हपा, शान्तिपा, लुइपा आदि सिद्धोंने लोकगीतोंको सर्वप्रथम साहित्यमें स्थान दिया। आगे चलकर कबीर, नानक, दादू आदि सन्तोंने इन्हींकी गीतिशैलीमें जीवनकी लोकव्यापी अनुभूतियोंका समन्वय करके आदर्श गीति-काव्यका प्रणयन किया।

सिद्धोंके पदोंमें सन्त-साहित्यका बीज-वपन हुआ। कबीरकी व्यंग्य-शैली बहुत-कुछ इस कालके कवियोंसे मिलती-जुलती है। इनके पदोंमें सदाचारकी शिक्षाके साथ ही नैसर्गिक जीवन-यापनका संकेत मिलता है। इनके पद मध्यम मार्गका उपदेश देते हैं। आदिकालके सिद्धों[१] और नाथों[२]के पदोंने आगे आनेवाले काव्य-साहित्यको संयम और उदात्तताकी प्रेरणा दी। कहीं-कहीं सूफियोंके प्रेम-दर्शनका वह प्रेरणा-बिन्दु भी मिलता है, जहाँ परमात्माकी कल्पना नारी रूपमें की गयी है, जैसे शवरपाके पदोंमें। जिस रहस्यवादका पूर्ण विकास कबीरके पदोंमें मिलता है, उसका स्रोत भी इस कालके पदोंमें मिलता है, विशेषकर लुइपाके गीतोंमें। यद्यपि नाथों और सिद्धोंने अपने धार्मिक सिद्धान्तोंके प्रचार-प्रसारके लिए ही लोकभाषा और पदशैलीको अपनाया, तथापि भविष्यके सन्त कवियोंके लिए ये ही प्रकाश-स्तम्भ बने।

वीरगाथाकालके चारणोंकी रचनाओंमें प्रबन्धात्मकताका आग्रह अधिक है। यह विभिन्न 'रासों'की रचनाओंका काल माना जा सकता है। राजनैतिक दृष्टिसे यह काल पारस्परिक कलह, विशृंखल राजसत्ता, झूठे कुल-गौरव और खण्डित राष्ट्रीयताका पोषक था। कवि और कलाकार दरबारी वातावरणमें चलकर अपने आश्रयदाताओंकी अतिरंजित प्रशंसा करनेमें ही अपना गौरव समझते थे। इसका एक कारण यह भी था कि जन-समाजमें इनकी कारयित्री प्रतिभाके पारखी नहीं थे। राजदरबारोंमें ये सम्मान पाते थे और रोजी-रोटी भी। इस कालके कवियोंकी एक अनमोल विशेषता यह थी कि

---

१. इसीने हमारे साहित्यमें सन्त-साहित्यकी नींव डाली, जिसके सर्वप्रथम कवि कबीर थे। अतः सन्त-साहित्यका आदि इन्ही सिद्धोंको, मध्य नाथ पंथियोंको और पूर्ण विकास कबीरसे प्रारम्भ होनेवाली सन्त-परम्परामें नानक, दादू, मलूकदास, सुन्दरदास आदिको मानना चाहिये। —'हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ५७।

२. इस प्रकार इस मार्गमें कठोर ब्रह्मचर्य वाक्-संचय, शारीरिक शौच, मानसिक शुद्धता, ज्ञानके प्रति निष्ठा, बाह्याचरणोंके प्रति अनादर, आन्तरिक शुद्धि और मद्य-मांस आदिके पूर्ण बहिष्कार-पर जोर दिया गया है। हिन्दीमें पाये जानेवाले पदोंमें यह स्वर बहुत स्पष्ट और बलशाली है। इस स्वरने परवर्ती सन्तोंके लिए आचरण-शुद्धि-प्रधान पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। सन्त-साधकोंको बहुत-कुछ बनी-बनायी भूमि मिली थी।—'नाथ सम्प्रदाय', डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १८७।

वे कलम और तलवार दोनोंके धनी थे। कवियोंने अपने व्यक्तित्वको आश्रयदाताओंके साथ इस तरह एकाकार कर दिया था कि उनकी प्रतिभा गीतिकाव्यके क्षेत्रमें जम नहीं पायी। वीरगाथा कालमें लोकजीवनकी उमंग लेकर जगनिकने 'आल्हखण्ड'की रचना की। यद्यपि इसे गीतिकाव्य माना जाता है[१] तथापि इसमें कलात्मकता है। आल्हा-ऊदल नामक दो वीरोंकी जीवन-गाथाके प्रेरक अंशोंको पिरोया गया है। इस ग्रन्थमें काव्यत्व उतना नहीं है, जितना ओज। आल्हा गानेवाले एक विशेष स्वरमें ढोल बजा-बजाकर बड़े ही उदात्त स्वरमें इसका गान करते हैं। 'आल्हखंड'की लोकप्रियताका कारण उसकी गेयता और ओजस्विता है।

भक्तिकालके पूर्व गीतिकाव्यका आदर्श रूप मैथिल-कोकिल विद्यापतिके पदोंमें मिलता है। इनके गीतोंकी रमणीयताने अहिन्दी भाषियोंतकको प्रभावित किया है। इतना जनप्रिय गीतिकार सोलहवीं शतीके पूर्व कोई न हो सका। १४ वीं शतीके कबीरके पद अपनी अर्थ-दुरूहता और दार्शनिकताके कारण इतने जनप्रिय नहीं हो सके। इनकी रचनामें सहज गेयता और संस्कृत काव्यशास्त्रकी आन्तरिक संगीतिकता है। उन्होंने श्रृंगारके दोनों पक्षोंका कलात्मक चित्रण किया है। इनके विलासपूर्ण पदोंमें एक अद्‌भुत क्रमिकता मिलती है, विद्यापतिकी स्तुतियोंमें शिवकी आराधना प्रमुख है, जो नचारियोंके नामसे गाया जाता है। गंगा और अन्यान्य देवताओंकी भी स्तुतियाँ मिलती हैं। कुछ शांतरस प्रधान गीतोंमें वैराग्यके भाव भी मिलते हैं। विद्यापतिने तत्कालीन समाजकी कुप्रथाओंके सजग चित्रण किये हैं और प्रकारान्तरसे उनके दुष्परिणामोंका चित्रण भी किया है। विद्यापतिकी रचनाओंकी श्रृंगारिकता और ऐन्द्रियताके स्थूल चित्रणोंने विद्वानोंको उन्हें श्रृंगाररस-प्रधान माननेको विवश कर दिया है। राधाकृष्णके माध्यमसे सामान्य नायक-नायिकाओंका वह रूप-चित्रण मिलता है, जिससे बहुत हदतक रीतिकालके कवि प्रभावित हुए। इनकी रचनाओंमें सजीव मूर्ति-विधानकी अपूर्व क्षमता है। इन्होंने लोकभाषामें राधाको प्रतिष्ठित किया। हिन्दी कवियोंके बीच इनके गीतोंमें वैष्णव भक्तिका पहली बार स्पष्ट स्वर सुनायी पड़ा। विद्यापतिपर संस्कृत और प्राकृतके श्रृंगाररस-प्रधान कवियोंका विशेष प्रभाव है, जिसमें हाल, अमरुक, गोवर्धन, कालिदास आदि प्रसिद्ध हैं। विद्यापतिके वर्णनोंमें सहजता और आलंकारिकता दोनों ही है। विद्यापतिके गीतोंको देखकर इस बातका अनुमान किया जा सकता है कि हिन्दीमें लोकगीतोंकी बड़ी पुष्ट परम्परा व्याप्त थी, जिनका परिष्करण इनके गीतोंमें हुआ। विद्यापतिके पूर्व अमीर खुसरोके कुछ पदोंमें गीतिकाव्यका विधान मिलता है, जिनमें प्रेम-चित्रणकी प्रधानता है। संगीतज्ञ होनेके कारण इनके पदोंमें गेयता प्रचुर मात्रामें आ गयी है। बरवा रागमें लय रखनेकी रीति इन्होंने ही प्रारम्भ की, कव्वालीमें इन्होंने अनेक नये राग निकाले, जिनका प्रचार अभीतक है। इनके वसन्तके पद बहुत ही लोकप्रिय हैं।

---

१. यह वीररस प्रधान एक गीतिकाव्य माना जाता है।—'हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १७४।

भक्तिकालमें रचे गये गीतात्मक पदोंका स्वरूप और उनकी विशेषताएँ :—

सन्तकाव्यके पद—सन्त कवियोंके गीतोंके दार्शनिक सिद्धान्तोंके तीन आधार हैं। एक पक्ष उनका है जो अद्वैतवादको मानते हैं और परमात्मा-जीवात्माको एक ही बतलाते हैं, जैसे कबीर, दादू, मलूक आदि। दूसरी कोटिमें नानक आते हैं जो परमात्मा तथा जीवात्मामें बड़े-छोटेका अन्तर मानते हैं। तीसरे शिवदयाल, तुलसी साहब, शिवनारायण जैसे कवि हैं जो विशिष्टद्वैतवादी होनेके कारण परमात्मा-जीवात्मामें अंश-अंशीका सम्बन्ध मानते हैं। इन सभी प्रकारके कवियोंके पदोंमें वर्णित विचारधाराएँ प्राचीन औपनिषदिक विचारधाराओंसे प्रभावित हैं।

सन्त कवियोंकी अधिकांश रचनाएँ गेय रहनेके कारण एक व्यक्तिसे दूसरे व्यक्तितक पहुँचनेमें विकृत होती रहीं। बहुत दिनोंतक लिपिबद्ध नहीं होनेके कारण उनमें प्रादेशिक विशेषताएँ भी आती गयीं। कबीरके शब्दोंको ही गीतिकाव्यके अन्तर्गत परिगणित किया जा सकता है। साखी तो दोहे छन्दमें हैं। विभिन्न राग-रागिनियोंके अनुसार ढले ये गीत, गायकोंके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुए। सन्त काव्यके इन गीतोंमें अलंकारोंकी योजना सप्रयास नहीं है। स्वानुभूतिकी अस्फुट अभिव्यक्तिको बोधगम्य बनानेके लिए दृष्टान्तोंका सहारा लिया गया है। अमूर्त्त ब्रह्मके मूर्त्त-विधानके लिए रूपकोंका प्रयोग मिलता है। इन पदोंका उद्देश्य जीवात्मा-परमात्माके सम्बन्धोंका निरूपण है। मायाके बन्धनोंसे दूर निकलनेके मन्त्र भी इनमें भरपूर मिलते हैं। ऐसे प्रसंगोंमें शांतरसकी प्रधानता है, पर आत्मा-परमात्माके आध्यात्मिक विवाह और प्रणय-निवेदनके प्रसंगमें शृंगाररसकी निष्पत्ति हुई है। कबीरके गीतोंका उक्ति-चमत्कार दादूदयालमें नहीं मिलता, पर प्रेम-भावका शुद्ध निरूपण उनसे बढ़कर है। नानकके पदोंमें भी कबीरके कथनकी दुरूहता या रूपकोंकी कठिनता नहीं है। गीतिकाव्यका भाव-पक्षकी दृष्टिसे कबीरकी और कला-पक्षकी दृष्टिसे सुन्दरदासकी कविताएँ अधिक सफल हैं। रस-निरूपण और अलंकारकी दृष्टिसे सुन्दरदासके गीत महत्त्वपूर्ण हैं। इनके गीतोंमें पांडित्य झलकता है। नारी होनेके नाते सहजोबाई और दयाबाईके गीतोंमें प्रेमकी विदग्धता पठनीय है। कबीरके गुरु रामानन्दकी हिन्दी रचनाओंमें संकलित पदोंको देखनेसे उनमें गीतितत्त्वोंका अच्छा निर्वाह मिलता है। उनमें ईश्वरके सत्यस्वरूप, उनकी व्यापकता, संसारकी नश्वरता, आत्म-प्रबोध आदि भाव मिलते हैं। इनमें ईश्वरकी अनन्यता और अद्वैतताका गान किया गया है। सन्तकाव्यके विकासमें रामानन्दका प्रभाव स्पष्ट है।

संतोंने गीतिकाव्यकी दृष्टिसे हिंडोला, आरती, झूला, बारहमासा, जँतसार, होली, चाँचर, मंगल, बधावे, सोहर, सेहरा आदि लिखे हैं। इनमें लोकप्रचलित राग और भाव दोनों ही हैं। संतोंके गीतिकाव्य अपनी दार्शनिकताके लिए अमर हैं। निर्गुण पंथके ज्ञानाश्रयी शाखामें तो गीत लिखे गए, पर प्रेमाश्रयी शाखामें नहीं। जायसी, कुतुबन, मंझन आदि सभी प्रेममार्गी कवि कथा-काव्यके रचयिता हुए, जिनका

उद्देश्य ही हिन्दू घरानेमें प्रचलित कथाओंको सूफी रंगमें रँगकर कहना था। हिन्दी गीतिकाव्यका महत्त्वपूर्ण विकास आगे चलकर सगुण भक्तिके क्षेत्रमें हुआ।

रामभक्तिसे सम्बद्ध पद (तुलसीकी विनयपत्रिकाका सौष्ठव)—रामभक्ति शाखाका विकास और प्रसार उतना नहीं हो सका, जितना कृष्णभक्ति शाखाका। एक तो रामभक्तिमें आराध्यदेवके जिस लोकरक्षक रूपका आधार लिया गया, उसे प्रबन्धात्मक स्वरूप प्रदान किया गया। दूसरे रामचरितमानस जैसे महान् ग्रन्थके प्रणयनके बाद आगे आनेवाले कवियोंके लिए इस दिशामें बहुत कुछ लिखना संभव नहीं हो सका। कृष्णके लोकरंजक रूपको गीतोंमें बाँधना जितना सहज स्वाभाविक था, उतना घटनाओंके घात-प्रतिघातसे पूर्ण विराट रामचरितको नहीं। तीसरे, भक्तिकालके बाद रीतिकालमें जो सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण हो गया उसकी शृंगारधाराके अनुरूप कृष्णचरित ही अधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ। अतः जिस मात्रामें रामचरितका गान हुआ, उस मात्रामें कृष्ण चरितका नहीं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम शृंगारात्मक वासनाप्रधान मनोवृत्तियोंके अनुकूल नहीं जँचे। जहाँ तक राम भक्तिशाखामें गीतिकाव्यका सम्बन्ध है, तुलसी ही सर्वस्व हैं। प्रबन्ध और मुक्तकपर उनका अप्रतिम अधिकार है—रामचरितमानस और विनयपत्रिका इसके प्रमाण हैं। भगवतदास, चंद, मुनिलाल, अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद, हृदयराम आदि रामकाव्यकारोंने गीतिकाव्यकी दिशामें कुछ उल्लेखनीय कार्य नहीं किया। आचार्य शुक्लने[१] कृपानिवासके सखी-सम्प्रदायके शिष्यों द्वारा संगृहीत दो ग्रन्थोंका नाम बतलाया है—कृपानिवास पदावली और रामावतार भजन तरंगिनी। दोनोंमें सीतारामको युगल सरकार मानकर अत्यन्त गर्हित शृंगारके उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। रामभक्तिके नामपर हैं तो ये पद, लेकिन भावधाराके अनुसार ये रामभक्तिसे अधिक कृष्णभक्तिकी प्रवृत्तियोंके अनुकूल हैं।

विनय-पत्रिकाका गीति-सौष्ठव—विनय-पत्रिकामें प्रबन्धात्मकताके स्थानपर मनोवृत्तियोंका चित्रण है। वैराग्यसे सबद्ध सहस्रों चित्र हैं। विनय-पत्रिका एक भक्त प्रवर सेवकका स्वामीके प्रति श्रद्धा-निवेदन है, जिसमें उसने अपनेको लघु मानकर एक विराट्के प्रति विनय-वंदना व्यक्त की है। तुलसीकी व्यक्तिगत विनयमें समष्टिगत विनय समाहित है। विनय-पत्रिकाका प्रारंभ "सिद्धि सदन गजवदन विनायक"से किया है। फिर रविकुलके आराध्य सूर्यकी बन्दना की गई है, शिव, पार्वती, गंगा, यमुना, काशी, चित्रकूट, जैसे नदियों और तीर्थस्थलोंका गुणगान किया गया है। वन्दनाके ये सभी पात्र प्रकारान्तरसे रामभक्तिकी ही पुष्टि करते हैं। कविकी व्यावहारिकता, भक्तिकुशलता और भावविदग्धताका प्रमाण उस स्थलपर मिलता है, जहाँ उन्होंने सीता माताके माध्यमसे जगत् पिता राम तक पहुँचनेका प्रयास किया है "कबहुँक अम्ब अवसर पाइ। मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन-कथा चलाइ॥"[२]

---

१. 'हिन्दी-साहित्यका इतिहास', पृ० १५७।

२. 'विनय-पत्रिका', पद-संख्या ४१।

विनय-पत्रिकाके गीतोंमें बहुत बड़ी कला यह है कि प्रकृत विषयके प्रारंभके पूर्व अत्यन्त मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि उपस्थित की गई है। जैसे कोई कुशल व्यक्ति किसी दरबारमें कोई प्रार्थना सुनानेके पूर्व सभासदों और प्रमुखोंको अनुकूल बना लेता है, उसी प्रकार सेवक तुलसीने स्वामी रामकी सेवामें अपनी पत्रिका पहुँचानेके पूर्व अनेक देवी-देवताओंका यशोगान किया है। यह तत्कालीन मुगल शासन व समाजका प्रभाव है। पत्रिकाके प्रारम्भिक ६१ पदोंमें संस्कृत साहित्यकी स्तोत्र पद्धतिका प्रभाव है। पत्रिका पहुँचानेके अनुकूल लक्ष्मण ही समझे गये हैं और भगवान् रामसे सुधि लेनेका आश्वासन पाकर ही तुलसी निश्चिन्त होते हैं। "रघुनाथका हाथ पाकर ही अनाथ तुलसी"[१] कृतकृत्य होते हैं। विनय-पत्रिकाके २७९ पदोंमें सोलहवीं शताब्दीकी संत्रस्त मानवताकी पुकार है। गीतिकाव्यमें जिस भावावेशकी आवश्यकता है, वह विनयपत्रिकामें स्थल-स्थलपर मिलती है। आत्माकी प्रेमोन्मत्त दशा और सात्विक अनुभावोंके सैकड़ों चित्र विनय-पत्रिकामें मिलते हैं।

भावोंकी उत्कृष्टताकी दृष्टिसे ही नहीं, गीतिकाव्यके कलापक्षकी दृष्टिसे भी विनय-पत्रिकाके पद अत्यन्त उत्कृष्ट हैं। विनयपत्रिकाके गीतोंमें राग-रागिनियोंकी शास्त्रीयताका पूर्ण निर्वाह किया गया है। स्वर-तालका पूर्ण सामंजस्य रखा गया है। रागोंके चुनावमें भावोंकी अनुरूपता द्रष्टव्य है। बिलावल, धनाश्री, रामकली, वसन्त, मारू, भैरव, कान्हरा, सारंग, गोरी, केदारा, आसावरी, जैजश्री, विभास, ललित, टोड़ी, विहाग, सूहो-बिलावल, नट, मलार, सोरठ, भैरवी और कल्याण रागोंका सहारा लिया गया है। भाषामें भी पर्याप्त संगीतात्मकता है। तत्सम कोमलकांत पदावलियोंके कारण संगीतात्मकता बढ़ गई है। स्तुतिके साथ ही उद्बोधन और संबोधन-शैलियोंका प्रयोग गीतिकाव्यको प्रभावोत्पादक बनाता है। दार्शनिक सिद्धान्तोंको अत्यन्त सरल और उपयुक्त स्थानपर पिरोकर कविने विचारोंकी शुष्कतासे बचाकर अपने गीतोंकी भाव-प्रवणताको अक्षुण्ण रखा है। पौराणिक सन्दर्भोंका निर्वाह गीतिकाव्यमें कठिन होता है। सूरकी भाँति तुलसीने भी पौराणिक सन्दर्भोंका निर्वाह ऐसी कुशलतासे किया है, जिसके कारण गीतिकाव्यमें अनावश्यक बोझिलता नहीं आ पायी है, काव्य-सौष्ठव बढ़ गया है। कविने नवधा-भक्तिके दास्य-रूपको ग्रहण कर शान्त-रस-प्रधान गीत लिखे हैं। इन गीतोंमें शब्द और वर्ण संघटन द्वारा नाद-सौन्दर्यकी रक्षा की गई है। विनय-पत्रिका और गीतावलीमें इतने उच्च कोटिके संगीतप्रधान पद हैं कि वे संगीत विद्यालयोंकी उच्च कक्षाओंमें पढ़ाये जाते हैं।

गीतिकाव्यकी दृष्टिसे गीतावली विनयपत्रिकाका पूरक ग्रंथ है। लोक-संगीतका आश्रय लेकर दीपावली, होली आदिके गीत लिखे गये हैं। उदार भक्त गोस्वामीजीने रामके साथ ही कृष्णकी वन्दना भी की है। कृष्ण गीतावलीमें कृष्णभक्तिके उत्कृष्ट पद हैं। बाल-लीला और गोपी विरहसे सम्बद्ध पद मनोहर हैं। कृष्णके साथ गोपियोंका

---

१. 'विनय-पत्रिका', पद-संख्या २७९।

चित्रण है, पर राधाका नहीं, कृष्ण गीतावली और गीतावलीमें वात्सल्यपरक सरस पद हैं। रामलला नहछूका सोहर और कवितावलीका झूलना गीतिकाव्यकी दृष्टिसे लोक-गीतके ही प्रसाद हैं। लोक-संगीतके साथ ही लोकनृत्यकी गतिका ध्यान किसी-किसी पदमें रखा गया है। यथा—गीतावलीका पद "सुनो भैया भूप सकल दै कानि, वज्र रेख गजदसनजनकपन वेद-विदित जगजान।" जानकी मंगल और पार्वती मंगलमें भी लोकगीतोंका प्रभाव है। यद्यपि पत्रिका और रामलला नहछू दोनों गीतिकाव्य-ग्रन्थ हैं, तथापि दोनोंके उद्देश्यमें अन्तर है। प्रथमका प्रणयन व्यक्तिगत सुख-दुखके प्रति-क्रियास्वरूप किया होगा और द्वितीयका लोकगायनके लिए प्रचलित अश्लील गीतोंके स्थानापन्नके रूपमें।

कृष्णभक्तिशाखाके कवि—गीतिकाव्यके विकासकी दृष्टिसे कृष्णभक्ति शाखा अधिक उर्वरा सिद्ध हुई। अष्टछापके कवियोंके अतिरिक्त मीराके गीति-काव्य अत्यन्त प्रसिद्ध हुए। १६वीं शतीके पूर्व ब्रजभाषाके पदोंकी एक दीर्घ परम्परा गोपालनायक विष्णुदास, बैजूबावरा, आदिके पदोंमें मिलती है।

भक्ति-साहित्यमें ही नहीं, सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्यकी सर्वश्रेष्ठ गीतकर्त्री हैं—मीराबाई। मीराबाईकी विरह-वेदनाकी स्वाभाविकताका कारण है उनका नारी होना। किसी पुरुषका पुरुषके प्रति प्रणय-निवेदन उतना तीव्र और सहज हो ही नहीं सकता; और कृष्ण-भक्ति साधनामें जगत् नित्यलीलाका परिणाम मात्र है। इस लीलामें पुरुषके प्रतीक कृष्ण हैं और सभी भाग लेने वाली जीवात्माएँ प्रकृतिकी प्रतीक हैं। मीराके गीतोंके अध्ययनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वह राधाकी साकार प्रतिमा है। ऐसा इसलिए नहीं कि मीराने उसी प्रकार कृष्णके प्रति प्रेमका परिचय दिया है, जिस प्रकार पुराणों और अन्य वैष्णव कवियोंकी राधाने प्रदर्शित किये हैं, वरन् इसलिए कि मीराने अपनी लौकिकताको पूर्णतः भूल कर राधाकी अलौकिकतासे तादात्म्य कर लिया है।

लौकिक रूपसे मीरा रूपकी आराधिका थी किन्तु तात्त्विक दृष्टिसे कृष्णकी साधिका। गीतिकाव्यकी सम्राज्ञी मीराके गीतोंमें प्रेमजन्य तीव्र भावोन्माद, वैयक्तिकता, नारीका ऐकान्तिक आत्म-समर्पण और निश्छल, सरल, अनलंकृत वाणीकी नैसर्गिकता है। मीराके गीतोंमें लोक-लाजके झूठे बन्धनोंसे ऊपर उठी हुई माधुर्य भक्ति है। इनके गीतोंमें राग-रागिनियोंका विशेष उपयोग किया गया है। ये स्वयं ही सुमधुर जीवनके प्रसंगोंका निर्देश भी है। कहीं-कहीं पौराणिक कथाओंका भी संकेत मिलता है। एकरूपताके अभावमें भी मीराके पदोंकी भाषामें पर्याप्त अभिव्यंजनात्मकता है। इनके छन्दोंकी मात्राओंकी न्यूनाधिकता संगीतकी लयात्मकतासे पूर्ण हो जाती है।

अष्टछाप—सूरकी तरह अष्टछापके अन्य कवियोंने भी वल्लभ सम्प्रदायकी दीक्षाके अनुसार लीला-पदोंका गान किया है। सभी कवियोंपर सूरका प्रभाव परिलक्षित होता है। कीर्त्तन करते रहनेके कारण इन कवियोंके गीतोंमें संगीततत्त्वकी प्रधानता है। कुंभनदासने लगभग ढाई सौ पद लिखे हैं, जिनमें भक्तिकी प्रबलता तो है किन्तु उच्च-कोटिकी काव्यकला नहीं मिलती। परमानन्ददासने भी स्फुट पदोंकी रचना की है,

जिनका विषय सूरसागरके दशम स्कन्धका है। फलतः बाललीला, माखनचोरी, गो-दोहन, गो-चारण, पन-घट-लीला, दान-लीला, गोपीविरह आदिके पद अच्छे बन पड़े हैं। इनके गीतोंमें संगीतशास्त्रका अच्छा निर्वाह हुआ है। सूरकी तरह समय और विषयके आधारपर ही राग-रागिनियोंका विधान किया गया है। वर्णमैत्री और वर्ण-संगतिके कारण सांगीतिकता और बढ़ गयी है। कृष्णदासके पदोंमें प्राचीन उपमानोंके सहारे चमत्कार दिखलानेकी प्रवृत्ति है। कहीं-कहीं उपमानोंकी अतिशयता गीतिकाव्यको शिथिल बना देती है। गोविन्द स्वामीके दो सौ बावन पदोंमें बसन्त, मलार, विहाग, केदारा, कान्हरा, बिलावल आदि वे ही राग मिलते हैं, जो विनय-पत्रिकामें हैं। इनके गीतोंका विषय राधाकृष्णकी किशोर लीलाओंसे सम्बद्ध हैं। कुछ पद गो-दोहन, गो-चारण एवं गुरु-वन्दनाके हैं। भावकी दृष्टिसे इनमें कोई मौलिकता नहीं। क्षीत स्वामीके बहुत थोड़ेसे पद मिलते हैं जिनमें रास, पालना, राखी, दानलीला, शोभा-शृंगार आदिके वर्णन मिलते हैं।

अष्टछापके कवियोंमें सूरके बाद नंददासका स्थान है। इन्होंने व्रजभाषाका सुन्दर संस्कार किया एवं पांडित्यकी छापसे उसे अलंकृत किया। इनके गीतोंमें सूरकी भाषाकी स्वाभाविकता नहीं मिलती। इनकी भाषामें तत्सम शब्दावलीका बाहुल्य है और पदा-वलीका नितान्त अभाव है। पदावलीकी न्यूनता इनकी रागात्मक प्रतिभाके अभावकी सूचक है। रासपंचाध्यायीकी कोमलकांत पदावलीके कारण वियोगी हरि आदिने इसे हिन्दीका गीत-गोविन्द माना है।[१] लीलागानकी दृष्टिसे इनकी पंचाध्यायीकी तुलना जयदेवके गीतगोविन्दसे भले ही की जाय किन्तु सांगीतिकता, सरसता एवं कोमलताकी दृष्टिसे पंचाध्यायी गीतगोविन्दकी समता नहीं कर सकती। भँवरगीतमें रागात्मकताका अभाव है। भ्रमरगीत और भँवरगीतमें नाम साम्य होते हुए भी दूसरेमें संगीत तत्त्वका अभाव है। यह पदावलीमें न होकर रोला और दोहाके मिश्रित छन्दमें लिखा गया है। अन्तमें दस मात्राओंकी टेक है। यह छन्द भी सूर द्वारा प्रयुक्त है। किन्तु थोड़े अन्तरके साथ। सूरके छन्दमें तीसरी-चौथी पंक्ति रोलाकी और पाँचवीं-छठी पंक्ति दोहेकी और प्रथम दो पंक्तियाँ २१ मात्राओंकी हैं। टेक इसमें भी दस मात्राओंकी ही है। पदोंकी सांगीतिकताकी सुरक्षाके लिए जहाँ सूरने प्रथम दो पंक्तियोंकी टेक आवश्यक समझी है, वहाँ नन्ददासने पदके स्थानमें छन्द होनेके कारण दो पंक्तियोंको छोड़ दिया है। गीतिकाव्यकी दृष्टिसे नंददासका कोई विशेष महत्त्व नहीं।

सूर-साहित्यकी विशेषता—गीतिकाव्यकी दृष्टिसे सूरका स्थान मध्यकालीन हिन्दी-साहित्यमें सर्वश्रेष्ठ है। प्रबन्धकी सुष्ठु योजना न कर सकनेपर भी गीतोंके सम्राट् सूरदास महाकवि कहे जाते हैं। सूरसागर गीतरत्नोंका आगार है, जिसकी प्रभा सदैव अमलिन है। लोकगीतोंकी सुदीर्घ परम्पराका परिष्करण कर उन्होंने कला-गीतोंका निर्माण किया। उन्होंने साहित्यिक गीतोंके साथ ही लोकगीतोंका निर्माण

१. 'व्रजमाधुरी सार', पृ० ४६।

किया है। रसिया, होली, सोहिलो, मल्हार, ज्योनार, जन्मबधाई आदि व्रज-भूमिके सभी प्रचलित लोक-गीतोंकी सरस-स्वाभाविक रचना की। सूरसागरकी बहुत बड़ी विशेषता इस बातमें है कि यह विशाल ग्रन्थ गीतिकाव्योंका संग्रह होकर भी प्रबन्धात्मकताके तंतुमें बँधा हुआ है। बाललीला, माखन-चोरी, नागलीला, दावानल-पानलीला, मुरली, राधाकृष्ण-मिलन, गोदोहन, गारुड़ीलीला, चीरहरण, जल-क्रीड़ा, मानलीला, दानलीला आदिसे सम्बद्ध पद गीतिकाव्यके विशुद्ध उदाहरण हैं। तीव्र भावानुभूति, सरस शब्दोंके सहारे उमग उठी है। गीतके वर्णनोंमें इतनी सूक्ष्मता है कि चित्र आँखोंके सामने प्रत्यक्ष हो उठते हैं। इनके प्रार्थना या विनयके पदोंमें इनका दैन्य, निरभिमानता, पूर्ण आत्मसमर्पण और अखण्ड कृष्णभक्तिका परिचय मिलता है। सरल शब्दोंमें उच्चकोटिके भाव प्रकट हुए हैं। इनके गीतोंमें व्रजकी ग्रामीण और प्राकृतिक पृष्ठभूमि स्पष्ट हो गयी है।

सूरसागरके उन पदोंमें गीति-तत्त्वोंका अभाव है, जिनमें कथाओंकी कड़ी जोड़ी गयी है और जिनमें चौपाई, रोला, सार, हरिगीतिका, दोहा आदि छन्द हैं। दृष्टिकूटके पद गीत होते हुए भी अलंकारोंकी जटिलता, शब्दोंके चमत्कार और भावोंकी न्यूनताके कारण श्रेष्ठ नहीं माने जा सकते। नित्यप्रति कीर्तनके रूपमें तन्मय भावसे गा-गाकर गीत रचते रहनेके कारण सूरकी प्रतिभा गीतिकाव्योंके अनुकूल मँज गयी थी। रामावतारके वर्णनमें भी कुछ श्रेष्ठ गीतिकाव्यके उदाहरण मिल जाते हैं। जैसे रामावतारका अन्तिम पद[1] सूरके गीतोंमें भावपूर्ण वर्णनात्मकता मिलती है जो शास्त्रीय राग-रागिनियोंमें बँधी हुई है। हरिदास, तानसेन या बैजूबावराके गीतोंसे भिन्न सूरके गीतोंमें संगीत काव्यका सहायक है। शास्त्रीयताके भारसे कवित्व दबा नहीं है। इसका संगीत भाव-भूमिका निर्माण कर इसे सहज संवेदनशील बनाता है। विनय, क्रीड़ा, केलि, विरह आदिके प्रसंगमें भी कविका आत्माभिव्यञ्जन प्रबल हो उठा है। इनके गीतोंमें रागात्मक अनुभूति पूर्ण मात्रामें है जो स्वतः अन्तःप्रेरित है।

सूरने व्रजभाषाका साहित्यिक परिष्करण किया, लेकिन ऐसा करते हुए उसका स्वाभाविक विकास एवं सांगीतिकता अक्षुण्ण रखी है। सादृश्यमूलक अलंकारोंमें भाषा और भावोंकी होड़ देखते ही बनती है। लोकोक्तियों और मुहावरोंके कारण सूरके गीतोंमें बोधकता आ गयी है। सूरके गीतोंमें राग-रागिनीका संयोजन विषय और समयके अनुकूल किया गया है। वल्लभ संप्रदायमें कृष्णकी सेवाके जो आठ समय रखे गये उनके आधारपर ही रागोंका विधान किया गया है। ऋतु-उत्सवोंका सम्बन्ध उनसे सम्बद्ध विशेष रागोंसे है। जैसे पावसोत्सवका मलारमें और वसन्तोत्सवका वसन्तरागमें वर्णन है।

भ्रमरगीतकी विशिष्ट शैली :—वात्सल्यकी भाँति सूरने विप्रलम्भ शृङ्गारके क्षेत्रमें अपनी अद्वितीय प्रतिभाका परिचय दिया है। भ्रमरगीतमें विप्रलम्भके चारों भेद तथा दसों कामदशाओंका सरस वर्णन मिलता है। साथ ही सूरने अपनी दिव्य-प्रतिभाके

---

१. सूरसागर, नवम स्कन्ध, पद १७२।

आधारपर सगुण भक्तिका समर्थन और निर्गुणका खण्डन बड़े रोचक ढंगसे किया है। उद्धव निर्गुणमतके आचार्य हैं, जो ज्ञानसे भक्तिको जीतना चाहते हैं और विरहिणी गोपियाँ सगुण भक्तिकी अनुरागिनियाँ हैं, जो किसी भी मूल्यपर कृष्णको गँवाना नहीं चाहतीं। प्रज्ञाचक्षु सूरदासने शुष्क दार्शनिक सिद्धान्तोंको हार्दिकता, भावप्रवणता और सरसताके कारण अनमोल बना दिया है। भ्रमरगीतमें संवेदनाकी तीव्रता शब्द-योजना-भावयोजनामें सामंजस्य, व्यंग्य और उपालम्भका उपयोग, ऐकान्तिक प्रेम, साकारोपासनाका सुदृढ़ प्रतिपादन और निराकारोपासनाका तीव्र खण्डन, भक्तिका प्रबल समर्थन तथा ज्ञान और योगका तिरस्कार आदि ऐसे गुण हैं, जिनके कारण इन गीतोंका काव्य-सौष्ठव उच्च कोटिका हो गया है।

भ्रमरगीत वार्तात्मक गीतिकाव्य होनेके कारण शिल्पकी दृष्टिसे भी सर्वथा मौलिक प्रयोग है। कथनोपकथनमें पर्याप्त नाटकीयता और वचन-वक्रता है। भ्रमरगीत काव्य और संगीतकी सन्तुलित परिणति है। एक ही भावना अनेक बार चित्रित होकर भी नये रंग और नयी पृष्ठभूमिके कारण नित-नूतन प्रतीत होती है। पदोंकी बोधकता देख-कर ही डॉ० रामकुमार वर्माने लिखा है कि "ऐसा ज्ञात होता है मानो प्रत्येक पद एक गोपी है, जिसमें वियोगकी भीषण अग्नि धधक रही है।"[१]

रीतिकालमें गीतिशैलीका रूप और उसकी विशेषताएँ—सूर द्वारा वर्णित राधाकृष्ण-के शृङ्गार चित्रोंमें एक भक्त हृदयकी निष्ठा है। लेकिन दुर्भाग्यवश इनके बाद आनेवाले रीतिकालीन कवियोंने राधाकृष्णके नामके बहाने सामान्य नायक-नायिकाओंका चित्रण प्रारम्भ किया।[२] डॉ० रामकुमार वर्माने ठीक ही लिखा है कि "जिस प्रकार दीपककी उज्ज्वल शिखासे काजल निकलता है, उसी प्रकार सूरके उज्ज्वल और तेजोमय पवित्र-शृङ्गारसे अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दीका कलुषित शृङ्गार प्रादुर्भूत हुआ।"[३]

दरबारी मनोवृत्ति एवं रागात्मिका वृत्तिकी न्यूनताके कारण इस कालमें गीत प्रचुर मात्रामें नहीं लिखे जा सके। यद्यपि सारा रीतिकाव्य प्रधानतः मुक्तककाव्य है, तथापि उनमें वैयक्तिकता, आत्माभिव्यञ्जन और अनुभूतिकी तीव्रताके अभावके कारण गीति तत्त्व नहीं है। साथ ही आचार्यत्व निरूपणके लिए गीतिकाव्यसे अधिक उपयुक्त कवित्त, सवैये, दोहे, चौपाई आदि ही सिद्ध हुए। इस कालमें देव, बिहारी, घनानन्द और रसखान जैसे सिद्ध कवियोंने भी पद-शैलीमें रचनाएँ नहीं कीं, लेकिन इनके दोहे, कवित्तों एवं सवैयोंमें शब्दोंका संगीत पूर्णमात्रामें वर्तमान है।

---

१. 'हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास', पृ० ५३६।

२. भक्तिकालके भव्य काव्य-प्रासादके निर्माणके बाद ही रीतिकालमें ऐसे छोटे-छोटे राम मड़ैया या कृष्ण-कुटीर बनने लगे, जिनके निवासी हाथमें भगवत नामकी सुमिरनी लेकर मनसे नायिका-भेदपर विचार करने और आँखोंसे काम-केलिके कुञ्ज टोहने लगे। वे रसिक तो थे, पर राम या श्यामके नहीं, कामके। वे दास तो थे, पर हरिचरणोंके नहीं, अपनी इन्द्रियोंके।
—'आधुनिक हिन्दी महाकाव्योंका शिल्प विधान', डॉ० किशोर, पृ० १२०।

३. 'हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास', पृ० ५३७।

भारतेन्दु-युगके गीतिकारोंकी रचना-पद्धति—भारतेन्दु द्वारा लोकगीतोंके साथ कलागीतोंके समन्वय का विशेष प्रयास

भारतेन्दु-युगके कवि मध्यकालीन काव्य-प्रवृत्तियों, शैलियों एवं परम्पराओंको स्वीकार करते हुए आगे बढ़े, किन्तु उदार और उदात्त व्यक्तियोंके रूपमें उन्होंने तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियोंसे स्वयंको एकाकार कर लिया। प्राचीनकी शक्ति लेकर नवीनको सँवारनेका यह प्रयास इस युगकी विशेषता है। काव्य-परम्पराओंका परिमार्जन और परिष्करण कर इस युगके कवियोंने नये युगका प्रवर्त्तन किया। स्वरूपकी दृष्टिसे यह भारतेन्दु-युग प्रमुखतः मुक्तकोंका युग है, जिनमें दोहों, कवित्तों, सवैयोंके साथ ही पदावलियों, लोकछन्दों तथा लोकधुनोंपर आधारित गीत सम्मिलित हैं। क्या भाषा, क्या भाव और क्या काव्य-पद्धतियाँ—सभी दृष्टियोंमें भारतेन्दु-युग समन्वयका काल था। व्रजभाषा काव्यकी भावुकताके साथ ही सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियोंसे उत्पन्न विचारोत्प्रेरक समस्याएँ इस युगके गीतोंकी विशेषता है। पहली बार भारतेन्दु-युगके गीतोंमें लोकहित, समाज-सुधार, स्वतन्त्रता आदि विषयोंपर विचार मिलता है। वीरगाथा-कालकी स्थानीय और जातीय देशभक्तिके स्थानपर सम्पूर्ण मातृभूमिके लिए व्यापक देशभक्तिका स्वर पहली बार इस युगके गीतोंमें मिला। मातृभाषाके उद्धार और प्रचारके सम्बन्धमें भी पहली बार कवियोंका सम्मिलित स्वर इस कालमें सुनाई पड़ा। हास्य और व्यंग्यके नये आलम्बनोंने न सिर्फ काव्य-क्षेत्रका विस्तार किया बल्कि उन्होंने कवियोंकी जिन्दादिलीका भी सबूत पेश किया।

इस युगमें मुक्तकका एक नया रूप हमारे सामने आया जिसके लिए आचार्य शुक्लने यह लिखा है कि "कुछ दूरतक चलती हुई विचारों और भावोंकी मिश्रित धाराके रूपमें छोटे-छोटे प्रबन्धों या निबन्धोंकी चाल न थी।"[१] उदाहरण स्वरूप भारतेन्दुका 'दशरथ-विलाप', प्रतापनारायण मिश्रकी 'गोरक्षा' दंगलपर लिखा गया उनका 'आल्हा' और 'ब्रेडला स्वागत', हास्य और करुण मिश्रित 'रचना तृप्यंताम्', प्रेमघनका 'जीर्ण जनपद' होलीकी नकल आदि रचनाएँ उपर्युक्त शैलीमें लिखी गयीं।

गीतिकाव्यकी दृष्टिसे इस युगके नाटक भी महत्त्वपूर्ण हैं। नाटकोंमें परिस्थितियोंको उभारने, भावुकताको जगाने, पात्रोंकी मनोवृत्तियोंको स्पष्ट करने तथा संगीतात्मकताके सृजनके लिए इस युगके नाटकोंमें पिरोये गये गीत अत्यन्त सफल हुए हैं। नील देवी, भारतदुर्दशा, चन्द्रावली आदि इसके उदाहरण हैं। गीतिकाव्यकी दृष्टिसे प्रतापनारायण मिश्रकी नाट्यवृत्ति 'उषाहरण' बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसमें लोकधुनोंपर रचे गये कुछ गीत बड़े मार्मिक हैं। इतना ही नहीं इसके चौथे अङ्कका धीवरगीत और पाँचवें अङ्कका कंचुकीगीत अपने समयमें बड़े प्रसिद्ध हुए।

राष्ट्रभक्तिसे सम्बद्ध ओजपूर्ण गीतोंका भी अभाव इस युगमें नहीं था। दुलारे कविका 'अवध मां राना है मरदाना', भारतेन्दुका 'वर्षाविनोद', 'रोवहु सब मिलिके

---

१. 'हिन्दी-साहित्यका इतिहास', पृ० ५७९।

आवहु भारत भाई' और 'विजयिनी विजय पताका', श्रीधर पाठककी 'हिन्द वन्दना' आदि कविताएँ कई दृष्टियोंसे श्रेष्ठ हैं। राष्ट्रभक्तिके साथ ही भगवद्भक्तिके अनेक श्रेष्ठ पद इस युगके प्रतिनिधि कवि भारतेन्दुने लिखे। 'रे मन करु नित यह ध्यान', 'कहाँ किमि छूटे नाथ सुभाव', 'बलिहारी है या दरबारकी', 'प्रभुकी कृपा कहाँ लौं गैये', 'कहो अद्वैत कहाँसे आये', 'कहाँ करुनानिधि केसव सोये' आदि गीत इस तथ्यके पोषक हैं। भारतेन्दुके भक्तिपरक गीतोंमें गीतिकाव्यके सभी तत्त्व पूर्ण मात्रामें वर्तमान हैं।

इस युगमें व्रजभाषाका विशेष प्रभाव था, लेकिन खड़ी बोली कविताका भली-भाँति प्रारम्भ हो गया था। खड़ी बोलीके गीतोंमें ग्रीष्मवर्णन 'गर्मीके आगम दिखलाए रात लगी घटने', 'साँझ सबेरे पंछी सब क्या कहते हैं,' 'कुछ तेरा है', 'तुझपर काल अचानक टूटेगा', 'डङ्का कूचका बज रहा मुसाफिर जागो रे भाई', 'मंद-मंद आवे देखो प्रात समीरण', 'फागुनके दिन बीत चले अब ऋतु वसन्त आयी' और प्रताप-नारायण मिश्रके शकुन्तला नाटकका गीत 'प्यारीने पाया पिया मन भाया, क्या ही विधाताने योग मिलाया' आदि उल्लेखनीय हैं।

गीतिकाव्यकी दृष्टिसे भारतेन्दुने भक्तिकालीन और तत्कालीन विषयोंका समावेश किया। उन्होंने वल्लभ-सम्प्रदायके अनुयायी और वैष्णव धर्मके कुलधर्मी होने, गोपाल भक्तिन श्यामा बेटीके शिष्य और युगलमूर्त्तिके उपासक होनेके नाते भक्ति-विभोर पद लिखे हैं। भारतेन्दुकी स्वच्छन्द प्रतिभा और वैयक्तिक अनुभूतिकी सहज-अभि-व्यक्तिके लिए भक्तिकालीन कृष्णकाव्य और रीतिकालीन परम्पराओंमें प्राप्त होनेवाली गीतिकाव्य और मुक्तककाव्य पद्धतियाँ ही अधिक उपयुक्त थीं, अतः उन्होंने उनका ही अनुसरण किया। व्रजभाषा-काव्य-साहित्यमें सम्भवतः भारतेन्दु ही प्रगीतात्मक प्रतिभा-सम्पन्न अन्तिम कवि थे। यों तो सत्यनारायण आदि कवियोंके भक्ति-सम्बन्धी पदोंमें भारतेन्दुके बाद भी व्रजभाषा पदावलीके प्रमाण मिलते हैं, किन्तु प्रगीतात्मक प्रतिभाकी जिस वैयक्तिक मार्मिकता और रागात्मक तीव्रताके वर्णन हमें भारतेन्दुके पदोंमें मिलते हैं, वे फिर नहीं मिलते।

भारतेन्दुके गीतिकाव्यमें वे ही विशेषताएँ नहीं हैं, जो परम्परागत गीतिकाव्यमें दीखती हैं। कबीरके पदोंमें वैयक्तिक भावाभिव्यक्तिकी ओटमें सामाजिक उपदेशात्मक दार्शनिकता अथवा आध्यात्मिकताका गहरा रंग दिखायी देता है। मीराकी पदावलीमें प्रियतमके साथ अनन्य एकात्मता और उसके खण्डित होनेपर तीव्र विरह-वेदना दिखायी देती थी। सूरकी पदावली एक ओर शान्त-संयत भक्ति-भावनासे ओत-प्रोत है, दूसरी ओर सौन्दर्य-चित्रोंसे जगमग और तीसरी ओर संयोग-वियोगकी भावाभिव्यक्तियोंसे मधुर-करुण। इन सबसे अलग भारतेन्दुके गीतोंकी मुख्य विशेषता यह है कि एक ओर जहाँ उनमें वियोगकी करुण व्यञ्जना हुई है, वहाँ दूसरी ओर उनमें लोक-जीवनमें रस-सञ्चार करनेवाली कजरी, ठुमरी, बारहमासा, होली, चैती आदि प्रगीतात्मक पदोंमें प्रेमकी मधुर व्यञ्जना भी हुई है।

आधुनिक युगमें कलागीतोंके साथ लोकगीतोंके समन्वयका विशेष प्रयास भारतेन्दुकी रचनाओंमें मिलता है। इस दृष्टिसे भारतेन्दुके गीतोंकी राग-रागिनियाँ परम्परागत पदावलियोंकी राग-रागिनियोंसे सर्वथा भिन्न हैं। लोकहृदयकी सरल-स्वाभाविक आनन्दकी अभिव्यक्ति जैसी भारतेन्दुकी पदोंमें हुई है वैसी पूर्ववर्ती गीतिकारोंकी रचनाओंमें नहीं। 'अरे इन दोउन राह न पायी' अथवा 'जगतसे कैसा नाता रे' (कबीर)की सार्थकता या तो हिन्दू-मुस्लिम दङ्गोंकी शांतिमें है अथवा दो समाजोंके समन्वयके प्रयत्नमें। 'हेरी मैं तो दरद दीवानी' (मीरा) अथवा 'अँखियाँ हरिदर्शनकी प्यासी' (सूर)की सार्थकता सुरुचिपूर्ण सहृदयताकी सतहपर ही हो सकती है। किन्तु यदि 'ब्रजके लता पता मोहि कीजै'में एक साथ ही सूर और मीराकी झाँकी मिल जाती है, तो 'चिरजीवो फागुनकी रसिया'में एक बारगी लोकहृदयकी उमङ्ग छलक पड़ती है, इनमें न तो होलीमें गाये जानेवाले कबीरकी अन्योक्तिपूर्ण दुर्बोधता अथवा जघन्य अश्लीलता है और न सूरकी होली जैसी प्रकृति-पुरुषकी लीलाकी अभिव्यक्ति। इस प्रकार भारतेन्दुके पदोंका एक ओर साहित्यिक महत्त्व है, तो दूसरी ओर लोकव्यापी प्रभाव। अतः उनमें यदि एक ओर सारङ्ग, विहाग, असावरी, पीलू, डुमन, कान्हराके द्वारा राग-रागिनियोंकी शास्त्रीयता है (क्लासिसिज्म है), तो दूसरी ओर लावनी, पूर्वी, रेखत, खेमटा, होली, हिंडोला आदिकी रूमानियत (रोमान्टिसिज्म)।

द्विवेदी-युगके कवियोंकी गीतिशैली, उनकी व्यक्तिगत विशेषताएँ—उनपर प्राचीन कवियोंके प्रभावका मूल्यांकन और नवीन उद्भावनाओंके कारण

खड़ीबोली कविताके प्रथम चरणका स्वर्णोदय द्विवेदी-युगमें प्रारम्भ हुआ। न केवल भाषाके स्वरूप-परिवर्तन, गठन, संस्कार और व्याकरण-सम्मत रूपकी दृष्टिसे, बल्कि विषयकी नवीनताओंके समावेशकी दृष्टिसे यह युग बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस युगमें परम्परावादी और स्वच्छन्दतावादी दोनों ही प्रकारकी काव्य-शैलियोंका विकास हुआ। आचार्य द्विवेदीके शासनमें रहकर आदर्शवादी, नैतिकतापूर्ण एवं संस्कृत-साहित्यके संस्कारोंसे प्रभावित काव्य लिखे जाने लगे। इस दिशामें इतिवृत्तात्मक कविताएँ संस्कृत वृत्तोंमें लिखी गयीं, जिनमें आत्माभिव्यंजनके स्थानपर वर्णनात्मकताकी प्रधानता थी।

रचना-विधानकी दृष्टिसे द्विवेदी-युग मुख्यतः प्रबन्धात्मकताका युग था, गीतिकाव्यका नहीं। गुप्तजीकी भारतभारती, किसान, बकसंहार, वन-वैभव, रंगमें भंग, केशोंकी कथा, जयद्रथ वध; रामनरेश त्रिपाठीका पथिक, मिलन, स्वप्न; प्रसादका महाराणाका महत्त्व; कामताप्रसाद गुरुका शिवाजी, वीरांगना, चाँदबीबी, दुर्गावती; सियारामशरण गुप्तकी मौर्य विजय; रामचरित उपाध्यायकी 'रामचरित चिन्तामणि'; लोचनप्रसाद पाण्डेयकी दुःखमोचन; राय देवीप्रसाद पूर्णकी वसन्त वियोग; नाथूराम शंकरकी गर्भ रंग रहस्य आदि कविताएँ कथात्मक हैं।

द्विवेदीजीसे बहुत अधिक प्रभावित होकर भी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तिके प्रति बहुतसे कवियोंका आकर्षण बना रहा। इन कवियोंने ही समय-समयपर प्रगीतोंकी रचनाएँ कीं। इसी समय 'गीतांजलि'की धूम मची थी। बंगला और अंग्रेजीकी काव्यशैलियोंका प्रभाव हिन्दीपर पड़ने लगा था। खड़ीबोलीके गीतिकाव्यके क्षेत्रमें भी नये प्रयोग प्रारम्भ हुए। प्रो० बदरीनाथ भट्टने सन् १९१२ के प्रारम्भमें ही कई गीत लिखे। मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, बदरीनारायण भट्ट, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि अनेक कवियोंने प्रगीतियोंकी रचना की।

श्रीधर पाठकका 'भारत गीत' राष्ट्रीय भावनाओंसे ओत-प्रोत कविता है। भारत-जननीके अभिनन्दन, अतीतका गौरव और भविष्यके निर्माणकी प्रेरणाओंसे पुष्ट यह गीत अत्यन्त मार्मिक है। इसमें राष्ट्रीय रचनाओंके साथ ही भ्रमरगीत और चरगीत हैं। तीन प्रयाणगीत भी हैं, जिसका विकसित रूप चामर छन्दमें लिखा गया प्रसादजीका 'हिमाद्रि तुंग शृंगसे' गीत है। इनमें एक-एक गीत साधुओं और बच्चोंसे सम्बद्ध है। पाठकजीने लोकप्रचलित छन्दोंमें भी गीत लिखे हैं। स्वच्छन्दतावादी काव्यके अग्रणी पाठकजीने रुमानी कजलियाँ लिखीं और मजदूरिनोंके अनुकूल राष्ट्रीयगीत भी लिखे। भावनाओंकी उच्चता या काव्य-कौशलकी दृष्टिसे नहीं, सर्वहारा वर्गकी सहानुभूति और देशभक्तिके जन-जागरणके चित्रणकी दृष्टिसे ऐसी रचनाओंका बहुत अधिक महत्त्व है। भारतेन्दुकी परम्परामें इन्होंने सन् १९१२ में जार्ज वन्दना कविता लिखी, जिसका छन्द तो छप्पय है, पर इसमें पर्याप्त संगीतात्मकता है। पाठकजीके गीतोंमें देशकी प्राकृतिक सुषमा एवं उद्बोधन मिलते हैं। 'नौमि भारत', 'भारत वन्दना'की मंजुल शब्द-योजना मानसकी 'रामचन्द्र कृपाल भजु मन हरण भव भय दारुणम्'की याद दिलाती है। इन्होंने गीत-गोविन्दकी लयात्मक शैलीमें भारताष्टक, भारतस्तव, स्वदेशपंचक आदि कविताएँ लिखी हैं। 'भारतगीत' और 'बिछुड़नेवाले यों बिछुड़े' अपने युगमें बड़ी लोकप्रिय रचनाएँ रहीं।

बदरीनाथ भट्टके 'प्रार्थना'[१] शीर्षक गीतमें भक्ति-भावनाके साथ ही राष्ट्रीयताका पुट है। निरालाकी वीणावादिनि वर दे[२] की शैलीपर इस गीतका प्रभाव है। इनकी सोनेवाले जाग-जाग[३] तथा अब तो आँखें खोलो[४] रचनाएँ राष्ट्रीय उद्बोधनकी दृष्टिसे अच्छे गीत हैं। मुकुटधर पाण्डेयके गीतोंमें प्रकृति-चित्रणके मनोरम रूप मिलते हैं। 'खिला है नया फूल उपवनमें' इसी दृष्टिसे सफल गीत हैं। प्रसादजीके गीतोंका उषाकाल द्विवेदी युग ही है। रहस्यपूर्ण भावनाओंकी दृष्टिसे उनका यह पद 'ऐसो ब्रह्म लेह का करि हैं' उस समय बहुत प्रचलित था। जो लोग साकेतके नवम सर्गके गीतोंकी चर्चा द्विवेदी-युगके अन्तर्गत करते हैं, वे साकेतकी रचनाके कालक्रमपर ध्यान नहीं देते।

---

१. 'सरस्वती', अप्रैल, १९१५।

२. 'गीतिका', प्रथम गीत।

३. 'माधुरी', जून, १९२६।

४. अनुरोध, 'पद्य-संग्रह', हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित।

साकेतके नवम सर्गकी रचना सन् १९२९-३१ के बीच हुई। अतः इन गीतोंकी समीक्षा छायावादके अन्तर्गत करूँगी।

स्वयं महावीरप्रसाद द्विवेदीने कुछ अच्छे गीत लिखे। गीत गोविन्दसे प्रभावित 'भारतवर्ष' और आल्हेके आधारपर उन्होंने 'सरगौ नरक टेकाना नाहिं' गीत लिखे। इन्होंने उर्दू छन्दोंके आधारपर 'टेसूकी टाँग' और 'महिला परिषद्'के गीत लिखे। 'मेरे प्यारे हिन्दुस्तान' गीतकी पर्याप्त प्रसिद्धि हुई। ये सारे गीत द्विवेदी काव्यमालामें संगृहीत हैं।

प्रबन्धके बाद मुक्तकका स्थान द्विवेदी-युगमें आता है, पर गीतिकाव्य या प्रगीत सामान्यतः छिटफुट रूपमें लिखे गये। साकेतका प्रारम्भ द्विवेदी युगमें हुआ, पर उसके नवम सर्गके गीत छायावाद कालमें लिखे गये। झंकारकी रचना इसी कालमें हुई, पर लहर और झरना भी काल-क्रमसे द्विवेदी-युगमें नहीं पड़ते।

भारतेन्दु-युगकी राष्ट्रीयताकी लहर इस युगमें और तीव्र हुई। सामाजिक सजगता इस युगके गीतोंमें और प्रखर हुई। लेकिन हास्य-व्यंग्यका पुट द्विवेदीजीके व्यक्तित्वसे प्रभावित कवियोंकी रचनाओंमें नहीं दीखता। दोनों युगोंके निर्माता भारतेन्दु और द्विवेदीके व्यक्तित्वका यह मौलिक भेद था कि एक मस्तमौला भावुक जीव थे, दूसरे अनुशासन-प्रिय गम्भीर व्यक्ति। द्विवेदी-युगकी रचनाओंकी सोद्देश्यता उसकी अपनी विशेषता है। प्राकृतिक सौन्दर्यके चित्रणके प्रति भी जैसी आसक्ति द्विवेदी-युगके कवियोंमें थी, वैसी भारतेन्दुयुगीन कवियोंमें नहीं। काव्य-संस्कारकी दृष्टिसे द्विवेदी-युग संस्कृतसे अधिक प्रभावित था। काव्यके रचना-विधानकी दृष्टिसे भारतेन्दु-युगसे भिन्न इस युगमें प्रबन्धात्मक शैलीका विकास हुआ।

अन्य युगोंसे द्विवेदीयुगीन प्रवृत्तियोंके अन्तरके कई कारण थे। एक तो भारतेन्दु-युगीन सामाजिक चेतना इस युगतक आते-आते अधिक प्रखर हो गयी थी, दूसरे ब्रजभाषाकी विरासत और रीतिकालीन निकटताकी दृष्टिसे शृङ्गारका जितना प्रभाव भारतेन्दु युगपर था, उतना द्विवेदी युगपर संभव नहीं था। द्विवेदीजीके सुसंस्कृत व्यक्तित्वसे इसकी संभावना और भी समाप्त हो गयी। रीतिकालीन शृङ्गारिक प्रवृत्तियोंकी अतिशयताके कारण उसकी प्रतिक्रिया भी स्वाभाविक थी। तीसरे, द्विवेदी-युग आते-आते गद्यके आविर्भावके कारण विचारोंकी रीढ़ कविताओंमें भी आने लगी। चौथे, कथा-काव्यके आग्रहके कारण इस युगमें वर्णनात्मक प्रसंगोंकी अधिकता स्वाभाविक थी।

शोध-विषय और उसके सीमा-निर्धारणका औचित्य

प्रस्तुत शोध-प्रबन्धका उद्देश्य सन् १९२० से सन् १९६० ई० के बीच लिखित आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यके स्वरूप और विकासका अध्ययन प्रस्तुत कर तत्सम्बन्धी निष्कर्षों और मूल्यांकनोंके बीच अपनी स्थापनाएँ स्थिर करना है। सामान्यतः आधुनिक शब्दका प्रयोग कई रूपोंमें किया जाता है। 'हिन्दी-साहित्यका इतिहास'में आचार्य

रामचन्द्र शुक्ल सम्वत् १९०० अर्थात् सन् १८४३ से 'आधुनिक काल'का उदय मानते हैं। स्वभावतः वे मुगलोंके शासनकालकी समाप्ति और अँगरेजोंके सम्पर्कसे उदित नयी राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संघर्ष और सम्पर्कके फलस्वरूप उदित होनेवाली चेतनाको आधुनिक कालका स्वर्ण-प्रात मानते हैं। कालोंके वर्गीकरणमें उनका सिद्धान्त ही सामाजिक प्रभावोंके साथ साहित्यका मेल दिखलाना रहा है। आचार्य शुक्लका यह विभाजित काल भारतेन्दु-युगका उदय और विस्तार अपनेमें समाहित किये हुए है। यद्यपि भारतेन्दु-युगमें रीतिकालीन शृङ्गारिकता और ब्रजभाषाकी भाषाशैलीका प्रभाव बना हुआ था, तथापि यह भी सत्य है कि उस युगमें राष्ट्रीय और सामाजिक दृष्टिसे एक अभिनव क्रान्तिका सूत्रपात हुआ था। विषयस्वरूपके विकास, बौद्धिकताके समावेश एवं मानवतावादी चेतनाके व्यापक प्रसारकी दृष्टिसे यह युग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पद्यसे भी अधिक मौलिक सेवाएँ भारतेन्दु-युगने गद्यकी की, और इस दृष्टिसे गद्य-विधाओंके प्रथम सुष्ठु प्रयोगके कारण यह आधुनिक युग माना जायगा। आधुनिक शब्दका यदि अभिधेयार्थ, कोषगत अर्थ लें तो 'वर्तमान', 'आजकलका', 'इस समयका' आदि अर्थोंमें इसके अन्तर्गत वे जीवित कवि आ जाते हैं, जो वर्तमान कालमें साहित्य-सृजन करते जा रहे हैं। निरन्तर वर्द्धमान और नश्वर शरीरसे नहीं, अपने साहित्यकारोंको उनकी कृतियोंसे जीवित रखनेवाले साहित्यमें यह संकुचित अर्थ नहीं ग्रहण किया जा सकता। तीसरी विचारधारा छायावादसे हिन्दी कविताका आधुनिक काल मानती है, क्योंकि भाषाशैली और जीवन-बिन्दुके संस्पर्शका यह सर्वथा नूतन प्रयास है। पाश्चात्य-पौरस्त्य विचारबिन्दुओंके सम्पर्क, जीवन और जगत्के प्रति नवीन दार्शनिक चेतनाका उदय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणके कारण भाव-चित्रण, भाषा-शैली, शिल्प आदि अनेक क्षेत्रोंमें हिन्दी कविताका एक नवीन अध्याय खुल गया। इसी तरह जनता और धरतीसे पूर्णतः सम्बद्ध होनेके कारण प्रगतिवादी साहित्यकार सन् १९३६ से आधुनिक हिन्दीका जन्म मानते हैं। और तो और प्रयोगवादसे सम्बद्ध कवि ही अपनेको 'नयी कविता'का जनक मानते हैं।

प्रस्तुत शोध-विषय गीतिकाव्यसे सम्बद्ध है, अतः यहाँ छायावाद कालसे ही 'आधुनिक' शब्दकी सीमाका प्रारम्भ माना गया है और सन् १९२० से अद्यावधि (विश्वविद्यालय द्वारा शोधकी रूप-रेखाके स्वीकृति-वर्ष सन् १९६० ई० तक) इसका अध्ययन प्रस्तुत करना आवश्यक समझा। खड़ीबोलीका गीतिकाव्य आधुनिक रूप-रंग, साज-सज्जा और नवीन जीवन-दर्शन लेकर छायावाद कालमें ही प्रकट हुआ। वैयक्तिकताका इतना प्रबल विस्फोट पहले कभी नहीं हुआ था। स्वरूप-विधानकी दृष्टिसे छायावादको गीत-काल ही कहा जा सकता है। अतः इसे ही आधुनिक कालकी सीमा-भूमि मानना युक्ति-संगत समझा गया।

मैंने यह पाया कि आधुनिक हिन्दी-काव्यके एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना-विधान 'गीतिकाव्य'का समुचित मूल्यांकन नहीं किया गया है। हम अपने कवियोंकी अन्तर्दृष्टि, उनकी वैयक्तिकताकी परख, भाव और संगीतके समन्वय, रागात्मक वृत्तियोंके समीकरण

एवं मनोवैज्ञानिक जीवन-संस्पर्शोंके अध्ययनसे पूर्णतः परिचित नहीं हो पाये हैं। हम एक ऐसी रचना-पद्धतिका सम्यक् अध्ययन नहीं उपस्थित कर पाये हैं, जिसकी एक सुदीर्घ परम्परा हमें प्राप्त है। साहित्यके विकासकी दृष्टिसे हमारा यह जानना आवश्यक था कि प्राचीन पद-परम्पराका कैसा रूप-परिवर्तन आधुनिक कालमें हुआ।

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यपर लिखी गयी पुस्तकोंपर विचार करनेपर इस दिशामें शोध करनेकी आवश्यकता और भी बढ़ जाती है। उपलब्ध पुस्तकोंमें केवल डॉ० रामखेलावन पाण्डेयकी पुस्तक 'गीतिकाव्य'में वैज्ञानिक दृष्टि अपनायी गयी है, लेकिन उनकी विशेषता गीतिकाव्यके तत्त्वोंके विश्लेषणमें ही केन्द्रित है। उन्होंने 'कसौटी'के अन्तर्गत केवल ११ आधुनिक गीतकारोंकी एक-एक रचनाकी भावात्मक व्याख्या प्रस्तुत की है। डॉ० पाण्डेयका क्षेत्र पूरा हिन्दी गीतिकाव्य है, इसलिए आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यपर पूरा बल नहीं पड़ सका है। साथ ही सन् १९४७ में प्रकाशित होनेके कारण उसके बादके गीतिकाव्यके स्वरूप और विकासका उल्लेख होना संभव नहीं था। डॉ० पाण्डेयकी यह पुस्तक हिन्दी गीतिकाव्यका एक अच्छा परिचयात्मक साहित्य है। यही इसकी सीमा है, यही विशेषता। दूसरी उल्लेखनीय पुस्तक है—पं० लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी' विरचित 'गीतिकाव्यका विकास'। इस ग्रन्थमें संस्कृत-साहित्य, बौद्ध-जैन-साहित्य, सिद्ध-साहित्य, भक्ति-साहित्य और आधुनिक गीति-साहित्यका परिचय दिया गया है। लगभग ५०० पृष्ठोंके इस ग्रन्थमें आधुनिक गीतिकाव्यपर (वह भी गुप्तसे लेकर नेपालीतक) केवल ४४ पृष्ठ हैं। उन ४४ पृष्ठोंमें भी अत्यन्त हल्के ढंगसे 'अच्छा', 'उत्तम', 'सुन्दर' आदि विशेषणोंसे कवि-कृतियोंका स्पर्श कर लिया गया है। आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यके अध्ययनकी दृष्टिसे यह पुस्तक निरर्थक है। इसके अतिरिक्त गीति-काव्यपर सर्वश्री ओमप्रकाश और सच्चिदानन्दकी दो कृशकाय परीक्षोपयोगी पुस्तकें हैं—'हिन्दी गीतिकाव्य' और 'आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य', जिनका उल्लेख व्यर्थ है। वे पुस्तकें मध्यमा परीक्षाके छात्रोंको उत्तीर्णांक दिलानेमें समर्थ हो सकती हैं। उपर्युक्त पुस्तकोंमेंसे किसीमें आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यके स्वरूप और विकासपर विधिवत् अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया गया है। गीतिकाव्यपर इन गीतिकाव्य नामधारी पुस्तकोंसे अधिक वैज्ञानिक, उपयोगी और तर्कसम्मत विचार फुटकल रूपमें प्रसंगानुसार डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ० नगेन्द्र आदि आलोचकों एवं निराला, पन्त, रामकुमार, महादेवी आदि कवियोंकी भूमिकाओं और लेखोंमें मिलते हैं।

मैंने आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यके पूर्ण मूल्यांकनके लिए उसे स्वरूप और विकास दो शब्दोंमें बाँधनेका प्रयास किया है। 'स्वरूप'के अन्तर्गत उसके रचना-विधान, भाव, दर्शन, भाषाशैली, छन्द, मनोवैज्ञानिक विवेचन-काव्यके अन्तरंग और बहिरंग दोनों पक्षोंको लिया है। 'विकास'के अन्तर्गत उस अविच्छिन्न परम्पराका बोध कराया गया है, जिसमें आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका विकास हुआ है। अतः इस दृष्टि-बिन्दुके अन्तर्गत मैंने वीरगाथा काल, भक्तिकाल, रीतिकाल और द्विवेदी-युगको पृष्ठभूमिके रूपमें

स्वीकार कर तत्कालीन गीतिकाव्यका सार रूप उपस्थित किया है। साथ ही, अँग्रेजी, उर्दू, बंगला आदि साहित्यके पारस्परिक प्रभावोंका आकलन किया गया है। इसी दृष्टिकोणके अन्तर्गत छायावादको हिन्दी गीतिकाव्यके विकासका 'स्वर्णकाल' मानकर उसका विस्तृत विवेचन एवं षष्ठ प्रकरणमें आधुनिक कालके प्रमुख कवियोंके गीत्यात्मक विकासका विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है। मैंने पाया है कि 'स्वरूप' और 'विकास'के अध्ययनके आधारपर मुझे आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यके सम्बन्धमें अपनी स्थापनाएँ स्थिर करनेमें पर्याप्त सहायता मिली है।

———

अध्याय २

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य—ऐतिहासिक दृष्टि

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका काल-विभाजन और उसका औचित्य

सामान्य रूपसे आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका काल-विभाजन वही होगा जो कि आधुनिक हिन्दी-कविताका होता है, क्योंकि सम्पूर्ण आधुनिक काल न्यूनाधिक मात्रामें गीतिकाव्यसे सम्बद्ध है। आचार्य रामचन्द्र शुक्लने अपने 'हिन्दी-साहित्यका इतिहास' में आधुनिक कालके काव्यखण्डको दो धाराओंमें विभक्त किया है—पुरानी धारा और नयी धारा। नयी धाराको उन्होंने द्वितीय उत्थानके रूपमें स्वीकार कर इसकी अवधि सन् १८९३ से सन् १९१२ तक मानी है। तृतीय उत्थानका प्रारम्भ उन्होंने १९१२ से माना है और उसे वर्तमान काव्यधाराएँ शीर्षकके अन्तर्गत समेटनेका प्रयास किया है।

हिन्दी के युगान्तरकारी साहित्य-मनीषी डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीने सन् १९०० से हिन्दी कविताके नये युगका प्रारम्भ माना है, लेकिन उन्होंने स्पष्टतः यह स्वीकार किया है कि इस अवधिमें व्रजभाषाका मिला-जुला रंग था। समय-प्रवाहसे इस कालके व्रजभाषा-प्रिय कवि आगे खड़ीबोली कविताके अग्रणी हो गये।[1] डॉ० द्विवेदीने सन् १९२० से सन् १९३५ का काल छायावादका और सन् १९३६ से सन् १९५२ का काल प्रगतिवादका माना है। डॉ० श्रीकृष्णलालने अपने 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य' (१९००-१९२५ ई०) में पचीस वर्षोंकी इस अवधिको कविताकी विभिन्न विधाओंकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण माना है।[2]

डॉ० भोलानाथने 'हिन्दी-साहित्य' (१९२६-४७ ई०) में २१ वर्षोंकी अवधिको दो वादोंका काल माना है—छायावाद और प्रगतिवादका। 'आधुनिक हिन्दी कविता (सिद्धान्त और समीक्षा)' में डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्यायने भारतेन्दु-युग, द्विवेदी-युग, छायावाद-रहस्यवाद, प्रगतिवाद, नवगीत प्रवाह और प्रयोगवादके रूपमें आधुनिक हिन्दी कविताको छह 'प्रवाहों' विभक्त किया है।

---

१. सन् १९०० से १९२० तकका काल हिन्दी कवितामें नवीन युग ले आनेवाला काल है। इस समय काव्यकी भाषा व्रजभाषासे बदलकर खड़ी बोली हो गयी। यद्यपि इस कालमें भी कुछ शक्ति-सम्पन्न कवि व्रजभाषाको अपनाये रहे, परन्तु धीरे-धीरे व्रजभाषा पीछे पड़ गयी और खड़ी बोली आगे निकल गयी। कई कवियोंने व्रजभाषामें कविता लिखनी शुरू की थी। बादमें समयका रंग देखकर उसे छोड़ दिया।—हिन्दी-साहित्य (उसका उद्भव और विकास), पृ० ४००।

२. मुक्तकोंके वनखण्डके स्थानपर महाकाव्य, खण्डकाव्य, आख्यानकाव्य (बैलेड), प्रेमाख्यान-काव्य (मिस्टिकल रोमांसेज), प्रबन्धकाव्य, गीतिकाव्य और गीतोंसे सुसज्जित काव्योपवनका निर्माण होने लगा। —पृ० २।

मेरे अध्ययनका काल सन् १९२० से १९६० ई० है जिसमें विकसित हिन्दी गीतिकाव्य-के स्वरूप और विकासका मूल्यांकन करना है। यों तो भारतेन्दु और द्विवेदी युगमें भी हिन्दी गीतिकाव्यके विकास और रूप-परिवर्तनके प्रमाण मिलते हैं, तथापि विविधता और कलात्मक-भावात्मक सिद्धिकी दृष्टिसे सन् १९२० से १९६० ई० का काल अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस सीमाके अन्तर्गत छायावाद और छायावादोत्तर हिन्दी कविताका वृत्त बनता है। आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका व्यापक रूपसे निम्नलिखित काल-विभाजन किया जा सकता है :—

प्रारम्भकाल—भारतेन्दु-युग—खड़ीबोली गीतिकाव्यका जन्म।
निर्माणकाल—द्विवेदी-युग—खड़ीबोली गीतिकाव्यका शैशव।
स्वर्णकाल—छायावादी काव्य—खड़ीबोली गीतिकाव्यका तारुण्य।
विस्तार-प्रसारकाल—प्रगतिवादी काव्य—खड़ीबोली गीतिकाव्यका दृष्टि-विस्तार।
प्रयोगकाल—नवीन युग—सन् १९५३ से १९६० तकका नवीन कलेवर।

सभी साहित्यिक विधाओंकी भाँति भारतेन्दु-युगमें आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका जन्म हुआ, पर भक्तिकालीन पदों और रीतिकालीन मुक्तकोंका प्राधान्य रहा। द्विवेदी-युगमें खड़ी बोलीमें सुघर गीतोंका निर्माण उत्तरोत्तर बढ़ता गया, इस युगके अनेक समर्थ कवि छायावाद कालमें अच्छे गीतिकार सिद्ध हुए। जैसे-जैसे व्रजभाषाका दामन छोड़कर कविगण खड़ी बोलीकी ओर अग्रसर हुए, गीतिकाव्य नये साँचेमें ढलने लगा। इन दोनों कालोंकी गीत्यात्मक उपलब्धियोंका विवेचन प्रथम प्रकरणमें संक्षेपमें किया जा चुका है। छायावाद हिन्दी गीतिकाव्यका स्वर्णयुग है, जिसको गीतियुग ही कहा जाना युक्तिसंगत है। जिसका विस्तृत विवेचन आगेके प्रकरणोंमें किया जायगा। सन् १९३६ से लेकर सन् १९५२ तकका काल प्रगतिवादी दर्शनकी स्वीकृतिके कारण नवीन उद्भावनाओं और दृष्टिकोणका है। उसके बाद ही काव्यमें नये प्रयोग प्रारम्भ हुए, अगले प्रकरणोंका विवेचन करते हुए समग्र रूपसे पूरे आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य-पर विचार किया जायगा।

इस प्रकरणमें मैं ऐतिहासिक दृष्टिसे आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यकी सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक परिस्थितियोंका अध्ययन करूँगी और उनसे प्रभावित सामान्य विशेषताओंपर प्रकाश डालनेकी चेष्टा करूँगी। संक्षेपमें छायावाद और छायावादोत्तर युगोंका ऐतिहासिक पृष्ठभूमिमें आलोचनात्मक मूल्यांकन भी किया जायगा।

प्रवृत्तियोंका विश्लेषण

(क) समकालीन परिस्थितियाँ

सन् १९२० से १९६० ई० के बीच छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवादकी रचनाएँ हमारे सामने आयीं। यहाँ सामान्य रूपसे उन परिस्थितियोंपर विचार किया जायगा, जिनकी क्रिया-प्रतिक्रियाका प्रतिबिम्ब आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यकी प्रवृत्तियोंपर पड़ा।

कारण यह है कि सामान्यतः कवि-व्यक्तित्व युग-सापेक्ष होता है। सीधे आड़े-तिरछे किसी-न-किसी रूपमें उसका प्रभाव उसपर पड़ता ही है।

सन् १९०५ तक आते-आते अँग्रेजोंके प्रति घृणाकी भावना और प्रखर हो गयी थी। स्वराज्यको जन्मसिद्ध अधिकार माननेवाले करोड़ों भारतीयोंके मनमें विद्रोहकी प्रबल आग भड़क उठी थी। कांग्रेसका विभाजन दो दलोंके रूपमें हो गया था। नरम दलवाले शान्तिके द्वारा अहिंसात्मक प्रणालीसे स्वतन्त्रता चाहते थे, पर गरम दलवाले अस्त्र-शस्त्रकी आवश्यकताका अनुभव करते थे। जनतामें अपने अतीतके प्रति गहरा प्रेम जाग्रत होने लगा और सामाजिक स्थितिको सुधारनेको अनेक लोग विकल हो उठे। शोषित-उपेक्षित वर्गके प्रति एक स्नेह-सद्भावनाकी लहर फैलने लगी। हिन्दू-मुसलमानके सम्मिलित क्रांति-भावको दमित करनेमें अँग्रेजोंने सन् १९०९ में मार्ले-मिण्टो सुधार कानूनके द्वारा जो सफलता पायी थी, उसे १९१६ ई० में बहुत हदतक सँभाला गया। नरम-गरम दलोंमें एनीबेसेण्टके प्रयत्नोंसे कुछ समझौता भी हुआ।

सबसे बड़ा धक्का भारतीयोंके मनमें उस समय पहुँचा जब यूरोपके प्रथम महायुद्धके अवसरपर भरपूर सहायता पहुँचानेपर भी अँग्रेजोंने उन्हें धोखा दिया। सहानुभूति, प्रेम और सहायताके स्थानपर सन् १९१९ में रोलट ऐक्ट और मार्शल लॉ पासकर अँग्रेजी शासनने भारतीयोंकी स्वतन्त्रताके सपने चूर करनेका प्रयास किया। सन् १९२० भारतीय इतिहासके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस वर्ष महात्मा तिलकका देहावसान हुआ और गांधीजीके हाथोंमें देशका सूत्र आया। सन् १९२० के आस-पास ही सबसे पहले ट्रेड यूनियन काँग्रेसकी स्थापना हुई। इस देशमें कल-कारखानोंमें मजदूर धड़ल्लेसे काम करने लगे। यह मजदूर-वर्ग उन किसानोंकी कोटिमें ही थे, जो निरीह, मूक और पूर्णतः शोषित थे। करोड़ों बेरोजगार आदमी कम पैसोंपर ही कामोंमें जुटनेको तैयार थे। सन् '२० के बाद ही कलों-कारखानोंके मजदूरोंमें रूसी क्रान्तिकी भावना जागी। गांधीजीने बहुत बड़ी शक्ति भारतीय जनताको दी—निर्भयता की, सत्यवादिता की।

इस समय नयी मानवता सिर उठाने लगी और उपाधियों तथा राजसी ठाठ-बाटका मूल्य घटने लगा। सादगी और ईमानदारीके प्रति आस्था बढ़ने लगी। नगरोंकी मेधा गाँवोंकी ओर उन्मुख हुई। गाँवोंमें आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और दुख-दर्दके मारे अपढ़ किसानोंमें आत्म-चेतनाके मन्त्र फूँके गये। गांधीजीके प्रति साहित्यिकों और कलाकारोंकी अद्भुत भक्ति थी। सन् १९१८ ई० में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके इन्दौर अधिवेशनके वे सभापति बनाये गये। हिन्दीवालोंने गांधीजीको अपना प्रधान बनाकर देशके नये जागरणके प्रति अपनी गहरी आस्था प्रकट की।

गांधीजीने स्पष्ट कहा कि "करोड़ों भूखे आदमियोंको जो चीज कामकी हो सकती है, वही मेरे विचारमें सुन्दर वस्तु है, आज हम सबसे पहले जीवन देनेवाली चीजोंको महत्त्व दें, और उसके बाद जीवनके सारे अलंकार और उनकी सारी परिष्कृतियाँ अपने-आप आ जायेंगी।''मैं उस कला और साहित्यको चाहता हूँ जो करोड़ों आदमियोंके

लिए कामका हो।"[1] गांधीने भारतीय जीवनके सभी पहलुओंपर विचार किया और उनपर अपने व्यक्तित्वकी अमिट छाप छोड़ी। छायावादके प्रारम्भिक चरणमें राष्ट्र और जीवनके प्रति उदासीनताके जो भाव दीखते हैं, उनका बहुत हदतक उन्मूलन बादको गांधीवादके प्रभावसे हुआ। छायावादके प्रबल स्तम्भ प्रसाद, निराला, पन्त, रामकुमार सबकी उत्तरवर्त्ती रचनाओंमें जग, जीवन और राष्ट्रके प्रति गहरी आस्थाके चित्र जगमगा उठे। छायावादी कवियोंको कल्पनाके वायवीय लोकसे धूलकी धरतीकी ओर खींच लानेका श्रेय महात्मा गांधीको है, जिन्होंने राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयताको एक ही चित्रके दो पहलूके रूपमें प्रतिष्ठित किया।

लेकिन छायावादके मानवतावादी और आशावादी रूपको ढलनेमें काफी समय लगा। छायावादका पूर्व पक्ष दुःख, निराशा, असफल प्रेम और अतृप्तिका आर्त्तनाद बना रहा, उसका दूसरा पक्ष प्रगतिवादकी पृष्ठिभूमिके रूपमें विकसित हुआ। छायावाद और स्वदेशी आन्दोलनका प्रारम्भ प्रायः एक साथ हुआ। सन् १९१९ तक प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हो गया। इसने इन दोनों ही साहित्यिक तथा राजनैतिक चेतनाओंको प्रभावित किया। निराशा, क्षोभ, दुःख, प्रताड़ना और विवशताने जहाँ भावुक कवियोंको पलायनवादी बनाया, छाया-लोकमें बैठकर दम लेनेको प्रेरित किया, वहाँ उसने वीर जनहृदयमें शासनको बदल डालने और समाजको नये साँचेमें ढालनेको उत्साहित किया। हिन्दीके वे कवि जिनकी रचनाओंमें छायावादी शैलीका बाँकापन है, उन्होंने राष्ट्रीय भावधाराका भी प्रवर्त्तन किया। मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल, नवीन, सुभद्राकुमारी आदि कवि इस तथ्यके उदाहरण हैं।

सन् १९३९ में दूसरे विश्वयुद्धका कोलाहल सारे भूमंडलपर व्याप गया। इसके पूर्व सन् १९३३ में ही हिटलरकी बढ़ती हुई शक्तियोंने सारी मानवताके सामने नया प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया था। नाजीदलके विरोधमें साहित्यिकोंका दल संघटित होने लगा था। रोम्यांरोलाके निर्वासनने साहित्य-मनीषियोंके मनमें राजनैतिक आतंकवादके प्रति घृणा भर दी थी और अर्नेष्ट ट्रॉलरके बलिदानने उनमें वीर-भावनाकी सृष्टि की थी। हिटलरशाही शक्तिके विरुद्ध गोर्कीकी अध्यक्षतामें पेरिसमें सन् १९३५ में एक महत्त्वपूर्ण सभा हुई, जिसमें दृढ़प्रतिज्ञ हो साहित्यकारोंने मानवताकी सुरक्षाका व्रत लिया। सन् १९३५ में ही प्रगतिशील लेखक संघकी स्थापना प्रेमचन्दकी अध्यक्षतामें लखनऊमें हुई जिसमें छायावादके स्त्रैण पक्षके प्रति गहरी अनास्थाका स्वर फूटा।

द्वितीय महायुद्धके क्रोड़में भारतकी दशा अधिक चिन्ताजनक थी। उसे जोर-जुलमसे, भाँति-भाँतिके प्रलोभनोंसे युद्धमें भाग लेनेको विवश किया जा रहा था। शासनकी कांग्रेसी व्यवस्था टूट गयी थी। मन्त्रिमण्डलने त्यागपत्र दे दिया था। सत्याग्रहके प्रयोग निष्फल से दीख रहे थे। चारों ओर अवसाद, किंकर्तव्यविमूढ़ता और हतोत्साहका

---

१. 'हिन्दुस्तानकी कहानी' (संक्षिप्त), जवाहरलाल नेहरू, पृ० २६६।

वातावरण था। साहित्यकार साम्राज्यवादके विरोधी हो गये थे। समाजवादी भावनाओं-का उदय उनकी रचनाओंमें स्पष्ट रूपसे हो रहा था।

इस कालमें हमारे काव्यमें भौतिकताके प्रति व्यंग्यकी झलक दीखती है। उसमें खिन्नता और अवसादकी छाप मिलती है। एक अनगढ़ और अनिश्चित भविष्यके प्रति छटपटाहटकी भावना मिलती है। लेकिन इस विचारधाराको एक बड़ा झटका सन् १९४१ में लगा, जब हिटलरने रूसपर आक्रमण कर दिया। प्रगतिशील साहित्यकी नयी दिशाका निर्माण प्रारम्भ हुआ। इस युद्धको भारतके साम्यवादी नेताओं और उनसे प्रभावित कवियोंने जन-युद्धका नाम दिया। बहुतसे नये कवियोंकी भावधाराएँ मास्को और स्टालिनग्राडके आसपास चक्कर काटने लगीं।

गीतिकाव्यके विकासकी दृष्टिसे यह बात उल्लेखनीय है कि इस नयी ओजस्विनी भावधाराकी वाहिका भी गीतिशैली ही हुई। इन गीतोंमें संगीतात्मकता थी, पर इनमें सोद्देश्यताकी ऐसी प्रखरता थी कि इसमें हृदयको छू सकनेकी शक्तिका अभाव दीखता है।

क्रोधसे भरे हृदयकी उत्तेजना नारेबाजीके रूपमें प्रकट हुई, उसमें साहित्यिक सौन्दर्य नहीं आ पाया।[१] जनताकी भावना सीधे-सादे स्वरमें उभर आयी।

सन् १९४२ की अगस्त क्रान्तिने हिन्दीके अनेक साहित्यकारों और हितैषियोंको बेड़ियों-में बन्द कर दिया। जो बाहर थे, उनमेंसे कुछ अपना स्वर भूलसे गये। कुछ गीतिकार चलचित्रोंमें, कुछ सरकारी नौकरियोंकी वफादारीमें लग गये। स्वतन्त्रताकी इस भवानीका स्वागत करनेवाले कवियोंका एक नया दल आया, जिसने लोकगीतोंके माध्यमसे धरती-की आवाज बुलन्द की। खड़ीबोलीके काव्यसे अधिक स्वाभाविक स्वर भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी, अवधी, बुन्देलखण्डी आदि बोलियोंमें फूट पड़े। प्रगतिवादी काव्य-के नामपर ऐसी रचनाएँ आने लगीं, जिनमें शोषित-उपेक्षित जीवनके प्रति करुणा उभा-रनेकी जगह वासना उभारी जाने लगी। मजदूरिनों, भिखारिनोंके फटेहाल रूपकी जगह कामुकता उकसानेवाले चित्र रचे गये।

शोषित मानवताके प्रति आधुनिक हिन्दीका सम्मिलित स्वर बंगालके कालके अवसर-पर गूँज उठा। छायावादके कोमल स्वरोंने इस विभीषिकाके प्रति अपना आक्रोश और दुःख प्रकट किया। प्रसिद्ध गीतकार बच्चनने 'बंगालका काल' जैसी सशक्त रचना की। छायावाद गीतकी करुण रागिनी महादेवी वर्माने 'बंग-दर्शन' में हिन्दी कवियोंकी अकाल-की प्रतिक्रियाका संग्रह किया। गुप्त, निराला, महादेवी, सियारामशरण, रामकुमार,

---

१. इन कवियोंकी रचनाओंमें भाषाकी रचना तो है, संगीतकी विछलन तो है, भावावेश तो है; किन्तु जीवनके प्रति जागरूकता नहीं है। इनकी पंक्तियाँ असाधारण परिस्थितिका विवरण दे हमारी जिज्ञासाको तीव्र तो करती हैं, हमारे प्राणोंको आन्दोलित नहीं कर पातीं।

—'विगत महायुद्ध और हिन्दी-साहित्य' (साहित्यिक निबन्धावली), केसरीकुमार, पृ० १६९।

माखनलाल आदि अनेक सशक्त कवियोंने बंगालके अकालके प्रति अपनी गहरी संवेदना और क्षोभभरी प्रतिक्रिया व्यक्त की।

१९३९ से १९४७—द्वितीय विश्वयुद्धके कालसे लेकर स्वतन्त्रता प्राप्तिकी अल्पावधिमें बहुत सारी घटनाएँ लगातार होती गयीं। अँग्रेजी शासनकी बुझती हुई लौने लहक दिखलायी—दमन-चक्र बढ़ता गया। ज्यों-ज्यों शासनकी चक्की चलती गयी, भारतीय पौरुष और उद्दाम होता गया। स्वतन्त्रताकी माँग प्रबलसे प्रबलतर होती गयी। हिन्दीके महान् साहित्यकार डॉक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदीने इस बीच कवियोंके हृदयमें जलनेवाली आगका बड़ा ही ओजस्वी वर्णन किया है।[१] उस आगके बीचसे उठनेवाली शंका धुँआका भी उन्होंने सजीव चित्रण किया है।[२]

स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद हिन्दी कविताके क्षेत्रमें उन वीर रसात्मक प्रसंगोंने विदा ली, जिनके कारण शत्रु (ब्रिटिश शासन) को आलम्बन मानकर रचनाएँ लिखी गयीं, जो शक्ति ध्वंसके लिए उपयुक्त होती थी, उसे सृजनके लिए, देशके नवनिर्माणके लिए प्रयुक्त होना चाहिये था। लेकिन सन् १९४७ से १९६० के बीचकी हिन्दी कवितामें आशावाद और नवनिर्माणके साथ ही देशी शासकोंके प्रति आलोचनाके भाव पर्याप्त मात्रामें मिलते हैं। खादी और आजादीके साथ श्रद्धाके भाव पूरी मात्रामें नहीं मिलते। त्याग और बलिदानके स्थानपर स्वार्थपरताके साम्राज्यने कवियोंके विश्वास झकझोर दिये। स्वतन्त्रताके आसपास ही साम्प्रदायिकताकी जो आग इस देशमें फैली, उसका नग्न चित्रण हिन्दीके कथा-साहित्यमें उभरा। हिन्दी कविता, विशेषतः गीतिकाव्यके क्षेत्रमें

---

१. आज मेरा हृदय कहता
क्यों न लिख दो एक कविता
आग बरसा दो न क्यों तुम
ताकि होवे भस्म यह मर्दानगी
जिसने कि है अन्धेर ढाया।
आज लाशों से धरित्री पट रही है
और कायर वीरता का स्वांग भर-भर कर बनाते हैं
जगत् को मत्त दानव,
और निष्वेषित पिशाची सैन्य लेकर रौंदते हैं
विश्व का जो कुछ कि है सौन्दर्य या शालीनता।
....
मैं उन्मत्त हूँ, बेहोश हूँ, मुझको न छेड़ो,
आज मेरे वाक्य से अंगार झड़ने जा रहे हैं।
नाश हो मर्दानगी यह और जो कुछ शांत, कोमल
मधुर या सुकुमार,
वह पनपे धरित्री शान्त हो, विश्रान्ति !
—'काव्य-मर्मज्ञ', आरती, मई-जून, '४१

२. किन्तु फिर मैं सोचता हूँ, क्या कभी संभव हुआ है,
एक कविता से जला देना जगत् की घृणित बर्बरता,

भावनात्मक रूपसे क्रूर और नृशंस दानवताका वर्णन बहुत कम मिलता है। हाँ, कविताके क्षेत्रमें विशाल और अखण्ड मानवताका आह्वान किया गया जिसमें जीवनको आशावादी धरातलपर प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टा भी दीखती है। गीतोंमें समसामयिकताके स्थानपर बृहत्तर और शाश्वत भावनाओंके स्पष्ट चित्र उभरते दीखते हैं।

पश्चिमी सिद्धान्तोंसे सम्पर्क और भारतीय सिद्धान्तवादकी परम्परा

अठारहवीं शतीके अन्तिम चरणसे लेकर उन्नीसवीं शतीके प्रारम्भतक अंग्रेजी साहित्यमें प्रचलित रोमांटिक युगका प्रभाव प्रायः ८०-९० वर्षोंके बाद फलनेवाले हिन्दी-के छायावादपर माना जाता है।[१]

छायावादके कलाकार कवि पन्तने स्वयं इस प्रभावको स्वीकार किया है।[२] रोमांटिक कविताके प्रभावको डॉ० देवराज भी मानते हैं।[३] डॉ० विनयमोहन शर्माने छायावाद-रहस्यवाद दोनोंको स्वच्छन्दतावादका रूपान्तर माना।[४] डॉ० शिवनन्दनप्रसाद छाया-वादको रोमांटिक काव्योंके अतिरिक्त और अनेक वादोंका समुच्चय मानते हैं।[५]

दोनोंमें विस्मय, कौतूहल, सुन्दरताके प्रति आसक्ति, रहस्यात्मकता, प्रकृति-प्रेम, वैयक्तिकता आदि गुण समान रूपसे पानेके कारण रोमांटिक कवितासे छायावादको प्रभावित माना जाता है। वस्तुतः अंग्रेजी शिक्षाके प्रसार-प्रचारके बाद ही अंग्रेजी-

---

नशीला जोश, नव उद्दाम यौवन-लालसा,
निष्ठुर पिशाची कृत्य ?
मैं हैरान होकर सोचता हूँ, क्या कभी कुछ कर सके हैं अश्रु दुर्बलके,
मधुर हुंकार कविजनके ? हुआ क्या जब कि करुण पदावली निकली
अचानक आदि कवि दृप्त-द्रुत-अभिभूत कोमल कण्ठसे ?
क्या रुक गया तबसे निषादोंका
कहीं भी शल्य-पातन दीन क्रौंचोंपर ?

—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, 'आरती', मई-जून ४१।

१. 'छायावादी भावधाराकी प्रेरणाका मूल स्रोत अंग्रेजीके रोमांटिक कवियोंकी कविता ही हो सकती है।'—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, 'अवन्तिका' काव्यलोचनांक, पृ० २१२।

२. "मैं उन्नीसवीं सदीके अंग्रेजी कवियों—मुख्यतः शेली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स और टेनिसनसे विशेष रूपसे प्रभावित रहा हूँ।"—'आधुनिक कवि'का पर्यालोचन, पृ० १९।

३. "छायावादी काव्य रोमांटिक काव्यसे प्रभावित हुआ था और उससे समानता भी रखता है।"—'छायावादका पतन', पृ० २१।

४. "देशके बाह्य राजनीतिक विद्रोहमें भाग लेनेमें अक्षम मनने साहित्यके निरापद क्षेत्रमें अपनी स्वच्छन्द वृत्तिका परिचय किया। यह स्वच्छन्दतावाद आगे चलकर छायावाद-रहस्यवादसे अभिहित किया जाने लगा।"—'आलोचना', इतिहास विशेषांक, पृ० ६४।

५. छायावाद एक प्रकारसे स्वच्छन्दतावादका अभिनव रूप कहा जा सकता है, जिसमें कला वाद, पलायनवाद, प्रतीकवाद, अभिव्यंजनावाद, हालावाद आदिका किंचित् पुट है। 'कवि सुमित्रानन्दन पन्त और उनका प्रतिनिधि काव्य', पृ० ३०।

साहित्यकी रोमांटिक कविताका अध्ययन करनेका अवसर हिन्दी कवियोंको मिला। इसलिए देरसे ही सही, उसका प्रभाव पड़ा अवश्य।

छायावादपर क्रोचेके अभिव्यंजनावाद और ऑस्करवाइल्डके कलावादका प्रभाव भी लोग मानते हैं। द्विवेदी युगमें किसी तथ्यको वस्तु-निष्ठ कैसे कहा जाय—शैलीगत इसी विशेषतापर कवियोंका ध्यान रहने लगा। भारतीय शब्दावलीमें जो वाग्विदग्धता है, वही पाश्चात्य साहित्यशास्त्रमें अभिव्यंजनावाद। 'कला कलाके लिए'का सिद्धान्त छायावादकी प्रारम्भिक रचनाओंमें दीखती है। ज्यों-ज्यों छायावादकी शैली स्पष्ट होती गयी, उसमें विचारोंकी दृढ़ता आने लगी। कलावादका प्रभाव सत्यानुभूतिके स्थानपर कल्पना-विलासके रूपमें छायावादपर पड़ा। विषयकी सीमित परिधिमें कल्पनाएँ पंख मारने लगीं।

अंग्रेजी काव्यके प्रभावके कारण द्विवेदी-युगकी अपेक्षा छायावादमें विशेषण-विपर्यय, ध्वन्यात्मकता और मानवीयकरण जैसे अलंकारोंका प्राधान्य हो गया। यथावसर इसके सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत किये जायेंगे। अंग्रेजीके प्रभावसे कुछ नये शब्द हिन्दीमें गढ़े गये, जिनसे नयी अभिव्यक्तियोंको रूप मिले, जैसे—स्वर्णिम भविष्य, कनक प्रभात, स्वर्णकाल, भग्नहृदय, स्वप्निल गान आदि।

जैसे औद्योगिक क्रांतिकी पृष्ठभूमिमें रोमांटिक पुनर्जागरणका विकास हुआ, वैसे ही छायावादका आविर्भाव ऐसी परिस्थितिमें हुआ, जब भारतमें ज्ञान-विज्ञानके साथ उद्योग-धन्धों और कल-कारखानोंकी भी भौतिक उन्नति हो रही थी। सामंतवादके विरुद्ध इंगलैण्डमें और अंग्रेजोंके विरुद्ध भारतमें विद्रोहका स्वर फूटा। दोनों ही काव्य-प्रवृत्तियोंमें प्राचीन मान्यताओंके विरुद्ध प्रतिक्रियाके भाव मिलते हैं।

उपर्युक्त विचारकोंसे भिन्न ऐसे भी विद्वान् हैं, जो छायावादको शत-प्रतिशत भारतीय मानते हैं। श्री इलाचन्द्र जोशीने लिखा है, "छायावादकी उत्पत्ति और विकासके सम्बन्धमें आचार्य शुक्लका वक्तव्य[१] बिलकुल भ्रामक, निर्मूल और मनगढ़न्त है। बंगलाके किसी भी कवि, साहित्य-कलाकार या आलोचकने कभी, कहीं भी, छायावाद शब्दका उल्लेख नहीं किया। छायावाद शब्द विशुद्ध रूपमें हिन्दीका ही है।[२]" हिन्दीके समर्थ आलोचक और छायावाद रहस्यवादके युग-प्रवर्तक कवि डॉ॰ रामकुमार वर्मा छायावादको रहस्यवादी दर्शनसे सम्बद्ध मानते हैं।[३]

---

१. पुराने ईसाई सन्तोंके छायाभास तथा यूरोपीय काव्यक्षेत्रमें प्रवर्त्तित आध्यात्मिक प्रतीकवादके अनुकरणपर रची जानेके कारण बंगालमें ऐसी कविताएँ छायावाद कही जाने लगी थीं।—'हिन्दी साहित्यका इतिहास', पृ॰ ६५१।

२. 'अवन्तिका' काव्यालोचनांक, पृ॰ १९१।

३. छायावाद वास्तवमें हृदयकी एक अनुभूति है। वह भौतिक संसारके क्रोड़में प्रवेश कर अनन्त जीवनके तत्त्व ग्रहण करता है और उसे हमारे वास्तविक जीवनमें जोड़कर हृदयमें जीवनके प्रति एक गहरी संवेदना और आशावाद प्रदान करता है। कविको ज्ञान होता है कि संसारमें परिव्याप्त एक महान् और दैवी सत्ताका प्रतिबिम्ब जीवनके प्रत्येक अंशपर पड़ रहा है और

रायकृष्णदासने छायावादको शुद्ध भारतीय दृष्टि माना है। उनके अनुसार रवीन्द्रनाथपर पुराने ईसाई सन्तोंका नहीं, कबीर आदि भारतीय सन्तोंका प्रभाव पड़ा है।[१] इसलिए रवीन्द्र आदिका प्रभाव यदि छायावादपर पड़ा भी तो वह भारतीय कहा जायगा, न कि विदेशी।

उनकी दृष्टिमें विदेशी छायाभास (फेन्टासमेश) और आध्यात्मिक प्रतीकवाद (सिम्बोलिज्म) का प्रभाव बंगीय साहित्यपर नहीं पड़ा था, फिर बंगालसे होकर उसका छायावादपर आना असंभव है। प्रसाद छायावादके प्रथम कवि सिद्ध होते हैं और रवीन्द्रनाथकी प्रसिद्धिके पूर्व ही सन् १९०९ में 'चित्राधार'में कुछ छायावादी कविताओंका हवाला किया जाता है।

छायावादको विदेशी या बंगीय प्रभावसे भिन्न औपनिषदिक और रहस्यवादात्मक माननेवाले आलोचकोंने इसे द्विवेदी-युगकी 'इतिवृत्तात्मकता'की प्रतिक्रिया माना। डॉ० देवराज[२] और डॉ० केसरीनारायणने[३] इसी प्रकारके मत दिये। प्रो० 'क्षेम' छायावादी काव्यकी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि उपस्थित करते हुए 'नवीन प्रजातन्त्रवादी विचारधारा और व्यक्ति स्वातन्त्र्यकी लहर', 'जड़ नैतिकतासे विद्रोह', 'मानववादी भावना', 'स्त्रीका गतिमान और प्रेरक चेतनाके रूपमें ग्रहण', 'प्रकृतिकी ओर प्रत्यावर्तन', 'लघुताका मान', 'दुःखवाद, वेदना, करुणा आदिका स्वीकार', 'स्वच्छन्द कल्पनातिरेक और स्वप्न-सर्जना', 'शैलीगत विचित्रता', 'पलायनवृत्ति' आदि कारणोंको छायावादके जन्मके साथ सम्बद्ध मानते हैं।[४] उन्होंने आगे चलकर छायायुगीन काव्यमें बौद्ध प्रभावका आकलन भी उपस्थित किया है।

उर्दू-फारसीके छायावादका प्रभाव बच्चनकी छायावादी रचनाओंपर अद्वैतवादका प्रभाव प्रसाद, निराला, रामकुमारपर, बौद्धदर्शनका प्रभाव महादेवीपर पड़ा। उसी तरह अनेक कवियोंके माध्यमसे विभिन्न दिशाओंकी चेतनाएँ छायावादी शैलीको पुष्ट करने लगीं।

क्रान्तिका आग्रह : नवीन उद्भावनाएँ

छायावादको कई आलोचक विभिन्न क्रान्तियोंका प्रतिफलन मानते हैं। डॉ०

उसीकी छायामें जीवनका पोषण हो रहा है। एक अनिर्वचनीय सत्ता कण-कणमें समायी हुई है। फूलोंमें उसीकी हँसी, लहरोंमें उसका बाहु-बन्धन तारोंमें उसका संकेत, भ्रमरोंमें उसका गुंजार और सुखमें उसकी सौम्य हँसी छिपी हुई है। इस संसारमें उस दैवी सत्ताका दिग्दर्शन करानेके कारण ही इस प्रकारकी कविताको छायावादकी संज्ञा दी गयी।—'विचार-दर्शन', पृ० ७२।

१. 'अवन्तिका', काव्यालोचनांक, पृ० १८२।

२. छायावाद अनाधुनिक पौराणिक धर्मचेतनाके विरुद्ध आधुनिक लौकिक चेतनाका विद्रोह था।—'छायावादका पतन', पृ० १३-१४।

३. इस तृतीय उत्थानका आरम्भ ही द्विवेदी-युगकी इतिवृत्तात्मक कविताके विरोधमें हुआ है।—'आधुनिक काव्यधारा', पृ० २६२।

४. 'छायावादके गौरव-चिह्न', पृ० ८-२५।

रामधारी सिंह 'दिनकर'ने स्पष्ट रूपसे लिखा है कि "द्विवेदी-युगके बाद हिन्दीमें छाया वादके नामसे जो आन्दोलन उठा, वह मुख्यतः द्विवेदी-युगीन काव्यकी कल्पनाहीनताके विरुद्ध विद्रोह था।"[१] वे इस आन्दोलनके अन्यान्य स्रोतोंका उल्लेख करते हुए लिखते हैं, "मूलतः यह भारतके उस सांस्कृतिक नवोत्थानका परिणाम था जिसका प्रवर्तन राजा-राममोहन रायने किया था और जिसके व्याख्याता केशवचन्द्र सेन, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, श्रीमती एनीबेसेण्ट, लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी हुए हैं।"[२] दिनकरने छायावादको 'वैयक्तिकताका विस्फोट' भी माना है।[३] डॉ० नगेन्द्र भी छायावादके जन्मका मूल विद्रोह मानते हैं।[४] महान् आलोचना-शास्त्री आचार्य नन्द-दुलारे वाजपेयीने भी छायावादको विद्रोहसे सम्बद्ध माना है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है, जिस युगकी चर्चा हम कर रहे हैं, वह मुख्यतः साहित्यिक और सामाजिक परम्पराओं-के विरुद्ध विद्रोहका युग था। व्यक्तिके नवीन स्वातन्त्र्य और मानवके नवीन महत्त्वकी अनुभूतियाँ इस युगके काव्य-साहित्यको नवीन उल्लास और नया आत्म-बल प्रदान करती हैं।......कवियोंकी वाणीमें संगीत है, उल्लास है, विद्रोह है और नव-निर्माणकी उत्कट अभिलाषा है, परन्तु जागृतिकी यह सारी चेतना व्यक्तिनिष्ठ और आदर्शोन्मुख है।[५] महादेवी वर्माने स्पष्ट लिखा है, "छायावाद स्थूलकी प्रतिक्रियासे उत्पन्न हुआ था।[६]"

उपर्युक्त विवेचनोंसे यह स्पष्ट होता है कि छायावादके प्रेरणा-स्रोतोंको ढूँढ़ने और उसे विभिन्न प्रकारकी क्रान्तियोंका स्वर माननेवाले आलोचक इसे किसी-न-किसी रूपमें नवीनतासे संयुक्त पाते हैं। वह नवीनता प्रेषणीयताके क्षेत्रमें, अभिव्यंजनाके क्षेत्रमें थी, भाव-जगत् और कल्पनालोकमें थी। मेरी दृष्टिमें छायावादकी पृष्ठभूमिमें इसी देशकी समसामयिक परिस्थितियों एवं उन संस्कारोंका प्रभाव है, जो अतीतकी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टियोंसे विद्ध थे। केवल रोमांटिक कविताओं अथवा रवीन्द्रनाथका जूठन कहकर छायावादका अपमान नहीं किया जा सकता। हर नयी चेतनाको सँवरनेमें बहुतेरी विचारधाराओंका हाथ होता है, हर नयी मान्यताके पीछे समकालीनताका प्रभाव होता है। अतः छायावादी दृष्टिको माँजनेमें यदि उपर्युक्त विदेशी और स्वदेशी मान्यताओं-का प्रभाव रहा, तो कोई आश्चर्य नहीं। उधार ली हुई कोरी नकलकी वस्तुएँ बहुत दिनोंतक महत्त्व नहीं पातीं। छायावादकी 'शवपरीक्षा' और उसके 'पतन'की घोषणा करनेवाले आलोचक भी यह समझते हैं कि आधुनिक हिन्दी कविताका सुन्दरतम स्वरूप इसी काव्यधाराके अन्तर्गत सुरक्षित है।

---

१. 'काव्यकी भूमिका', पृ० २९।

२. वही, पृ० ३८।

३. 'मिट्टीकी ओर', पृ० १२।

४. छायावादका जन्म ही विद्रोहमें है—यह विद्रोह भावनाओं और विचारोंमें भी है और शैली एवं कलामें भी। —'सुमित्रानन्दन पन्त', पृ० ७।

५. 'नया साहित्य, नये प्रश्न', पृ० १४८।

६. 'आधुनिक कवि,' पृ० २०।

छायावाद अपने पूरे अतीत काव्यका सांस्कृतिक सार है। उसका विकास समसामयिक परिस्थितियोंके अनुकूल हुआ। उसमें केवल द्विवेदीयुगीन प्रतिक्रिया नहीं, अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी है। नवीन उद्भावनाओं और प्रयोगकी दृष्टिसे आधुनिककालमें हिन्दी कविताकी सर्वाधिक उपलब्धि इसी कालमें हुई है। आगेके प्रकरणोंमें विस्तारके साथ इसका प्रमाण उपस्थित करूँगी।

यहाँ इतना कहना आवश्यक है कि छायावाद न तो मात्र रहस्यवाद है और न रोमाण्टिक कविता की नकल। वह एक शैली है, काव्यकी एक नयी भंगिमा है, जिसका सम्बन्ध अनन्तसे भी है, सान्तसे भी। उसमें प्रकृतिका दर्पण भी है और परमात्माकी परछाईं भी। उसमें युगका आहत व्यक्तित्व भी है और युग-युगकी अविजित परमशक्ति भी। जीवनको नयी दृष्टिसे देखनेकी अपूर्व शक्ति छायावादमें है। सौन्दर्यको भिन्न-भिन्न परिपार्श्वोंमें चित्रित करनेकी कलाकारिता भी इसमें है और विराट्की झलक देख सकनेकी सहज दार्शनिकता भी।

बाह्य प्रभावकी दृष्टिसे छायावादसे अधिक महत्त्व प्रगतिवादका है। मार्क्सवादी सिद्धान्तोंके आधारपर कोरे प्रचारात्मक साहित्य इस कालमें पर्याप्त मात्रामें लिखे गये। राष्ट्रीय चेतनासे सम्पृक्त होकर जो प्रगतिशील रचनाएँ लिखी गयीं, उनमें प्रगतिवादी दर्शनका नहीं भारतीय जन-जीवनका वास्तविक चित्र था। पन्तसे अधिक स्वाभाविक स्वर इस दृष्टिसे निरालाका रहा। द्वन्द्वात्मक भौतिकवादसे अतिग्रस्त कवियोंमें साहित्यिक तत्त्वोंका अभाव मिलता है। पूँजीवाद और सामन्तवादके विरोधमें स्वाभाविक रूपसे गूँजनेवाले स्वर अधिक कारगर सिद्ध हुए, पर फरमाइशों और उद्धत विचारोंको वाणी देनेके व्यर्थ प्रयासोंने प्रगतिवादके नामपर बहुतसे कूड़े-कचड़े भर दिये।

प्रयोगवादके नामपर आनेवाली कविताओंमें भी अनुकरण और मौलिकताके मिले-जुले रूप मिलते हैं। आगे एक-एक कर छायावादोत्तर कविताओंकी सामान्य विशेषताओं-पर विचार करते हुए उनका आलोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत किया जायगा। इस रूपमें सामान्य अध्ययन प्रस्तुत करनेपर आगे इनके अन्तर्गत रचे गये गीतोंकी भावधाराओंको समझनेमें सुगमता होगी और इस पृष्ठभूमिमें आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका स्वरूप और विकासका मूल्यांकन सुविधाजनक होगा। छायावाद गीतिकाव्यकी दृष्टिसे आधुनिककाल-का सर्वाधिक महत्त्वपूर्णकाल है और इस तरह हमारे विषयसे इसका सर्वप्रमुख सम्बन्ध है, अतः इसका विस्तृत अध्ययन स्वतन्त्र रूपसे पंचम प्रकरणमें किया जा रहा है।

छायावादोत्तर हिन्दी कविताकी सामान्य विशेषताएँ और उनका आलोचनात्मक मूल्यांकन

प्रगतिवादी काव्य

छायावाद और प्रगतिवादके बीच एक ऐसा काल भी है, जिसमें छायावादी काव्य-की कल्पनामें अधिक स्पष्टता और भाषामें अधिक सफाई दीखती है। इस युगमें बोल-

कालकी भाषामें लिखनेकी प्रवृत्ति दीख पड़ती है। विषयकी सीमा भी प्रेम और विरहके साथ ही सामाजिकता और राष्ट्रीयतातक बढ़ी। रहस्यात्मकताका आवरण हटा और काव्यके प्रसाद गुणकी वृद्धि हुई। डॉ० दिनकरने इस कालके कवियोंका विवेचन करते हुए लिखा है' "छायावादोत्तरकालके कवि अपेक्षाकृत सरल, रोचक और आनन्ददायी निकले।"[१] भाषाकी कारीगरी और कोमलताकी अतिशयताको त्याग कर इस युगके कवियोंने उसके माधुर्यको आवश्यक मात्रामें ही स्वीकार किया।

वस्तुतः डॉ० दिनकर जिसे छायावादोत्तरकाल मानते हैं, वह छायावादका ही निखरा हुआ व्यक्तित्व है। मैंने छायावादोत्तरकालका सामान्य अर्थमें प्रयोग किया है। छायावादोत्तर अर्थात् छायावादके बादसे लेकर अबतक (मेरी विषय-सीमा ६० ई० तक) का काल। इसी बीच प्रगतिवाद और प्रयोगवादका समय आता है।

प्रगतिवादको वे आलोचक छायावादका ही रूपान्तर या सहयोगी मानते हैं, जो समसामयिक परिस्थितियोंकी प्रतिक्रियाके रूपमें साहित्यका जन्म स्वीकार करते हैं।[२] छायावादके मूलमें जो प्रतिक्रिया थी, वह आत्मनिष्ठ थी, प्रगतिवादमें वह प्रतिक्रिया समाजनिष्ठ हुई, प्रगतिवाद कार्लमार्क्सके द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी सिद्धान्तोंका साहित्य रूप है। पूँजीवादियों और मुनाफाखोरोंका विरोध और उपेक्षित-शोषित मनुष्य-वर्गके प्रति सहानुभूति इस काव्यके दो सबल पक्ष थे। रूढ़िवादी विचारोंके प्रति जिहाद बोलनेका काम इन कवियोंने लिया। वर्गहीन समाजकी स्थापना, सर्वहारा वर्गमें अभिजात्य वर्गके प्रति घृणा और विद्रोहके भाव भरना डारविनके विकासवादसे प्रभावित हो ईश्वरकी स्थितितकपर प्रश्न-चिह्न लगाना—ये अनेक नये नारे इस काव्यवादमें गूँजने लगे। बहुतसे कवि रूसके लाल तारासे प्रकाश ग्रहण करने लगे, गंगाकी जगह 'वोल्गा'का पानी पीनेको लालायित रहने लगे। निराला और पन्त इसके आदर्श उदाहरण हैं। पन्तकी दृष्टिमें मार्क्सवाद और गांधीवादका समन्वय ही प्रगतिवादका वास्तविक रूप बना।

नयापन और सहानुभूतिके अनोखे रंगने फ्रायडसे प्रभावित प्रगतिवादी कवियोंकी यौनवृत्तियोंको खुलकर उभार दिया। आधुनिककालमें रीतिकालीन मुद्रा दीख पड़ी। छायावादने नारीको जो अलौकिकता प्रदान की उसे रंग-रूपकी जो अतिशयता दी, वह सब समाप्त हो गयी और नारीकी नग्न मूर्ति सामने आने लगी। 'हंस' 'प्रतीक', 'नया साहित्य'में प्रकाशित कविताएँ तथा उस कालमें प्रकाशित 'ग्राम्या', 'नयी दिशा', 'प्रभात-फेरी', 'अपराजिता', 'तारसप्तक', 'मास्को' आदि काव्य-ग्रन्थोंमें इसके अनेक उदाहरण

---

१. 'काव्यकी भूमिका', पृ० ४७।

२. 'सच तो यह है कि आधुनिक हिन्दी कवितामें छायावाद और प्रगतिवाद दोनों एक ही चित्रके दो पहलू हैं, एक ही सामाजिक परिस्थितिकी उपज हैं, जीवनकी एक ही प्रेरणाके दो भिन्न प्रतिफल हैं।'

—'छायावाद और उसकी प्रतिक्रिया : प्रगतिवाद,' डॉ० शिवनन्दनप्रसाद, पृ० १२९ (छायावाद और प्रगतिवादमें संगृहीत निबन्ध)।

मिलते हैं। इनमें स्वरति, समरति, आत्मपीड़न रति, पर-पीड़न रति आदिके चित्रण बहुतायतसे मिलते हैं।

प्रगतिवादी काव्यकी एक बहुत बड़ी दुर्बलता थी उसमें उधार ली हुई भावनाओंका चित्रण। राजनीतिक मान्यताओंका काव्यगत वर्णन प्रचारात्मक साहित्य बन गया। सर्वहारा वर्गके प्रति एक बौद्धिक सहानुभूतिका बोलबाला हो गया। शोषित-उपेक्षित मानवके कंठसे अनुभूतिसे उद्वेलित सहज वाणी नहीं फूट पायी। एक कृत्रिमता फैल गयी। साहित्य मानो राजनीतिका अनुचर बन गया। समाजके यथार्थवादी चित्र उभरने लगे, पर उनमें पूरी प्राण-प्रतिष्ठा नहीं हो सकी। समसामयिक समस्याओंके प्रति जागरूकता दीखी, पर उसमें तारतम्यका अभाव रहा। बौद्धिकताके कारण बोझिलता आयी, शक्ति नहीं। व्यंग्यकी दिशामें 'कुकुरमुत्ता' और 'नये पत्ते'की रचनाएँ अधिक चुटीली हैं। परिवर्तन और क्रांतिके जो स्वर फूटे उनमें हृदयकी ताकत नहीं है, वह कंठसे निकली मालूम पड़ती हैं। अन्तर्राष्ट्रीयताके नामपर रूसतककी दौड़ लगायी जाने लगी।

प्रगतिवादी काव्यमें जनगीतोंकी उस परम्पराका विकास हुआ, जिसका प्रारम्भ भारतेन्दु-युगमें हुआ था। जनवादी दृष्टिसे जनगीतोंके छन्दों और लयोंका आधार मिला। आगेके प्रकरणमें इसका विधिवत् विवेचन किया जायगा, यहाँ इतना कह देना आवश्यक है कि प्रगतिवादी काव्यमें प्रयोगकी विविधताके बीचसे कुछ ऐसी अमूल्य काव्यगत विशेषताएँ प्रकट हुईं, जिनका महत्त्व अक्षुण्ण है। आकाशसे धरतीकी ओर कवियोंको लाना, विषय-वस्तुकी सीमाका विस्तार, नयी उपमाओं और नयी उद्भावनाओंपर आसक्ति, कुछ घिसी-पिटी रूढ़ियोंका बहिष्कार, व्यापक सहानुभूति, जीवनके प्रति मोह आदि ऐसे अनेक तथ्य हिन्दी काव्यके लिए युगान्तकारी सिद्ध हुए। 'मौन निमन्त्रण' पानेवाले पन्त विश्वको 'ग्रामीण नयन' से देखने लगे। 'ग्रन्थि' और 'आँसूकी बालिका'से कविका ध्यान कहारों, धोबियों और चमारोंपर आ गया। 'ग्राम्या'में पन्तका ही नहीं, दूसरे अनेक संग्रहोंमें दर्जनों प्रगतिवादी कवियोंका ध्यान जनपदकी ओर गया। इसका कारण यह भी था कि शोषणके चक्रमें सबसे अधिक ग्रामीण जनता ही पिस रही थी। निर्धनता, निरक्षरता और भुखमरीके शिकार अधिकतर गाँवोंके किसान और मजदूर ही थे। नगरोंमें गाँवोंके ऐसे श्रमिकोंसे ही मिलमालिकोंका काम चलता था।

छायावाद स्थूलके प्रति सूक्ष्मका विद्रोह था तो प्रगतिवाद पूँजीपतियोंके प्रति सर्वहाराके विद्रोहका स्वर लेकर उपस्थित हुआ। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था तथा परम्पराभुक्त रूढ़ियोंके प्रति क्रान्तिका प्रमुख स्वर इनके काव्यमें प्रकट हुआ। अतीतके पुजारी प्रसादने भी 'कामायनी'में पुरातनताके स्थानपर नूतनताको वांछनीय माना है—

> पुरातनता का यह निर्मोक,
> सहन करती न प्रकृति पल एक।
> नित्य नूतनता का आनन्द,
> किये हैं परिवर्तन में टेक॥

पन्त भी पुरातन को जड़ एवं अप्रगतिशील मानकर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर उसके स्थान-पर नवीनको स्थापित करना चाहते हैं।

गा कोकिल, बरसा पावक कण।
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन।
ध्वंस भ्रंस जग के जड़ बन्धन।
पावक पगधर आवे नूतन,
हो पल्लवित नवल मानवपन।

भगवतीचरण वर्मा, नवीन, मोहनलाल महतो 'वियोगी' आदि अन्य प्रगतिवादी कवियोंने भी प्राचीन रूढ़ियोंका तिरस्कार कर नवीनके प्रति आस्था दिखलायी है। प्रगतिवादी कवि धर्म और ईश्वरकी दुहाई देकर दुःखको अपना कर्मफल मानकर अत्याचार सहनेवाले निर्धन तथा निःसहायोंको देखकर विद्रोहसे भर उठता है। ईश्वर-पर अटूट निष्ठा रखनेवाले प्रसादने भी कहा—

दुःखी पर करुणा क्षण भर हो
प्रार्थना पहरों के बदले।
मुझे विश्वास है कि वह सत्य,
करेगा आकर तब सम्मान।

निरालाने भी धर्मके नामपर ढोंग करनेवालोंका तिरस्कार किया है—

झोली से पुए निकाल लिए,
बढ़ते कपियों के हाथ दिये।
देखा भी नहीं उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर।

धर्मको ये 'अफीमका नशा' तथा ईश्वरकी कल्पनाको पूँजीवादी प्रथासे उत्पन्न मानते हैं। किन्तु भारत जैसे आस्तिक देशमें नास्तिक भावनाओंको हृदयसे स्वीकार करना कठिन है। दार्शनिक भक्तिभावपूर्ण पावन, सात्त्विक, आस्थावान साहित्यकी इतनी दीर्घ परम्पराका संस्कार छोड़ना अब भी असम्भव है। यही कारण है कि प्रगतिशील साहित्य लिखनेवाले अधिकांश साहित्यकार भी भौतिकवादी दर्शनको स्वीकार नहीं कर पाते। पन्त आदि कवियोंने भौतिकताके साथ आध्यात्मिकताके समन्वयमें ही कल्याण निहित समझा है। भारतके आध्यात्मिक वातावरणमें कोरी भौतिकता किसीके गले नहीं उतर सकती।

'युगवाणी' एवं 'ग्राम्या'के कवि पन्तने भी दीनों-असहायोंके प्रति सहानुभूतिके यथार्थ चित्रण किये हैं। प्रकृति, नारी, प्रेम आदिके स्थानपर ग्रामवासी उनके काव्यके आलम्बन बने।

'कहाँ मनुजको अवसर, देखे मधुर प्रकृति-मुख ?' निरालाका 'भिक्षुक' प्रगतिवादी साहित्यका सुन्दरतम चित्र है।

प्रगतिवादी कलाकारोंने शोषितोंकी करुणाके प्रति सच्ची सहानुभूति प्रकट की। भौतिक युगकी मशीनी सभ्यताके कारण मानवका श्रम-मूल्य नगण्य हो गया है। पूँजी-पतियोंके शोषणके प्रति आक्रोशसे भरकर पन्तने धनपतियोंकी जी भर कर निन्दा की है—

वे नृशंस हैं, वे जनके श्रम-बल से पोषित,
दुहरे धनी जोंक जग के, भू जिनसे शोषित।
नहीं जिन्हें करनी श्रम से जीविका अर्जित,
नैतिकता से भी रहते जो अतः अपरिचित।

प्रगतिवादी साहित्यकारको नारीसे भी सहानुभूति है। वर्तमान आर्थिक विधानमें नारीके लिए कोई स्थान नहीं। वह पुरुषके मनोरंजनका एक साधन मात्र है। अतः पन्तने नारीको इस बंधनसे मुक्त करनेका नारा लगाया है—

'मुक्त करो नारीको मानव! मुक्त करो नारीको।'

प्रगतिवादी साहित्यकारोंने नारीको लेकर अश्लील रचनाएँ भी लिखी हैं। राहुल सांकृत्यायनने 'वोल्गासे गंगा'में नारीके माँ, बहन तथा पुत्रीके सम्बन्धोंकी पावनताको भी स्थान नहीं दिया है। केवल रोटी और सेक्सको ही प्रधानता देनेवाले साहित्यकारोंको नैतिकताका कोई आग्रह नहीं। नारी, ईश्वर, धर्म आदिके सम्बन्धमें प्रगतिवादी दृष्टि हमारे देशके वातावरणके उपयुक्त नहीं होनेके कारण ही इसमें कोई वैसा कलाकार उत्पन्न नहीं हो सका जिसने कोई स्थायी देन हिन्दीको दी हो।

प्रगतिवादी कविकी दृष्टि कोमल और सुन्दरमें बँधकर नहीं रही। तभी तो पन्त कहते हैं—

'आज असुन्दर लगते सुन्दर'।

व्यक्तिगत भावनाओंका स्थान समूहगत भावनाओंने ले लिया—'सामूहिकता ही निजत्व अब'। वर्गहीन समाजकी स्थापनाके लिए क्रांतिका आह्वान किया गया है। समस्त पृथ्वीपर शोषक और शोषितके संघर्षमें वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्थाका विनाश अवश्यम्भावी है। यह विनाश, यह ध्वंस, यह क्रांति निरुद्देश्य नहीं, इसके पीछे सृजनका, निर्माणका महान् उद्देश्य निहित है। परन्तु प्रश्न यह है कि प्रगतिवादी रचनाओंके पीछे किसी विशेष राजनैतिक सिद्धान्तका प्रचार या प्रतिपादन कहाँतक उचित है। प्रचारके बलपर कोई भी शाश्वत साहित्य नहीं लिखा जा सकता। इन सिद्धान्तोंको जबतक अनुभूतिकी गहराई नहीं मिलती, तबतक इनपर आधारित साहित्यका कोई मूल्य नहीं। यही कारण है कि प्रगतिशील साहित्यमें जितनी बौद्धिकता मिलती है, उतनी हार्दिकता नहीं। कवि अपनी संवेदनशीलताके आग्रहसे यदि सामूहिक मंगलके लिए वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाके प्रति क्षोभ प्रकट करे, तभी उसकी रचनाका कोई वास्तविक मूल्य हो सकता है।

प्रगतिवादका स्वस्थ और सबल प्रमाण ग्राम्यासे अधिक स्वर्णकिरण और स्वर्णधूलि-की सामाजिक कविताओंमें है। 'परकीया' और 'पतिता' कविता प्रगतिवादके आदर्श

उदाहरण हैं, जो काव्य-कलाकी दृष्टिसे भी अत्यन्त सफल हैं। राष्ट्र-प्रेमके साथ विश्व-हितका तादात्म्य स्थापित कर कविने प्रगतिवादके इस दोषका निराकरण किया है कि प्रगतिवादी कविकी आँखोंके सामने सदैव रूस ही रूस था। डॉ० नगेन्द्रने इसीलिए लिखा है, "उनकी राष्ट्रीयता अथवा देश-भक्ति संकुचित नहीं है, भारतमात्रका कल्याण उनका प्रेम नहीं है। वह भारतके हितको विश्वके हितके साथ एक करके देखते हैं।"[१] स्वर्णकाव्यमें प्रगतिवादकी भौतिकताके साथ चेतनावादका समन्वय है। प्रगतिवादके समष्टिवादी तत्त्वको पन्तकी व्यक्तिनिष्ठ चेतना बहुत दूरतक स्वीकार नहीं कर पायी है। प्रसादकी तरह पन्त भी भौतिकताको आध्यात्मिकताके साथ सम्बद्ध करना चाहते हैं। वे प्रगतिवादको खोखली राजनीति या निरी लौकिक प्राप्तियोंके साथ जुड़ा नहीं देखते। किन्तु अधिकांश प्रगतिवादी रचनाओंके अल्पायु होनेका कारण यह है कि उनका प्रेरणा-स्रोत जो रूसी साहित्य था, उनका केवल बौद्धिक प्रभाव इनपर पड़ा। हिन्दी कवियोंमें अधिकांशतः उस हार्दिकताका अभाव था, जो उपेक्षितों और शोषितोंकी अन्तरात्मासे निकलती है। हिन्दीका अधिकांश प्रगतिवादी साहित्य गमलेमें लगाया हुआ पौधा है, धरतीकी छाती फोड़कर अपने-आप जन्मा हुआ वृक्ष नहीं। किसी देशका साहित्य उसकी संस्कृति और स्थानीय समस्याओंसे विच्छिन्न होकर कबतक जी सकता है। प्राचीनको छोड़कर नवीनको ग्रहण करनेकी प्रवृत्तिने मौलिकताके साथ-साथ उच्छृंखलता-को भी जन्म दिया। छन्दोंके क्षेत्रमें यह रूप और भी प्रखर हुआ। पन्तका यह कथन कि—

> तुम वहन कर सको जन-जन में मन के विचार
> वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार।
> ... ...
>
> खुल गये छन्द के बन्द
> प्रास के रजत पाश।.........

उनके लिए ठीक था, जो आन्तरिक संगीतसे उल्लसित थे। पन्तने स्वयं मुक्त छन्दों-में पर्याप्त प्रौढ़ता दिखलायी। निरालाने छन्दोंकी 'छोटीराह' का त्याग कर प्रशस्त पन्थ-का निर्माण किया। लेकिन ऐसे सहस्रों टुटपुंजिये कवि हिन्दीमें आये जिनके लिए छन्दों-के बन्धनसे मुक्ति मिलनेका अर्थ हुआ शब्दोंकी उछल-कूद। तुकबन्दीके कष्टसे भी मुक्त होकर उन्होंने गद्यकी पंक्तियोंको ही आड़े-तिरछे सजाना शुरू किया। गद्य-पद्यका अन्तर विलुप्त हो गया और भाव, कल्पनासे विहीन काव्य लय-तालसे भी मुक्त हो गया। पाश्चात्य साहित्यके सम्पर्कसे कुछ लाभ अवश्य हुए। आध्यात्मिकता प्रधान इस देशका ध्यान लौकिक पक्षकी ओर आकृष्ट हुआ। फलतः साहित्यकी परिधिका विस्तार हुआ और दृष्टि उन्मुक्त हुई। इस समयके कवियोंकी भावनाओंके मोड़का सबसे अच्छा उदाहरण पन्तकी यह कविता है—

---

१. 'सुमित्रानन्दन पन्त,' पृ० १७७।

ताक रहे हो गगन ?
मृत्यु-नीलिमा-गहन-गहन ?
अनिमेष, अचितवन, काल-नयन ?
निःस्पन्द शून्य, निर्जन, निःस्वन ?
देखो भूको !
जीव प्रसूको !
हरित-भरित
पल्लवित-मर्मरित
कूजित गुंजित
कुसमित
भूको !···········

छायावादसे प्रगतिवादकी ओर प्रयाणका यह श्रेष्ठ दृष्टान्त है।

मेरी दृष्टिमें इस युगके सम्पूर्ण हिन्दी काव्यको दो खण्डोंमें विभाजित कर देना चाहिए—प्रगतिवादी काव्य और प्रगतिशील काव्य। प्रगतिवादी काव्य अर्थात् वह काव्य जो मार्क्सवादी सिद्धान्तोंका साहित्यमें अवतरण है, जिसमें द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद-का गहरा प्रभाव है कि जिसमें साहित्यके शाश्वत रूपको अस्वीकार किया गया है, आदर्श-को अस्वीकार कर यथार्थको पूर्ण प्रतिष्ठा दी गयी है, सुधारवादी दृष्टिकी पूर्णतः उपेक्षा कर आमूल क्रान्तिको प्रश्रय दिया गया है, जिसका दार्शनिक आधार आध्यात्मिकतासे परे चेतनाहीन जड़ता है। जो सत्य-सौन्दर्य और आनन्दका अविश्वासी है, वह एक ही वर्गका चित्रण करनेके कारण एकांगी है तथा जिसमें शोषितोंके प्रति मौखिक सहानुभूति-के भाव हैं, हार्दिक नहीं। संक्षेपमें, जो राजनीतिकी व्याख्या करनेवाला प्रचारात्मक काव्य है, वह प्रगतिवादी है। लेकिन हिन्दीका प्रगतिशील काव्य है वह, जो भारतीय समस्याओंकी प्रतिक्रियासे उत्पन्न हुआ है, जो छायावादकी अतिशय कुहेलिकाके बीच किरण बनकर चमका है, जिसमें दीनों-हीनोंके प्रति हार्दिक सहानुभूति और शुभेच्छा है, जिसमें चर्वित चर्वण और गलित विचारोंको हटाकर नवीन भावनाओंकी स्थापनाकी प्रेरणाएँ हैं, जिसकी दृष्टि विध्वंसात्मकके साथ निर्माणात्मक भी है, जो भारतीय संस्कृतिसे विच्छिन्न नहीं है, स्वतन्त्र होकर भी जिसकी मर्यादाएँ हैं और जिसमें सत्य और शिवके साथ सुन्दरका भी समन्वय है।

इस दृष्टिसे सर्वाधिक सफल कवि हुए निराला! निरालाकी व्यापक सहानुभूतिका परिचय प्रारम्भसे ही 'भिक्षुक', 'विधवा', 'बादल राग' आदि कविताओंमें मिल रहा था। द्वितीय विश्वयुद्धके विकट प्रभावोंने प्रगतिवादी स्वरूपको स्पष्ट कर दिया। साहित्यके क्षेत्रमें सबसे पहले निरालाने ही शोषितोंका साहित्य लिखनेकी परम्परा कायम की। 'कुल्लीभाट', 'बिल्लेसुर-बकरिहा' और 'चतुरी चमार' आदि गद्य-रचनाओंमें निरालाने व्यंग्य और हास्यका पुट दिया है और मानवताका वास्तविक रूप इनके तथाकथित

नीच, गँवार तथा शूद्रोंमें ही पाया है। 'कुकुरमुत्ता', 'नये पत्ते', 'बेला' तथा 'अणिमा' प्रगतिवादी काव्यके उत्कृष्ट रूप हैं। कविने व्यंग्यको आधार बनाकर सामाजिक दूषणों-की अत्यन्त कुशलतासे व्याख्या की है। कविका अपना जीवन संघर्षोंकी कहानी था तथा उनका व्यक्तित्व अत्यन्त क्रान्तिकारी। यही कारण है कि उनका व्यथासे उत्पन्न व्यंग्य अत्यन्त मार्मिक हो पाया है।

'कुकुरमुत्ता'में कविने सामन्तवादी सभ्यतापर अत्यन्त तीखा व्यंग्य किया है। गुलाब शोषकोंका प्रतीक है। वह मालीके पसीनेसे सिंचित होकर बढ़नेवाला 'कैपिट-लिस्ट' है। कुकुरमुत्ता निर्धन वर्गका प्रतिनिधित्व करता है। उसके मौलिक और नैसर्गिक व्यक्तित्वके विकासके लिए किसीका शोषण आवश्यक नहीं। कविने यहाँ अत्यन्त व्यापक दृष्टिसे सामाजिक व्यंग्य प्रस्तुत किया है। व्यंग्यकी शैली अत्यन्त मार्मिक है।

कुकुरमुत्ता सच्चे साम्यवादी नेताओंकी तरह बकवाद करता है, आत्म-प्रशंसा भी करता है। इसमें समाज-प्रणालीके कई पक्षोंपर अत्यन्त कटु व्यंग्य प्रस्तुत किया गया है।

'नये पत्ते'में कुकुरमुत्ताकी भी कुछ रचनाएँ संकलित हैं। इसके अतिरिक्त 'रानी और कानी', 'खजोहरा', 'मास्को डायलाग्स', 'राजेने रखवाली की', 'खुशखबरी', 'दंगा', 'चर्खा चला', 'गर्म पकौड़ी', 'कुत्ता भौंकने लगा', 'स्फटिक शिला' आदि कविताएँ इसमें संगृहीत हैं।

'रानी और कानी'में मातृ-हृदयकी ममताके साथ ही विवाह-प्रथाकी व्यवस्थापर व्यंग्य है। विवाहके लिए रूप आवश्यक समझा जाता है, इसलिए रानीके कानी होनेके कारण उसका विवाह नहीं हो पाता है। व्यंग्यके साथ-साथ करुणाकी धारा भी बह चली है। 'मास्को डायलाग्स'में समाजवादी नेताओंपर व्यंग्य है। ये नेता साहित्यमें अनधिकार प्रवेश चाहते हैं, बात-बातमें रूसका उल्लेख करते हैं, 'राजेने रखवाली की' में कवि, वैतालिक, ब्राह्मण आदि राजाकी प्रशस्ति गाते हैं। ऐसी सामन्ती व्यवस्थापर कवि व्यंग्य करता है। 'गर्म पकौड़ी' में कंजूसपर व्यंग्य किया गया है। जैसे कंजूस पैसेसे चिमटा रहता है वैसे ही नये विचार हृदयको खींच लेते हैं। नये विचारोंके आकर्षणमें ब्राह्मणकी बनायी घीकी कचौड़ी अर्थात् परम्परामुक्त स्थायी सिद्धान्त भी कुछ महत्त्व नहीं रखते।

'देवी सरस्वती' नये पत्तेकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना है। ग्राम्य-जीवनका इतना सुन्दर, यथार्थ, स्वाभाविक, पूर्ण और सहानुभूतिपूर्ण चित्र पन्तकी 'ग्राम्या'में भी नहीं मिलता। छः ऋतुओंमें गाँवोंका ५१ वर्षका जीवन अंकित किया गया है। 'बेला'का व्यंग्य अधिक परिष्कृत है। उर्दू गजलोंकी शैलीका भी प्रयोग किया गया है। कवि यहाँ जनताका सच्चा कवि दीखता है।

प्रयोगवादी काव्य—प्रयोग प्रत्येक कविके लिए आवश्यक है। प्रयोग ही मौलि-कताकी सिद्धि करता है। यद्यपि इसे सिद्धान्तके रूपमें माना अज्ञेयने भी[1], लेकिन

---

१. प्रयोग निरन्तर होते आ रहे हैं, और प्रयोगोंके द्वारा ही कविता या कोई भी कला कोई भी रचनात्मक कार्य आगे बढ़ सका है। जो कहता है कि मैंने जीवन भर कोई प्रयोग नहीं किया,

साम्प्रदायिक रूपसे तारसप्तक (तीनों खण्ड), प्रतीक, कविता आदि पुस्तकों और पत्रिकाओंमें संकलित सन् '५३ से अबतकके एक विशेष दिशामें लिखे जानेवाले काव्यको प्रयोगवाद कहा जाने लगा। यद्यपि प्रसाद, पन्त, निराला, रामकुमार, बच्चन सबने प्रयोग किये, पर उन्हें इस धारामें सम्मिलित नहीं किया जाता। प्रगतिवादकी भाँति ही क्रान्ति भावना, बौद्धिकता, नवीन प्रतीकों और छन्दोंकी मुक्तिका प्रयास लेकर प्रयोगवादी कवि हिन्दी क्षेत्रमें आये। यूरोपके मनोविश्लेषणात्मक तथ्यों और अति-यथार्थवादी दृष्टियोंका इनपर प्रभाव था। डॉ० एच० लारेन्स, टी० एस० इलियट, एजरा पाउण्ड आदि कवियोंका प्रत्यक्ष प्रभाव इन प्रयोगवादियोंपर पड़ा है। गोचर जगत्को नयी दृष्टिसे देखनेके अभिलाषी इन कवियोंने नये चित्रों, प्रतीकों एवं अलंकारों-का आश्रय लिया। 'नये सत्यों', 'नयी यथार्थताओं'के साथ रागात्मक समन्वय स्थापित करनेका प्रयास इन कवियोंने किया।

प्रयोगवादी अपने काव्यमें छायावादी कल्पनाकी अतिशयता एवं प्रचण्ड भौतिक-वादी दृष्टिके स्थानपर अतियथार्थवादी प्रवृत्तियोंको स्थान देनेके प्रयासी हैं। ये वैयक्तिक कुंठाओंका चित्रण करते हैं और यथार्थकी नग्नताको खोलकर रखनेमें संकोच नहीं करते। विषयोंकी परिधि जो प्रगतिवादके क्षेत्रमें बृहत् हुई वह प्रयोगवादी काव्यधारामें बृहत्तर हुई। नये-नये उपेक्षित और दैनिक जीवनकी सुपरिचित किन्तु निरादृत वस्तुओं-पर कविकी लेखनी दौड़ने लगी, प्रेमको इन कवियोंने आध्यात्मिक या भावात्मक रूपमें ग्रहण करनेकी अपेक्षा दलित यौन-भावनाके प्रतिफलनके रूपमें लिया। प्राचीनके प्रति विद्रोहकी भावना इस हदतक मुखर हुई कि नवीन उपमानोंकी उपेक्षा करना ही कवियोंने अपना धर्म समझा।[१] कहीं 'भूना हुआ पापड़-सा' सपनोंका टूटना बतलाया गया है तो कहीं 'सघन जीवन निशा विद्युत् लिए मानो अँधेरेमें बटोही जा रहा हो टार्च ले' लिखा गया। इन प्रयोगवादी कवियोंने नयी-नयी ध्वनियोंको बाँधनेकी चेष्टा की।

प्रयोगवादी कवियोंने लोकधुनों और लोकशैलीपर आधारित कुछ गीत भी लिखे हैं,

---

वह वास्तवमें यही कहता है कि मैंने जीवनभर कोई रचनात्मक कार्य नहीं चाहा, ऐसा व्यक्ति अगर सच कहता है तो यही पाया जायगा कि उसकी 'कविता' कविता नहीं है। उसमें रचना-त्मकता नहीं है, वह कला नहीं, शिल्प है, हस्तलाघव है।—'तारसप्तक', भूमिका, पृ० ७८।

१. 'चाँदनी चन्दन सदृश'
हम क्यों लिखे?
मुख हमें कमलों सरीखे क्यों दिखे?
हम लिखेंगे,
चाँदनी उस रूप-सी है कि जिसमें
चमक है पर खनक गायब है।
हम कहेंगे जोर से
मुँह घर अजायब है (जहाँ पर बेतुके अनमोल, जिन्दा
और मुर्दा भाव रहते हैं)।
—अजितकुमार, 'कविता'

जिनमें छायावादकी कोमलता रंगीन चित्रात्मकता और रहस्यात्मकताकी कमी है। दीनता, अनास्था, कटुता और पलायनकी प्रवृत्ति सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है।

प्रयोगवादी कवियोंकी रचनाओंमें ज्ञानका अनावश्यक बोझ और अध्ययनसे उत्पन्न अनुकरणशीलता है। विदेशी भंगिमाओंकी इनमें प्रचुरता मिलती है। चौंकाने और ध्यान आकृष्ट करनेकी शैलीकी इनमें प्रधानता है। काव्यके सामान्य नियमोंको भुलानेकी प्रवृत्ति इनमें लक्षित होती है। अंग्रेजीके 'मेटाफिजिकल' कवियोंकी तरह चमत्कार (मिराकुलिज्म) इन्हें प्रिय हैं। प्रयोगवादी कवियोंकी भावोंकी गहरायी पर आसक्ति नहीं है, शैलीको सजाने-सँवारनेकी प्रवृत्ति ही अधिक है।[1]

प्रयोगवादियोंने साधारण शब्दोंको व्यापक अर्थोंसे सम्बद्ध करनेकी चेष्टा की, पर बहुत कम सफलता उन्हें मिली। उन लोगोंने अधिकांश शब्दोंके अपव्यय किये, लेकिन कुछ नये और सामान्य शब्दोंके मार्मिक प्रयोग भी किये। इन लोगोंने भाषाकी अर्थ-शक्तिको अपर्याप्त मानकर विराम-चिह्नों, सीधी-तिरछी लकीरों, अधूरे उद्धृत वाक्योंसे उसकी पूर्ति करनेका प्रयास किया। इनमें चेतनाप्रबुद्ध नयी दृष्टिके स्थानपर शब्दोंके चमत्कार और अलंकरणके द्वारा प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करनेकी चेष्टा है। प्रयोगवादी कविता नये परिप्रेक्ष्यमें, अनुभूतियोंके नये धरातलपर विकृत मूल्योंके परिष्करणका प्रयास माना गया।

इन प्रयोगवादियोंके बीच प्रतीकवादियोंकी भी अच्छी संख्या है, जिनपर बोदलेयर, वर्लैन, मालार्मे, रिम्बो, प्रूस्त, वालेरी आदिके प्रभाव स्पष्ट हैं। इसकी बहुत बड़ी लहर १९ वीं शतीके अन्तिम चरणमें फ्रांसमें उठी। कई आलोचक प्रयोगवादको ही प्रतीक-वाद नाम देते हैं।[2] इसका कारण यह है कि प्रतीकोंके माध्यमको प्रयोगवादियोंने बहुत महत्त्व दिया।[3]

प्रयोगवाद या नयी कविताके अन्तर्गत एक प्रवृत्ति यह परिलक्षित होती है कि एक

---

१. प्रगतिवादने अपना सारा जोर साहित्यगत विचारोंपर देकर जैसी भूल की थी, कुछ वैसी ही भूल 'प्रयोगवादसे भी हो सकती है, यदि उसने अपनी सारी शक्ति साहित्यकी शैली संवारनेमें लगा दी…………।

—डॉ० दिनकर, 'चक्रवाल'की भूमिका, पृ० ७४।

२. प्रयोगशीलताकी ओटमें अज्ञेय प्रतीकवादी विचारधाराको साहित्यमें प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टा करते हैं।…उनकी कविता प्रतीकवादी है।…यद्यपि वादोंसे ऊपर सिद्ध करनेके लिए वह अपने को 'प्रयोगशील, किसी मंजिलतक पहुँचे हुए या किसी राहके राही नहीं बल्कि 'राहोंके अन्वेषी' ही घोषित करते हैं, जिसमें प्रतीकवाद 'प्रयोगशीलता'के छद्मवेशमें तरुण प्रतिमाओंको आकर्षक और ग्राह्य लगे।

—शिवदानसिंह चौहान, 'आलोचना', अंक २।

३. भाषाका महत्त्व अर्थ व्यक्त करनेके लिए कम रह गया और संकेतोंके लिए अधिक।…प्रतीक-वादियोंने यूरोपके काव्यको एक सशक्त शैली अवश्य दी है और हम अपने प्रयोगशील कवियोंसे भी यह आशा कर सकते हैं।

—डॉ० रघुवंश 'हिन्दी काव्यकी प्रवृत्तियाँ', पृ० ११।

ही कविकी रचनाओंमें विरोधी भावनाओंके चित्र मिलते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि मध्यवर्ग नयी कविताकी प्रेरणा-भूमि है। मध्यमवर्ग, अर्थात् भाँति-भाँतिकी कुंठाओं, हीनताओंसे ग्रसित एवं बौद्धिक अहंसे पीड़ित। समाजके सभी कुचक्रोंसे शोषित उच्च श्रेणीवाले सुखी रहे, निम्न श्रेणीके उद्धारके लिए नये युगमें सरकारने, राजनैतिक दलोंने बहुत कुछ प्रयत्न किये, पर मध्यम वर्ग त्रिशंकुकी भाँति लटकता रहा। यह वर्ग अपनी शिक्षा-दीक्षा, संस्कार और संवेदनशीलताके कारण अपनी स्थितिपर बहुत अधिक ध्यान देता है। वह अपने अधिकारोंके प्रति अत्यधिक सचेष्ट है। वह अपनी असमर्थता और अपनी सम्भावनाओंके बीच समझौता नहीं कर पाता है। यही अतृप्ति नयी कविता-के मूलमें है। यौन-भावनाओं और प्रेमकी दिशामें समाजकी सर्वाधिक प्रताड़नाका केन्द्र भी यह मध्यम वर्ग ही रहा है; क्योंकि उच्च धनी वर्गोंके बीच प्रेम ऐशकी चीज समझी जाती है और निर्धनोंके बीच आर्थिक कठिनाइयाँ मुँह बाये खड़ी हैं। कहीं-कहीं लोककी दुर्भावना और प्रेमकी प्यासके बीचकी भावना बड़ी तीखी हो गयी है।[१]

नयी कविता या प्रयोगवादके नामपर चलनेवाली रचनाओंमें अभी बहुत कुछ नया आनेवाला है। धीरे-धीरे बाढ़का पानी घट रहा है और उपजाऊ भूमि निकलती जा रही है। तारसप्तकके कवियोंकी ही कुछ रचनाएँ अत्यन्त कलात्मक सिद्ध हुई हैं जैसे, 'निकष' में प्रकाशित अज्ञेयका 'साँप', भवानीप्रसाद मिश्रका 'गीत फरोश' आदि। अभी न तो प्रयोगवादका जीवन-दर्शन स्पष्ट है और न उनकी शैली। अज्ञेयकी शब्दावलिमें ही 'प्रयोगको वाद नहीं मानना चाहिये। प्रयोगका कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आपमें इष्ट या साध्य है। प्रगतिवादके बाद आनेवाली कविताको 'नयी' विशेषण दिया जा रहा है, कलको वह भी पुरानी हो जायेगी।

इधर प्रबन्ध काव्यके क्षेत्रमें भी कुछ उत्कृष्ट रचनाएँ प्रकाशित हुई। हिन्दीके महान् कवि युगान्तकारी नाटककार एवं श्रेष्ठ आलोचक डॉ० रामकुमार वर्माका 'एकलव्य' महाकाव्य प्रकाशित हुआ। शिल्प-विधान, मानवताके नये मूल्योंके उद्घाटन एवं भावोत्कर्षकी दृष्टिसे यह राष्ट्रभाषाका गौरव-ग्रन्थ है। गुरुके उत्कर्षकी सुरक्षा करते हुए शिष्यके महान् बलिदानकी रक्षा जितने कौशलके साथ यहाँ की गयी है, अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। भावनाओंके उतार-चढ़ाव और अन्तर्द्वन्द्वका मनोवैज्ञानिक चित्रण कविकी महान् प्रतिभाका प्रमाण है। स्थान-स्थानपर पाठ करते हुए सात्त्विक भावोंसे वाणी अवरुद्ध हो जाती है। इसमें कुछ उत्कृष्ट गीत भी आये हैं, जिनकी समीक्षा यथास्थान होगी। ओज और प्रवाहकी दृष्टिसे डॉ० दिनकरका 'रश्मिरथी' भी अच्छा प्रबन्धकाव्य है। 'कुरुक्षेत्र' इस युगका सर्वश्रेष्ठ विचारकाव्य है। १९२०-६० ई० के बीच दो और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाशित हुईं—'साकेत' और 'कामायनी'। रामकाव्यकी परम्परामें बीसवीं शताब्दीकी भावधाराओंकी पृष्ठभूमिमें 'साकेत' अत्यन्त उत्कृष्ट कड़ी है। उपेक्षिता उर्मिला और लांछिता कैकेयीके चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे यह अनमोल काव्य है।

---

१. 'दूसरा सप्तक', भूमिका, पृ० ६।

'कामायनी' प्रसादकी सम्पूर्ण साधनाका समाहार है। उसका प्रणयन हिन्दीकी ऐतिहासिक घटना है। प्रतीकोंके माध्यमसे अन्तर्वृत्तियोंका अत्यन्त सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। सृष्टिके आदिकालकी एक घटनाका हल्का-सा आधार लेकर जीवन-दर्शनके गहन सूत्रोंको काव्य-भूमिपर उतारा गया है। इन दोनों ग्रन्थोंके गीतोंका विवेचन यथा-स्थान होगा।

इसके अतिरिक्त सहस्रों गीतिकारोंने अपनी रचनाओंसे माँ भारतीके भाण्डारको भरनेकी चेष्टा की है। छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोग प्रिय आधुनिककालमें कभी गीतोंका निर्माण बन्द नहीं हुआ। मौसम बदले, परिस्थितियाँ बदलीं, काव्यके बाह्य उपकरणोंमें रूप-भेद हुए; पर कविगण अपने गीतोंसे कभी नहीं रूठे। उनके जीवनके रागात्मक क्षणोंको गीतोंकी कड़ियाँ अभिव्यक्त करती चलीं। व्यर्थ यहाँ सबके नाम नहीं गिनाकर आगेके प्रकरणोंमें उनकी गीतिकलाकी विधिवत विवेचना करूँगी।

———

अध्याय ३

गीतिकाव्यकी परिभाषा और उसके प्रेरक तत्त्व

गीतिकाव्यकी परिभाषा

यदि कोई पूछे हिमालय क्या है ? तो उत्तर होगा, एक पहाड़ ! फिर प्रश्न होगा कैसा पहाड़, उत्तर होगा, बर्फ़का । किन्तु इस तरहके प्रश्नकर्त्ता तबतक शान्त नहीं होंगे, जबतक उसका पूर्ण विवरण, महत्त्व, उद्‌गम प्रसार सब कुछ न जान लें । कुछ-कुछ यही दशा साहित्यांगकी परिभाषा देनेवालेकी होती है । हर परिभाषा अपूर्ण होती है, वह कुछ तथ्योंको घटाकर कहती है, कुछको बढ़ाकर, कुछको छोड़ देती है, कुछको जोड़ देती है । आजतक किसी भी साहित्य-रूपकी सर्वमान्य परिभाषा इसीलिए नहीं गढ़ी जा सकी है । अतः गीतिकाव्यके प्रकरणमें भी यह आवश्यक है कि हम सभी प्रचलित परिभाषाओंका परीक्षण करें, ताकि प्रत्येकमेंसे निकली विशेषताओंको समग्र रूपसे देखनेपर गीतिकाव्यका परिचय मिल सके ।

हमारे संस्कृतके आचार्योंने काव्यके दो भेद किये हैं—दृश्य और श्रव्य । पुनः श्रव्यके अन्तर्गत 'प्रबन्ध' और 'मुक्तक' दो भेद किये हैं । मुक्तकको अपने आपमें पूर्ण अर्थ व्यक्त करनेवाला तथा चमत्कारक माना गया है ।[१-२] किन्तु आनन्दवर्द्धनके पूर्व मुक्तककी महत्ता प्रतिष्ठापित करनेवाले कोई आचार्य नहीं हुए । भामहने केवल प्रबन्ध और मुक्तक-दो भेद मानकर छोड़ दिया है । दण्डीने मुक्तकको भी प्रबन्धपर निर्भर माना है और केवल उसके उपभेदोंका उल्लेख कर स्वयं मुक्तकका कुछ विशेष विवेचन नहीं किया है । आनन्दवर्द्धनने मुक्तकोंको रस-सिद्ध माना[३] । अभिनवगुप्तने इसकी टीका करते हुए यह बताया है कि मुक्तक पूर्णतः स्वतन्त्र होते हैं । विश्वनाथने निरपेक्ष पदको मुक्तक मानकर पद्योंकी संख्याके अनुसार उसके वर्गीकरण किये हैं—युग्मक, संदानितक अथवा विशेषक, कलापक, कुलक ।[४] फिर उन्होंने खण्डकाव्यका लक्षण लिखते हुए मुक्तक-समूहको कोष

१. मुक्तको श्लोक एवैवश्चमत्कारक्षमः सताम्—अग्निपुराण ।

२. 'काव्यानुशासन', ८,१० ।

३. तत्र मुक्तकेषु रसबन्धाभिनिवेशिनः कवेस्तदाश्रयमौचित्यम् ।
तत्र मुक्तकेषु प्रबन्धेष्वि रसबन्धाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते ।
—'ध्वन्यालोक', तृतीय उद्योत

४. छन्दोबद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम् ।
द्वाभ्यां तु युग्मकं संदानितकं मिमिरिष्यते ॥
कलापकं चतुर्भिश्च पंचभिः कुलकं मतम् ।
—'साहित्यदर्पण', षष्ठ परिच्छेद, ३१३-१४ ।

भी कहा है।[१] हेमचन्द्रने सूक्तियोंके समूहका नाम श्लोक-काव्य कहा है।[२] वैदिक युगके बाद चार चरणवाले श्लोकोंका विकास हुआ, जो गेयसे अधिक पाठ्य थे। लेकिन ऋग्वैदिक कालके पदोंमें छह या उससे अधिक चरणों वाले श्लोकोंका निर्माण हुआ।

हिन्दीमें बाबू गुलाबरायने मुक्तक काव्यके दो भेद माने—पाठ्य और गेय।[३] गेय-के अन्तर्गत ही गीतिकाव्य माना जा सकता है। बहुत सारे आलोचकोंने हिन्दीके गीति-काव्यको अंग्रेजीके वैणिक (लिरिक)से प्रभावित माना है।[४] मैं समझती हूँ कि हमारा आधुनिक गीतिकाव्य प्राचीन पदोंका ही विकसित रूप है, जिनमें वैयक्तिकता, भावात्मक तीव्रता आदि गुणोंका विशेष रूपसे समावेश हुआ और भावनाओंकी उमड़न-घुमड़नके अनुसार विभिन्न छन्दोंमें उनका निर्माण हुआ। पदोंकी अपेक्षा गीतिकाव्यमें भक्ति, नीति, वैराग्य आदिसे बढ़कर वैयक्तिक सुख-दुःख ही महत्त्वपूर्ण हो उठे।

छायावाद और रहस्यवादकी प्रतिनिधि गीतकर्त्री श्रीमती महादेवी वर्माने गीतिकाव्य-की परिभाषा देते हुए लिखा है :—

'सुख-दुःखके भावावेशमयी अवस्था विशेषका, गिने-चुने शब्दोंमें स्वर-साधनाके उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।'[५] उन्होंने इस परिभाषाको अन्य शब्दोंमें स्पष्ट किया है :—

(क) 'वास्तवमें गीतके कविको आर्त्तक्रन्दनके पीछे छिपे हुए भावातिरेकको, दीर्घ निःश्वासमें छिपे हुए संयमसे बाँधना होगा तभी उसका गीत दूसरेके हृदयमें उसी भावका उद्रेक करनेमें सफल होगा।'[६]

(ख) 'गीत यदि दूसरेका इतिहास न कहकर वैयक्तिक सुख-दुःख ध्वनित कर सके तो उसकी मार्मिकता विस्मयकी वस्तु बन जाती है इसमें सन्देह नहीं।'[७]

---

१. कोषः श्लोकसमूहस्तु स्यादन्योन्यान पेक्षकः
—'साहित्य दर्पण', ३२९।

२. स्वपरकृत सूक्ति-समुच्चयः कोषः सप्तशतकादिः।
—'काव्यानुशासन', आठवाँ अध्याय।

३. मुक्तक काव्य भी कई प्रकारका होता है। आकारकी दृष्टिसे दो भेद हैं—एक पाठ्य और दूसरा गेय जिसको गीत कहते हैं।
—'सिद्धान्त और अध्ययन', पृ० २२५।

४. हिन्दीमें प्रगीतका व्यवहार अंग्रेजी साहित्यके लिरिक शब्दके अनुवादके रूपमें स्वीकृत है।
—तुलसीदासका प्रगीतकाव्य, प्रो० [illegible]कुमार, पृ० २।
संगीतका विशिष्ट रूप गीत (लिरिक) है।

(ग) "सफल गायक वही है जिसके गीतमें सामान्यता हो अर्थात् जिसकी भाव-तीव्रतामें दूसरोंको अपने सुख-दुःखकी प्रतिध्वनि सुन पड़े और यह तब स्वतः संभव है जब गायक अपने सुख-दुःखोंकी गहराईमें डूबकर या दूसरेके उल्लास-विषादसे सच्चा तादात्म्य कर गाता है।"[१]

महादेवीकी परिभाषाके आधारपर निम्नलिखित सार निकले :—

१. गीतिकाव्य सुख-दुःखका चित्रण होता है, उसकी मार्मिकताके लिए वैयक्तिकता-की छाप आवश्यक है।

२. भावावेशमयी अवस्था आवश्यक है।

३. गिने-चुने शब्द हों, अर्थात् कसावट हो, संक्षिप्तता हो।

४. भाषाका एक लक्ष्य उसकी सांगीतिकता भी हो।

५. चित्रण हो (वर्णन नहीं)।

६. संक्रमणशीलता और साधारणीकरणके लिए भावातिरेकको संयमित रखना होगा।

महादेवीकी परिभाषा (उद्धरण १) अपूर्ण है, लेकिन उसके लक्षणके स्पष्टीकरणके लिए आगेकी पंक्तियों (उद्धरण २,३,४)के साथ उसका रूप पूर्ण हो जाता है। महादेवी-ने वैयक्तिकता और सांगीतात्मकताकी प्रधानता देते हुए उपर्युक्त तथ्योंके आधारपर ही गीतिकाव्यकी एक और परिभाषा दी है।[२]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जो प्रबन्धकाव्यको विशेष महत्त्व देते थे, लिखते हैं, मुक्तकमें प्रबन्धके समान वह रसकी धारा नहीं रहती, जिसमें कथा-प्रसंगकी परिस्थितिमें अपनेको भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदयमें एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें तो रसके ऐसे छींटे पड़ते हैं जिनसे हृदय-कलिका थोड़ी देरके लिए खिल उठती है। यदि प्रबन्धकाव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुल-दस्ता है। उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संघटित पूर्ण जीवन या उसके किसी एक पूर्ण अंगका प्रदर्शन नहीं होता; बल्कि कोई एक रमणीय खण्ड-दृश्य इस प्रकार सामने ला दिया जाता है कि पाठक या श्रोता कुछ क्षणोंके लिए मंत्रमुग्ध हो जाता है।"[३]

आचार्य शुक्लके कथनका निष्कर्ष इस प्रकार है :—

१. मुक्तकमें रसानन्दकी क्षणिकता होती है।

२. मुक्तकमें लघुता है—संक्षिप्तता है।

३. जीवनके खंडदृश्यका इसमें उद्घाटन होता है।

मुक्तकोंके सम्बन्धमें दी गयी अपनी सम्मतिमें आचार्य शुक्लने गीतों और पदोंको

---

१. 'जीवन और काव्य', पृ० १४९।

२. साधारण गीत व्यक्तिगत सीमामें सुखदुःखात्मक अनुभूतिका वह शब्दरूप है जो अपनी ध्वन्या-त्मकतामें गेय हो सके।

—'दीपशिखा'की भूमिका, पृ० ५९।

३. 'हिन्दी-साहित्यका इतिहास', पृ० ३४७।

भी समाहित कर लिया है, क्योंकि इसी दृष्टिसे उन्होंने सूरका विवेचन किया है। उन्होंने भावोंकी तीव्रता और वैयक्तिकताके गुणोंपर बल नहीं दिया; क्योंकि सामान्य मुक्तकोंका लक्षण उन्होंने प्रस्तुत किया—उसके विशिष्ट रूप गीतिकाव्यका नहीं।

हिन्दीके महान् विचारक डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी आचार्य शुक्लसे भिन्न मत रखते हैं। डॉ० द्विवेदी स्वतन्त्र विचारके आलोचक हैं। परम्पराका अविच्छिन्न ज्ञान होते हुए भी उनमें कोई पूर्वधारणाकी जड़ता कहीं किसी आलोचनामें नहीं मिलती। वे उन्मुक्त भावके मर्म-पारखी आलोचक हैं। उन्होंने लिखा है, "पुराने मुक्तकोंके अध्ययनसे स्पष्ट है कि इन (प्राचीन मुक्तकों)में कविकी कल्पना कुछ ऐसे शास्त्ररूढ़ व्यापारोंकी योजना करती थी जिनसे किसी रस या भावकी व्यंजना मुकर हो। आधुनिक प्रगीत मुक्तक कविके भावावेगके क्षणोंकी रचना होते हैं, उनमें गीतकी सहज और हल्की गति होती है। इनकी गुलदस्तोंके साथ तुलना नहीं की जा सकती। ये विच्छिन्न जीवन-चित्र होनेपर भी प्रवाहशील होते हैं और इनमें शास्त्र-प्रसिद्ध व्यापार-योजनाकी आवश्यकता नहीं होती। पुराने रूपकोंमें कवि-कल्पनाकी समाहार शक्ति प्रधान हिस्सा लेती थी, पर आधुनिक मुक्तकोंमें कविका भावावेग ही प्रधान होता है। परन्तु इतना स्मरण रखना उचित है कि आजकलके प्रगीत मुक्तकोंमें यद्यपि व्यक्तिगत अनुभूतियोंका प्राधान्य है तो भी वे इसलिए हमारे चित्तमें आनन्दका संचार नहीं करते कि वे व्यक्तिगत अनुभूति हैं, बल्कि इसलिए कि वे हमारी अपनी अनुभूतियोंको जाग्रत करते हैं। जो बात हमारे मनको आनन्दसे तरंगित कर देती है वही हमारी 'अपनी' होती है। इसीलिए यद्यपि आजके अच्छे मुक्तक-लेखक कविकी विषय-ग्राहिता परम्परा द्वारा समर्थित न होकर आत्मानुभूतिमूलक हैं तथापि वह पाठकके भीतर पहलेसे वासना रूपमें स्थित भावोंको उद्बुद्ध करके ही रस-संचार करती है। आजका प्रगीत-मुक्तक व्यक्तिगत विषय-ग्राहिताका परिणाम है, परन्तु वह उतना ही सामाजिक है जितना रीतिकालीन रूढ़ियोंकी योजनाके भीतर गृहीत मुक्तक होता था। इस प्रकार दोनोंमें समानताकी मात्रा कम नहीं है। व्यक्तिगत होनेके कारण इन अनुभूतियोंका क्षेत्र बहुत बढ़ गया है।..........पुराने मुक्तकोंमें जिन विभावोंकी योजना केवल उद्दीपनके रूपमें होती थी और जिन अनुभावोंका वर्णन केवल भावनीय मनोरागोंकी अपेक्षामें ही होता था वे विभाव अब आलम्बन रूपमें योजित होने लगे हैं। और वे अनुभाव अब मनुष्यके बाहरके जगत्के कल्पित मनोरागोंके सम्बन्धमें प्रयुक्त किये जाने लगे हैं। ऐसा करनेसे भाषामें अधिकाधिक लाक्षणिकता आने लगी है; क्योंकि जड़ प्रकृतिको यदि आलम्बन मान बनाकर उसमें अनुभावों और हावोंकी योजना की जायगी तो लक्षणा वृत्तिका आश्रय लेना ही पड़ेगा।"[१]

डॉ० द्विवेदीने एक-दो पंक्तियोंमें परिभाषाके नामपर समस्या गढ़नेकी जगह प्रगीत-काव्यकी पूर्ण व्याख्यामें उसके सभी प्रमुख लक्षणोंको उभार कर रख दिया है। डॉ० द्विवेदीके विचारोंके मुख्य सूत्र निम्नलिखित हैं :—

१. 'हिन्दी-साहित्य : उद्भव और विकास', पृ० ४५२।

१. सहजता और सुगमता होती है।
२. प्राचीन और नवीन मुक्तकोंमें अन्तर है।
३. आधुनिक प्रगीत मुक्तकोंमें भावावेगके क्षणोंका प्राधान्य है।
४. विच्छिन्नताके साथ प्रवाहशीलता होती है।
५. इनमें शास्त्रप्रसिद्ध व्यापार-योजना अनावश्यक है।
६. इनमें वैयक्तिकता होते हुए भी साधारणीकरणकी अपेक्षा है; क्योंकि वे तदनुरूप भावोंकी सृष्टि पाठकोंमें करते हैं।
७. इसकी विषयग्राहिता परम्परा द्वारा स्वीकृत नहीं होती।
८. व्यक्तिगत होकर भी ये सामाजिक हैं।
९. व्यक्तिगत होनेके कारण इनमें अनुभूतिका क्षेत्र विस्तृत हो गया है।
१०. इनके कारण भाषाकी लाक्षणिकता बढ़ी है तथा विभावोंकी योजना अधिक विस्तृत स्तरपर हुई है।

डॉ० द्विवेदीके सूत्रोंमें गीतोंके बाह्य और आभ्यन्तर दोनों पक्षोंकी विशेषताओंका उद्‌घाटन हुआ है। उन्होंने परम्पराओंकी पृष्ठभूमिमें आधुनिक उपलब्धियोंको परखा है। उन्होंने उस सामाजिक तत्त्वका उद्‌घाटन किया है, जिसका अभाव छायावाद गीतिशैलीके विरोधी देखते थे। गीतोंकी यह वैज्ञानिक और सम्यक् व्याख्या है।

डॉ० श्यामसुन्दरदासने आत्माभिव्यंजन-प्रधान काव्यको गीतिकाव्य कहा है तथा उसकी परिभाषा इस प्रकार दी है—"आत्माभिव्यंजन-सम्बन्धी कविता गीतिकाव्यमें ही अधिक लिखी जाती है। छोटे-छोटे गेय पदोंमें मधुर भावनापन्न आत्मनिवेदन स्वाभाविक भी जान पड़ता है। ऐसे पदोंमें शब्दकी साधनाके साथ स्वर (संगीत) की साधना भी उत्कृष्ट हो सकती है। इनसे कर्कशता बहिष्कृत कर दी जाती है। इनकी भावना प्रायः कोमल होती है और एक-एक पदमें पूरा होकर समाप्त हो जाती है। हिन्दीमें इस प्रकारके गीत भक्तोंने अगणित लिखे हैं।"[१]

डॉ० दासके मुख्य लक्षण ये हैं :—
१. आत्माभिव्यंजनकी प्रधानता,
२. संक्षिप्तता,
३. भावनापन्नता,
४. संगीतात्मकता—माधुर्य और प्रसाद गुणोंकी प्रधानता,
५. निरपेक्षता।

डॉ० दासने पदोंमें तथा आधुनिक गीतिकाव्यके स्वरूपमें कोई भेद नहीं माना है। उनकी दृष्टिमें मीराके पद और महादेवीके गीत स्वरूपतः एक ही हैं।

हिन्दीके सुप्रसिद्ध विद्वान् आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयीने हिन्दी प्रगीतोंके सम्बन्धमें लिखा है,……"कवियों और लेखकोंका एक दूसरा वर्ग अधिक प्रशस्त साहित्यिक

१. 'साहित्यालोचन', पृ० ९५।

आधार लेकर आया। इन रचयिताओंने अपने भावोंकी अभिव्यक्तिके लिए 'सीधे राजनीतिक आख्यानों'का सहारा नहीं लिया, वे मुक्तकों और भावगीतोंमें अपनी भावनाका प्रकाशन करने लगे। यद्यपि उनकी भावना भी राष्ट्रीयतासे पूरी तरह अनुप्रेरित थी; परन्तु उसके प्रकाशनका माध्यम उतना समीपी या सन्निकट न था। इस दूरवर्त्ती माध्यमको अपना लेनेसे दो लाभ हुए। एक तो कवियोंकी भावनामें व्यापकता आयी, उन्हें 'सीधी राजनीतिक प्रेरणा'से छुटकारा मिला और दूसरे उन्हें प्रगीत मुक्तकके रूपमें एक नयी काव्यशैलीका निर्माण करनेका अवसर प्राप्त हुआ। प्रगीत-काव्यमें कविकी भावनाकी पूर्ण अभिव्यक्ति होती है, उसमें किसी प्रकारके विजातीय क्रयके लिए स्थान नहीं रहता। प्रगीतोंमें ही कविका व्यक्तित्व पूरी तरह प्रतिबिम्बित होता है। वह कविकी सच्ची आत्माभिव्यंजना होती है। प्रगीत रचनामें कविता इन (दृश्य-चित्रण, वस्तु-चित्रण, इतिवृत्त) समस्त उपचारोंसे विरत होकर केवल कविता या भावप्रतिमा बनकर आती है। संगीतके स्वरोंकी भाँति प्रगीतके शब्द ही अपनी भावना-इकाइयोंसे कविताका निर्माण करते हैं; उनमें शब्द और अर्थ, लय और छंद अथवा रूप और निरूप्यकी अभिन्नता हो जाती है। प्रगीतकाव्य उसका (कविताका) निर्व्याज निखरा हुआ स्वरूप है। प्रबन्धकाव्य यदि कोई रसीला फल है, जिसका आस्वादन छिलके, रेशे और बिए आदि निकालनेपर ही किया जा सकता है, तो प्रगीत-रचना उसी फलका द्रवरस है, जिसे हम तत्काल घूँट-घूँट पी सकते हैं।

"......प्रगीतमें कविकी भावना-कल्पना, उसकी अभिव्यंजना और उसके द्वारा निर्मित प्रगीतके रूपमें भी एकता या तादात्म्य स्थापित हो जाता है और उसी अवस्थामें प्रगीत अपने वास्तविक काव्योत्कर्षको प्राप्त करता है। इन द्विविध तत्त्वोंके एकदम समीप आ जाने और अन्तर खो देनेमें ही प्रगीतका प्रगीतत्व है।"[१] कुछ ऐसे ही विचार उन्होंने 'छायावादमें अनुभूति और कल्पना' पर प्रकट किये हैं—"प्रगीतकाव्यमें कविकी भावनाका परिपूर्ण प्रकाशन होता है और कविका व्यक्तित्व पूरी तरह प्रतिबिंबित होता है। कविकी अनुभूति विना व्यवधानके अपने अनुरूप कल्पनाका वरण करती है और निर्व्याज आत्माभिव्यक्तिमें परिणत होती है।"[२]

आचार्य वाजपेयीके विस्तृत विचारका सारांश निम्नलिखित है :—

१. भावनाकी व्यापकता पहलेकी अपेक्षा अधिक,
२. नवीन काव्य-शैलीका सूत्रपात,
३. कवि-भावनाकी पूर्ण अभिव्यक्ति, विजातीय क्रयोंका अभाव,
४. कविके व्यक्तित्वका पूर्ण प्रतिबिम्ब,
५. शब्द-अर्थ, लय-छंद, रूप-निरूप्यकी अभिन्नता
६. निर्मात्री भावना और निर्मित प्रगीतमें एकरूपता

---

१. 'आधुनिक साहित्य', पृ० २३-२५।
२. 'नया साहित्य : नये प्रश्न', पृ० १४९।

आचार्य वाजपेयीने गीतिकाव्यको कविताका 'निर्व्याज रूप' और 'सार तत्त्व' कहा है। उन्होंने रचना और रचनाकारकी तादात्म्यताके महत्त्वको समझा है एवं कविकी भावनाकी शुद्धताका उल्लेख किया है। वाजपेयीजीने द्विवेदी युगकी इतिवृत्तात्मक कविताकी अपेक्षा गीतिकाव्यको अधिक व्यापक भावात्मक पृष्ठभूमिसे सम्बद्ध माना है तथा नवीन काव्य-शैलीके रूपमें इसे स्वीकार किया है।

पं० रामदहिन मिश्रने गीतिकाव्यके उपर्युक्त तत्त्वोंकी प्रमुखता मानते हुए अच्छे गीतिकाव्यकी परिभाषा इस प्रकार दी है :—

"जिस गीतिकवितामें शब्दोंकी सुन्दर ध्वनि, सुकुमार संदर्शन, सरल, सुन्दर तथा मधुर शब्द, कोमल कल्पना, संगीतात्मक छन्द, अनुभूतिकी विभूति, भावानुकूल भाषा और कलापूर्ण अभिव्यक्ति हो, वह गीति कविता प्रशंसनीय है।" वस्तुतः पंडित मिश्रने सभी प्रमुख तत्त्वोंके एकीकरणको ही श्रेष्ठताकी कसौटी माना है।

डॉ० सुधांशुने 'जीवन और काव्य'में आधुनिक कलागीतोंपर विचार करते हुए लिखा है, "गीत जिस प्रकार आवेग-प्रधान भावनाका एक खण्ड है उसी प्रकार उसकी अभिव्यक्ति भी अखण्ड होती है। अप्रस्तुत विधान उसके आवेगकी एकसूत्रताको खंडित नहीं कर सकता। कविके हृदयकी अन्तर्ज्वाला किसी बाह्य प्रेरणासे प्रभावित होकर उसके सारे अन्तर्बाह्यको एक साथ ही अभिव्यक्त कर देती है। उसमें स्वभावतः ही लय-छंदको अनुकूल गति प्राप्त हो जाती है। समझ-विचार कर, किसी अध्यवसायके साथ किसी गीतकी रचना नहीं होती। वह एक मनोवेगकी रचना है। कविके अंतस्‌में जो भावना घनीभूत हुई रहती है वह प्रेरणा संकेत पाते ही बाहर निकल पड़ती है—उसके सारे अंतस्‌को उद्‌भासित कर देती है।"[१]

डॉ० सुधांशुके विचारोंके सारांश ये हैं :—

१. यह आवेग-प्रधान भावनाका खंड है।

२. इसकी अभिव्यक्ति अखण्ड है।

३. अप्रस्तुत विधान शक्तिवर्द्धक है।

४. अन्तर्ज्वाला इसके मूलमें है।

५. प्रेरणा बाह्य होती है, जो अन्तर्बाह्यको एकाकार करती है।

६. लय-छन्दकी स्वाभाविकता।

७. गीत-रचना अध्यवसाय-साध्य नहीं।

डॉ० सुधांशुने गीत-निर्माणकी प्रक्रियाकी ओर इंगित किया है।

डॉ० रामखेलावन पाण्डेयने हिन्दी गीतिकाव्यके बहुमुखी प्रसारको अपेक्षाकृत नवीन मानते हुए विकास-क्रमकी स्थितिमें गीतिकाव्यकी परिभाषा यों दी है—"वैयक्तिक अनुभूतिकी संवेदनशील संगीतात्मक अभिव्यक्ति ही गीतिकाव्य है"[२] और "गीतकाव्य अतः

---

१. 'जीवन और काव्य', पृ० २४१-४२।

२. 'गीतिकाव्य', पृ० ३६।

कविके मनपर पड़नेवाले जीवनके एक पहलूके प्रभावकी सौन्दर्यपूर्ण कलात्मक अभिव्यक्ति है।"[1]

डॉ० पाण्डेयके मतके मूल विचार-विन्दु निम्नलिखित हैं :—

१. वैयक्तिकता,

२. संगीतात्मकता,

३. रागात्मिका अनुभूतिकी इकाई और समत्व,

४. कलात्मक अभिव्यक्ति।

डॉ० पाण्डेयके पूरे विचार-सन्दर्भको देखते हुए ऐसा लगता है कि वे विकास-क्रमकी स्थितिका ध्यान रखते हुए अपने मतको परिवर्तनशील भी मानते हैं।

डॉ० नगेन्द्रने आत्म-निवेदन और मनोरंजन गीतिकाव्यके दो प्रमुख तत्त्व माने हैं। उन्होंने दीपशिखाकी आलोचना करते हुए लिखा है—"हिन्दीमें—विश्वके लगभग सभी साहित्योंमें—गीत-परम्परा आदिकालसे ही चली आती है। या यों कहिए कि कविताका मूल रूप ही गीत है। गीतके इतिहासपर दृष्टि डालनेसे उसके दो प्रयोजन हैं—आत्मनिवेदन और मनोरंजन।"[2] मनोरंजन शब्द अत्यधिक व्यापक है, उसके अन्तर्गत 'संगीतात्मकता' भी समाहित है।

डॉ० शिवनन्दनप्रसादने 'साहित्यके रूप और तत्त्व' पुस्तकमें गीतिकाव्यके लक्षणोंका उल्लेख करते हुए लिखा है—"गीतिकाव्यमें घटना, चरित्र, दृश्य, परिस्थिति आदिकी अपेक्षा नहीं होती, उसमें केवल अभिव्यंजना और रस-परिपाकपर कविकी दृष्टि केन्द्रित हो जाती है गीतिकाव्यमें, इसीलिए जीवनका एक क्षण बोलता है। जीवनके घटनात्मक क्रमिक विकासका चित्रण उसमें नहीं होता। पर जीवनका वह एक क्षण अतिशय महत्त्वका होता है। उस क्षणमें कविकी समस्त वृत्तियाँ मानो किसी एक भावकी अनुभूतिमें केन्द्रित हो जाती हैं। और उस भावकी अत्यन्त तीव्र एवं मार्मिक अभिव्यक्तिमें कवि लीन हो जाता है।......अनुभूतिकी तीव्रताके कारण कविका अन्तर स्वतः संगीतके स्वरोंमें फूट पड़ता है।......भावनाकी यह अतिशय तीव्रता क्षणस्थायी ही होती है—देरतक कवि भावनाके चरम शिखरपर आरूढ़ नहीं रह सकता। अतएव गीतिकाव्य संक्षिप्त हुआ करता है।"[3]

डॉ० प्रसादने संक्षिप्त परिभाषा न लिखकर गीतिकाव्यकी विशेषताओंका उल्लेख किया है। उनके विचारका सारांश निम्नलिखित है—

१. भाव-व्यंजना एवं रस-परिपाकपर गीतिकारका ध्यान,

२. गीतिकाव्य एक क्षणकी अभिव्यक्ति,

३. भावोंकी अत्यधिक तीव्रता,

४. स्वतः स्फुटित संगीतात्मकता,

५. संक्षिप्तता।

---

१. 'गीतिकाव्य', पृ० १००।

२. 'विचार और अनुभूति', पृ० १२१।

३. पृ० ८५-८६।

डॉ० प्रसादने संगीतात्मकताकी स्वाभाविकताको माना है, ऊपरसे लदी हुई कृत्रिमता, सांगीतिकता अथवा राग-रागिनियोंपर उनकी आस्था नहीं है।

डॉ० भोलानाथने गीतिकाव्यकी परिभाषा लिखते हुए उसके सभी प्रधान तत्त्वोंको एकत्र कर दिया है—"मुक्तक रचनाओंमें स्वर-लय, भाव-लय एवं वातावरण-लय, कोमल-मधुर एवं चित्रात्मक भाषा, सौन्दर्य-चेतना, मानवीय-करण, चिन्तनात्मकता, लोक-जीवनकी वैयक्तिक अनुभूतियाँ, दृष्टिकोणकी नवीनता एवं सूक्ष्मकी अनुभूति, भावुकता—इन सबने मिलकर गीतिकाव्यका रूप धारण कर लिया है।"[१]

डॉ० उमाकान्तने मैथिलीशरण गुप्तकी आलोचनाके प्रसंगमें गीतिकाव्यका स्वरूप इन शब्दोंमें स्पष्ट किया है—"काव्यकी वह विधा जिसमें विषयकी अपेक्षा विषयीकी प्रमुखता होती है प्रगीत अथवा गीतिकाव्यके नामसे अभिहित की जाती है।······ व्यक्तिपरक कविताका ही नामान्तर प्रगीत है।······उसमें वैयक्तिकताका—व्यक्तिके, विषयीके, अपने सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, प्रेम-कलह, क्षोभ-क्रोध, आदिकी परिव्याप्ति होती है।·····आत्माभिव्यंजन अथवा निजी रागात्मकता प्रगीतका अनिवार्य गुण है और यह रागात्मकता अत्यन्त तीव्र होनी चाहिए। इसीलिए संसारके अधिकांश प्रगीत आकारमें संक्षिप्त हैं।"[२]

उपर्युक्त विवेचनके सार-तत्त्व निम्नलिखित हैं:—

१. विषयीकी प्रमुखता,
२. व्यक्तिपरकता—आत्माभिव्यंजन,
३. रागात्मक तीव्रता—संक्षिप्तता।

डॉ० राजेश्वर चतुर्वेदीके अनुसार "गीतिकाव्य क्षणानुभव विशेषकी तीव्र परिसम्वेदनात्मक पूर्णाभिव्यक्ति है। इसमें अनुभूति, मनकी प्रथम संवेगात्मक प्रक्रिया है, कल्पना उस संवेगकी सृजनात्मक व्यापार-शक्ति तथा बुद्धि या विचार-सृजनकी व्यवस्थापिका वृत्ति है। इस प्रकार गीतिकाव्य, प्रतिभाशक्तिकी सर्वोत्तम स्थितियोंमें व्यक्तित्वके मानसिक व्यापारोंका अभिव्यक्तिगत फल है। वह विशेष अनुभवोंकी पूर्ण इकाईके रूपमें कविके व्यक्तित्वका संश्लिष्टात्मक घटनाचित्र है।"[३] श्रीचतुर्वेदीने भारी भरकम शब्दोंमें प्रायः उन्हीं बातोंका समर्थन किया है, जिनकी ओर डॉ० भोलानाथने इंगित किया है।

डॉ० हरवंशलाल शर्माने महादेवी वर्माकी परिभाषाको ही कुछ बदले हुए शब्दोंके साथ दुहराया है—"हृदयकी रागात्मिका वृत्तिके योगसे जब सुख और दुःखकी अनुभूति तीव्रतर होकर अनेक भावोंकी उमड़ती हुई धारामें समस्त परुषता और कलुषताका प्रक्षालन करती हुई अकस्मात् कल-कल ध्वनिसे कविके कंठसे फूट पड़ती है तो उसे गीत-

---

१. 'हिन्दी-साहित्य' (१९२६-४७ ई०), पृ० ४२८।

२. 'मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृतिके व्याख्याता', पृ० १९७-९८।

३. 'छायावादी काव्य : स्वरूप और व्याख्या', पृ० ९४।

की संज्ञा प्राप्त हो जाती है ।"[1] इन्होंने 'कल-कल ध्वनि'से संगीतात्मकता और 'फूट पड़ने'से स्वाभाविकताके तत्त्वकी ओर संकेत किया है ।

संगीत तत्त्वपर विशेष बल देते हुए प्रो० नवलकिशोर गौड़ने एक काव्यात्मक परिभाषा दी है—"गीतिकाव्य साहित्यजगत्‌का अर्धनारीश्वर है । जिस तरह शैव-दर्शनके अध्यात्म चिन्तनके क्षेत्रमें शिव और शक्तिका समाहार अर्धनारीश्वरके रूपमें मूर्त्त हो गया है, उसी तरह साहित्यके क्षेत्रमें संगीत और काव्यके अविछिन्न सम्मिलनके फलस्वरूप, स्वर और वाणीका समाहार गीतिकाव्यके रूपमें दिखाई देता है ।"[2] एस० पी० खत्रीने गीतिकाव्यमें अन्तःकरणकी अभिव्यक्तिपर विशेष जोर दिया है—"···लिरिक अथवा गीतिकाव्यसे प्रयोजन उन कविताओंका है, जिनमें कविने अन्तर्वादी शैली अपनाकर अपने अन्तरतमकी भावनाओंका परिचय दिया है ।"[3]

गीतिकाव्यके सम्बन्धमें पाश्चात्य विद्वानोंके विचारोंको भी देखकर ही निष्कर्ष निकालना उचित होगा । संस्कृतके आचार्योंने काव्यके दो भेद माने—श्रव्य और दृश्य तथा निरपेक्ष रचना मुक्तकको श्रव्यका एक भेद माना, किन्तु ग्रीक साहित्य-शास्त्रियोंने श्रव्यके दो और भी स्थूल भेद किये—गीतिकाव्य तथा सामूहिक काव्य । गीतिकाव्य उत्सव विशेषके अवसरपर 'लायर'के सहारे गायी जानेवाली रचना थी, जिसमें वैयक्तिक विशेषताके स्फुरणकी संभावना थी, किन्तु सामूहिक काव्यका किसी सामाजिक भावनाकी अभिव्यक्तिके लिए जनमण्डलीके द्वारा गान होता था ।

डॉ० चार्ल्स मिल्सने अपनी परिभाषामें काव्यकी सभी विधाओंपर गीतिकाव्यको हावी कर दिया है और उसे सर्वश्रेष्ठ रूपमें—स्वीकार किया है ।[4] शिप्लेने बड़े ही हल्के ढंगसे उसे 'लायर'के साथ संयुक्त होना ही पर्याप्त माना है । हडसनने इसपर विशेष बल दिया है ।[5] ऐसा ही मत पाल्ग्रेवका भी है ।[6] प्रो० एस० टी० लॉडने गीतिकाव्यको हिन्दीके रहस्यवादी कवियोंकी भाँति आध्यात्मिकतासे सम्बद्ध माना है ।[7] वस्तुतः यह

---

१. 'सूर और उनका साहित्य', पृ० २८५-८६ ।

२. छायावादका गीति-सौन्दर्य, 'छायावाद और प्रगतिवाद' पुस्तकमें संगृहीत निबन्ध, पृ० ४० ।

३. 'काव्यकी परख', पृ० ९ ।

4. *Methods and Materials of Literary Criticism*, p. 7.

5. (i) A poem to be sung of lyre.

—*Dictionary of World Liteary Terms.*

(ii) Lyric poetry in the original meaning of the term was poetry composed to be sung to the accompaniment of lyre or harp.

—*The Study of Literature*, W.H. Hudson, p. 248.

6. Preface, *Golden Treasury of Song and Lyrics.*

7. The lyric, a movement of fancy by which the spirit strives to life itself from limited to the universal.

—*Outlines of Aesthetics*, Translated by S. T. Ladd, p. 99.

परिभाषा अव्याप्तिदोषयुक्त है। सभी गीतोंमें रहस्यात्मकता नहीं होती। हर्बर्ट रीडने कविताके श्रेष्ठ गुणोंमें ही संगीतात्मकताका समावेश किया है और व्यापक अर्थमें भाषा, भाव-विचार आदिसे सम्बद्ध माना है।[१] एवर क्रौम्बीने उस संगीतात्मकताको महत्त्वपूर्ण माना है, जो अर्थको चमत्कृत करे।[२] कुछने वैयक्तिकतापर जोर दिया है।[३]

परिभाषाओंका सामान्य निष्कर्ष

गीतिकाव्यके सम्बन्धमें अबतक कितने विद्वानोंकी परिभाषाओंपर विचार किया गया, उनमें बहुत-कुछ साम्य है। कहीं-कहीं एक मूलतत्त्वको ही विभिन्न शब्दोंमें कहा गया है। सामान्य रूपसे विचारनेपर गीतिकाव्यकी परिभाषाओंसे छनकर निम्नलिखित तथ्य मुख्यतः स्पष्ट होते हैं :—

१. यह विषयी-प्रधान होता है। इसमें वैयक्तिक भावनाओंकी प्रधानता होती है। आत्म-निवेदन ही प्रमुख होता है।

२. संगीतात्मकता अनिवार्य है। यह शब्द, अर्थ और विचार तीनोंकी हो सकती है।

३. भावोंकी तीव्रता और एकाग्रता आवश्यक है।

४. भावोंकी तीव्रता और एकाग्रताके लिए आकारकी संक्षिप्तता आवश्यक है।

५. एक ही केन्द्रीय भावको विभिन्न चित्रोंसे पुष्ट किया जाता है।

६. कल्पना और चिन्तनका उपयोग बिना किसी भूमिकाके प्रत्यक्ष रूपसे किया जाता है। तीर सीधे लगता है—चक्कर काटकर नहीं।

७. रागात्मक तत्त्वोंकी अन्विति होती है।

८. भाव-क्षेत्रमें व्यक्तिगत मौलिक उद्भावनाओंके उद्घाटनका विशेष अवसर मिलता है।

९. हृदयके भावोंके चित्रणके लिए जीवन और जगत्के सौन्दर्य और उसकी अभिव्यक्ति के अनेक रूप होते हैं।

---

1. Words, their sound and even their very appearance, are, ofcourse; every thing to the poet : the sense of words is the sense of poetry, but words have associations carrying the mind beyond sound to visual image and abstract idea.

   —*Form in Modern Poetry*, p. 45.

2. The poet relies, indeed, on his music for the full expression of what he has to say; but the importance of the music depends on the meaning of the words:

   —*Poetry : Its Music and Meaning*, p. 49.

3. ......When we speak or 'Lyric' we mean a short poem conveying some thought or sentiment of the poet's own; and such poem is usually divided into stanzas or 'strophes'.

   —*Oxford Junior Encyclopoedia*, Vol. XII, p. 248.

१०. प्रत्येक गीत निरपेक्ष होता है, उसमें पूर्वापर सम्बन्ध नहीं होता।

११. चित्रात्मकता टेककी केन्द्रीय भावनाके स्पष्टीकरणके लिए आवश्यक होती है।

कुछ तत्त्वोंका क्रमबद्ध उल्लेख ए० आर० एण्ट्वीसटेलने भी किया है।[1]

उपर्युक्त तथ्य ही प्रधानतः गीतिकाव्यके निर्माणमें सहायक होते हैं। अतएव, एक-एककर उन सभी प्रेरक तत्त्वोंकी सूक्ष्मतापर विचार करना आवश्यक है।

गीतिकाव्यके प्रेरक तत्त्व

व्यक्तिवादका आग्रह

गीतिकाव्य वैयक्तिक सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि भावनाओंको चित्रित करता है। आनन्द-प्राप्ति मानव-मनका नैसर्गिक लक्ष्य होता है। साहित्य और कलाके माध्यमसे भी वह उसीकी प्राप्तिका प्रयास करता है। कवि दो प्रकारकी अनुभूतियोंका चित्रण करता है—वैयक्तिक और सामाजिक। सामाजिक भावनाओंका अनुभव भी वह अपने ही स्तरपर करता है, लेकिन उसमें सामाजिक घटनाओं, चरित्रों आदिके प्रति कविकी सहानुभूतिगत एकात्मता होती है। वैयक्तिक अनुभूतिके अन्तर्गत निजी जीवनकी क्रिया-प्रतिक्रिया, घात-प्रतिघातका चित्रण होता है। गीतिकाव्यमें कवि वैयक्तिक भावनाओंका चित्रण करता है। बच्चनके 'निशा-निमन्त्रण'के गीत अपनी पत्नी श्यामा देवीके देहावसानके बादके शोकसे सम्बन्ध रखते हैं और 'सतरंगिनी'के गीत दूसरी पत्नीके शुभागमनकी उत्फुल्लतासे।

गीतिकाव्यमें कवि अपनेको पृष्ठभूमिमें रखकर गीतकी रचना करता है। वह रचना भी होता है, रचनाकार भी! व्यक्तित्वके उस दूसरे रूपकी सुरक्षा करना वास्तविक गीतिकला है। नैतिक आग्रह और सामाजिक बन्धनोंके कारण कविके जीवनकी घटनाएँ छनकर आती हैं। इतिवृत्तात्मकता इसीलिए गीतिकाव्यमें नहीं होती। इतिवृत्तकी प्रतिक्रिया और प्रभावका आकलन गीतिकाव्यमें होता है, वर्णन नहीं। प्रश्न उठता है कि क्या गीतिकार अपने जीवनकी घटनाकी प्रतिक्रियाका चित्रण तत्क्षण कर देता है। तत्क्षणमें ताजगी अधिक होनेकी सम्भवना है। पर हर जगह वाल्मीकिके क्रौंच-वधवाली

---

1. (i) It is musical, metrically or verbally or both.
(ii) It is objective in character.
(iii) It is expression of a single mood emotion and so achieve unity.
(iv) It is spontaneous, unpremeditated or rather appears so.
(v) Compared with other type of poetry, it is short.
(vi) It enjoys an endless variety of forms.
(vii) It is embelished with consummate (through concealed art)
(viii) There is often a vistful or hunting loveliness which eludes all tastes.

—*The Study of Poetry*, pp. 45-46.

तात्कालिक प्रतिक्रियाकी स्थिति नहीं उत्पन्न होती। और वह भी श्लोक था, इसलिए उच्च-रित हो गया। पूरे गीतका निर्माण एकाएक सम्भव नहीं। गीतिकाव्यमें वैयक्तिक अनुभूति कुछ सँभलकर तीव्र होती है। जैसे ग्रीष्मऋतुमें जल वाष्प बनकर शून्यमें रहता है और अवसर पाकर, घनीभूत होकर पावसमें बरस जाता है, उसी प्रकार अचेतनमें पड़ी भावनाएँ भावावेशकी अवस्थामें गीत बनकर फूटती हैं। तीव्र रूप होनेके बाद कल्पना-का सहारा लेना पड़ता है। चित्रों द्वारा जो भाव प्रकट होते हैं, वे वैयक्तिक भावनाओं-से ही उद्भासित रहते हैं। इन चित्रोंमें अभिव्यक्तिके विविध रूप होते हैं, जिनकी सफलताका आधार यह है कि वे कविके वैयक्तिक जीवनसे कितना सम्बद्ध हैं।

गीतिकाव्यमें वैयक्तिकताके विशेष आग्रहका अभिप्राय यह नहीं है कि कविकी भाव-नाएँ इस काव्य-विधामें इतनी वैयक्तिक होती हैं कि पाठक या श्रोता उनसे अपनापन नहीं जोड़ पाता। यहाँ यह स्मरणीय है कि भावनाओंके तीव्र प्रवाहमें वैयक्तिकता विक्षुब्ध होकर रागात्मकताके कारण साधारणीकृत हो जाती है। पत्नी बच्चनकी स्वर्गीया हुई, किन्तु उस वैयक्तिक घटनासे प्रेरित निम्न पंक्तियोंके साथ सभीके मनकी एक-तानता है :—

आज मुझसे दूर दुनिया
है चिताकी राख करमें
माँगती सिन्दूर दुनिया।

कविकी प्रतिभा वैयक्तिक जीवनकी घटनाको निर्वैयक्तिक स्थिति दे देती है। व्यक्तिगत भाव सामान्य सत्यके रूपमें परिणत हो जाता है। उपर्युक्त गीतमें कथनका शोक पाठकों-का हो गया है।

वैयक्तिकता कभी-कभी बाह्यमुखी भी हो जाती है। जब कवि गीतिकाव्यका सृजन करते हुए किसी पात्र या दूसरेके साथ घटी घटनाओंसे एकाकार हो जाता है, तब ऐसी स्थिति आती है। जैसे 'साकेत'के नवम सर्गमें उर्मिलाकी भावनाओंके साथ तादात्म्य स्थापित कर मैथिलीशरण गुप्तने कई गीत लिखे हैं। वहाँ आरोपित वैयक्तिकता है।

यहाँ वैयक्तिकताका तत्त्व गीतिकाव्यको प्रबन्ध काव्यसे विलग करता है। प्रबन्ध काव्यमें घटनाओं और इतिवृत्तोंका वर्णन करना पड़ता है, वैयक्तिकता वहाँ अनेक प्रकारके पात्रोंके समूहमें हो जाती है। वैयक्तिकता कहीं प्रत्यक्ष और कहीं अप्रत्यक्ष रूपसे चित्रित होती है। वैयक्तिकताके प्रत्यक्ष रूपका उदाहरण ऊपर निशा-निमन्त्रणके गीतसे दिया जा चुका है। अप्रत्यक्षका उदाहरण सतरंगिनीके इन गीतोंमें है, जिसमें बच्चनको दूसरे विवाहका औचित्य प्रकारान्तरसे सिद्ध किया है—

१. है अँधेरी रात पर दीया जलाना कब मना है,
२. जो बीत गयी सो बात गयी,

गीतिकाव्यमें इसीलिए 'विजातीय द्रव्यके लिए स्थान नहीं होता है।'[१] इतिवृत्त आता भी

१. 'आधुनिक साहित्य', आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० २४।

है, तो सहज सांकेतिक, गौण। महादेवीने ठीक ही लिखा है—"गीतोंमें उतना ही यथार्थ दिया जाता है जितना भावको भारी न बना दे।"[1] कामायनीमें नियोजित गीतोंमें इसके उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं। सभी गीत अपने भीतर घटनाकी उतनीही यथार्थता लिए हुए हैं, जितनी अपेक्षा महादेवीको है।

वैयक्तिकताके कारण उत्तम पुरुष शैलीका प्राचुर्य होता है। अधिकांश आधुनिक हिन्दी गीतोंमें 'मैं'की छाप स्पष्ट है। प्रसाद, निराला, पंत, रामकुमार, महादेवी, बच्चन—सभी प्रमुख गीतिकारोंमें यही पद्धति है। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं—

(क) आह ! वेदना मिली विदाई
मैंने भ्रमवश जीवन-संचित
मधुकरियोंकी भीख लुटाई।

(ख) रो-रोकर सिसक-सिसककर
कहता मैं करुण कहानी।

—प्रसाद

(ग) कुछ न हुआ, न हो
मुझे विश्वका सुख, श्री यदि
केवल पास तुम रहो !

—निराला

(घ) मैं नीर भरी दुःखकी बदली।
(ङ) मैं बनी मधुमास आली।
(च) अलि मैं कण-कणको जान चली !

—महादेवी

(छ) देखूँ सबके उरकी डाली !
(ज) कबसे बिलोकती तुमको
ऊषा आ वातायनसे ?
(झ) तुम मेरे मनके मानव !

—पन्त

(ञ) क्या भूलूँ क्या याद करूँ मैं

—बच्चन

गीतिकाव्यमें कविकी वैयक्तिक अनुभूति, उसकी अन्तर्वासना स्पष्टतः झलकती है।[2] ये ही अनुभूतियाँ गीतिकाव्यका उपजीव्य है।

---

१. 'महादेवीका विवेचनात्मक गद्य', पृ० १६८।

२. जिस प्रकार नदीके निर्मल जलके भीतर तलसवाले पत्थर साफ झलकते रहते हैं, उसी प्रकार कविकी अन्तर्वासना गीतिकाव्यमें झलकती रहती है।

—'गीतिकाव्य', डॉ० रामखेलावन पाण्डेय, पृ० ८१।

सांगीतिक आधार

भावोंके सहज स्फुरण एवं उनकी सजीवताके लिए संगीत बहुत उपयोगी है। शब्द अर्थको स्पष्ट करते हैं और नाद श्रवणेन्द्रियके द्वारा भाव-चित्रको स्पष्ट करते हैं। संगीतके बिना गीतिकाव्यकी अभिव्यक्ति पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकती। कविका हृदय झंकृत होकर ही गीतका निर्माण करता है। यह आवश्यक नहीं कि कवि गायक और वादक हो, लेकिन अन्तर्संगीतकी प्रबलताके कारण उसके शब्दोंके चुनाव और व्यवस्थामें अपने आप नाद-सौंदर्य आ जाता है। शब्द-संगीत गायककी स्वर-लहरीसे कम रसपूर्ण नहीं होता।[1]

दोनों प्रकारके गीत हिन्दीमें मिलते हैं। एक जिनमें शब्दों-विचारों-भावोंके संगीत होते हैं, दूसरे जिनमें संगीतके शास्त्रीय पदका आधार होता है। एकमें कवि स्वाभाविक लय-तानके आधारपर संगीतकी योजना करता है, दूसरेमें राग-रागिनियोंका ध्यान रखना पड़ता है। निरालाकी गीतिका आधुनिक हिन्दी कवितामें दूसरे पदकी सर्वोत्तम रचना है।

स्वरको पुरुष कहा गया है और वाणीको प्रकृति। स्वरका चरमविकास संगीत है और वाणीका काव्य। रागात्मक और बोधवृत्तियोंको जाग्रत करनेका सर्वश्रेष्ठ साधन काव्य और मात्र भावोद्रेकके लिए संगीत है। स्वर-वाणीके संयोगका जितना अधिक प्रयास आधुनिक कालमें हुआ, उतना भक्तिकालको छोड़कर और कभी नहीं हुआ। छन्दोंकी विविधता और लयात्मकता इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। सांगीतिक चेतनाका विकास छायावादके उत्तरवर्ती गीतोंमें अधिक है। आधुनिक गीतिकाव्यमें भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही प्रकारकी सांगीतिक चेतनाका आधार लिया गया; अर्थात् उसमें लय और माधुर्य ही नहीं तालैक्य (हार्मोनी) का थोड़ा-बहुत प्रभाव भी मिलता है। लय-प्रसार और राग-विस्तारके अन्तर्गत भिन्न-भिन्न भावोंकी प्रतिष्ठा दी गयी।

संगीत और काव्यका अविच्छिन्न सम्बन्ध है। सांगीतिक आधारके बिना कविताकी कल्पना भी कुछ आलोचकोंने नहीं की है।[2] ऐसी स्थितिमें गीतिकाव्यमें संगीतका स्थान

1, There is other music in poetry than that which is vocal or instrumental. Poets, if not at all musicians, will acquies when I say that the music which is produced by instrumentality of words is different in kind is no less a degree true music than the music which is sung or played.

—*Six Famons Living Poets*, C. Herhon, p. 220.

2. (i) For my own part, I find considerable meaning in the old vulgar distinction of poetry being metrical, having music in it, being a song......of musical thought is one spoken by a mind that has penetrated into the inmost heart of the thing; detected the inmost mystery of it.

—*An Anthology of Critical Statement*, T. Carlyle, p. 61.

(ii) Music, when combined with a pleasurable idea, is poetry; music, without the idea, is simply music; the idea, without the music, is prose, from its very definiteness.

—*An Anthology of Critical Statement*, Edger Allen Poe, p. 69.

तो और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। काव्य और संगीतके पारस्परिक सम्बन्धका एक कारण यह भी है कि दोनों लय हैं। लय, स्वर और नादके द्वारा संगीत जिन भावनाओंको निराकार रूप देता है, काव्य उसे ही शब्द और अर्थके द्वारा साकार करता है।

अनुकूल राग-रागिनियोंमें गीतके बँध जानेके बाद श्रोताओंपर उसका प्रभाव चमत्कारपूर्ण हो जाता है, जैसे मेघ-गीतोंको मल्हार रागके अन्तर्गत बाँधना। गायकका मात्र आलाप और कविकी संगीत-विहीन रचना सम्यक् प्रभाव नहीं डाल पाती है। गीतिकाव्य यदि दुहरे व्यक्तित्वको निभा सके तो उसकी उत्तमता सिद्ध होती है—वह एक ओर भाव और कल्पनाके सहारे पाठकों और श्रोताओंकी हृदय-वीणा झंकृत कर सके और दूसरी ओर वादकके हाथमें रखे वाद्ययन्त्रको भी झंकृत करनेकी क्षमता उसमें हो। मूर्त्त आधारके कारण चाहे संगीत और काव्यमें जितना अन्तर हो, पर इतना सत्य है कि शब्दोंके संगीतको गीतिकाव्य कहते हैं।

संगीत-काव्यके आधारके बिना लोक-हृदयके लिए अधिक संवेद्य नहीं होता, क्योंकि संगीतका आधार 'नाद' है। जो शब्द-रहित है, उसे शब्द देना काव्यका काम है। काव्यका क्षेत्र भी संगीतकी अपेक्षा अधिक है। यह ठीक है कि काव्यका प्रभाव मानवतक है और संगीतका पशु-पक्षियोंतक। लेकिन यह भी तो सत्य है कि काव्यके द्वारा युगकी प्रवृत्तियाँ बदली जाती हैं, पर संगीतका उतना गहरा प्रभाव राष्ट्रीय या जातीय जीवनपर नहीं पड़ता। संगीतका प्रभाव काव्यकी अपेक्षा अस्थायी होता है।

कविताका मुख्य आधार छन्द है और छन्दमें संगीतके मुख्य अवयव लय, मात्रा और तालका समन्वय होता है। विशेष प्रकारकी लयात्मकताके कारण ही विशेष प्रकार-के छन्द विशेष प्रकारके भावोंके अनुकूल होते हैं, जैसे कवित्त और पंचचामर वीररसके और मन्दाक्रान्ता, वियोगिनी और शिखरिणी करुण रसके। गीतोंमें तुकोंका विधान आवश्यक है। अनुप्रास और आन्तरिक तुक-साम्यके द्वारा उन्हें और गेय बनाया जाता है।

गीतिकाव्य संगीतका आधार लेकर भी भाव-प्रधान रचना है। संगीत उसका साधन है, साध्य कदापि नहीं। शब्दार्थ ही उसकी साधना है। संगीतके शास्त्रीय विधानके अभावमें भी वर्ण-मैत्री, समुचित शब्द-संगुंफन और रागात्मक उन्मेषके कारण गीतिकाव्य श्रुति-मधुर रचना है। संगीतमें स्वर शब्दके अर्थको गौण बना देता है। गीतिकाव्यमें संगीतकी अन्तर्योजना होती है। गीतिकाव्यका संगीत छन्दोंमें बँधा रहता है। वह बाह्य-बोझ नहीं बनता, उसे सहज प्रवाह देता है।

गीतिकाव्यमें शब्दोंके नाद-सौंदर्यके कारण संगीतात्मकता बहुत अधिक बढ़ जाती है :—

(क) ओ निर्झर झर-झर नाद सुनाकर झर तू
पथके रोड़ोंसे उलझ-सुलझ बढ़ अड़ तू।

ओ उत्तरीय, उड़, मोद-प्रमोद, घुमड़ तू,
हमपर गिरि-गद्गद भाव, सदैव उमड़ तू।
('साकेत', पृ० २२६)

(ख) काट अन्ध उरके बन्धन-स्तर
बहा जननि ज्योतिर्मय निर्झर
अन्धकार तमहर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे।
('गीतिका', पृष्ठ ३)

शब्द-विहीन होकर संगीत भले ही भावाभिव्यक्तिमें सफल हो,[१] पर अगेय होकर गीति-काव्य अपना पूर्ण रूप प्रकट नहीं कर सकता। तात्पर्य यह कि काव्यमात्रके लिए सामान्य रूपसे संगीतात्मकता आवश्यक है, किन्तु गीतिकाव्यके लिए उसकी अनिवार्यता है, क्योंकि उसमें वैयक्तिक भाव रागात्मक तीव्रताके कारण संक्षिप्त रूप धारण करके प्रकट होते हैं और मनकी उमड़न-घुमड़न लय-तालपर सँवरकर प्रकट होती है। प्रगीतमें सांगीतिकता अपेक्षाकृत कम होती है, पर गीतिकाव्यकी अन्य काव्यविधाओंको अलग करनेवाले तत्त्वोंमें यह एक प्रधान तत्त्व है।

चित्रात्मकता

कविके सामने यह प्रश्न रहता है कि वह कैसे अपने अनुभूत भावोंको इस तरह शब्दोंकी डोरमें बाँधे कि वह स्पष्टतम रूपसे पाठकों या श्रोताओंके मनमें प्रवेश कर जाय; कि कैसे वह उन दृश्योंका प्रत्यक्षीकरण उनके सामने करे, जिन्हें उसने कभी देखा था। इस कार्यके लिए उसे चित्रोंका सहारा लेना पड़ता है। ये चित्र क्या होते हैं, भावोंके सहायक एक दृश्य-खण्ड, जो साधन होते हैं, साध्य नहीं। ये चित्र पारदर्शी होते हैं, अर्थात् इनके आर-पार देखकर उससे पार झलकनेवाले भावोंको देखा जा सकता है।

चित्रात्मकताका सबसे बड़ा आधार प्रकृति है। कवि अपने भाव-चित्रणके लिए उसका सहारा लेता है। प्रकृति ईश्वरकी कविता है। निर्झरके झर-झर, पत्रोंके मर्मर, सरिताकी कल-कलमें उसका संगीत है। एक कविका दूसरे कविसे प्रभावित होना स्वाभाविक है। कविकी लेखनी प्राकृतिक माध्यमको स्वीकार कर तूलिकाके रूपमें परिणत हो जाती है। वर्ण गलकर रेखा बन जाते हैं और ऐसी ही रेखाएँ शब्द-चित्र उपस्थित कर देती हैं।

गीतिकाव्यके चित्रोंमें प्रकृति नेत्रोंसे अधिक हृदयकी, दृष्टिसे अधिक अनुभूतिकी

१. शब्द-विहीन होकर भी संगीत भावाभिव्यक्तिमें सफल होता है, गायकोंमें प्रचलित तराना-शैली इसका स्पष्ट प्रमाण है। अर्थशून्य 'तोम्, तननन् देरे ना' जैसे निरर्थक शब्दोंमें भी संगीत द्वारा श्रोताओंमें भावोद्दीपन हो सकता है, किन्तु संगीतका यह अमूर्त रूप है।
—'काव्य और संगीतका पारस्परिक सम्बन्ध', डॉ० उमा मिश्रा, पृ० ५१-५२।

पात्री बनी रहती है। प्रकृति एक गीतकारकी आँखोंसे जितनी भाव-प्रवण, सुन्दर और जीवन्त है, उतनी सामान्य रूपसे नहीं। प्रकृतिका रागात्मक सम्बन्ध तो कवि हृदयके साथ ही अधिक होता है।

प्रकृति-चित्र तो बनाती है, पर गीतिकाव्यमें उसका शुद्ध रूप ग्रहण नहीं किया जाता। प्रकृति-चित्रणके लिए गीतिकाव्यमें प्रकृति-चित्रण नहीं होता। उसकी इति-वृत्तात्मकताका सर्वथा अभाव रहता है। कवि मात्र अपनी भावनाओंके पोषण और स्पष्टीकरणके लिए उसका उपयोग करता है। चित्रात्मकता द्वारा अभिव्यक्तिको तीव्रता मिलती है, उसकी वेधकता बढ़ जाती है।

गीतिकाव्यमें चित्र हल्के भी होते हैं, गहरे भी। हल्के चित्रोंमें रंगीनी कम होती है और कवि मात्र संकेतसे काम ले लेता है। गहरे रंगोंमें कविकी भावुकता प्रकृतिके साथ इतनी एकात्म हो जाती है कि उसकी मनोवृत्तियोंके साथ प्राकृतिक दृश्योंका बेमेल होना उसे पलभर भी नहीं भाता—

मेरे दुखमें प्रकृति न देती क्षणभर मेरा साथ।

प्रकृति-चित्रणकी विधाओंमें गीतिकाव्यके अन्तर्गत आलम्बनको छोड़ पृष्ठभूमि, मानवीय भावनाओंके आरोप, उद्दीपन, प्रतीकात्मक, मानवीकरण आदि रूपोंको स्वीकार किया जाता है। शुद्ध प्राकृतिक चित्रोंकी भी छटा मिलती है, किन्तु कम। प्रगीतोंमें ऐसे चित्रोंकी अपेक्षाकृत अधिकता है।

डॉ० रामकुमार वर्माके निम्नगीतमें प्रकृति एक साथ पृष्ठभूमि, मानवीय भावनाओं-के आरोप, प्रतीकात्मक, मानवीकरण आदि रूपोंमें प्रयुक्त हुई है—

फूलोंकी अधखुली आँख।
मार्ग देख मेरे प्रियतमका,
देख-देख नीला आकाश।
जबतक वे न यहाँ आवें,
खुलनेका मत कर व्यर्थ प्रयास॥[१]

पूर्ण आनन्दके लिए यह पूरा गीत पठनीय है।

सौन्दर्य और उसकी अभिव्यक्तियोंके रूप

प्रकृतिकी भाँति मानवकी शोभा भी कविको प्रभावित करती है। प्रकृतिका बाह्य-स्वरूप प्रभावित करता है, मानवका बाह्य और आन्तरिक दोनों। जब कविकी भावुकता जड़ पर्वत, शुष्क काष्ठ, नीरस मरुभूमि, अदृश्य पवन और ऐसी ही सहस्र वस्तुओंमें सौन्दर्य देख सकता है, तब भला एक मानव दूसरे मानवको कैसे प्यार नहीं कर सकता।

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें सौंदर्य और उसकी अभिव्यक्तियोंके विविध रूप मिलते हैं। छायावादमें आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका विशेष विकास हुआ और

---

१. 'अंजलि', पृ० १।

द्विवेदी-युगमें आदर्शवादकी कठोर कारामें वन्दिनी कविताके लिए सौन्दर्यके दर्शनका अवकाश ही कहाँ था। छायावादमें इस अस्वाभाविक और नीरस प्रवृत्तिके प्रतिक्रियाका उदय हुआ। द्विवेदी-युगमें नैतिकताके स्थूल सिद्धान्तोंने पारदर्शी सौन्दर्यपर पर्दा डाल दिया था।

रीतिकालके स्थूल सौन्दर्यके स्थानपर आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें एक सूक्ष्म किंतु सशक्त सौन्दर्य-चेतनाका विकास हुआ। प्रगीतों और कविताओंमें स्थूल ऐन्द्रीय रूप-राशिके दर्शन भी होते हैं, किन्तु गीतिकाव्यकी भाव-प्रवण, सांकेतिक, चित्रमय शैलीमें इसका विशेष अवकाश नहीं।

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यकी यह विशेषता है कि उसके शारीरिक सौन्दर्य-चित्रण-के अन्तरालसे भाव-सौन्दर्य झाँकता है। सूक्ष्म विशेषणोंसे वह भाव-सौन्दर्य और भी निखर उठता है। उदाहरण-स्वरूप प्रसादके 'चन्द्रगुप्त'का यह गीत देखा जा सकता है—

तुम कनक-किरणके अन्तरालसे लुक-छिपकर चलते हो क्यों?
नत मस्तक गर्व वहन करते
यौवनके घन रसकण ढरते
हे लाज भरे सौन्दर्य! बता दो मौन बने रहते हो क्यों?[१]

× × ×

तुम जरा बोली, सुधामें ज्वार आयी,
तुम हँसी, नन्दन-विपिनमें लाज छायी,
तुम मिली जबसे, कहीं ऊपर गगनके
स्वर्ग-सुखका उठ गया विश्वास मेरा।
जब तलक तुम पास यौवन दास मेरा।[२]

महादेवीके प्रियतमका रूप कितना दिव्य, कितना रहस्यमय, कितना सूक्ष्म है-

प्राणोंके अन्तिम पाहुन!
चाँदनी-धुला अंजन-सा, विद्युत्-मुस्कान बिछाता,
सुरभित समीर पंखोंसे उड़ जो नभमें घिर आता,
वर वारिद तुम आना बन।[३]

× × ×

रूपसि, तेरा घन केश-पाश।
श्यामल-श्यामल कोमल-कोमल,
लहराता सुरभित केश-पाश।
नभ - गंगाकी रजत धारमें
धो आयी क्या इन्हें रात?

१. 'चन्द्रगुप्त', पृ० २।
२. 'गीत अधूरे हैं', डॉ० किशोर, पृ० १०
३. 'आधुनिक कवि', पृ० ४४।

कम्पित हैं तेरे सजल अंग
सिहरा-सा तन है सद्य-स्नात।
भींगी अलकोंके छोरोंसे
चूती बूँदें कर विविध आस।[१]

× × ×

गीतिकाव्यमें प्रकृति और मानवके एकात्म रूपका अत्यन्त हृदयग्राही चित्रण मिलता है। इनमें प्रकृति और मानवके पारस्परिक आरोपित गुणोंका साम्य कल्पनाकी कमनीयताका आदर्श उदाहरण बनता है—

रूपकके रथ रूप तुम्हारा,
शारद विभावरी, नभ, तारा,
खिली चमेली देह-गंध मृदु,
अंधकार शुचि केश कुटिल ऋजु
सहन शीत-सित यौवन अविचल,
मानवके मनकी चिर कारा।[२]
नख सिख लिखे-लिखे।
तन रतनार दिखे
नवल सरोज उरोज, नाल कर,
वीणाके वादित वाहित स्वर;
दशन पंक्ति कुन्दावकलित, हर
हसित विमोह सिखे।[३]

गीतिकाव्यमें जहाँ स्पर्श, चुम्बन, आलिंगन आदि स्थूल श्रृंगारके बोधक शब्द आते भी हैं, वे वर्णन-चातुरीके कारण, सौन्दर्यके भावरूपके कारण मर्यादित और सूक्ष्म हो जाते हैं, उनमें कामुकता नहीं रहती। दृष्टान्त रूपसे एक-दो उदाहरण देखे जा सकते हैं—

रेशम रंग भरी सुख निंदिया आयी।
गालों पै सो गये ठंढे-से चुम्बन
कोरोंमें सो रहा आँखका आँजन
मुखपर सोई ललाई।

गिरिजाकुमार माथुरकी उपर्युक्त पंक्तियोंको ध्यानमें रखकर ही डॉ० रांगेय राघवने लिखा है, 'वह अपनी प्रियाके रूप-वर्णनको कभी अपने भावपक्षसे अलग करके नहीं देखता।'[४] रूपसे माती, लाज भरी एक ऐसी ही नायिकाका चित्रण निरालाके गीतमें मिलता है—

१. 'आधुनिक कवि', पृ० ५५।
२. 'गीतगुंज', निराला, पृ० ४१।
३. वही, पृ० ४२।
४. 'आधुनिक हिन्दी कवितामें प्रेम और श्रृंगार', पृ० ३०।

स्पर्शसे लाज लगी।
अलक-पलकमें छिपी छलक
उरसे नवराग जगी।
चुम्बन चकित चतुर्दिक चंचल।
हेर, फेर-मुख, कर बहु सुख-छल,
कभी हास, फिर त्रास, सांस-बल
उर-सरिता उमगी।[१]

आधुनिक गीतिकाव्यमें रूप और गुणकी विशेषताओंका सम्मिलित महत्त्व दीखता है। रीतिकालमें यह पक्ष एकांगी था। तन और मनकी शोभाका यह संतुलन अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुआ। 'गीतिका'के एक गीतमें यह उदाहरण स्पष्ट हो जायगा—

सकल गुणोंकी खान, प्राण तुम।
सुखकी सृति दुखकी आकुल कृति,
जग-तमकी धृति, ज्ञान, ध्यान तुम।
वङ्क भौंह, शंकित दृगनत मुख,
मिला रही निज उर अग-जग-दुख
पीली, ज्वाल, बदल नीली, रुख
विभा, प्रभाकी खान, आन तुम।[२]

सत्य और शिवको सुन्दरके साथ समन्वित करनेका प्रयास कविधर्म है। गीतिकाव्यमें अनुभूतिकी तीव्रता होती है, अनुभूतियोंमें भी सौन्दर्यानुभूतिकी मात्रा विशेष हृदयग्राही होती है। यथार्थ और कल्पनाका समाहार गीतिकाव्यके सौन्दर्य-चित्रणोंमें होता है। गीतिकाव्यके सौन्दर्य-चित्रणमें वस्तु और अभिव्यंजनाका संयोग किया जाता है। उसमें न केवल प्रियके सौन्दर्यका आभास होता है, वरन् उसे चित्रित करनेके साधनोंको भी सुन्दर बनाया जाता है।

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें, या यों कहें कि पूरे काव्यमें नारी-सौन्दर्यकी प्रधानता है, क्योंकि कवियोंमें पुरुषोंका प्राधान्य है। अतः आकर्षणका केन्द्र नारी है। छायावादी गीतोंमें यह नारीत्व कुछ विशेष मात्रामें है। प्रकृति, जिसमें स्त्री-पुरुषका भेद नहीं, उसमें भी नारी-सौन्दर्य ही आरोपित दीखता है।

गीतिकाव्यमें अभिव्यंजना-सौन्दर्यके सभी अवयवोंके माध्यमसे मानव-सौन्दर्यका चित्रण किया जाता है। वे हैं—शब्द-सौन्दर्य और नाद-सौन्दर्य।

कुशल गीतिकार एक ही भावके द्योतक अनेक पर्यायवाची शब्दोंमेंसे अधिकसे-अधिक उपयुक्त शब्दको ढूँढता है। शब्द-चित्रणका एक उदाहरण देखा जा सकता

१. 'गीतिका', पृ० ३३।
२. वही, पृ० ७९।

है—अलसाये सौन्दर्यका, सोकर उठी हुई नायिकाकी शोभाके लिए कितने उपयुक्त शब्दोंका चुनाव निरालाने किया है—

(प्रिय) यामिनी जागी।
अलस पंकज-दृग अरुण-मुख
तरुण अनुरागी।
खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उरपर तर रहे,
बादलोंमें घिर अपर दिनकर रहे,
ज्योतिकी तन्वी, तड़ित-द्युतिने क्षमा माँगी।[१]

स्वरमय शब्दोंकी योजनाके द्वारा नाद-सौन्दर्यको प्रकट किया जाता है। प्रसादके प्रसिद्ध गीत 'बीती विभावरी जाग री'में इसका अच्छा उदाहरण है—

खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा
किसलयका अंचल डोल रहा
लो यह लतिका भी भर लाई है
मधु मुकुल नवल रस गागरी।
बीती विभावरी जाग री।[२]

वस्तुतः आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें प्रत्येक कविने सौन्दर्यको चित्रित करनेके विविध प्रयत्न किये हैं। ये चित्र कविके मनमें स्थूल सौन्दर्यकी सूक्ष्म प्रतिक्रियाके प्रमाण हैं।

रागात्मक तत्त्वोंका प्राधान्य

आत्मनिवेदनके कारण गीतिकाव्यमें रागात्मक तत्त्वोंकी प्रधानता रहती है। वस्तुनिष्ठ भावनाओंमें एक हद तक तटस्थता रहती है। कवि यथातथ्य, यथारूप चित्रण करता है। उसमें इतिवृत्तात्मकता होती है। पर आत्मनिष्ठ भावनाओंमें रागात्मक सम्बन्ध स्पष्ट रूपसे झलकता है। कवि उसमें अपनी भावनाओंका रंग डाल देता है। 'सुख-दुःखकी भावावेशमयी अवस्था'का चित्रण गीतिकाव्यमें होता है और सभी रागात्मक सम्बन्ध सुख-दुःखकी परिधिमें केन्द्रित होते हैं।

गीतिकाव्यमें अन्तर्वृत्ति (पैसन) की प्रधानता होती है, बोधवृत्तिकी नहीं। बौद्धिकता और चिन्तन सहायक तत्त्व हैं। नैतिक-मान्यताओंसे बोझिल गीतिकाव्य नहीं हो सकते। सहजानुभूति रागात्मकताके साथ सम्बद्ध होती है। 'निष्क्रियता बुद्धिवादिता'का स्थान गीतिकाव्यमें नहीं।[३] जीवन कठोर वास्तविकताका पुंज है, इसमें रागात्मक घड़ियाँ

---

१. 'गीतिका', पृ० ४।
२. 'लहर', पृ० १९।

बहुत कम होती हैं। गीतिकाव्य इन्हीं अल्पसंख्यक रागात्मक घड़ियोंसे सम्बद्ध होता है। इसीलिए उसमें जीवनका एक घनीभूत रूप, एक खण्डचित्र होता है।

किसी घटनाके फलस्वरूप रागात्मक भावनाएँ सहसा उद्दीप्त हो जाती हैं। इन्हींका काव्यात्मक रूप गीत है। कवि संकेतसे, कुछ शब्दोंमें ही इन रागात्मक चित्रोंको स्पष्ट रूप देनेका प्रयास करता है।

इस रागात्मिका वृत्तिकी पूर्ण सफलता वहाँ होती है, जहाँ कवि अपने आत्मबोधको, अपनी सुख-दुःखात्मक अनुभूतिको इस तरह कलात्मक रूप देता है कि वह दूसरोंको भी अपनी ही अनुभूति ज्ञात होती है। रागात्मक अनुभूतिकी तीव्रता व्यक्ति और वस्तु सापेक्ष्य होती है। यह रागात्मिका वृत्ति ही गीतिकाव्यको नीरस वर्णनोंसे बचाकर भावात्मक समृद्धि प्रदान करती है। सृष्टि और स्रष्टाके बीच एकात्म रूप प्रदान करनेका काम रागात्मिका वृत्ति ही करती है। प्राकृतिक दृश्योंमें रागात्मक सबंधका एक चित्र निम्नांकित पंक्तियोंमें देखा जा सकता है, जिसकी प्रशंसा महाकवि पन्तने भी की है[1]—

आज भी तो तुम न आयी।
नीड़को लौटे विहंगम,
सरितकी लहरें गयीं थम,
पर तुम्हारे नूपुरोंकी
ध्वनि नहीं पड़ती सुनाई।

चिन्तन और कल्पना

प्रश्न यह उठता है कि प्राधान्य तो रागात्मकताका होता है, पर चिन्तन और कल्पनाका सम्बन्ध गीतिकाव्यमें किस हद तक होता है। गीतिकाव्यमें चिन्तन अत्यन्त गौण सहायक तत्त्व है। जो भाव उमड़ते हैं, उन्हें निश्चित स्वरूप प्रदान करनेके लिए बौद्धिकताकी आवश्यकता होती है। जो धुँधला चित्र कविके सम्मुख उपस्थित होता है, उसे आकार देनेका काम बुद्धितत्त्व करता है।

कल्पना अनुभूतिका पंख है। कल्पनाका काम विभिन्न चित्रोंको जोड़ना है। प्रायः टेककी पंक्तियाँ भावनात्मक तीव्रताके कारण फूट पड़ती हैं। अन्तरा तक लाने, आगेकी पंक्तियोंके साथ सम्बन्ध जोड़नेमें भी चिन्तन और कल्पनाका योग आवश्यक हो जाता है। यह योग इतना स्वाभाविक और सहज होता है कि इसमें बौद्धिक व्यायामकी आवश्यकता नहीं होती। चित्रोंको चाक्षुष्य और प्रभावशाली बनानेके लिए इनकी विशेष आवश्यकता होती है। अनुभूतिको गति देनेका कार्य कल्पना करती है। विभिन्न खण्ड चित्रों और दृश्योंको एक सूत्रमें बाँधनेका कार्य चिन्तन और कल्पनाके हाथों होता है। अनुभूतिके प्रसारका काम कल्पना करती है।

उपयुक्त शब्दोंका चुनाव भी बुद्धिके कारण ही होता है। किस शब्दको रखनेसे

---

१. 'विभावरी', डॉ० किशोर, पृ० ५।

अभिप्रेत भाव स्पष्ट होंगे, यह शक्ति इसीके द्वारा आती है। डॉ० रामकुमार वर्माकी निम्नांकित पंक्तियोंमें उपर्युक्त तथ्योंको स्पष्ट रूपसे देखा जा सकता है—

कोकिलकी यह कोमल पुकार।
कितने मधुसिक्त वसन्तोंने कर मधुर भेज दी यह पुकार॥
पर तारोंकी नीरव समाधिमें
डूबे मेरे सभी गान,
असहाय हृदयकी हूक हाय!
आँसू बन आयी है अजान।

यह तो जीवन दर्शन-सा है, विष-सा साँसोंका है उभार।[१]

उपर्युक्त गीतमें टेककी प्रथम पंक्तिके भावको स्थिर रखने और उसे अनुकूल दिशा-में ले चलनेके लिए आगे अन्तराकी चार पंक्तियाँ आयी हैं। 'समाधिमें' 'लीन' हुआ जाता है, 'डूबा' जाता है—बुद्धिपद जबतक इस तर्कको ग्रहण नहीं करेगा, 'तारोंकी नीरव समाधिमें डूबे मेरे सभी गान' जैसी कलात्मक पंक्तिका निर्माण नहीं हो सकता।

संक्षिप्तता

संक्षिप्तता गीतिकाव्यका आकारिक गुण है। अनुभूतिकी आवेशपूर्ण और तीव्रतम स्थिति बहुत देर तक नहीं रह सकती। प्रेरणाको संक्षिप्त रूप देनेसे उसकी विदग्धता बढ़ जाती है।[२] शेक्सपीयरने इसीलिए 'हैमलेट' नाटकमें संक्षिप्तताकी महत्ता बतलायी है।[३] संक्षिप्तताके कारण गीतिकाव्यकी अखण्डता नष्ट नहीं होती। भावनाओंको समाहित रखनेके लिए भी संक्षिप्तता आवश्यक है। पूर्ण मूर्त्त विधानके लिए यह उपयोगी होता है। महादेवीने इसीलिए गीतिकाव्यकी परिभाषा देते हुए 'गिने चुने' शब्दका प्रयोग किया है।

दीर्घ होने पर पाठकों या श्रोताओंका ध्यान कई तत्त्वोंपर बँट जायगा और अनु-भूतिकी तीव्रताका बोध नहीं होगा। संक्षिप्तता बनाये रखनेके लिए निम्नलिखित तथ्योंपर कविको ध्यान रखना पड़ता है—

१. अत्यन्त भाव-व्यंजक शब्द—शब्दोंके चुनावमें विशेष सावधानी।

२. समस्त पदोंका प्रयोग, किन्तु स्पष्टता रखते हुए। क्लिष्टताके स्थानपर स्वाभा-विकता।

३. अलंकरण उतना ही, जितना भाषाकी स्वाभाविक प्रक्रियामें समाहित हो जाय। अलंकरण अनुभूति-चित्रोंको स्पष्ट करनेवाले हों, बोझिल नहीं।

---

१. आकाशवाणी, दिल्ली।

2. As man is now constituted, to be brief is almost a condition of being inspired. —*Little Essays*, George Santayana, p. 141.

3. Since brevity is the soul of wit,
And tediousness the limits and outward flourishes,
I will be brief. —Act II, Sc., 2,1.90.

४. लक्षणा और व्यंजनाका आधार।

५. चित्रोंका सम्पादन।

६. विशेषणोंका सार्थक प्रयोग।

किन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिये कि गीतकार इन तथ्योंको विधिवत् ध्यानमें रख-कर गीतोंकी काट-छाँट करता है। चिन्तन और कल्पनाके सहारे गीत अपने आप चलता है। उपर्युक्त तथ्योंको निम्नलिखित उदाहरणोंसे स्पष्ट किया जा सकता है :—

(क) भाव-व्यंजक शब्दोंका चुनाव करनेकी आवश्यकता इसलिए पड़ जाती है कि वे कम होकर भी अर्थ-विस्तारक होते हैं। यथा—

मैं तुम्हारी मौन करुणाका सहारा चाहता हूँ!
जोड़कर कण-कण कृपण
आकाशने तारे सजाये।
जो कि उज्ज्वल हैं सही,
पर क्या किसीके काम आये?
प्राण! मैं तो मार्ग-दर्शक एक तारा चाहता हूँ।[१]
(डॉ० रामकुमार वर्मा)

(ख) समस्त या सामासिक पदोंका प्रयोग करते हुए इस सत्यका ध्यान रखना पड़ता है कि बोधगम्यता नष्ट न हो! निरालाके गीतोंमें इस विशेषताका निर्वाह हुआ है। एक उदाहरण मानकके रूपमें दे रही हूँ—

प्रिय-कर-कठिन-उरोज-परस कस कसक मसक गयी चोली!
एक वसन रह गयी मंद हँस अधर-दशन अनबोली—
कली-सी काँटेकी तोली!
नयनोंके डोरे लाल गुलाल भरी खेली होली![२]

(ग) अलंकारोंका प्रयोग साभिप्राय नहीं हो। भावोंके स्वतःस्फुरणके साथ अलंकार अनायास ही घुल-मिल जाते हैं। कविता करते समय सुकविको स्वतः गुँथते चलते अलं-कारोंकी चेतना नहीं होती। यथा—

प्रिय तुम भूले मैं क्या गाऊँ!
जुही-सुरभिकी एक लहरसे निशा बह गयी, डूबे तारे।
अश्रु-बिन्दुमें डूब-डूब कर दृग-तारे ये कभी न हारे॥[३]

उपर्युक्त उद्धरणमें व्यतिरेक है। आकाशके तारों (उपमान)से दृगके तारों (उपमेय)में विशेष गुण-कथन है। इस अलंकार द्वारा कविकी तीव्र विरहावस्था तथा उसके घनिष्ठ-निश्छल प्रेमकी ध्वनि स्पष्ट है। यहाँ अलंकारसे उद्भूत वस्तु-ध्वनन पूरे

---

१. 'कवि भारती', सम्पादक पंत, पृ० ४६५।

२. 'गीतिका', पृ० ४६।

३. 'आधुनिक कवि', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ११।

वाक्य द्वारा होता है। अश्रुमें सदैव डूबा रहना और हारना नहीं, अत्यन्त स्वाभाविक है। यहाँ वस्तु-ध्वननका कारण अर्थ-शक्ति है, शब्द-शक्ति नहीं। अतः वाक्यगत् अलंकारसे वस्तु-व्यंग्य माना जाना चाहिये।

(घ) भाषाको अधिक वेधक एवं भावोंके प्रसारको घनीभूत करनेके लिए लक्षणा और व्यंजनाकी आवश्यकता होती है। महादेवीकी निम्नांकित पंक्तियोंमें 'हिम-सा उज्ज्वल दुकूल'का अर्थ ध्वनित है—'चिर कौमार्य'—

पाटलके सुरभित रंगोंसे रंग दे हिम-सा उज्ज्वल दुकूल,
गूँथ दे रशनामें अलि-गुंजनसे पूरित झरते बकुल-फूल।[1]

(ङ) चित्रोंका सम्पादन करते हुए इस बातपर ध्यान रखना होता है कि न तो उनमें रंगोंकी अधिकता हो और न कमी। न उनमें बेहद उभार हो, न बेहद संकुचनः एक संतुलन होना चाहिये। डॉ० वर्मा, निराला और महादेवीके उपर्युक्त उद्धरणोंमें इस बातके प्रमाण मिल सकते हैं।

(च) विशेषणोंके चुनावमें कविकी प्रतिभाका अन्दाज मिलता है। सार्थक विशेषण गम्भीर अर्थोंकी व्यंजना करते हैं। उपर्युक्त उद्धरणोंमें मौन (करुणा), कठिन (कर-उरोज), सुरभित (रंगों) आदि विशेषण कितने सार्थक हैं।

सूक्ष्म और लोकोत्तर जीवनकी अभिव्यक्ति

कविकी दृष्टि रूप-अरूप, सगुण-निर्गुण और दृश्य-अदृश्य सबको बाँध लेती है। परोक्ष जगत्में अपरोक्ष सत्ताकी प्रतिच्छवि देखनेवाले कविके लिए अज्ञातके प्रति जिज्ञासा होना, उसके लिए प्यास बढ़ना, उसके प्रति प्रेम होना और उससे एकाकार होनेकी कामना करना स्वाभाविक है। गीतिकाव्यमें ब्रह्मके प्रति प्रेम-निवेदनकी सम्भावना अधिक रहती है, क्योंकि इसमें रागात्मकताकी प्रधानता होती है। कबीर, दादू जैसे निर्गुण सन्तों और सूर-तुलसी जैसे सगुण भक्तोंके पदोंमें इस आध्यात्मिक तड़पका बाहुल्य है।

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें, विशेषतः छायावादी कवियोंके गीतोंमें सूक्ष्म और लोकोत्तर जीवनकी अभिव्यक्ति मिलती है। इस क्षेत्रमें डॉ० रामकुमार वर्मा, महादेवी वर्मा और निरालाके जीवनके अन्तिम वर्षोंके गीत (जो 'अर्चना', 'आराधना', 'गीत-गुंज' आदिमें संगृहीत हैं) अत्यन्त सफल हुए हैं।

ऐसे गीतोंमें प्रकृति दो रूपोंमें चित्रित हुई है—(क) जिज्ञासा और दार्शनिक पृष्ठाधारके रूपमें (ख) आत्मा-परमात्माके प्रणय-निवेदनके रूपमें। सौन्दर्य और रहस्यके ताने-बानेसे बुने हिन्दीके गीत अत्यन्त मार्मिक सिद्ध हुए हैं। इसीलिए महादेवी वर्माने लिखा है कि "सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति और रहस्यानुभूतिपर आश्रित गीतिकाव्य अपने लौकिक रूपकोंमें इतना परिचित और मर्मस्पर्शी हो सका कि उसके प्रवाहमें युगोंसे प्रच-

---

१. 'आधुनिक कवि', पृ० ८२।

लित सस्ती भावुकतामूलक और वासनाके विकृत चित्र देनेवाले गीत सहज ही बह गये ।"[१] महादेवीने प्रत्यक्ष जीवनके साथ अप्रत्यक्ष जीवनको भी महत्त्वपूर्ण माना है ।[२]

इन रहस्यात्मक गीतोंमें देव-विषयक रति है । मध्यकालीन भाव कवियोंसे अलग इन गीतोंमें आत्म-निवेदनके स्वरमें भी व्यक्तित्वको न भुला सकनेकी क्षमता है । प्रसाद-के गीतोंमें रहस्यवादी दर्शनकी गहराई है । महादेवीके रहस्यात्मक गीत अनुभूतिकी गहराईके अभावमें धूमिल चित्रोंसे भरे हैं । रामकुमारके गीतमें महादेवीसे अधिक स्पष्टता है । डॉ० वर्माके रहस्यवादी गीत करुणाके स्वरसे भींगे हुए हैं । अतः जहाँ महादेवीके गीत हमें चित्रोंमें उलझाकर पूर्ण रसास्वादनमें बाधा पहुँचाते हैं, वहाँ राम-कुमारके गीत चित्रोंके सहारे मूल भावतक ले जाकर रसमग्न कर देते हैं—शतदलकी पँखुड़ियोंकी भाँति एक पंक्ति खुलते-खिलते जाते हैं । इस क्षेत्रमें निरालाके गीतोंमें रहस्यात्मकता अधिक नहीं है, उनमें मध्यकालीन सगुण भक्तोंकी पुकार है—

आओ बेड़ा पार करो हे
गह्वरसे उद्धार करो हे ।[३]

अथवा—

प्रियके हाथ लगाये जागी
ऐसी मैं सो गयी अभागी ।[४]

आधुनिक गीतकारोंकी रचनाओंमें रहस्यवादमें मानव-पक्ष उजागर होकर आया है ।[५] प्रार्थना और कर्म दोनोंका उनमें समन्वय है ।

भावना और मनोविज्ञान

गीतिकाव्यमें भावनाओंको मनोवैज्ञानिक पृष्ठाधारपर ढाला जाता है । मनोविज्ञान भावनाओंको प्रेरित करता है । गीतकाव्यके अन्तर्गत मनोविज्ञानके निम्नलिखित तथ्य विशेष रूपसे प्रभावशाली सिद्ध होते हैं—

(क) चेतन, अर्धचेतन और अचेतन मस्तिष्ककी अभिव्यक्ति,

---

१. 'आधुनिक कवि' के 'अपने दृष्टिकोण'से, पृ० १५ ।

२. अतः जो कुछ प्रत्यक्ष है केवल उतना ही मनुष्य नहीं कहा जा सकता—उसके साथ-साथ उसका जितना विस्तृत और गतिशील अप्रत्यक्ष जीवन है उसे ही समझना होगा, प्रत्यक्ष जगत्में उसका भी मूल्यांकन करना होगा, अन्यथा मनुष्यके सम्बन्धमें हमारा सारा ज्ञान अपूर्ण और सारे समाधान अधूरे रहेंगे ।

—'आधुनिक कवि', 'अपने दृष्टिकोण'से, पृ० १-२ ।

३. 'अर्चना', पृ० ७ ।

४. वही, पृ० ६८ ।

५. प्रसाद, निराला, पन्तके काव्यमें जो रहस्यानुभूति है वह उनकी आत्माका व्यक्त प्रकृतिके साथ सम्बन्ध कराती हुई स्वयं लक्ष्यकी स्थितिका एक केन्द्रबिन्दु भी है, जो अपनी पूर्णाभिव्यक्तिमें मानवीय पक्षको प्रधानता देती है ।

—'छायावादी काव्य : स्वरूप और व्याख्या', राजेश्वरदयाल सक्सेना, पृ० ९९ ।

(ख) भावनाओंका आरोप—प्रक्षेपण,
(ग) उदात्तीकरण,
(घ) साहचर्य-भावना,
(ङ) दमित वासनाओंका विस्फोट

जो घटना बीत गयी उसका स्मरण होना स्वाभाविक है, जो प्रत्यक्षमें होकर भी ध्यानसे परे है, उसपर ध्यान आ जाना और प्रत्यक्षका चित्रण तीनों ही प्रक्रिया प्रत्येक कवितामें होती है। पर गीतिकाव्य भावना-प्रधान होनेके कारण इन तीनों अवस्थाओंसे विशेष रूपमें सम्बद्ध होता है।

प्राकृतिक चित्रोंमें गीतिकार भावनाओंका आरोप करता है। वह अपने सुख-दुखसे रँगकर उसे देखता है। गीतिकाव्यमें रागात्मकताके कारण इसका प्राधान्य होता है—

(क) कुमुद दलसे वेदनाके दागको
पोंछती जब आँसुओंसे रश्मियाँ
चौंक उठतीं अनिलके निश्वास छू
तारिकाएँ चकित-सी अनजान-सी,
तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूरके संगीत-सा वह कौन है।[1]

(ख) फेर दी आँखें जी आया
जैसे रसाल बौराया।
रहकर मेरे दबते मन
फूटे सौ - सौ मधु - गुंजन
तनकी छबियाँ नत लोचन,
उमड़ी, मानस लहराया।
सूखी समीर नव - गंधित,
बह चली छन्दसे वंदित
उग आया सलिल कमल सित
कोमल सुगन्ध नभ छाया।[2]

जब कवि अपनी लौकिक भावनाओंको पारलौकिक स्तरपर ले जाता है, जब वह अपने जीवनके अभाव और दैन्यको वन्दनाके उच्च बोल और गीतोंके रूपमें ढाल देता है, तब उसकी भावनाओंका उदात्तीकरण हो जाता है। ऐसे अनेक उदाहरण निराला, रामकुमार, महादेवी आदिके गीतोंमें मिलते हैं।

एक वस्तुको देखकर दूसरेका स्मरण हो आना—साहचर्य-भावनाके अनेक उदाहरण आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें मिलते हैं। ऐसे स्थलपर प्रकृतिको देखकर प्रियतमका

---

१. 'आधुनिक कवि' महादेवी, पृ० ३१।
२. 'गीत-गुंज', निराला, पृ० २४।

स्मरण हो आना स्वाभाविक है—यह पद्धति शृंगार और अध्यात्म दोनों ही क्षेत्रोंमें मिलता है।

(क) लौकिक शृंगार (विप्रलम्भ)

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है।
बच्चे प्रत्याशामें होंगे
नीड़ोंसे झाँक रहे होंगे
यह ध्यान परोंमें चिड़ियोंके भरती कितनी चंचलता है।
मुझसे मिलनेको कौन विकल ?
मैं होऊँ किसके हित चंचल ?[१]
यह प्रश्न शिथिल करता तनको, भरता उरमें विह्वलता है।

यहाँ प्रथम अनुच्छेदका दृश्य दूसरे अनुच्छेदके भावके लिए प्रेरक है, जो साहचर्य-भावनाके ऊपर आधारित है।

(ख) आध्यात्मिक शृंगार (विप्रलम्भ)

इस भाँति न छिपकर आओ।
अन्तिम यही प्रतीक्षा मेरी
इसे भूल मत जाओ॥
रजनीके विस्तृत नभको जब मैं दृगमें भर लेता,
एक-एक तारेको कितने भाव-युक्त कर देता।
उसी समय खद्योत एक, आता वातायन द्वारा,
मैं क्या समझूँ, मुझे मिला उज्ज्वल संकेत तुम्हारा।
प्रियतम, मेरी स-तम निशा ही को
शशि-किरण बनाओ॥[२]

यहाँ रजनी, तारे और खद्योतके साहचर्यसे छिपकर आनेवाले परम पुरुषकी स्मृति साकार हो उठी है।

गीतिकाव्यमें दमित इच्छाओंके प्रकट होनेके अनेक अवसर होते हैं; क्योंकि इसमें वैयक्तिकताकी प्रधानता होती है। ये दमित वासनाएँ अनुभूतिके वेगके अनुसार न्यूनाधिक मात्रामें प्रकट होती है। यथा—

कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्गार मेरा।[३]

व्यक्तिगत मौलिक उद्भावना

काव्यकी अन्य विधाओंकी अपेक्षा गीतिकाव्यमें व्यक्तिगत मौलिक उद्भावनाओंका अवकाश अधिक मात्रामें होता है। मर्मस्पर्शी स्थलोंके उद्घाटन एवं नवीन चित्रांकनका अवसर प्रबन्धकाव्यमें भी मिलता है, पर कथाकी पूर्व निश्चित परिधिके भीतर कवि

१. 'निशा-निमंत्रण', बच्चन, पृ० २५।
२. 'आधुनिक कवि', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४२।
३. 'मधुकलश', बच्चन, पृ० ३४।

बँध जाता है। कथाकी योजना भावोंको उन्मुक्त नहीं होने देती। उसमें विषयनिष्ठ दृष्टि होती है। गीतिकाव्यमें विषयीनिष्ठ दृष्टि है। इसमें वैयक्तिकताकी प्रधानता एवं रागात्मक तत्त्वोंकी तीव्रताके कारण व्यक्तिगत मौलिक उद्भावनाएँ अधिक सम्भव हैं।

किसी वस्तुको विभिन्न दृष्टियोंसे निरखने, परखने, मूल्यांकन करनेका अवकाश गीतिकाव्यके क्षेत्रमें ही अधिक है। साथ ही, सुख-दुःखके विभिन्न रागात्मक सम्बन्ध और उन सम्बन्धोंकी विभिन्न मात्राओंके कारण भी व्यक्तिगत मौलिक उद्भावनाओंका क्षेत्र बढ़ जाता है।

विभिन्न अन्तर्दशाओं और मनोवृत्तियोंके कारण भी गीतिकाव्यमें मौलिक उद्भावनाओंकी सम्भावना है। एक ही घटनाकी प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंपर भिन्न-भिन्न प्रकारसे पड़ती है। गीतिकाव्य, जो अनुभूतिके विभिन्न आयामोंसे सम्बद्ध है, इन सबका चित्रण करता है। एक वसन्त किसीमें वासना, किसीमें करुणा, किसीमें उत्फुल्लता, किसीमें हतोत्साहकी भावनाएँ भरता है। एक कलिकाके खिलने और मुरझानेसे अनेक चित्र बनते हैं। एक बादलके उमड़ने और बरस जानेके बीच कितनी प्रेरणाएँ मचल उठती हैं।

ये मौलिक उद्भावनाएँ ही हिन्दी गीतिकाव्यको आगे बढ़ाकर ले चल रही हैं। मनमें बसनेवाले प्रेम, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, वात्सल्य आदि भाव तो सनातन हैं, फिर इन्हें चिर नवीन कौन बनाये रखती है—ये शत-प्रतिशत नयी रचनाएँ, नयी उद्भावनाएँ ही। ये एक ही युगमें रहनेवाले प्रसाद, निराला, पन्त, रामकुमार, बच्चन, दिनकर आदिकी रचनाओंके भेदके कारण भी ये ही हैं। एक ही कविके विभिन्न गीत-संग्रहोंमें क्या एक-से भाव-चित्र हैं? नहीं। 'निशा-निमंत्रण'की निराशा 'सतरंगिनी'में आशा और उत्साहमें बदल गयी है। 'अंजलि'की पंक्ति 'कवि, मेरा सूखा-सा जीवन रहने दो तुम सूना'का गायक 'संकेत'में 'जब तुम आये हो एक बार, तब मैंने जाना है जीवन मिल गया मिलनका एक द्वार' गाता है।

अध्याय ४

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यकी अभिव्यक्तियाँ

तृतीय प्रकरणमें यह देखा जा चुका है कि गीतिकाव्यकी रचनामें व्यक्तिगत मौलिक उद्‌भावनाओंका कितना हाथ है। कहते हैं कि कोई भी पक्षी ऐसा गीत नहीं गाता, जो उसके किसी पूर्वजके कंठसे न फूटा हो। वस्तुतः मौलिकताका आधार नवीनता नहीं, किसी अनुभूतिकी सचाई और अभिव्यक्तिकी सफाई है। सत्य सनातन है। एक प्राणवान विचार हजार कंठसे, हजार बार अभिव्यक्त होकर भी नवीन लगता है। संसारमें जितने भी उच्च विचार हैं, सभी किसी न किसी मौलिक चिन्तनके परिणाम हैं। लेकिन यह सृष्टि इतनी प्राचीन है कि सर्वथा मौलिक कही जाने वाली वस्तुओंकी सूची उपस्थित करना कठिन है। आज जो नया कहा जा रहा है वह किसी पुरानाका संस्कृत, परिवर्द्धित, संशोधित या सम्पादित रूप है।

जब किसी रचना-पद्धतिसे अनेक प्रतिभाओंका संयोग होता है, तब उसकी विविध शैलियोंका निर्माण होता है। एक क्षेत्रमें विविध प्रयोगोंका नाम ही शैली है। रचनाओंकी विभिन्न मुद्राएँ ही उसके प्रकार बन जाते हैं। अभिव्यक्तियोंकी विभिन्न श्रेणियाँ ही वर्गीकरणका आधार बनती हैं। आधुनिक गीतिकाव्यकी अभिव्यक्तियों या कोटियोंपर विचार करनेके पूर्व हमें प्रगीत, मुक्तक, गीतिकाव्य आदिके सूक्ष्म भेदोंपर विचार कर लेना चाहिए और अबतक किए गए गीतिकाव्यके वर्गीकरणोंका स्वरूप भी स्पष्ट कर लेना चाहिए।

मुक्तक, प्रगीत और गीति

तृतीय प्रकरणके प्रारम्भमें मुक्तककी परिभाषाएँ दी गयी हैं और उसके लक्षण भी बतलाये गये हैं। उनसे यह सिद्ध होता है कि 'मुक्तक' शब्द प्रबन्धका प्रतिलोम माना जाता है। इसके अन्तर्गत प्रगीत और गीति ही नहीं, स्वतंत्र रूपसे लिखी गयी रचनाएँ—दोहे, सवैये, कुण्डलियाँ आदि भी आती हैं। वृन्दके दोहे, गिरधरदासकी कुंडलियाँ घनानन्दके सवैये ये सभी मुक्तकके ही अन्तर्गत परिगणित होते हैं। मुक्तकोंका वर्गीकरण श्लोकोंकी संख्याके आधारपर किया गया है।

१. युग्मक या संदानितक—दो श्लोकों वाली रचना,

२. विशेषक—तीन श्लोकों वाली रचना,

३. कलापक—चार श्लोकोंवाली रचना,

४. कुलक—पाँच श्लोकोंवाली रचना,

५. कोश—मुक्तक-समूह। इसमें संख्या निश्चित नहीं होती। एक या उससे अधिक कवियोंकी सूक्तियों या मुक्तकोंका संग्रह हो सकता है। इसका एक भेद विवर्णक है।

६. प्रघट्टक—इसमें एक ही कविके मुक्तकोंका समूह होता है।

७. संघात या पर्यायबन्ध—एक कवि द्वारा अनेक विषयोंपर लिखित छन्द।

मुक्तक और गीत

मुक्तकमें वस्तु-निष्ठता होती है, गीतमें भावनिष्टता। मुक्तकमें कविका व्यक्तित्व गौण तथा गीतमें प्रत्यक्ष होता है। एकमें प्रायः विशेष चित्र-खंड अथवा सामान्य वातावरण-का चित्रण रहता है, दूसरेमें प्रायः मानवकी सुख-दुःखात्मक अनुभूतिका।[१] मुक्तकमें सभी रसोंका चित्रण होता है, गीत मुख्यतः शृंगार और करुणसे सम्बद्ध होते हैं। पहलेकी अपेक्षा दूसरेमें रसात्मक द्रवणशीलता अधिक होती है। गीतमें मुक्तककी अपेक्षा अन्विति अधिक होती है: क्योंकि उसमें प्रारंभसे अन्ततक एक ही भाव प्रमुख होता है। मुक्तक-मे गीतकी अपेक्षा अधिक मानसिकता या बौद्धिकता होती है। मुक्तकमें छन्द-विधानका और गीतमें लयका अधिक आग्रह होता है। गीतिकाव्य नामक वर्गीकरण संस्कृत साहित्यमें नहीं मिलता।

गीत और प्रगीत

भ्रमवश गीत और प्रगीतमें कोई अन्तर नहीं माना जाता। डॉ० नगेन्द्र जैसे विद्वान्ने भी इन दोनों शब्दोंका सावधानीसे प्रयोग नहीं किया है। 'सुमित्रानन्दन पंत' नामक पुस्तकमें उन्होंने 'प्रगीत-काव्य' शीर्षक देकर नीचे 'गीत', 'गीतियाँ' शब्दोंके प्रयोग किये हैं।[२] लेकिन इन दोनोंमें मौलिक अन्तर है। अंग्रेजीमें दो शब्द चलते हैं 'साँग' और 'लिरिक'। हिन्दीमें क्रमशः गीत और प्रगीत प्रायः इन्हीं अर्थोंमें प्रयुक्त होते हैं। दोनोंमें संगीतात्मकता होती है, पर गीतकाव्यमें शास्त्रीय संगीतका आधार होता है, प्रगीतमें लयात्मकताका आग्रह होता है। प्रगीतका सांगीतिक आधार शब्दोंकी योजना-पर निर्भर होता है। इससे आन्तरिक संगीत स्वतः फूटता है। गीतकाव्यमें आन्तरिक संगीतके साथ ही शास्त्रीय प्रणालीपर राग-रागिन्नियोंका संयोजन होता है। गीतिकाव्यमें आत्मानुभूति और सांगीतिकताका सामंजस्य होता है। प्रगीत मुक्तकका एक स्वरूप-भेद है। प्रगीतात्मकता केवल स्वरूपमें है; गीतिकाव्यमें स्वरूप और वस्तु दोनोंका सम्मिश्रण होता है।[३] गीतिकाव्य प्रगीतात्मक होता है, पर सभी प्रगीत गीतिकाव्य नहीं है। गीति-काव्यकी प्रभविष्णुता संगीतके कारण नहीं, संगीतात्मक अभिव्यंजनाके कारण होती है।

---

१. मुक्तक प्रधानतया बाह्य जीवनकी अनुभूतियोंको चित्रित करता है और गीत अपने अन्तस्तलमें दबे हुए रागोंका उद्घाटन करता है।

—'सूरकी काव्य-कला', डॉ० मनमोहन गौतम, पृ० ५८।

२. पृ० २९।

३. मेरी दृष्टिमें प्रगीतात्मकता केवल स्वरूपमें है, गीतिकाव्यत्व स्वरूप और वस्तु दोनोंके एक विशेष सम्मिलनमें।

—'छायावादका गीति-सौन्दर्य', प्रो० नवलकिशोर गौड़, 'छायावाद-प्रगतिवाद'में संगृहीत निबन्ध, पृ० ४३।

प्रगीतमें लोकगीतके संगीत तत्त्वका प्रभाव होता है। प्राचीनकालमें भाषा इतनी विकसित नहीं थी कि शब्दोंसे ही अभिप्रेत भावनाओंको स्पष्ट किया जा सकता। वाद्य-यंत्र भी अविकसित थे। लयात्मकताके सहारे दोनोंका संयोग होता था।

गीतिकाव्यके विभिन्न भेद : सोदाहरण विवेचन

ई० डब्ल्यू० हॉपकिन्सने 'दि अर्ली लिरिक पोएट्री ऑफ इण्डिया'में भारतीय गीतोंको चार कोटियोंमें विभाजित किया है—

१. ई० पू० ८वीं शताब्दीसे लेकर चौथी शताब्दी तकमें वैदिक गीत,

२. ई० पू० चौथी शताब्दीसे पहली शताब्दी तक भक्तिगीत,

३. प्रेमगीत,

४. रहस्य-गीत।

उपर्युक्त चार खण्डोंमें वैदिक गीतके अन्तर्गत धार्मिक और वीरगाथात्मक गीत आते हैं। भक्तिगीतोंके अन्तर्गत परमात्माके प्रति आत्म-निवेदनके भावोंसे पगे गीत आते हैं। प्रेमगीतमें श्रृंगारके दोनों पदोंकी पुष्टि मिलती है और रहस्यगीतोंमें आत्मा-परमात्माके प्रणय-निवेदनको लौकिक प्रतीकोंसे व्यक्त किया गया है, जिनमें लौकिक और आध्यात्मिक श्रृंगारके बीच अत्यन्त सूक्ष्म विभाजक रेखा है।

जिस सहजताके साथ हम लोकगीतोंका विभाजन धर्म, ऋतु, संस्कार, क्रिया, उत्सव, कथात्मकता, अनुभव आदिके आधारपर कर देते हैं, वैसी सहजता कला-गीतोंके वर्गीकरणके लिए संभव नहीं। कला-गीतोंके वर्गीकरणके लिए निम्नलिखित आधार अपनाये जा सकते हैं—

(क) गेयताके आधारपर

१. एकस्वर-गीत,

२. समूह-गीत,

३. नृत्य-गीत।

१. एकस्वर-गीत अर्थात् एक व्यक्ति द्वारा स्वतंत्र रूपसे गाये जानेवाले गीत। इसके अन्तर्गत अधिकांश हिन्दी गीत आते हैं। सूर, तुलसी, मीरा, निराला, रामकुमार, बच्चन आदिकी रचनाएँ इसी कोटिमें आती हैं। अंग्रेजीमें इसके लिए 'मोनोडी' शब्दका प्रयोग चलता है। लेकिन अंग्रेजीमें सामान्य अर्थमें किसी भी एकस्वर-गीतको 'मोनोडी' कहते हैं। विशेष अर्थमें एक प्रकारके दुःखान्त गीतको इसके अन्तर्गत परिगणित किया जाता है, जिसमें विलाप करने वाला एक पात्र होता है।

२. समूह-गीत दो या दोसे अधिक व्यक्तियोंके साथ गाये जाते हैं। लोकगीतोंमें सामूहिक गानका विशेष महत्त्व है। आधुनिक हिन्दी गीतोंमें समूह-गीतोंका निर्माण बहुत कम हुआ है। नाटकोंमें कुछ समूह-गीत मिलते हैं। छिटपुट रूपसे वे गीत-संग्रहोंमें भी मिलते हैं। कुछ गीत यद्यपि एकस्वर-गीत हैं, तथापि उन्हें समूह-गीतके रूपमें गाया जाता है। इस दृष्टिसे 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' (प्रसाद), 'भारतमाता ग्रामवासिनी'

(पन्त), 'भारतिजय विजय करे' (निराला) आदि गीत प्रसिद्ध हैं। इधर आकाशवाणीके विविध भारती कार्य-क्रममें कई राष्ट्रीय गीतोंको समूह-गीतके रूपमें गाया जाता है। नाटकोंमें प्रयुक्त गीतोंमें 'हिमाद्रि तुंग शृंगसे' और 'पैरोंके नीचे जलधर हों'—प्रसादके दोनों प्रयाण-गीत अच्छे समूह-गीत हैं। अंग्रेजीमें इसे 'कोरस' कहते हैं।

३. नृत्यगीतोंका आधार नृत्यकी शास्त्रीय गति होती है। नृत्यके लय-तालके साथ शब्दोंका मेल बैठाना पड़ता है। मैंने तो ग्राम्याके 'कहारों'के 'नृत्य'को भी रंगमंचसे नृत्यकी तालपर गाते सुना है। यों पन्तका एक प्रसिद्ध नृत्यगीत 'ज्योत्स्ना'में आया है—

कुंद धवल, तुहिन-तरल
तारा-दल, ए—
तारक चल हिम-जल-पल,
नील-गगन विकसित दल
नीलोत्पल, ए—(हम)—
नृत्य-निरत सकल सतत,
रवि, शशि, उडु, ग्रह, अविरत
पुलकित अणु-अणु गति-रत,
प्रेम-विकल, ए—(हम)—
निखिल जगत प्रेम-ग्रथित,
मोहित चर-अचर भ्रमित,
प्रेम अजर, अमर प्रमित,
जीवन चल ए—हम—[१]

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्रीने एक बहुत ही सफल नृत्यगीत लिखा है—

मेघरन्ध्रमें मन्द्र-सान्द्र ध्वनि—
द्रिम-द्रिम-द्रिम उन्मद मृदंगकी !
भाद्र-समुद्र-रुद्र-रव-रशना,
नाच रही कस दस-दिशि-वसना,
रिमझिम-रिमझिम, रुनझुन-रुनझुन,
धुनकिट तच्छुम रनरन-रुनझुन,
छुम-छुम छनन, झननन-झुनझुन,
मुक्तकेश सरका श्यामाम्बर !
हरित-सस्य-अंचल चंचलतर ॥[२]

अंग्रेजीमें इसे 'डोरियन' कहते हैं।

---

१. पृ० १८।

२. 'मेघ-गीत', पृ० १३।

(ख) विषयके आधारपर आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यके निम्नलिखित वर्ग हो सकते हैं :—

प्रार्थना-गीत	वीर-गीत
रहस्यवादी गीत	व्यंग्य-गीत
राष्ट्रीय-गीत	परिवृत्ति-गीत (पैरोडी)
प्रयाण-गीत	उपालम्भ-गीत
उत्सव-गीत	विचारात्मक गीत
शोक-गीत	उपदेशात्मक गीत
सम्बोध-गीत	प्रेम-गीत

प्रार्थना-गीत

मनुष्य जब लौकिक शक्तियोंकी सीमा पहचान लेता है, तब वह दिव्य शक्तिकी सहायताके लिए विकल हो उठता है। दृश्यजगत्की सामर्थ्यकी दुहाई समाप्त हो जाती है। परमात्माकी शरणमें जानेवाली आत्मा अपने पापोंका लेखा-जोखा उपस्थित करती है। वह आवागमनके बन्धनसे छुटकारा चाहती है। वह संसारके कण-कणमें उस असीमकी छवि देखती है।

यद्यपि मध्यकालीन भक्तिधारामें प्रार्थना-परक रचनाएँ बहुतायतसे मिलती हैं, तथापि आधुनिक हिन्दी काव्यमें भी भक्तिविह्वल गीतोंके पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं।

आधुनिक प्रबन्ध-काव्योंके प्रारम्भमें मंगलाचरणके रूपमें भक्तिभावसम्पन्न रचनाएँ मिलती हैं, पर उनमें गीतात्मकताका अभाव है। उनके छन्द-विधान गीत-काव्यके अनुकूल नहीं मिलते। उदाहरणस्वरूप मैथिलीशरण गुप्तके 'साकेत'की गणेशवन्दना (जयति-कुमार अभियोग-गिरा-गौरी प्रति) 'यशोधरा'का मंगलाचरण (राम तुम्हारे इसी धाममें), 'कुणालगीत'का मंगलाचरण (वहाँ पन्थ भय क्या भला), 'एकलव्य'का 'स्तव' (वाणी दो हे नीलकंठ) आदि।

आधुनिक हिन्दी काव्यके क्षेत्रमें ऐसे भी गीत मिलते हैं, जिनमें व्यक्तिगत भक्तिके स्थानपर राष्ट्र और विश्वके जीर्णोद्धारकी कामना मिलती है। प्राचीन भक्त्यात्मक गीतोंके प्रतिकूल इनमें सामूहिक उत्थानकी प्रार्थना मिलती है। निरालाका गीत 'वीणावादिनि वर दे' इस दृष्टिसे अत्यन्त उत्कृष्ट गीत है—

वर दे वीणा वादिनि वर दे !
प्रिय स्वतंत्र रव अमृत-मंत्र नव
भारतमें भर दे !

स्वराष्ट्रकी स्वतंत्रताकी कामनाके बाद कवि पूर्ण संसारके ज्योतिर्मय जीवनकी प्रार्थना करता है—

काट अन्ध उरके बन्धन-स्तर,
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर;

कलुष-भेद तम हर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे ।[१]

ऐसी ही भावना 'गीतिका'के चौंतीसवें गीतमें भी प्रकट की गयी है—

जला दे जीर्ण शीर्ण प्राचीन;
क्या करूँगा तन जीवन हीन ?
माँ, तू भारतकी पृथ्वीपर
उतर रूपमय माया तन धर,
देवव्रत नरतर पैदा कर,
फैला शक्ति नवीन ।

यही राष्ट्रीयता कविको विश्व जनीनताका उत्कर्ष देती है—

फिर उनके मानस-शतदल पर,
अपने चारु चरण युग रखकर
खिला जगत तू अपनी छविमें
दिव्य ज्योति हो लीन ![२]

अथवा,

सार्थक करो प्राण !
जननि, दुख-अवनिको
दुरितसे दो त्राण ।[३]

विश्वकी करुणाके साथ व्यक्ति हृदयकी एकात्मताकी प्रार्थना नवीनने भी की है—

भर दो, प्रिय, भर दो अभ्यन्तर
विश्व-वेदनाके कल जलसे आप्लावित कर दो अभ्यन्तर,
मेरी मुग्धा व्यथा परिधि गत हुई—उसे निःसीम बना दो;
मुक्त करो, प्रिय मुक्त करो मम करुणा-वीणाके ये सुस्वर;[४]

पन्तने 'ज्योत्स्ना'में सारे विश्वको सुखी देखनेकी कामना की है—

जीवनका श्रम ताप हरो हे !
दुख-सुखमाके मधुर स्वर्णसे
सूने जग गृह-द्वार भरो हे ।[५]

निरालाने 'गीतिका'में और भी भक्ति-प्रवणगीत लिखे हैं। एक स्थानपर दृष्टिको परिमार्जित करने एवं विश्वछविमें उतरनेकी प्रार्थना अपूर्व है—

---

१. 'गीतिका', पृ० ३ ।
२. पृ० ३९ ।
३. पृ० ५८ ।
४. 'क्वासि', पृ० ८० ।
५. 'सुमित्रानन्दन पंत', बच्चन, पृ० ६३ ।

पावन करो नयन !
रश्मि, नभ-नील-पर
सतत शत रूप धर
विश्व-छविमें उतर
लघुकर करो चयन ।[१]

यह 'अवतरण' की प्रार्थना ग्यारहवें गीतमें और भी स्पष्ट होती है—

मेरे स्वरकी अनल-शिखासे
जला सकल जग जीर्ण दिशासे
हे अरूप, नव रूप विभाके।
चिर स्वरूप पाके आओ,
मेरे प्राणोंमें आओ ॥[२]

'स्वरकी अनल शिखासे' जगकी जीर्णताका जलना अभिनन्दनीय मंगल-कामना है।

निरालाने शक्तिकी वन्दनाका जो स्वरूप रामकी शक्तिपूजामें उपस्थित किया है, वह उनके गीतोंमें भी प्रकट है। रामकृष्ण मिशन और बंगीय संस्कृतिके प्रभावसे उनकी इस भावनाको बड़ी प्रेरणा मिली है। कहीं वे प्रकृतिकी प्रमुदित शोभाके माध्यमसे शक्ति-की वन्दना करते हैं—

अनगिनित आ गए शरणमें जन, जननि,
सुरभि-सुमनावली खुली, मधु ऋतु अवनि ![३]

तो कहीं सम्पूर्ण मानवताके कल्याणार्थ उसकी कुवृत्तियोंके सर्वनाशकी प्रार्थना करते हैं—

नर-जीवनके स्वार्थ सकल
बलि हों तेरे चरणोंपर माँ,
मेरे श्रम-संचित सब फल ![४]

प्रकृतिके सामान्य रूप-चित्रणोंके माध्यमसे भी वे शक्तिकी कृपाके आकांक्षी हैं—

धन्यकर दे माँ वन्य प्रसून,
दिखा जग ज्योतिर्मय, मुख चूम ।[५]

भारत माताके रूपका आरोप प्रार्थनागीतमें मिलता है। ग्रामीण सुषमापर भारत-माताके रूपका एकीकरण पन्तकी 'ग्राम्या'की भारतमाता ग्रामवासिनी, में सबसे अच्छा है। निरालाने 'गीतिका'के ६८वें गीतमें यही रूप-दर्शन मिलता है।[६]

---

१. पृ० ११।
२. पृ० १३।
३. 'गीतिका', पृ० २०।
४. 'गीतिका', पृ० २२।
५. 'गीतिका', पृ० ३६।
६. 'भारति, जय, विजय करे···मुख रे।', पृ० ७३।

यह चित्रण उसी जननिका है जिसका उल्लेख निम्नलिखित गीतमें मिलता है :—

बन्दूं पद सुन्दर तव,
छन्द नवल स्वर-गौरव
जननि, जनक-जननि-जननि
जन्मभूमि भावे !

जागो, नव अम्बर-भर,
ज्योतिस्तर-वासे !
उठे स्वरोर्मियों-मुखर
दिक् कुमारिका-पिक-रव ![1]

अथवा

दे, मैं करूँ वरण,
जननि, दुखहरण पद-राग-रंजित-मरण ।[2]

भक्ति-भावनासे पगे गीतोंमें साधना-पथकी कठिनाइयाँ खलती नहीं दीखतीं । शूल-फूल बन जाते हैं और अंगार तुषार-कण ! उदाहरणार्थ कुछ गीत देखे जा सकते हैं :—

प्रात तव द्वारपर
आया, जननि, नैश अन्ध पथ पार कर !
लगे जो उपल पद, हुए उत्पल ज्ञात,
कण्टक चुभे जागरण बने अवदात
स्मृतिमें रहा पार करता हुआ रात,
अवसन्न भी हूँ प्रसन्न मैं प्रात वर
प्रात तव द्वार पर ![3]

× × ×

प्रिय-पथके ये शूल मुझे अलि प्यारे ही हैं ।[4]

कबीरकी भाँति महादेवीके गीतोंमें भी देह और आत्माका पूर्ण समर्पण मिलता है, रोम-रोम प्रभुकी स्मृतिसे स्पंदित है :—

क्या पूजा क्या अर्चन रे !
उस असीमका सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे ![5]

इस गीतमें पूजाके सभी आवश्यक आधारों—पदरज-प्रक्षालन, अक्षत-दान, चन्दन-लेपन, धूपदीप-अर्पण, पुष्पांजलि और नर्त्तनका विधिवत् आरोप किया गया है ।

---

१. 'गीतिका', पृ० ७८ ।
२. 'गीतिका', पृ० ९७ ।
३. 'गीतिका', पृ० १०० ।
४. 'आधुनिक कवि', महादेवी, पृ० ८३ ।
५. 'नीरजा', गीत ५१, पृ० १०७ ।

परमात्म शक्तिको 'बन्धनहीन विहारिणी' और 'दुखहारिणी' कहनेवाले रामकुमार वर्माने उससे एकाकार होनेकी कामना की है। यह एकरूपता रहस्यवादी भावनाका मूल है—

मैं तुमसे मिल जाऊँ।
फूलोंके कुछ छन्द बनाकर इस उपवनमें जाऊँ ॥
मलय समीरण-सी तुम आओ बन्धनहीन विहारिणी;
जगत तुम्हें क्या पावे ? मैं अपनी साँसोंमें पाऊँ ॥
सुख-दुख तो कंटक-से हैं देखो इनको दुखहारिणी,
ये लगते रहते हैं, जिससे मन इनमें उलझाऊँ ?[१]

आध्यात्मिक विरहके भावोंसे भींगी रामकुमारकी इन पंक्तियोंमें प्रणय-निवेदनकी प्रार्थना अत्यन्त निर्मल और तीव्र है—

देव, मैं अब भी हूँ अज्ञात !
एक स्वप्न बन गयी तुम्हारे प्रेम-मिलनकी बात।
तुमसे परिचित होकर भी मैं तुमसे इतनी दूर,
बढ़ना सीख-सीखकर मेरी आयु बन गयी क्रूर ॥
मेरी साँस कर रही मेरे जीवनपर आघात ॥[२]

आगेकी पंक्तियोंमें छायावादके काव्योत्कर्षका प्रमाण मिलता है, जहाँ अन्तिम टेककी पंक्तिमें उपमाकी सर्वथा नवीन एवं युक्तियुक्त योजना की गयी है—

यह ज्योत्स्ना तो देखो, नभकी बरसी हुई उमंग,
आत्मा-सी बनकर छूती है मेरे व्याकुल अंग।
आओ, चुम्बन-सी छोटी है यह जीवनकी रात ॥

प्रार्थनाके मूलमें करुणाका वास होता है। परमात्माके स्नेह, कृपा और सहानुभूतिकी प्रेरक भूमि भी करुणा ही है। प्रभुके प्रति आत्मनिवेदनके कारण मनुष्यकी नश्वरता, यातना आदि है। डॉ० वर्माके निम्नलिखित गीतमें इन भावोंकी बड़ी कलात्मक पुष्टि हुई है। एक-एक पंक्ति दिव्य अनुभूतिसे भरी है—

मैं तुम्हारी मौन करुणाका सहारा चाहता हूँ।
जानता हूँ, इस जगत्‌में फूलकी है आयु कितनी,
और यौवनकी उभरती, साँसमें है वायु कितनी।
इसलिए आकाशका विस्तार सारा चाहता हूँ,
प्रश्नचिह्नोंसे उठी हैं भाग्य-सागरकी हिलोरें।
आँसुओंसे रहित होंगी क्या नयनकी नमित कोरें ?
जो तुम्हें कर दे द्रवित वह अश्रुधारा चाहता हूँ।

---

१. 'आधुनिक कवि', रामकुमार वर्मा, पृ० १७।
२. वही, पृ० ३३।

कवि अपनी करुणार्द्रताके सहारे ही प्रियको रिझाना चाहता है। उसे अपनी आह, वेदना और तड़पमें अटूट विश्वास है। कवि संसारकी व्यर्थ लिप्साओं और मायावी सुखोंका त्याग कर दिव्य सुखकी उपलब्धि चाहता है। क्षुद्र वस्तुओंकी जगह वह अनन्त शक्तिका सान्निध्य चाहता है—वह व्यर्थ जगमगानेवाले तारोंको छोड़ दिशा-निर्देशक ध्रुवताराकी चाह करता है—

जोड़कर कण-कण कृपण आकाशने तारे सजाये,
जो कि उज्ज्वल हैं सही, पर क्या किसीके काम आये,
प्राण ! मैं तो मार्गदर्शन एक तारा चाहता हूँ ।[1]

आधुनिक प्रार्थना प्रेरक गीतोंमें प्राचीन भक्त कवियोंकी भाँति अपने पाप-कर्मोंके प्रति पश्चात्तापके भाव मिलते हैं—

(क) भगवन् ! भूल दासकी भूल ।
डाल सींचता था मैं अबतक हाय ! छोड़कर मूल ।[2]

(ख) माँ मेरा उद्धार करो ।
अमित अकिंचन निर्धन कामी,
मनलोलुप पीकर मद डगमग
थक पग अमित अमत नतमस्तक
अन्धकारसे पूर्ण विकल जग
मग छोड़ूँ, तो रात न कटती,
रह - रहकर कोसेगी धरती,
तिमिर सदृश मनके आँगनमें
माँ छवि-ज्योति विकार करो ।[3]

(ग) भवसागरसे पार करो हे ।
गह्वरसे उद्धार करो हे ।
विपुल कामके जाल बिछाकर
जीते हैं जन-जनको खाकर
रहूँ कहाँ मैं ठौर न पाकर,
मायाका संहार करो हे ।[4]

(अथवा)
मानवका मन शान्त करो हे !
काम, क्रोध, मद, लोभ, दम्भसे,
जीवनको एकान्त करो हे ।[5]

---

१. 'कवि भारती', पृ० ४६५ ।
२. 'निर्माल्य', वियोगी, पृ० २ ।
३. 'जो मैं गाता हूँ', सुधाकर पाण्डेय, पृ० ५२ ।
४. 'अर्चना', निराला, गीत ७ ।
५. वही, गीत ४८ ।

सोलहवीं शताब्दीके भक्त कवियोंकी भाँति कहीं-कहीं प्राचीन उद्धार प्राप्त भक्तोंका उल्लेख कर कृपाकांक्षा व्यक्त की गयी है—

कामरूप, हटो काम,
जपूँ नाम, राम, राम।
शवरी, गज, गणिकादिक,
हुए कृष्ट प्रासारिक,
पारिक में सांसारिक
अविधा हो व्यंग्य दाम।[१]

आवागमनसे छुटकारा पा जाना ही मुक्ति है। जीव अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिए बार-बार धरतीपर आता है। इसीलिए वह इस चक्करसे छुटकारा चाहता है। सूरके 'अब नाच्यो बहुत गोपाल' पदकी भावनाकी अभिव्यक्ति आधुनिक गीतोंमें भी बहुत सुन्दर ढंगसे हुई है—

जगमें रुक, झुक चलते-चलते
शिथिल हुआ तन मेरा
सह सकता है अब न अधिक
यह मनका भारी भार
सामंजस्य नहीं पाकर जीवन अशान्त, विद्रोही
बन बैठा बस नाशके लिए तत्पर हो लाचार।[२]

इसी भावकी प्रबल व्यंजना बच्चनके गीत 'अब मत मेरा निर्माण करो' में भी हुआ है। अन्यत्र भी यह व्यंजना है—

आज तुमसे माँगता हूँ बस यही वरदान,
ओ नियति मेरी! करो मत अब मुझे आह्वान।[३]

आधुनिक गीतोंमें 'जलादे जीर्ण-शीर्ण प्राचीन' निरालाकी भावना अधिक उमंगके साथ व्यक्त हुई है। परतन्त्र देशकी रूढ़ि, बन्धनों और व्यवस्थाको तोड़-फोड़ देनेकी कामना स्वाभाविक है। इसीलिए प्रलयके देवता रुद्रकी वन्दना मिलती है, जो अपने ताण्डव-नर्तनसे सम्पूर्ण सृष्टिका संहार कर शिवरूपसे फिर नव-निर्माण कर सकते हैं। दिनकरके 'नाचो हे नाचो नटवर'[४] नरेन्द्र शर्माके 'नाचो रुद्र नृत्य प्रलयंकर'[५] आदि रचनाएँ इसके अच्छे उदाहरण हैं।

सोहनलाल द्विवेदीने 'पूजा-गीत' नामका एक संग्रह ही प्रकाशित किया है। उसमें निरालाका प्रभाव लिये 'वीणापाणि! मुझे वर दो। अन्तरतममें ज्योति भरो हे'।

१. 'आराधना', निराला, गीत १४।
२. 'तार-तरंग', जानकीवल्लभ, पृ० ५७।
३. 'मुक्तिमार्ग', भारतभूषण अग्रवाल, पृ० ७।
४. 'रेणुका', ताण्डव, पृ० १।
५. 'शूल-फूल', पृ० ६३।

'अभय करो, अभय करो, अभय करो, हे' आदि गीत संगृहीत हैं।[1] राष्ट्रीय भावनाओंके गायक सोहनलाल माँ शक्तिका आह्वान तीव्र स्वरमें करते हैं—

जाग ! माँ ! ओ जगद्धात्री !
तू दयाकी बन न पात्री।
ले त्रिशूल सतेज करमें,
ओ त्रिशूल विनाशिनी,
मुक्तिकी दात्री ! नहीं हो
मुक्तिकी ही याचिनी।[2]

कवियोंकी आराध्य माँ वीणापाणिकी वन्दना प्रायः सभी कवियोंने किसी न किसी रूपमें की है। निरालाके अधिकांश गीत-संग्रहोंमें वाणी-वन्दना मिलती है। 'गीत-गुंज'में सरस्वती-वन्दना प्रकृतिके रंगोंमें रँगी है—

वरद हुईं शारदाजी हमारी,
पहनी वसन्तकी माला सँवारी।
लोक विशोक हुए, आँखोंसे
उमड़े गगन लाखों पाँखोंसे,
कोयलें मंजरीकी शाखोंसे,
गायीं सुमंगल होली तुम्हारी।
नाचे मयूर प्रातके फूटे
पातके मेघ तले, सुख लूटे,
कामिनीके मन मूटसे टूटे
मिलने खिलनेकी तत्त्वकी निवारी।[3]

सरस्वती-पूजन—वसन्त-पंचमीके दिन जन्म लेनेवाले कवि निरालाके स्वरमें भारती-वन्दनाकी विविधता स्वाभाविक ही है।

आधुनिक युगमें माँ सरस्वतीके वरद पुत्रोंकी दशा शोचनीय हो गयी है। शिक्षा, विज्ञान, कला—सभी दिशाओंमें नैतिक पतन दीखता है। मंदिर-मस्जिद मौन हैं। वीरोंकी सन्तान कहे जानेवाले युवक किंकर्त्तव्यविमूढ़ बैठे हैं। ईमान मिट्टीके मोल बिक रहा है। ऐसी परिस्थितिमें एक कवि 'माँ सरस्वतीके नाम एक कविका पत्र' शीर्षक गीतमें एक प्रश्न पूछता है—

महज दो - चार ये तिनके
प्रभंजन रोक लेंगे क्या ?
विभाकी फूटती लौ को
तुनुक घन रोक लेंगे क्या ?

---

१. 'पूजा गीत', १, २, ३, ४।
२. वही, पृ० ११।
३. गीत १।

क्षितिजको और विस्तृत कर, अरुण मुख और विवृत्त कर
नये युगके झिझकते सूर्यको अम्बर बृहत्तर दे।
अभय माँ शारदे, वरदे, न मनको गीत कातर दे।
बुझे हैं जो दिए स्वरके, उन्हें तू ज्योतिमय कर दे।[१]

इस युगमें भी प्राकृतिक तत्त्वोंको दिव्य रूपमें देखकर प्रार्थना करनेकी प्रवृत्तिकी झलक कहीं-कहीं मिलती है। प्राचीन कालमें तो इन्द्र, वरुण, चन्द्र-सूर्य आदिकी वन्दना मिलती ही थी। प्राकृतिक तत्त्वके पूजन और उद्बोधनका एक गीत दिनकरने लिखा है—

जागो हे अविनाशी !
जागो किरण पुरुष ! कुमुदासन ! विधुमण्डलके वासी !
विभा-सलिलका भी न करो हे।
निजमें मुझको लीन करो हे।
विधुमण्डलमें आज डूब जानेका मैं अभिलाषी।[२]

रहस्यवादी गीत

आधुनिक हिन्दी कवितामें रहस्यवादी गीत भी बहुतायतसे मिलते हैं। 'रहस्यवाद जीवात्माकी उस अन्तर्हित प्रवृत्तिका प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्तिसे अपना शान्त और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है।'[३]......'पवित्र और उमंग भरे प्रेमसे परिचालित आत्माका परमात्मामें गमन ही रहस्यवाद कहलाता है।'[४] वस्तुतः परमात्माको परम पुरुष और अपने आपको 'दुलहिन' मानकर आत्मा जो प्रणय-व्यापार करती है, वही रहस्यवादका मूल है। आत्मा-परमात्माके बीचकी आध्यात्मिक तड़पको रहस्यवादी कवि विशेष महत्त्व देते हैं।

रहस्यवादके सिद्ध और प्रसिद्ध कवि हैं डॉ० रामकुमार वर्मा और श्रीमती महादेवी वर्मा। इनके गीतोंके पूर्ण रहस्यवादी दर्शनकी व्याख्या तो आगेके प्रकरणमें होगी। यहाँ इतना कहना आवश्यक होगा कि आत्मा और परमात्माके विभिन्न सम्बन्धोंके रागात्मक चित्र इन दोनोंकी रचनाओंमें बहुत सुन्दरतासे व्यक्त हुए हैं। महादेवीके गीतोंमें एक कुहेलिका, एक अस्पष्टता मिलती है, पर रामकुमार वर्माके गीतोंमें चित्रोंकी स्पष्टता भावनाओंकी तीव्रतासे संयुक्त हो अन्यत्र प्रभविष्णु बन गयी है।

आधुनिक रहस्यवादी गीतोंकी निम्नलिखित विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं—

(क) आत्मा-परमात्माका सम्बन्ध-नियोजन, दोनोंके एकाकार होनेकी प्रवृत्ति। यह सम्बन्ध यहाँतक बढ़ जाता है कि आत्मा-परमात्मासे अभिन्न हो जाती है। वह दिव्य-

---

१. 'गीत अधूरे हैं', मंगलाचरण, डॉ० श्यामनन्दनकिशोर।
२. 'नील कुसुम', चन्द्राह्वान, पृ० २३।
३. 'अंजलि, अपने विचार', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १३।
४. वही, पृ० १४-१५।

शक्तियोंसे सम्पन्न हो जाती है। 'तेरा साईं तुज्झमें ज्यों पुहुपनके वास' कबीरके इस कथनका कलात्मकस्वरूप निम्नलिखित पंक्तियोंमें मिलता है—

अपने कार्योंमें पाता हूँ मैं अपना ही रूप,
बनता हूँ मैं रंक स्वयं बनता हूँ मैं ही भूप।
यहाँ कौन निर्णय करता है होता किसका न्याय,
मेरा है सत्कार्य और मेरा है कठिन उपाय।
मैं ही निज अस्तित्व-तत्त्वका निर्माता स्वाधीन
औ संसार बना है क्यों तू ईश्वरके आधीन।[१]

आत्मा-परमात्माकी तल्लीनताका एक उदाहरण निम्नांकित पंक्तियोंमें देखा जा सकता है-

प्राण पिक प्रिय-नाम रे कह!
मैं मिटी निस्सीम प्रियमें;
वह गया बेध लघु हृदयमें,
अब विरहकी रातको तू
चिर मिलनका प्रात रे कह![२]

(ख) आध्यात्मिक तड़पन-प्रिय (परमात्मा)के वियोगमें प्रिया (आत्मा) की विरह-कातर उक्तियाँ :—

(क) मुझे न जाना अलि! उसने जाना इन आँखोंका पानी,
मैंने देखा उसे नहीं पदध्वनि है केवल पहिचानी।
मेरे मानसमें उसकी स्मृति भी तो विस्मृति बन आती;
उसके नीरव मंदिरमें काया भी छाया हो जाती;
क्यों यह निर्मम खेल सजनि! उसने मुझको खेला-सा है!
मैं मतवाली इधर-उधर प्रिय मेरा अलबेला-सा है।[३]

(ख) हे अज्ञात देशके वासी! हे प्रियतम, हे प्राणाधार!
कैसी है यह आँख-मिचौनी, कैसा है नीरस व्यवहार?
आँख मीचता हूँ लो आओ बहुत हुआ मत तरसाओ।
घोर शून्य इस जीवन-नभमें श्याम घटा बन छा जाओ।[४]

(ग) कबसे मैं पथ देख रही प्रिय;
उर न तुम्हारे रेख रही प्रिय;[५]

---

१. 'अंजलि', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४२।
२. 'नीरजा', महादेवी वर्मा, पृ० ९९।
३. वही, पृ० ५१।
४. 'निर्माल्य', वियोगी, पृ० १३।
५. 'गीतिका', निराला, पृ० ४१।

(ग) प्राकृतिक उपादानोंमें व्यक्त विश्वपतिके छवि-दर्शन—

वह उपवन फूला, पर बोलो उसमें शांति कहाँ है ?
सुमन खिले, मुरझाये, सूखे, गिरे, वसन्त यहाँ है ?
नहीं मृत्युने यहाँ परिधिमें बाँधा है जीवनको,
सुख तो सेवक बन रक्षित रखता है दुखके घनको।
प्रियतम शाश्वत जीवन बन मनमें तो आज समाओ।
इस भाँति न छिपकर आओ।[१]

करुणाकी प्रधानता

(क) सजल बादलका हृदय-कण
चू पड़ा जब पिघल भू-पर
पी गया उसको अपरिचित
तृषित तरका पंकका उर
मिट गयी उससे तड़ित्-सी हाय वारिदकी निशानी !
करुण यह मेरी कहानी।[२]

(ख) करुणाका गहरा गुंजार।
जिसमें गर्वित विश्व पिघलकर बनता है आँसूकी धार ![३]

विश्वकी नश्वरता और जीवको अपनी क्षुद्रताका ज्ञान—

(क) कैसा वह प्रदेश है जिसमें—
एक उषा, वह भी नश्वर है !
उज्ज्वल एक तड़ित् है जिसका
जीवन भी केवल क्षणभर है ॥[४]

(ख) दीपलंघु मैं, तब अलख करसे समय-नदमें प्रवाहित,
नित्य प्रति प्रतिकूलताके प्रबल झोकोंसे प्रताड़ित-
टिमटिमाता बह रहा हूँ मैं जनमका ही निराश्रित।
दीप-सम्पुट कब बनेंगी कर अँगुलियाँ मम हरण वे ?
कब मिलेंगे ध्रुव-चरण वे ?[५]

अनेकतामें एकताके दर्शन—

जगका एक देखा तार।
कंठ अगणित, देह सतक, मधुर-स्वर-झंकार।

---

१. 'आधुनिक कवि', रामकुमार, पृ० ४२।
२. 'नीरजा', महादेवी, पृ० ८०।
३. 'आधुनिक कवि', रामकुमार, पृ० ४४।
४. वही, पृ० ४५।
५. 'क्वासि', नवीन, पृ० २।

बहु सुमन, बहुरंग निर्मित एक सुन्दर हार ।
एक ही करसे गुँथा उर एक शोभा-भार ।
गन्ध शत अरविन्द-नन्दन विश्व चंदन सार,
अखिल-उर-रंजन निरंजन एक अनिल उदार ।[1]

चित्तकी एकाग्रता—

रहा तेरा ध्यान,
जगका गया सब अज्ञान ।[2]

प्रिय-कृपाका एकमात्र आश्रय—आधुनिक गीतोंमें रहस्यवादका भावनात्मक रूप मिलता है, साधनात्मक या हठयोगात्मक रूप नहीं । इस दृष्टिसे निरालाकी 'अर्चना'के ये गीत उत्कृष्ट उदाहरण हैं—

(क) प्रियके हाथ लगाए जागी ।
ऐसी मैं सो गयी अभागी ।

(ख) तरणि तार दो,
अपर पारको ।
पड़ी भँवर-बीच नाव,
भूले हैं सभी दाँव,
रुकता है नहीं राव—
सलिल सार, ओ !

(ग) पतित हुआ हूँ भवसे तार !
दुस्तर दव से कर ऊधार ।[3]

असमर्थता का बोध—

गरजता सागरतम है घोर
घटा घिर आयी सूना तीर
अँधेरी - सी रजनीमें पार
बुलाते हो कैसे बेपीर ?[4]

राष्ट्रीय गीत

हमारी आलोच्य अवधिको राष्ट्रीय गीतकी दृष्टिसे दो भागोंमें बाँटा जाना चाहिए—१९२०से १९४७तकके गीत और १९४७से १९६०तकके गीत । पहले खण्डमें स्वतन्त्रता-पूर्वके संघर्ष, चुनौती, उत्साह, बलिदान आदिके भाव हैं और दूसरेमें नव-निर्माण, मानवतावादी दृष्टिके विस्तार, राष्ट्रीय-एकता आदिके ।

---

१. 'गीतिका', निराला, पृ० २४ ।
२. वही, पृ० ६४ ।
३. 'अर्चना', पृ० ६८-७२-९५ ।
४. 'नीहार', महादेवी, पृ० ७१ ।

सन् १९१२में लॉर्ड सिन्हा द्वारा भारतको राजभक्तिका उपदेश दिए जानेपर 'एक भारतीय आत्मा'ने ऐसे बालकोंका आह्वान किया था जो—

विश्वमें सब बहिनोंके लाल
रहे स्वातंत्र्य हिंडोले झूल,
स्वर्गसे वे देखो सानन्द
चढ़ाये जाते उनपर फूल;
अभागिन हूँ मैं ही भगवान
उड़ायी जाती मुझपर धूल,
गिराये जाते मुझपर वज्र
गड़ाये जाते मुझको शूल,
दोष-दुख-दुर्जन-घातक और
विश्व-रथके संचालक हों,
दुखी हूँ, दो, हे दीनानाथ !
देशमें ऐसे बालक हों।[१]

शत्रुओंसे होड़ लेने और अपनी महान् परम्पराको सुरक्षित रखनेका व्रत हजारों जवानोंने लिया।[२] कवियोंका विश्वास था कि बिना शक्ति-प्रदर्शनके स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती ![३] राष्ट्र-गौरवकी भावनासे कवि उद्वेलित हो रहे थे।[४]

जागरणकी ज्योतिसे लगभग कितने ही गीतोंका निर्माण '४७के पूर्व हुआ। प्रसादका प्रसिद्ध गीत 'बीती विभावरी जाग री' अपनी कलात्मक अभिव्यंजनाके लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है। सोहनलाल द्विवेदीने 'जाग सोये देश, अब जागोगे किस उषामें जब जगाया तब न जागे, ओ हठीले जाग, ओ जवानी जाग, जाग जनगण, आज कवि जाग आदि कई गीत

१. 'माता', माखनलाल चतुर्वेदी, पृ० ३८।

२. शत्रुको न कर सके क्षमा-प्रदान जो,
शात क्यों उसे न हारके समान हो ?
शूल क्यों न वक्षपर बनें विजय-सुमन !
फिर महान् बन ! मनुष्य !
फिर महान् बन !

—'हंसमाला', नरेन्द्र शर्मा, पृ० ७२।

३. जंजीर टूटती न कभी अश्रुधारसे
दुख-दर्द दूर भागता नहीं दुलारसे

—'नवीन', नेपाली, पृ० १।

४. इस महादेशकी सीमाएँ गा रहीं
एक स्वर एक गीत—
यह देश रहेगा नहीं दास, यह देश नहीं
अब मृत्यु-भीत !

—'हंसमाला', नरेन्द्र, पृ० ४८।

लिखे।[१] इन गीतोंमें कलात्मकताका अभाव है। अतः प्रेरणा सीधी-सादी तुकबन्दियोंमें व्याप्त हो गयी है।

स्वतन्त्रताप्राप्तिके बाद भी राष्ट्रकी समस्याएँ नहीं सुलझीं। कागजी स्वतन्त्रता तो मिली, मानसिक परतन्त्रता बनी रही। देश खुशहाल नहीं हुआ। इस भावकी रच-नाओंमें एक कसक, एक टीस मिलती है—

ढीली करो धनुषकी डोरी तरकसका कस खोलो।
किसने कहा युद्धकी बेला गयी, शान्तिसे बोलो।
किसने कहा, और मत बेधो हृदयवह्निके शरसे
भरो भुवनका अंग कुसुमसे, कुंकुमसे, केशरसे!
कुमकुम ले दूँ किसे? सुनाऊँ किसको कोमलगान?
तड़प रहा आँखोंके आगे भूखा हिन्दुस्तान।[२]

वास्तविक मंजिलपर अभीतक पहुँचना बाकी है—ऐसी भावना कवियोंके मनमें घर कर गयी—

(क) वह प्रदीप जो दीख रहा है झिलमिल, दूर नहीं है,
थककर बैठ गये क्या भाई, मंजिल दूर नहीं है,
चिनगारी बन गयी लहूकी बूँद गिरी जो पगसे;
चमक रहे, पीछे मुड़ देखो, चरण-चिह्न जगमगसे।
शुरू हुई आराध्य भूमि पड़, क्लान्ति नहीं रे राही;
और नहीं तो पाँव लगे हैं क्यों पड़ने डगमगसे?
बाकी होश तभीतक, जबतक जलता तूर नहीं है;
थककर बैठ गये क्या भाई! मंजिल दूर नहीं है।[३]

(ख) हरे हरे तरुओंका झुरमुट,
और अँधेरा झुटपुट-झुटपुट
जिसे मानते ध्रुवतारा वह माया ज्योति ललाम,
अभी दूर है पथिक तुम्हारे पथपरका विश्राम।[४]

भारतकी अधोगतिका चित्रण राष्ट्रीय भावनाओंके अमर गायक दिनकरने आजादीके आधे युगके बाद भी किया था—

किसको नमन करूँ मैं भारत! किसको नमन करूँ मैं!
वहाँ नहीं तू जहाँ जनोंसे ही मनुजोंको भय है!
सबको सबसे त्रास सदा सबपर सबका संशय है!
जहाँ स्नेहके सहज स्रोतसे हटे हुए जनगण हैं,

१. 'पूजा-गीत', गीत-संख्या, १४-१८, २६।
२. रामधारी सिंह 'दिनकर', मन्मथनाथ गुप्त, पृ० १३०।
३. 'चक्रवाल', दिनकर, पृ० १५७।
४. 'जय स्वतन्त्रते', अवस्थी, पृ० ५३।

झंडों या नारोंके नीचे बँटे हुए जन गण हैं।
कैसे इस कुत्सित, विभक्त जीवनको नमन करूँ मैं ।[१]

इसी भारतको सन् '४७ में कितनी आशासे बालकृष्ण रावने टेरा था—

धन्य है तू आज भारत !
शापको आशीषसे अभिमानको श्रीहत विनयसे
कर दिया तूने पराजित पाशविकताको प्रणयसे,
आजतक तेरे विलक्षण युद्धपर हँसता रहा जग;
सतत सभ्य समाज, भारत ![२]

सन् '४९ में प्रकाशित ग्रन्थमें पंतने नवचेतना, प्रेम, त्याग आदिका संदेश दिया था—

मैं गाता हूँ,
मैं प्राणोंका स्वर्णिम पावक बरसाता हूँ !
कब टूटेंगे मनके बन्धन,
रजकी तन्द्रा होंगी चेतन
कब प्रेम कामनाकी बाँहें,
खुल, तुम्हें करेंगी आलिंगन ।[३]

नये स्वतन्त्र देशका चित्रण निम्नांकित गीतमें भी बड़ी सफाईसे हुआ है । महाकवि पंतने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है[४]—

नयी उषा, नयी दिशा, नवीन आसमान है ।[५]

स्वयं पंतने भारतगीतमें भारत माँका शाश्वत स्वरूप बड़े कौशलसे उपस्थित किया है—

जय जन भारत, जनमन अभिमत
जन गणतन्त्र विधाता ।
गौरव भाव हिमालय उज्ज्वल
हृदय हार गङ्गाजल,
काट विन्ध्याचल सिन्धु चरणे तल,
महिमा शाश्वत गाता ।[६]

प्रयाण गीत

किसी युद्ध-भूमि या वीर-लक्ष्यकी प्राप्तिके उद्देश्यसे एक या अनेक व्यक्तियोंके अभि-

---

१. 'नील कुसुम', पृ० ८२ ।
२. 'कवि और छवि', पृ० ७८ ।
३. 'उत्तरा,' पृ० ७१ ।
४. 'विभावरी'की भूमिका, पृ० २ ।
५. 'विभावरी', किशोर, पृ० १२ ।
६. 'सुमित्रानन्दन पंत', बच्चन, पृ० १०५ ।

यान-गीतको प्रयाणगीत कहते हैं। इसकी रचनामें ओजस्वी शब्दों एवं चरणोंकी गतिके साथ मिलती हुई लय-गतिका ध्यान रखना होता है। हिन्दीमें पंचचामर छन्द उसके लिए सर्वथा उपयुक्त छन्द है। 'अलका' द्वारा गाया गया प्रसिद्ध प्रयाण-गीत इसी छन्दमें है—

हिमाद्रि तुंगशृंगसे
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो।[१]

प्रसादकी मन्दाकिनीका निम्नांकित गीत भी उत्कृष्ट प्रयाण-गीत है—

पैरोंके नीचे जलधर हो बिजलीसे उनका खेल चले,
सङ्कीर्ण कगारोंके नीचे शत-शत झरने बेमेल चले,
तब भी गिरिपथका अथक पथिक ऊपर-ऊँचे सब झेल चले।[२]

आगे इस गीतमें 'पादप निज पद हों चूम रहे' कहकर प्रसादने मंजिलकी ऊँचाईका अत्यन्त कलात्मक चित्रण किया है।

सोहनलाल द्विवेदीने 'पूजागीत'में तीन प्रयाण गीत लिखे हैं 'बढ़े चलो बढ़े चलो', 'जय-जय, जय, उठो बढ़ो आगे'। इनमें प्रयाण-गीतके अनुकूल प्रवाह केवल बढ़े चलो बढ़े चलोमें है। शेषको गाते चलनेमें बाधा होती है—

उठो बढ़ो आगे, स्वतन्त्रताका स्वागत सम्मान करो।
वीर सिपाही बन करके बलिवेदीपर प्रस्थान करो।
तनपर खादी सजी निराली, मनमें देशभक्ति मतवाली,
करमें हो स्वराज्यका झंडा, उरमें माँका ध्यान करो।[३]

प्रयाणगीतके लिए केवल राष्ट्रीय भाव पर्याप्त नहीं, उसके लिए गति बहुत महत्त्वकी वस्तु है।

गति और गेयताकी दृष्टिसे डॉ० किशोरके दो प्रयाणगीत पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुके हैं—आकाशवाणी और जनकंठोंसे—

(१) बढ़े चलो जवान तुम बढ़े चलो-बढ़े चलो!
(२) आगमें पले हुए शूलमें खिले हुए
सर उठाके नवजवाँ बढ़ो, बढ़ो, बढ़ो।[४]

—यह गीत 'ड्रम'की आवाजपर खूब जमता है!

---

१. 'चन्द्रगुप्त', प्रसाद, चतुर्थ अंक, पृ० २३१।
२. 'ध्रुवस्वामिनी', प्रथम अंक, पृ० ३९।
३. पृ० १२५, ११४, १२९।
४. 'विभावरी', पृ० २५-२६।

दिनकरने एक प्रयाणगीत स्वतन्त्रताके पूर्व लिखा था—स्वतन्त्रताके बादका प्रयाण-गीत धूप और धुआँमें संगृहीत है। पहले गीतमें गति है—भाव सीधे-सादे हैं—साम्य-वादसे प्रभावित—

अरुण ध्वजाधर तरुण सकल !
कामरेड, कामरेड, चल चल चल
अभय उड़ाते विजय-निशान
लाँघ श्रृंग, नद, रेगिस्तान
देश देशके वीर जवान
एक ध्येयकी ओर अटक
कामरेड, कामरेड, चल, चल, चल[1]।

दूसरा गीत अधिक सफल है— भारतीय सेनाका प्रयाण गीत—

जाग रहे हम वीर जवान
जियो, जियो अय हिन्दुस्तान।
हम प्रभातकी नयी किरण हैं
हम दिनके आलोक नवल,
हम नवीन भारतके सैनिक
धीर, वीर, गम्भीर, अचल।
हम प्रहरी ऊँचे हिमाद्रिके,
सुरभि स्वर्गकी लेते हैं।
हम हैं शान्तिदूत धरणीके,
छाँह सभीको देते हैं।
वीर-प्रसू माँकी आँखोंके
हम नवीन उजियाले हैं
गङ्गा-यमुना हिन्द महासागर
के हम रखवाले हैं।
तन, मन, धन तुमपर कुर्बान।
जियो, जियो अय हिन्दुस्तान।[2]

आरसीप्रसाद सिंहके प्रयाणगीतमें गतिशीलता है—आगे बढ़नेकी उमङ्ग—

आगे बढ़, आगे बढ़
हिम्मत कर, हिम्मत कर

सारांश यह कि आधुनिक हिन्दी काव्यमें प्रयाण-गीतोंकी अच्छी संख्या है, जो राष्ट्रीय भावोंसे ओत-प्रोत और गेय है। उनमें आशावादिता और लक्ष्य-जयकी भावना भरी हुई है।

---

१. 'हुंकार', पृ० ९५।

२. 'धूप और धुआँ', पृ० ३३-३४।

उत्सव गीत

उत्सवोंपर गाये जानेकी क्षमता लोकगीतोंकी विशेषता है। जन-जीवनका आह्लाद सामाजिक रूपमें उत्सव और आन्तरिक स्तरपर गीत बनकर प्रकट होते हैं। छट, दिवाली, दशहरा, सावनपूजा, तीज आदि व्रतोंके अवसरपर अनेक लोकगीत, मगही, मैथिली, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी आदिमें मिलते हैं। खड़ी बोलीमें ऐसे गीतोंकी संख्या नगण्य है। आधुनिक कालमें होली, दिवाली और दुर्गापूजासे सम्बद्ध कुछ गीत पत्र-पत्रिकाओंके विशेषांकोंमें देखनेको मिल जाते हैं।

खड़ी बोलीमें सर्वश्रेष्ठ होली-गीत निरालाकी रचना है—

> नयनोंके डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली!
> जागी रात सेज प्रिय पति-संग रति सनेह रंग घोली,
> दीपित दीप-प्रकाश कुंजछवि मंजु-मंजु हँस खोली—
> मली मुख-चुम्बन-रोली।
> प्रिय-कर-कठिन-उरोज-परस कस कसक मसक गयी चोली,
> एक-वसन रह गयी मन्द हँस अधर-दशन अनबोली—
> कली-सी काँटेकी तोली।
> मधु-ऋतु-रात, मधुर अधरोंकी पी मधु सुध-बुध खोली,
> खुले अलक मुँद गये पलक-दल श्रम-सुखकी हद होली
> बनी रतिकी छवि भोली।
> बीती रात सुखद बातोंमें प्रात पवन प्रिय डोली!
> उठी सँभाल बाल, मुख-लट, पट, दीप बुझा हँस बोली—
> —रही यह एक ठिठोली।[1]

शब्दोंका चयन, समस्त पद-योजनाकी सांगीतिकता स्वकीया-प्रेम, 'रही यह एक टठोली'का नियन्त्रण—सब कुछ अत्यन्त कलात्मक, अत्यन्त रस-मादक है। फागुनकी सुषमाका एक गीत और भी निरालाने लिखा है, पर वह जमा नहीं है—

> खेलूँगी कभी न होली
> उससे जो नहीं हमजोली।
> जिनसे होगा कुछ नाता
> उनसे रह लेगा माथा;
> उनसे है जोड़-जाता,
> मैं मोल दूसरे मोली![2]

एक होली-गीत 'साकेत'के नवम सर्गमें भी आया है, पर इसमें भाव-वैचित्र्य नहीं, वर्णनात्मकता भर है—

---

१. 'गीतिका', पृ० ४६।

२. 'अर्चना', पृ० ३४।

काली-काली कोयल बोली—
होली-होली-होली।
हँसकर लाल-लाल होठोंपर हरियाली हिल डोली,
फूटा यौवन, फाड़, प्रकृतिकी पीली-पीली चोली। होली...
अलस कामिनीने कलरव सुन उन्मद अँखियाँ खोली,
मलती ऊषाने अम्बरमें दिनके मुखपर रोली।
रागी फूलोंने परागसे भरली अपनी झोली,
और ओसने केसर उनके स्फुट-सम्पुटमें घोली।
ऋतुने रवि-शशिके पलड़ोंपर तुल्य प्रकृति निज तोली,
सिहर उठी सहसा क्यों मेरी भुवन-भावना भोली?
गूँज उठी खिलती कलियोंपर उड़ अलियोंकी टोली,
प्रियकी श्वास-सुरभि दक्षिणसे आती है अनमोली।
होली, होली, होली।[१]

कहाँ 'प्रिय-कर-कठिन-उरोज-परस-कस मसक गयी चोली' और कहाँ 'फाड़ प्रकृतिकी पीली-पीली चोली!' निरालाकी अभिव्यक्तिमें नागरिकता है, गुप्तमें ग्रामीणता। एकमें बौद्धिक गरिमा है, दूसरेमें ठेठ फूहड़पन!

दीपावलीके अवसरपर दीपमालिकाके बहाने कवि अपनी व्यथाका आभास देता है और दीपावलीमें होलीकी झाँकी देखता है। जीवनकी विषमता दो-दो उत्सवोंका एकीकरण देखते बनता है—

जो औरोंको ज्योतिदान दे उसके घरमें ही अँधियारा,
जिसके अपने रूठ गये, जो अपनी ही बाजीसे हारा,
पूछ न उसके जले हृदयसे जीवन संध्यामें एकाकी—
आज दिवालीमें भी आँसूसे क्यों फाग मनाता खुलकर
ऊपर हास, कसक ले भीतर!

ये प्राणोंके दीप किसीके जलते मौन, जलाते खुलकर[२]।

१५ अगस्त और २६ जनवरीके राष्ट्रीय उत्सवोंके अवसरपर राष्ट्रीय गीत और प्रयाण-गीत गाये जाते हैं, जिनका उल्लेख पिछले पृष्ठोंपर किया जा चुका है। सरस्वती-पूजाके अवसरपर वाणी-वन्दना गायी जाती है, जिसका उल्लेख प्रार्थनापरक गीतोंके अन्तर्गत किया जा चुका है।

हिन्दीमें ये जो थोड़ेसे उत्सव-गीत मिलते भी हैं, वे इतने कलात्मक हैं कि जन-जीवनसे उनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं दीखता। प्राकृतिक सुषमा और ऋतु-उत्सवोंसे सम्बद्ध शुद्ध गीतोंका नितान्त अभाव है।

---

१. मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ३१२-१३।
२. 'शेफालिका', डॉ० किशोर, पृ० २५।

शोक-गीत

शोक-गीतको करुण गीत भी कहते हैं; क्योंकि करुणका स्थायी भाव शोक है। किसीकी मृत्यु और उससे सम्बद्ध दुःखका भाव शोक-गीतका प्रधान लक्ष्य है। इसमें संवेगका आधिक्य होता है। यह व्यक्तिगत सम्बन्धके अधीन किसी पारिवारिक सदस्यकी मृत्यु या सामूहिक स्तरपर किसी महापुरुषके महाप्रयाणसे सम्बन्ध रखता है। वैयक्तिक स्तरपर शोकगीतमें कविके सम्बन्ध और उसके प्यार-मनुहारकी बातें होती हैं, किन्तु किसी महापुरुषके प्रति लिखे गये शोकगीतमें उसकी चारित्रिक विशेषता एवं उच्चादर्शोंका उल्लेख तथा उसके जीवन-सन्देशका वर्णन रहता है। किसी-किसी शोकगीतमें विलापके पश्चात् प्रशान्त मनोदशा और दार्शनिक तटस्थता भी मिलती है।

संस्कृत-साहित्यमें शोक-गीत नामका कोई विवरण नहीं मिलता। ग्रीक-साहित्यमें तथा अंग्रेजी-साहित्यमें 'एलिजी' नामसे इसका प्रचलन मिलता है। प्रारम्भमें पाश्चात्य साहित्यमें एक विशेष प्रकारके पंचपदी या षट्पदी छन्दोंमें ही शोकगीत लिखे जाते थे। किन्तु बादमें यह बन्धन उठ गया। नाथूराम शर्मा शंकरके 'स्वामी दयानन्द सरस्वती', 'गणपति-प्रयाण', 'हाय मिस्टर गोखले'की तरह सुमङ्गल सिंह 'सुमन'का 'हा प्रसाद'; उदयशंकर भट्टकी 'सैनिककी मृत्युशय्यापर', निरालाकी 'सरोज स्मृति' और 'तिलांजलि' तथा गांधी, राजेन्द्र, जवाहरपर लिखी गयी अनेक रचनाएँ शोक-गीतके उदाहरण मानी जाती हैं। उर्दूमें लिखी जानेवाली मर्सियामें भी शोकके ही भाव होते हैं। उसमें स्फुट गीत भी होते हैं और पद्यबद्ध वर्णन भी।

यद्यपि अपनी पुत्रीकी असामयिक मृत्युकी करुण गाथा 'सरोज-स्मृति'की रचना शोकगीतके सभी लक्षणोंसे परिपूर्ण है तथापि उसमें छन्दका विधान इस प्रकार है कि उसे भलीभाँति गाया नहीं जा सकता। यथा—

धन्य मैं पिता निरर्थक था।
कुछ भी तेरा हित न कर सका॥
जाना तो अर्थागमोपाय।
पर रहा सदा संकुचित काय।

× × ×

लिखता अबाध गति मुक्त छन्द।
पर सम्पादकगण निरानन्द॥
लौटी रचना लेकर उदास।
ताकता हुआ मैं दिशाकाश॥
बैठा प्रान्तरमें दीर्घ प्रहर।
व्यतीत करता था गुनगुनकर॥
सम्पादकके गुण यथाभ्यास।
पासकी नोचता हुआ घास॥

× × ×

दुख ही जीवनकी कथा रही,
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।[१]

अन्तिम दो पंक्तियाँ ही इस शोकगीतका केन्द्रीय भाव है। निरालाके इस शोकगीतमें शृंगार-वात्सल्य और व्यंग्यका भी पुट मिलता है। इस रचनामें एक शोक-विह्वल पिताके और वह भी आर्थिक दृष्टिसे असमर्थ पिताके करुण विलापका अत्यन्त मर्मस्पर्शी उदाहरण है। 'सरोज-स्मृति'में विलापका हल्कापन नहीं, एक दार्शनिक गम्भीरता वर्त्तमान है।

महापुरुषोंके प्रति लिखे गये शोकगीतोंमें 'खादीके फूल' और 'सूतकी माला' श्रेष्ठ ग्रन्थ हैं। दोनोंमें बापूके महाप्रयाणसे सम्बद्ध रचनाएँ हैं। प्रथममें पंत और बचनकी सम्मिलित रचनाएँ हैं, दूसरेमें सिर्फ बचनकी। इन शोकगीतोंमें सांगीतिकताका निर्वाह बच्चनकी कुछ रचनाओंमें पूर्ण मात्रामें हुआ है। प्रमाणस्वरूप एक उदाहरण प्रस्तुत है—

उठ गये आज बापू हमारे,
झुक गया आज झण्डा हमारा।
देशकी आन ओ बान वे थे,
देश के एक अरमान वे थे,
देश के फख्र और नाज वे थे,
देश के एक अभिमान वे थे।[२]

मेरी दृष्टिमें शोक-गीतका पुष्ट उदाहरण 'निशा-निमत्रण' है। बच्चनने अपनी परिणीता श्रीमती श्यामादेवीके स्वर्गारोहणके बादके दुःख और अवसादको अनेक गीतों-में बाँधनेका प्रयास किया है। शोकगीत लिखनेकी अवस्थामें जैसी मनोदशाएँ हो सकती हैं, उनके विविध रूपोंका चित्रण 'निशा-निमन्त्रण'के गीतोंमें हुआ है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :—

(क) आज पड़ा हूँ मैं बनकर शव,
जीवन में जड़ता का अनुभव,
किसी प्रतीक्षा की सुधि से ये पागल आँखें पथराईं।

—पृ० ४५

(ख) एक ही होता इशारा,
टूटता रह-रह सितारा,
एक उत्तर सर्व प्रश्नों का! महासंताप!

—पृ० ५३

---

१. 'अनामिका', पृ० ११७।

२. 'सूतकी माला', बचन, पृ० २।

(ग) आँसू की दो धार बहेगी,
दो-दो मुट्ठी राख उड़ेगी;
और अधिक चमकीला होगा, जगका रंग, जगत की टोली।
—पृ० ७३

सम्बोध गीत

यह एक ऐसी संगीतात्मक रचना है, जिसमें किसीको सम्बोधित किया जाता है, जिसका विषय प्रायः गम्भीर चेतना से सम्बद्ध होता है, जिसका एक निश्चित उद्देश्य होता है और जिसमें तर्कसम्मत विचार होते हैं। इसमें एक काव्यमयी वक्तृताका आभास मिलता है। इसमें किसीको सम्बोधित कर कवि अपने मनोभावों का विस्तारसे वर्णन करता है। अंग्रेजीमें दो प्रकारके सम्बोध गीत (ओड्स)के प्रचलन मिलते हैं—एक होरेशियन और दूसरा पिण्डारिका प्रथममें एक ही अनुच्छेदकी आवृत्ति होती है। यह सरल माना गया है। दूसरेमें तीन अनुच्छेदोंके खण्ड होते हैं। प्रत्येक प्रकारके सम्बोध गीतमें भावोंके आरोह-अवरोह मिलते हैं।

हिन्दीमें अंग्रेजीके विधानकी नकल नहीं है। यहाँ विभिन्न छन्दोंमें अनेक प्रकारके सम्बोध गीत लिखे गये। संस्कृतमें मेघदूत, पवनदूत आदि दूत काव्योंमें सम्बोधनकी शैली मिलती है। इनमें मेघ, पवन, हंस आदि संदेशवाहक हैं। इसमें मध्यस्थता भी होती है। कवि और सम्बोधित पात्रके बीच सीधा सम्बन्ध भी होता है।

डॉ० रामकुमार वर्माकी 'नूरजहाँ', 'अरे निर्जन वनके निर्मल निर्झर' और 'ये गजरे तारोंवाले' अत्यन्त सफल सम्बोध गीत हैं। इनमें नूरजहाँकी अपेक्षा 'ये गजरे तारोंवाले' में अधिक संगीतात्मकता है। दोनोंमें भावुकता और कल्पनाशक्तिका समन्वय मिलता है। एकमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है, दूसरेमें प्राकृतिक—

इस सोते संसार बीच,
जगकर सजकर रजनी बाले;
कहाँ बेचने ले जाती हो
ये गजरे तारों वाले;
मोल करेगा कौन,
सो रही है उत्सुक आँखें सारी
मत कुम्हलाने दो
सूनेपनमें अपनी निधियाँ सारी।

इसका अन्त अत्यन्त कलात्मक है—प्रकृति और कविके तादात्म्य एवं रूपकके चित्रके सर्वथा अनुकूल—मानवीकरणकी सुन्दरतासे जगमग—

यदि प्रभात तक कोई आकर
तुमसे हाय न मोल करे

तू फूलों पर ओस रूप में
बिखरा देना सब गजरे।[१]

शबनमकी नन्हीं बूँदोंसे उजले तारोंकी समता और प्रातः होनेपर तारोंका अदृश्य हो जाना एवं पुष्पोंपर शबनमका दीखना—वस्तुसत्यको कल्पनाने कितना भव्य और स्वाभाविक रूप दिया है।

कहता है भारत तेरे गौरव की एक कहानी
वैभव भी बलिहार हुआ पा तेरे मुख का पानी
नूरजहाँ ! तेरा सिंहासन था कितना अभिमानी,
तेरी इच्छा ही बनती थी जहाँगीर की बानी।[२]

इस रचनाका अन्त शोकके साथ हुआ है। उस शोकका हाथ थामे उद्बोधन भी प्रकट हुआ है—

नूर रहित हो गया जहाँ
तेरे जग से जाने से
नूरजहाँ ! तू जाग-जाग फिर
मेरे इस गाने से।

निर्झरको सम्बोधित कर कविने उसके मीठे संगीत और संघर्षमय ऐकान्तिक प्रेमके रहस्यको जाननेकी उत्सुकता प्रकट की है—

अरे निर्जन वन के निर्मल निर्झर !
इस एकान्त-प्रान्त प्रांगण में
किसे सुनाते सुमधुर स्वर ?
अपना ऊँचा स्थान त्याग कर,
क्यों करते हो अधःपतन ?
कौन तुम्हारा वह प्रेमी है,
जिसे खोजते हो वन-वन ?
× × ×
अविचल चल, जलका छल-छल
गिरिपर गिर-गिर कर कल-कल स्वर !
पल-पल में प्रेमी के मन में
गूँजे ऐ कातर निर्झर;[३]

निरालाकी 'यमुनाके प्रति' और तरंगोंके प्रति, प्रियाके प्रति, जलदके प्रति, प्रपातके प्रति, पन्तकी विहगवालाके प्रति, छाया; दिनकरकी 'समाधिके प्रदीपसे', 'हिमालयके

१. 'अंजलि', पृ० ८।
२. 'रूपराशि', पृ० ६५।
३. 'आधुनिक कवि', पृ० ९७-९८।

प्रति' बालिकासे वधू आदि रचनाएँ अच्छे सम्बोध-गीत हैं। निरालाकी तरंगोंके प्रति रचनामें 'लघु-विराट' चित्रोंकी योजना एवं 'रूप और भावना'का 'अरूपमें सार्थक अवसान' मिलते हैं। उपर्युक्त मानवीकरण देखने योग्य है—

किस अनन्त का नीला आँचल हिला-हिला कर-
आती हो तुम सजी मंडलाकार।
सोह रहा है हरा क्षीण कटि से अम्बर शैवाल।

× × ×

तिमिर तैर कर भुज-मृणाल से सलिल काटती
आपस में तुम करती हो परिहास।
गला शिला का कभी ऐंठती, कभी डाँटती
कभी दिखाती हो जगती को त्रास।[१]

इसी प्रकार यमुनाके प्रति[२] कवितामें बुद्धि और भावनाका मणिकांचन संयोग, अतीतकी सांस्कृतिक गरिमाका चित्रण और अप्रस्तुत विधानकी मनोहारिता द्रष्टव्य है। रामकुमारकी नूरजहाँकी भाँति इसमें भी अव्यक्त वेदना मिलती है। 'प्रियाके प्रति'[३] रचनामें श्रीमती मनोहरा देवीका रूपांकन प्रतीत होता है। प्रपातके प्रति[४] कवितामें अन्धकारपर प्रकाश की, जड़पर चेतनकी विजयका संकेत है। दिनकरके हिमालयके प्रति रचनामें ऐतिहासिकता और भावुकताका समन्वय अत्यन्त ओजस्वी धरातलपर हुआ है—

तू पूछ अवध से राम कहाँ ?
वृन्दा बोलो घनश्याम कहाँ ?
ओ मगध ! कहाँ मेरे अशोक
वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहाँ ?

× ×

तू मौन त्याग कर सिंहनाद,
रे तपी ! आज तपका न काल !
नवयुग शंख-ध्वनि बजा रही,
तू जाग जाग मेरे विशाल।[५]

'समाधिके प्रदीपसे' कवितामें करुणाकी भावना प्रबल है—

तुम्हारी इस उदास लौ बीच
मौन रोता किसका इतिहास ?

---

१. 'परिमल', पृ० ८०।
२. वही, पृ० ४५-६१।
३. 'मतवाला', वर्ष ४, अंक २३।
४. 'परिमल', पृ० १६७।
५. रेणुका, पृ० ४।

कौन छिप क्षीण शिखा में दीप
सृष्टि का करता है उपहास ।[१]

वस्तुतः हिन्दीके सम्बोध गीतियोंमें रागात्मकता, कल्पनाशीलता, वैयक्तिकता, अनुभूति प्रवणता आदि सभी गुण तो मिलते हैं, पर उन सबमें गेय तत्त्वका पूर्ण निर्वाह नहीं दीखता । उनमें प्रायः संक्षिप्तता नहीं, वर्णनात्मकता होती है ।

वीर गीत

यह वर्णनात्मकता प्रधान होता है । यह कथाकाव्यका एक रूप है । काव्य-कलाका यह अत्यन्त प्राचीन रूप है । महाकाव्यका यह आदि रूप है । प्राचीन वीर-गीतोंके रचयिताके नाम भी लोकगीतकारोंकी भाँति अज्ञात हैं । रोमांचकारी घटनाएँ, साहसिक कथाएँ, युद्ध-वर्णन, शत्रु-कन्या-हरण आदि प्रमुख आधार होते हैं । प्रत्यक्ष चित्रण और विप्र वर्णन इसकी विशेषताएँ हैं । इनमें पर्याप्त नाटकीयता होती है । इसके अन्तर्गत शृंगार-वर्णन भी मिलता है ।

हिन्दीमें 'आल्हा-ऊदल' आदर्श वीर गीत है । इसके अत्यन्त ओजस्वी शब्दोंमें दो वीरोंकी कथा गायी गयी है । आधुनिक हिन्दी काव्यमें इनका अभाव है । आज लोक-गीतोंके निर्माणकी सहज वृत्ति एवं वातावरणका अभाव है । वीर भावनाका विकास राष्ट्रीय गीतोंमें हुआ है, जिनका विवेचन पिछले पृष्ठोंमें किया जा चुका है ।

व्यंग्य गीत

व्यंग्य और हास्यमें विशेष अन्तर सोद्देश्यताका है । हास्यका प्रधान उद्देश्य महज मनोरंजन है, पर व्यंग्यका लक्ष्य दोष-परिमार्जन है । व्यंग्यमें तिलमिला देनेकी शक्ति रहती है । कुरीतियोंपर प्रहार रहता है । यह व्यक्ति-प्रधान, समाज-प्रधान और आत्मगत (स्वयं कविपर) होता है । यों तो हिन्दीमें कबीरके साहित्यमें अच्छा व्यंग्य मिलता है— धर्मान्धता, सामाजिक कुरीतियों तथा जर्जर परम्पराओंपर, लेकिन आधुनिककालमें सबसे अच्छा व्यंग्य निरालाके कुकुरमुत्ता, नये पत्ते और बेलामें है । किन्तु इनमेंसे बहुत कम रचनाएँ गीतिकाव्यके अन्तर्गत आती हैं । कुकुरमुत्ताकी सभी रचनाएँ मुक्त-छन्दमें हैं ।

सन् '४६ के विद्यार्थियोंके देश-प्रेमके सम्मानमें निरालाने 'खूनकी होली जो खेली' गीत लिखा है ।[२] इसमें तत्कालीन अत्याचारपर गम्भीर संकेत है । जाति-बन्धनकी व्यर्थतापर अच्छा प्रहार 'प्रेम-संगीत'में मिलता है ।[३] पूँजीपतियोंपर करारी चोट 'बेला'-के इस गीतमें है—

भेद कुल खुल जाय वह
सूरत हमारे दिल में है ।

---

१. वही, पृ० ८६ ।

२. पृ० १०४ ।

३. वही, पृ० ४६ ।

देश को मिल जाय जो
पूँजी हमारी मिल में है……।[१]

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्रीके एक मेघ-गीतमें सामाजिक व्यंग्यका बड़ा कलात्मक रूप मिलता है—

ताड़ खड़खड़ाते हैं केवल, चील गीध ही गाते,
द्रवित दाह भी जम जाता धरती तक आते-आते।
कलरव करनेवाले पंछी, पत्तों वाली डाली,
उन्हें कहाँ ठंढक मिलती है, इन्हें कहाँ हरियाली ?
ऊपर-ऊपर पी जाते हैं, जो पीनेवाले हैं
कहते,—ऐसे ही जीते हैं, जो जीनेवाले हैं।[२]

व्यंग्य काव्यमें सत्यको अनावृत करके देखा जाता है। इसमें सांकेतिकता और संक्षिप्तता होती है। व्यंग्यकारमें निर्भयता और मस्तीकी आवश्यकता है। व्यंग्यकी सफलता संघर्षोंसे जूझे हुए व्यक्तिमें अधिक संभव है। इसमें यथार्थता, प्रगतिशीलता होती है। सांकेतिक व्यंजना व्यंग्यको तीव्र बनाती है।

शिष्ट, सांकेतिक एवं वैयक्तिक प्रतिक्रियाकी दृष्टिसे समाजके प्रति बच्चनका यह व्यंग्य अत्यन्त उत्कृष्ट है—

क्या किया मैंने नहीं जो
कर चुका संसार अब तक
वृद्ध जग को क्यों अखरती
है क्षणिक मेरी जवानी
मैं छिपाना जानता तो
जग मुझे साधू समझता
शत्रु मेरा बन गया है
छलरहित व्यवहार मेरा ![३]

काव्यके नामपर आन्दोलन चलानेवाले कवियोंपर जानकीवल्लभ शास्त्रीका यह व्यंग्य बड़ा खरा है—

लिखने का हो विषय लड़ाई या धनकटनी,
मारपीट में ओज-चोज की चोखी चटनी,
खलिहानोंमें भुस्स, बात खेतों की न्यारी,
बलिहारी, नारीमय होती क्यारी-क्यारी।

---

१. पृ० ४५।
२. 'मेघ-गीत', पृ० ५३।
३. 'मधुकलश', पृ० ४२।

इसी भाँति दिखते-दिखते सब दिख जाता है।
लोह लेखनी वाला क्या-क्या लिख जाता है।[1]

इसी तरह हास्यरसके कवियोंमें बेढब, बेधड़क, चोंच, गोपालप्रसाद व्यास आदि-के अनेक गीतोंमें व्यंग्यके अच्छे उदाहरण मिलते हैं।

हास्य और परिवृत्ति गीत

आज हास्यके आलम्बन नेता, मिनिस्टर, व्यापारी, छात्र, शिक्षक, पुजारी, वकील, पत्रकार, समालोचक आदि हैं। हास्य दो रूपोंमें मिलता है—शुद्ध हास्य गीत और परि-वृत्ति गीत। दोनों प्रकारकी रचनाओंके क्षेत्रमें बेढ़ब, बेधड़क, चोंच, गोपालप्रसाद व्यास, हरिशंकर शर्मा आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी रचनाओंमें स्वयं कवि भी अपने ऊपर व्यंग्यकर हास्य उत्पन्न करते हैं।

आजका जीवन इतनी अधिक विषमताओं, दुश्चिन्ताओं और संघर्षोंसे भरा है कि हास्य और व्यंग्य प्रधान रचनाएँ अधिक सुखद प्रतीत होती हैं। क्षण भरको आदमी जी खोलकर हँस लेता है। अपने ऊपर किये गये हास्य और व्यंग्यको भी सामाजिक आनन्दपूर्वक ग्रहण कर लेते हैं।

यों तो दोहे, चौपाई, कुण्डलियाँ, मुक्तछन्द—प्रायः सभी प्रमुख छन्दोंमें हास्य रसकी कविताएँ मिलती हैं, पर यत्र-तत्र गीत शैली भी अपनायी गयी है। बेधड़क बनारसीकी प्रसिद्ध रचनामें **सुन्दर और असुन्दर दोनों साथ-साथ इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।** हरिशंकर शर्माके चिड़ियाघरकी निम्नलिखित पंक्तियाँ भी अच्छी बन पड़ी हैं—

नाथ ऐसा दो आशीर्वाद।
हो जावें हम भारतवासी, सबके सब बरबाद,
भारत पड़े भाड़ में चाहे, घटे न पद मर्याद।
रहे गुलामी के गड्ढे में करें नहीं फरियाद,

परिवृत्ति गीत (पेरोडी) में मूल कविके शब्दोंके हेर-फेर या किंचित् परिवर्तनसे हास्य उत्पन्न किया जाता है। कहीं-कहीं टेककी पंक्ति ठीक रखकर आगे की पंक्तियोंमें बात बदल दी जाती है। कहीं-कहीं केवल छन्दका अनुकरण रहता है। मनोरंजनप्रसाद सिंहने—'जयद्रथ-वध' और 'भारत-भारती'के कुछ छन्दोंकी सफल 'काव्य-विडम्बना' 'फेशनाष्टक' शीर्षकसे की है—

वाचक, प्रथम सर्वत्र ही तुम जयति जय फेशन कहो,
फिर सभ्य पुरुषों की सुखद शिक्षा-तरंगों में बहो
गर लात या जूते पड़े तो धैर्यपूर्वक सब सहो,
होगी सफलता क्यों नहीं, हरदम खुशामद में रहो।[2]

---

१. 'संगम', पृ॰ २३।
२. 'गुनगुन', पृ० १२३।

चोंचने महाकवि साँड़में 'जाके प्रिय न राम वैदेही' तुलसीके इस पदकी अच्छी पैरोडी 'जा को प्रिय न माँगको लोटा' शीर्षकसे की है।

बेधड़कने बच्चनकी त्रियामाके गीतोंकी अच्छी नकल की है। शुद्ध हास्यकी दृष्टिसे पत्नी-केन्द्रित गोपालप्रसाद व्यासकी रचनाएँ भी सरस होती हैं—

मेरे साजन ! मेरे साजन !
पेण्ट पहन कर खड़े हुए
मैं उनको कोट पिन्हाती हूँ
मोजे-जूते पहना करके
फीतोंमें गाँठ लगाती हूँ।
वे टाई अपनी बाँध रहे,
मैं 'नाट'-गाँठ सुलझाती हूँ।
वे मुँह पर हाथ मसलते हैं,
मैं शीशा उन्हें दिखाती हूँ।[1]

गीतिशैलीमें बिहारके रामजीवन शर्मा जीवनकी यह रचना भी सफल हुई है—

नवयुग का निर्माण देख लो।
कौन कहेगा उनको धोबी,
रोप रहे हैं आलू कोबी॥
रघुआ से रघुनन्दन बन कर पाते हैं सम्मान देख लो।
पहले खाते थे जो अलुआ,
अब खाते हैं पूरी हलुआ।
कल जो चन्दा माँग रहे थे, वे अब देते दान देख लो।[2]

उपालम्भ गीत

अपने प्रेमीकी निष्ठुरता और अपने खण्डित प्रेमकी दुहाई देनेवाले वियोगकी अवस्थामें उपालम्भका आश्रय लेते हैं। प्रियके प्रत्यक्ष होनेपर भी उनकी अतीतकी उपेक्षाओंके प्रति उलाहनाएँ दी जाती हैं। हिन्दीमें ही क्या, विश्व साहित्यमें भ्रमरगीत सर्वश्रेष्ठ उपालम्भ गीत है।

आधुनिक हिन्दी गीति काव्यमें भी कुछ अच्छे उपालम्भ गीत मिलते हैं। पारलौकिक प्रियतमके रहस्यमय आगमन और संकेतोंके प्रति विनम्र आत्माकी उलाहना कितनी मनमोहक है—दार्शनिक मुद्रामें लिखा गया डॉ० रामकुमार वर्माका यह गीत कितना मर्मस्पर्शी है—

---

१. 'अजी सुनो······', पृ० ३९।
२. 'अट्टाहास', पृ० १।

इस भाँति न छिपकर आओ।
अन्तिम यही प्रतीक्षा मेरी
इसे भूल मत जाओ।[१]

प्रकृतिमें सर्वत्र मिलनका साम्राज्य है, लेकिन दिनभर प्रतीक्षा करते-करते कवि कैसी दुःख भरी उलाहनामें प्रियाको स्मरण करता है—

आज भी तो तुम न आयी।
ज्योति से आकर मिला तम
नीड़ को लौटे विहंगम।
पर तुम्हारे नूपुरों की ध्वनि नहीं देती सुनाई।[२]

पावसकी मनमोहिनी ऋतुमें आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री अपनी प्रियाको खुल-खिलकर खेलनेको कैसे उकसाते हैं, कैसे एक लजवन्तीको उलाहना देते हैं, देखते ही बनता है—

अन्धकार-सघन-गगन आज रे।
आओ, आँगन में, सखि आओ,
झूम-झूम, झुक-झुक टुक गाओ,
रोज-रोज रहता गृह काज रे।
वहाँ भी घिरे होंगे ये घन,
वहाँ भी भरा होगा सावन,
कितनी निष्ठुर उनकी लाज रे।[३]

विचारात्मक गीत

विचारात्मक गीतके अन्तर्गत वे रचनाएँ आती हैं, जिनमें भावनाएँ ठोस होकर चिन्तन बन गयी हैं। उनमें एक दार्शनिक गम्भीरता भरी होती है। पन्तने ऐसे गीत विशेष रूपसे लिखे हैं। 'तप रे मधुर-मधुर मन' शीर्षक गीतमें कविने साधनाकी आँचमें मनको शुद्ध-बुद्ध बननेकी सलाह दी है—

तप रे मधुर-मधुर मन।
विश्व-वेदना में तप प्रतिपल,
जग-जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुप, उज्ज्वल और कोमल,
तप रे विधुर-विधुर मन।[४]

निरालाका बौद्धिक स्तर बहुतसे गीतोंमें मिलता है—

---

१. 'आधुनिक कवि', पृ० ४२।
२. 'विभावरी', डॉ० किशोर, पृ० ८।
३. 'मेघ-गीत', पृ० २५।
४. 'गुंजन', पृ० ११।

(क) ज्ञान की तेरी तुरी है,
आसुरी माया दुरी है।
किरण की राखी प्रकृति ने
हरित कर बाँधी विभव के—
चरण कमलों के चढ़ाए
भार खग कुल कण्ठ रव से
कमलके खोले कटोरे
मधु भरे; फेरी धुरी है।[१]

(ख) सजी क्या तन तुम्हारे लिए हे प्रमन,
अप्सरा, अंगके संगके अपशमन।[२]

कम-से-कम शब्दोंमें अधिकसे अधिक भाव भरनेकी चेष्टाने निरालाके इन गीतोंमें दुरूहता भर दी है।

परमात्मासे भटकी हुई जीवात्माके भावोंका चित्रण जानकीवल्लभके इस गीतमें बड़ा सफल हुआ है—विचारोंको प्रतीकोंके माध्यमसे व्यक्त किया गया है—

बना घोंसला पिंजड़ा पंछी !
उस अनन्तसे कौन मिलाये
जिससे तू खुद बिछड़ा पंछी ![३]

उपदेशात्मक गीत

कवि समाजका मनोरंजन ही नहीं करता, उसे शिक्षित भी करता है। कान्तासम्मत उपदेश देनेकी परिपाटी पुरानी है। किन्तु आजकलके गीतोंमें यह उपदेशात्मकता द्विवेदी युगकी अपेक्षा बहुत कम हो गयी है। फिर भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे कुछ उपदेशात्मक गीत मिल जाते हैं, जिनमें लौकिक नीति और पारलौकिक सिद्धिके लिए संदेश दिये गये हैं।

कहीं इस मायाकी नगरीमें भटकने वाले जीवको चेतावनी दी जाती है—कबीर आदि संतोंकी परम्परामें—

गाफिल, किस बीहड़में भटका ? रे, गाफिल किस बीहड़में भटका ?
इस प्रदेशमें फिर न हठीले, यहाँ बड़ा है खटका !
ऊँचे झाड़, कँटीले झंखाड़ोंसे बन-मग छाया,
किस संभ्रमने लाकर तुझको इस अरण्यमें पटका ?
गाफिल किस बीहड़में भटका।[४]

---

१. 'आराधना', पृ० ८७।
२. वही, पृ० ७१।
३. 'तीर-तरंग', पृ० ४३।
४. 'क्वासि', नवीन, पृ० ७१-७२।

तो कहीं, दार्शनिक मुद्रा छोड़, स्वतंत्र चेता देशके प्रतिनिधि कविकी राष्ट्र-भक्तिके उपदेश मिलते हैं :—

वीर देशके बच्चे हो तुम
घबड़ानेका काम नहीं
सूखी पुस्तक और परीक्षाएँ
शिक्षाका नाम नहीं ।

× × ×

तो बस बढ़ो,
निराशा छोड़ो
गतिमें आगे आना है;
पुनः प्राणके
प्रणकी उज्ज्वल
कृतिके आगे आना है ।[१]

गीतिकामें ऐसे उपदेशात्मक कई गीत हैं, जिनमें आध्यात्मिक चेतनाको प्रखर करनेका प्रयास है—

पास ही रे हीरे की खान,
खोजता कहाँ और नादान ?
कहीं भी नहीं सत्यका रूप,
अखिल जग एक अन्धतम कूप
ऊर्मि घुर्णित रे, मृत्यु महान
खोजता कहाँ यहाँ नादान ?[२]

मायाकी वशीभूत आत्माके दिग्भ्रमके प्रति उपेक्षाके भाव निरालाके निम्न गीत-में है—

रे कुछ न हुआ तो क्या ?
जग धोका, तो रो क्या ?
चलता तू, थकता तू
रुक-रुक फिर बकता तू
कमजोरी दुनिया हो, तो
कह क्या सकता तू ?
जो धुला, उसे धो क्या ?[३]

आत्माके उन्नयन और आत्म-विस्तारके लिए निरालाने कितने सांकेतिक चित्र दिये हैं :—

---

१. 'माता', एक भारतीय आत्मा, पृ० ३७।
२. 'निराला', पृ० २७।
३. 'गीतिका', पृ० ५५।

(छिप मन) बन्द करो, उर द्वार
(फिर) सौरभ कर दो संचार।
तुम नव समीरमें गलकर
भर दो चुम्बन चल-चलकर
अग-जग तत्वोंमें विहरे
मन सिहरे बारम्बार।[1]

बिना अहंके विसर्जनके भक्ति नहीं आती, ज्ञानेन्द्रियाँ तीव्र नहीं होतीं। इसलिए स्पष्ट शब्दोंमें निराला 'गीतिका'में ही लिखते हैं—

छोड़ दो, जीवन यों न मलो।
ऐंठ अकड़ उसके पथसे तुम
रथ पर यों न चलो!

समभाव और आत्मतोषका कितना अच्छा उपदेश है—

वह भी तुम-ऐसा ही सुन्दर,
अपने दुख-पथका प्रवाह खर,
तुम भी अपनी ही डालोंपर
फूलो और फलो।[2]

सभी युद्धोंकी जड़ तो इसीके प्रतिकूल आचरणमें है।

कहीं-कहीं निरालाने अकाव्यात्मक ढंगसे एक साधारण धार्मिक गुरुकी भाँति उपदेश दे दिये हैं :—

हरि-भजन करो भू-भार हरो,
भव-सागर निज उद्धार तरो।
गुरु-जनका आशिष सीस धरो,
संमार्ग अभय होकर विचरो।[3]

इसी भावको उन्होंने 'अर्चना'में कुछ विशेष लोचके साथ दुहराया है—

हरिका मनसे गुणगान करो
तुम और गुमान करो न करो।
स्वर-गंगाका जलपान करो,
तुम अन्य विधान करो न करो
निशि वासर ईश्वर ध्यान करो
तुम अन्य विधान करो न करो।[4]

---

१. 'गीतिका', पृ० ६५।
२. 'वहीं', पृ० १२।
३. 'आराधना', पृ० ५१।
४. पृ० ४४।

प्रेम-गीत

मानव-जीवनको सर्वाधिक प्रभावित करनेवाला तत्त्व है प्रेम। प्रेमको ईश्वर माना गया है और प्रेमका मूल्य प्राणोंकी बाजी लगाकर चुकाया जाता है। प्रेमकी लता त्यागकी भूमिपर पनपती है। वह अश्रुसे सिंच कर हरी होती है और तब कहीं मिलनके मीठे फल लगते हैं। प्रेममें कहीं दोनों पक्षोंकी बेकली होती है, एक पक्ष की भी। लौकिक प्रेम आध्यात्मिक भक्तिका सोपान है। 'इश्क हकीकी' और 'इश्क मजाजी' परस्पर सम्बद्ध हैं। प्रेमके दो पहलू हैं—संयोग और वियोग। इन दोनोंके अनेक अवस्था-भेद होते हैं, अनेक अन्तर्दशाएँ होती हैं। प्रेमकी प्रेरणा-भूमि है—आन्तरिक और बाह्य सौन्दर्य। आन्तरिक सौन्दर्यके अन्तर्गत व्यक्तिका शील, स्वभाव, भाव, चरित्र आदि आते हैं और बाह्य सौन्दर्यके अन्तर्गत रूपके विभिन्न अंग—शरीरकी बनावट, कान्ति, रंग आदि आते हैं। प्रथमका क्षेत्र प्रेम और दूसरेका क्षेत्र वासना है। प्रेमका चरम वेग प्रायः यौवनकाल है। शैशवका निष्कलुष प्रेम भी यौवनके उद्दाम वेगमें परिणत हो जाता है। वैदिक युगमें भी प्रेमका शरीर धर्मसे सम्बन्ध वर्णित मिलता है; महाभारत कालमें तो स्त्रियाँ भी सक्रिया देखी गयीं। वाल्मीकीय रामायण-युगमें पुरुषोंमें कामातुरता मिलती है, नारीका रूप अपेक्षाकृत अधिक संयत मिलता है। वीरगाथा कालमें नारी भोगकी वस्तु है—वीरताका श्रृंगार प्रेम और भोग है। भक्तिकालमें कृष्णमार्गी शाखामें प्रेमका खुला-खिला चित्रण मिलता है। राममार्गी शाखामें प्रेमकी मर्यादा बड़ी गम्भीर है। संत काव्यमें नारीको भुजंग, वासना, माया कहकर उसकी निन्दा की गयी और उनसे सावधान रहनेको कहा गया। सूफी कवियोंने प्रेम और सौन्दर्यके चित्रण किये हैं। वहाँ पारलौकिक प्रेमकी व्यंजनाके लिए लौकिक प्रेमगाथाओंको ही आधार बनाया गया।

प्रेमपर वासनाकी विजय रीतिकालीन काव्यमें है। वहाँ शारीरिकता प्रधान है। उस समय नारीके इर्दगिर्द सारा साहित्य नाचता दीखता है।

आधुनिक कालमें नारीकी प्रतिष्ठा बढ़ी। वह केवल भोग-विलासकी साधन नहीं मानी गयी। द्विवेदी युगमें पारिवारिक भावनाकी मर्यादासे नारी बँध गयी। प्रेमकी जितनी मनोदशाओंका वर्णन द्विवेदी युगके बादकी कविताओंमें हुआ, उतना और कभी नहीं। छायावादी गीतोंमें भक्ति और रीतियुगीन मुद्राएँ भी मिलती हैं। रहस्यवादके ग्रहणके कारण प्रियके अतीन्द्रिय रूपका चित्रण भी मिलता है। रीतिकालीन कामुकताके भी चित्र मिलते हैं। किन्तु इन सबसे अधिक मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे इस कालमें प्रेमकी मनोदशाओंका जितना वैविध्य इस कालमें मिलता है, उतना और कभी नहीं मिला।

विस्तृत विवेचनका अवकाश यहाँ नहीं है, अतः मैं आधुनिक हिन्दीके प्रेम-गीतोंके प्रमुख तत्त्वोंको सोदाहरण उल्लेख करना ही पर्याप्त समझती हूँ :—

(क) मिलन-सुखकी प्रतिच्छवि प्रकृतिमें—

> चाँदनी आज कितनी सुन्दर
> समदृष्टि हुई छवि की सबपर

किसने जगके दृग-पलकोंमें सुखका सपना साकार किया ?

राकेश गगनके आँगनमें
मेरे शशि तुम मेरे मनमें,

भावोंसे भर भवका अभाव किसने संसार सँवार दिया ?[१]

(ख) प्यारका प्रतिदान पीड़ा—

प्यार करता हूँ कि तुमसे पा सकूँ मैं पीर
पीर, जिसके घातसे बजते हृदयके तार।
तार, जिससे फूटती है गीतकी झंकार।
सींचनेको मैं जलनका बाग
इसलिए ही माँगता दो बूँद दृगमें नीर।[२]

(ग) ऋतुओंसे संयोगको उद्दीपन—

(१) आओ प्रिय हम गूँथें माला,
मैं वसंत, तुम प्रिय वनमाला,
प्रणय-परससे आज परस्पर भूलें जगका ज्ञान
आज नव मधुऋतु आयी प्रान।[३]

(२) रिमझिम फुहियाँ लोचन-घनकी
जीवनमें बहार सावन की।
प्यार-चपल उरके झूलेपर, झूलो ना झूलो ना।[४]

(घ) ऋतुओंसे वियोगको उद्दीपन—

(१) अम्बरके गृहगान रे, घन-पाहुन आये !
तृण-तरु, लता, कुसुमपर सोई,
बजने लगी सजल सुधि कोई,
सुन-सुन आकुल प्राण रे, लोचन भर आये।[५]

(२) मेरे उरने शिशिर हृदय सीखा करना प्यार—
इसी व्यथासे रोता रहता अम्बर बारम्बार।
कठिन-कुहर प्रच्छन्न प्राणमें पावक-दाह सुसुप्त
पतझरकी नीरसतामें चिर-नव-यौवन-भंडार।
धवल मौनमें अस्फुट मधु-वैभवके रंग असंख्य

---

१. 'पलाश-वन', नरेन्द्र शर्मा, पृ० ७।
२. 'शेफालिका', डॉ० किशोर, पृ० २।
३. 'छन्दमयी', डॉ० नगेन्द्र, पृ० ११।
४. 'तीर-तरंग', जानकीवल्लभ, पृ० १४।
५. 'नीलकुसुम', दिनकर, पृ० २२।

तदपि अकेला शिशिर, कालका पीड़ा कोषागार।
मेरे प्रेम-दिवस भी मेरे जीवनके कटु-भार।[१]

(ङ) मिलनमें वियोगकी संभावनाओंका दुःख-विदाकी हास-अश्रुमय घड़ियाँ—

आजके बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे ?
आजसे दो प्रेम योगी अब वियोगी ही रहेंगे।
आजसे हम तुम गिनेंगे एक ही नभके सितारे
दूर होंगे पर सदाको ज्यों नदीके दो किनारे,
सिन्धुतटपर भी न जो दो मिल सकेंगे ![२]

(च) प्रेममें त्याज्य वस्तुओंके ग्रहणकी कामना और संतोषकी भावना—

तुम नहीं आये ? न आओ, याद दे दो,
फैसला छोड़ा, फकत फरियाद दे दो।
मति नहीं कहती चरणका स्वाद दे दो,
बस प्रहारोंका अनन्द प्रसाद दे दो,
देख ले जग, सिसक कर
आराधना सूली चढ़ी,
जो न बन पायी तुम्हारे
गीतकी कोमल कड़ी।[३]

(छ) प्रियके शृंगारको उद्यत प्रकृति—

हरसिंगारकी बेला हसती
तुमपर कर शृंगार निछावर
कँप-कँप उठता फूलोंका तन
उड़-उड़ बहता सौरभका मन
शोभासे भर अपलक लोचन
पथमें बिछ जानेको तत्पर ![४]

(ज) विश्वकी भर्त्सना और कविकी प्रेमदृढ़ता—

पापकी ही गैलपर चलते हुए ये पाँव मेरे,
हँस रहे हैं उन पगोंपर जो बँधे हैं आज घरमें
हैं कुपथपर पाँव मेरे आज दुनियाकी नजरमें।
मैं कहाँ हूँ और वह आदर्श मधुशाला कहाँ है ?
विस्मरण दे जागरणके साथ, मधुबाला कहाँ है ?

---

१. 'चिन्ता', अज्ञेय, पृ० २७।
२. 'प्रवासीके गीत', नरेन्द्र, पृ० ३।
३. 'हिम-तरंगिनी', माखनलाल, पृ० २।
४. 'उत्तरा', पन्त, पृ० १४१।

है कहाँ प्याला कि जो दे चिर तृषा चिर तृप्तिमें भी
जो डुबा तो ले मगर दे पार कर हाला कहाँ है ?
देख भींगे होठ मेरे और कुछ संदेह मत कर
रक्त मेरे ही हृदयका है लगा मेरे अधरमें।[1]

(झ) प्रेममें जग-विस्मरणकी मस्ती भगवतीचरण वर्माकी इन पंक्तियोंमें मिलती है—

हा प्रेम किया है, प्रेम किया है मैंने
वरदान समझ अभिशाप लिया है मैंने
अपनी ममताको स्वयं डुबाकर उसमें
वर्जित मदिराको देवि पिया है मैंने।

(ञ) सुखद क्षणोंकी स्मृति—

वे तुम्हारे बोल !
वह तुम्हारा, प्यार, चुम्बन,
वह तुम्हारा स्नेह सिहरन,
वे तुम्हारे बोल !

× × ×

बोलसे बढ़कर, बजा, मेरे हृदयमें
सुख क्षणोंका ढोल ![2]

(ट) आध्यात्मिक विरह—

(१) देव, मैं अब भी हूँ अज्ञात ?
एक स्वप्न बन गयी तुम्हारे प्रेम-मिलनकी बात !
यह ज्योत्स्ना तो देखो, नभकी बरसी हुई उमंग !
आत्मा-सी बनकर छूती है मेरा व्याकुल अंग !
आओ, चुम्बन-सी छोटी है यह जीवनकी रात।[3]

(२) अलि कैसे उनको पाऊँ !
वे आँसू बनकर मेरे, इस कारण ढुलढुल जाते
इन पलकोंके बन्धनमें मैं बाँध-बाँध पछताऊँ
मेघोंमें विद्युत्-सी छवि, उनकी बनकर मिट जाती।
आँखोंकी चित्रपटीमें, जिसमें मैं आँक न पाऊँ।[4]

(ठ) विश्वास-घातकी कसक—

आज तुमसे मिल सकूँगा, था मुझे विश्वास।
प्यारके उन्मादसे भर,

---

१. 'मधुकलश', बच्चन, पृ० ७२,७५।
२. 'हिमतरंगिनी', माखनलाल, पृ० १७।
३. 'आधुनिक कवि', डॉ० रामकुमार, पृ० ३३।
४. 'आधुनिक कवि', महादेवी, पृ० ४६।

पंडुकी भी स्वर बदल कर,
सघन पीपल डालपरसे
थी बुलाती प्रणय-सहचर—
छा रहा सब ओर था अनुरागका कल हास !
वह मिलनकी प्यास ।[१]

(ड) प्रेमका करुण पर्यवसान—

करुणाका गहरा गुंजार ।
जिसमें गर्वित विश्व पिघलकर
बनता है आँसूकी धार ।
सावन-शिशु घन-अंकित अम्बर,
रिमझिम-रिमझिम है पुलकित स्वर,
कितने प्राणोंके स्वातीमें यह मोती-सा उज्ज्वल प्यारे ।[२]

(ढ) सांकेतिकता—

(१) यह तुम्हारा हास आया ।
इन कटेसे बादलोंमें कौन-सा मधुमास आया ?
आह वह कोकिल न जाने
क्यों हृदयको चीर रोई ?
एक प्रतिध्वनि - सी हृदयमें
क्षीण हो-हो हाय, सोई ।
किन्तु उससे आज मैं कितने तुम्हारे पास आया ।[३]

(२) जला आज किस इंगित पर यह बुझता दीप प्यारका, संगिनी ।
तुमने तो पूरी करनेको
जीवनकी यह शेष कहानी
जिसमें सोया चित्र किसीका
जिसमें सोयी व्यथा पुरानी
यह जो फूल बिछा मगपर, वह वनका या कि हारका,
संगिनी ।[४]

(ण) प्रेमकी सहजता—

प्यारसे मुझको बुलाओगे जहाँ
एक क्या सौ बार आऊँगा वहाँ

१. 'चिन्ता', अज्ञेय पृ० २५ ।

२. 'आधुनिक कवि', डॉ० रामकुमार, पृ० ४४ ।

३. वही, पृ० ३४ ।

४. 'शेफालिका', डॉ० किशोर, पृ० ३ ।

पूछनेकी है नहीं फ़ुर्सत मुझे
कौन हो तुम क्या तुम्हारा नाम है।
किसलिए मुझको बुलाते हो कहाँ
कौन-सा मुझसे तुम्हारा काम है।
फूलसे तुम मुस्कराओगे जहाँ
मैं भ्रमर-सा गुनगुनाऊँगा वहाँ।[१]

(त) एकांगी प्रेम—

तुम्हें बाँध पाती सपनेमें
तो चिर जीवन-प्यास बुझा लेती इस छोटे-से क्षण अपने।
पावस घन-सी उमड़ बिखरती
शरद निशा-सी नीरद घिरती,
धो लेती जगका विषाद
धुलते लघु आँसू-कण अपनेमें।[२]

(थ) पारस्परिक प्रेम—

(१) दोनों ओर प्रेम पलता है।
सखि, पतंग भी जलता है हा! दीपक भी जलता है।[३]

(२) प्यार करती हूँ अलि, इसलिए मुझे भी करते हैं वे प्यार।[४]

(द) मिलनोत्सुक शृंगार—अभिसार

रंजित कर दे यह शिथिल चरण ले नवअशोकका अरुण राग,
मेरे मण्डनको आज मधुर ला रजनीगंधाका पराग,
यूथीकी मीलित कलियोंसे अलि! दे मेरी कबरी सँवार।[५]

(ध) मिलनोपरान्त शृंगार—

खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उरपर तर रहे,
बादलोंमें घिर अपर दिनकर रहे,
ज्योतिकी बन्दी तड़ित द्युतिने क्षमा माँगी।
हेर सरपट फेर मुखके बल,
लख चतुर्दिक चली मन्द मराल,
गेहमें प्रिय-स्नेहकी जयमाल,

१. 'रात और शहनाई', रमानाथ अवस्थी, पृ० ३३।
२. 'नीरजा', महादेवी, पृ० ७।
३. 'साकेत', गुप्त, पृ० २८१।
४. 'आधुनिक कवि', महादेवी, पृ० ८२।
५. वही,।

वासनाकी मुक्ति, भुक्ता त्यागमें त्यागी।
प्रिय यामिनी जागी।[1]

(न) प्रेमके सात्त्विक अनुभाव—

स्पर्शसे लाज लगी
अलक-पलकमें छिपी छलक उरमें नवराग जगी।
चुम्बन-चकित चतुर्दिक चंचल
हेर-फेर, मुख, कर बहु मुख-छल,
कभी हास, फिर त्रास, साँस-बल
उर सरिता उमगी।[2]

(प) निराशाकी प्रबलता शोककी भूमिमें—

मुझसे मिलनेको कौन विकल
मैं होऊँ किसके हित चंचल
यह प्रश्न शिथिल करता पदको, भरता उरमें विह्वलता है।[3]

(फ) प्रथम प्रेमका अछूतापन !

(i) प्राण, सन्ध्या झुक गयी गिरि, ग्राम तरुपर
उठ रहा है क्षितिजके ऊपर सिंदूरी चाँद
मेरा प्यार पहली बार लो तुम।[4]

(ii) मेरा पहला प्यार तुम्हें ही,
अब तक इस मधुमय जगमें मैं सूनापन
लेकर जीता था।
स्नेह सलिल-से जीवनका घट भरकर भी रीता-रीता था।
पर अब सोते जीवन तारोंकी शाश्वत झंकार उन्हें ही।[5]

(ब) प्रेमका प्रसार और गहनता—

प्रीत न अरुण साँझके घन सखि।
पलभर चमक बिखर जाते जो
मना कनक गोधूलि-लगन सखि।
प्रीति नील, गंभीर गगन सखि।
चूम रहा जो विनत धरणिको
निज सुखमें नित मूक मगन सखि।[6]

---

१. 'गीतिका', निराला, पृ० ४।
२. वही, पृ० ३३।
३. 'निशा-निमंत्रण', बच्चन, पृ० २५।
४. 'मिलनयामिनी', बच्चन, पृ० १३४।
५. 'शेफालिका', किशोर, पृ० ५३।
६. 'रसवन्ती', दिनकर, पृ० २०।

आधुनिक गीतकारोंमें प्रेमकी व्यंजना सर्वाधिक सफलताके साथ बच्चनके गीतोंमें प्रकट हुई है। विरहके गीत 'निशा-निमंत्रण'में, निराशासे आशाकी भूमिपर अवतरणके गीत 'सतरंगिनी'में और मिलनके रसभरे गीत 'मिलनयामिनी'में अत्यन्त सफल उतरे हैं। इसके अतिरिक्त प्रेमकी प्राचीनताकी कथा अज्ञेयकी 'चिंता'में[१], प्रेमके भ्रमका नवीनके 'कवि और छबि'में[२], प्रेमकी चंचल हिलोरका रामकुमारके 'आधुनिक कवि'में[३], विरहमें प्रियकी निष्ठुरताका चित्रण नरेन्द्र शर्माके 'प्रवासीके गीत'में[४], प्रेमकी अतृप्तताका शिव-मंगलसिंह सुमनकी 'पर आँखें नहीं भरी'में[५], प्रेमके अन्तर्द्वन्द्वका किशोरकी 'शेफालिका'[६] में, दो प्राणोंके मिलनके प्रसन्न वातावरणका नेपालीके 'नवीन'में[७], प्रियकी अप्राप्ति की कसकका 'नीरज'में[८] और ऐसे ही अनेक नवीन चित्र आधुनिक गीतोंमें मिलते हैं।

(ग) स्वरूपके आधारपर आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यके निम्नांकित भेद हो सकते हैं—

१. चतुर्दशपदी

२. गजल

३. गीतिकाव्य

४. पत्र-गीति

५. गीति-प्रबन्ध।

१. चतुर्दशपदी—अंग्रेजीमें इसे सॉनेट कहते हैं। इनका सर्वप्रथम प्रयोक्ता इटली-का कवि 'पेट्रार्क' था। अंग्रेजीमें सोलहवीं शतीके पूर्व किसीने सॉनेट नहीं लिखा था। यह १४ पंक्तियोंकी रचना होती है। इसमें एक ही भावकी पुष्टि होती है। चतुर्दश-पदियोंमें प्रायः आठ और छः पंक्तियोंके दो खण्ड होते हैं। प्रथम खंडमें एक कथन होता है, अन्तिम खंडमें उसकी व्याख्या होती है। प्रायः प्रथम, चतुर्थ, द्वितीय, तृतीय, पंचम, अष्टम, षष्ठ-अष्टम पंक्तियोंमें अन्त्यानुप्रास होता है। यह क्रम बदल भी सकता है। इनमें संवेगके दो स्तर होते हैं। प्रथम आठ पंक्तियोंमें एक और अन्तिम षष्ठ पंक्तियोंमें दूसरा। अन्तिम षष्ठ पंक्तियोंमें ही चरमोत्कर्ष होता है। अंग्रेजीमें शेक्सपीयर और मिल्टनकी चतुर्दशपदियाँ प्रसिद्ध हैं।

हिन्दीमें आधुनिक कालमें कुछ चतुर्दशपदियाँ लिखी गयी हैं। हिन्दीमें प्रभाकर माचवे, रामइकबालसिंह 'राकेश', त्रिलोचन शास्त्री आदिने अच्छी चतुर्दशपदियाँ लिखी हैं। एक उदाहरण देखा जा सकता है—

---

१. पृ० ९४।
२. पृ० ८८।
३. पृ० ४१।
४. पृ० ४०।
५. पृ० २३।
६. पृ० ४२।
७. पृ० ८।
८. 'दर्द दिया है', पृ० १-२।

कैसे ताना-बाना मनका चलता पटपर ठीक तने ?
कैसे बहते पानीपर जीवनका चौरस-चित्र बने
चित्र वही जो मिटे, न घिसकर युग-घर्षणके पोतनसे ।
मिट्टीमें मिल सड़-गलकर जो अन्तिम घड़ियाँ नहीं गिने ।
उमा फूल चटियल पटारपर उपजाऊ मैदान करे ।
बंजर में भी रस को ठेले कल्पबाग निर्माण करे ।
शक्ति वही, जो बन दधीचि की वज्र-अस्थि घन में छूटे,
आसुरीय तम का पट फोड़े नूतन स्वर्ण विहान करे ।
चित्र-शक्ति, जो रूप आँक दे टिसते लाल ददोरों का ।
चित्र-शक्ति, जो रूप आँक दे पथ के घिसते रोड़ों का ।
चित्र-शक्ति क्या, जो न कभी अनुभव के अन्तर से देखे ?
आलेखन हो शुक का करना चित्र लिखे कठफोड़ों का ।
ढहते हुए ठूँठ से चरमर हवामहल कमजोर गिरे ।
सुन्दर और असुन्दर दोनों ठोस धरातल पर उतरे ।[1]

(२) **गजल**—आधुनिक हिन्दी काव्यमें उर्दूके कई छन्दोंका प्रभाव है। रूबाइयों, शेरों और गजलोंका प्रचलन खड़ी बोलीमें है। इनमें गजल गेयताकी दृष्टिसे गीतिकाव्यके निकट है। गजल शेरोंसे बनती है। गजलके पहले शेरमें अन्त्यनुप्रास होते हैं, जिन्हें 'मतला' कहते हैं। बादके शेरकी पंक्तियोंमें तुक-साम्य होता है। अन्तिम शेरको 'मकता' कहते हैं, जिनमें प्रायः उपनाम होता है। कभी-कभी एकसे अधिक मतले भी होते हैं। पाँचसे बारह या अब उससे भी अधिक शेर होते हैं। कभी-कभी एक ही भावसे अनेक उक्ति-चमत्कार सम्बद्ध होते हैं।

हिन्दीमें गजलोंकी दिशामें एकसे अधिक प्रयोग निरालाने किये हैं। 'बेला'में इसके कई उदाहरण हैं।[2] इनका विवेचन निरालाकी गीतिकला एवं उर्दूके प्रभावके संदर्भोंमें आगे किया गया है।

(३) **गीतिनाट्य**—गीतिनाट्यका मुख्याधार गीत है। नाटकोंकी रचना गद्यमें होती है, उसमें कहीं-कहीं गीतोंकी योजना होती है, किन्तु गीतिनाट्यमें गीतोंमें ही कथनोपकथन होता है। इसमें कथाकी सरलतापर विशेष ध्यान रखना होता है। इसमें भावकी प्रधानता होती है। इसमें रागात्मक तत्त्व एवं कोमल वृत्तियोंकी व्यंजना होती है। इसमें गीति-तत्त्वकी प्रधानताके कारण आत्माभिव्यंजन होता है। भावनाट्यके रूपमें इसमें मानसिक व्यापारोंकी अधिकता होती है। अन्तर्द्वन्द्वका चित्रण सफलताके साथ किया जाता है।

हिन्दीमें सर्वप्रथम प्रसादका 'करुणालय' गीतिनाट्य प्रकाशित हुआ। निरालाका पंचवटी-प्रसंग परिमलमें संगृहीत है। इसमें रामायणके पंचवटी-प्रसंगको लिया गया है।

---

१. 'चट्टान', राकेश, पृ० ४२।
२. पृ० ३१, ३२, ३३, ३७, ३८, ३९, ४४।

राम-लक्ष्मण-सीता-शूर्पणखाके चरित्रोंसे सम्बद्ध कथानक है। नूतन छन्द-विधान, अर्थ-सौष्ठव और सुगठित पदावलि अत्यन्त सुन्दर हैं। मुक्तछन्दके कारण गीतियोजना नहीं है। नाटकीय संवादका रूप है। दार्शनिक प्रवचन गीतिनाट्यके प्रतिकूल है। शक्ति-स्वरूपका चित्रण वातावरणको गम्भीर बना देता है।

पन्तके 'युग-पथ'में त्रिवेणी, भगवतीचरण वर्माके 'मधुकण' संग्रहमें इन्दुमती, दिनकर-का 'इतिहासके आँसू', आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री 'पाषाणी' अच्छे गीतिनाट्य हैं। 'पाषाणी' के गीत अत्यन्त कलात्मक हैं।

(४) **पत्र-गीति**—पत्रके रूपमें गीतिकाव्यकी रचना पत्र-गीति है। इसमें अपने मनोभावोंको पत्रके रूपमें लिखा जाता है। प्रायः ये पत्रगीतियाँ प्रेमपरक होती हैं। कुछ अपवाद भी मिलते हैं—जैसे निरालाका 'महाराज शिवाजीका पत्र' (किन्तु इसमें छन्द-बन्द गेय नहीं, किशोरकी रचना 'माँ सरस्वतीके नाम एक कविका पत्र' आदि। मैथिलीशरणकी 'पत्रावली' और 'नीरजकी पाती'में पठनीय पत्र हैं। संगीतात्मकता दूसरी रचनामें अधिक है।

इस क्षेत्रमें आदर्श गीति-रचना बच्चनकी 'प्रणय-पत्रिका' है। यह 'विनय-पत्रिका'के नामसे प्रभावित हैं, पर इसमें मानव-प्रेमकी शत-शत छवियाँ हैं, भक्ति-भावनाके दीन-विनीत उद्गार नहीं। यथा—

(क) अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा और पिपासा,
—पृ० ४०

(ख) तुम छेड़ो मेरी बीन कसी रसराती—पृ० २६

(ग) सो न सकूँगा और न तुझको सोने दूँगा, हे मन बीने
—पृ० ३६

(घ) एक यही अरमान गीत बन,प्रिय,तुमको अर्पित हो जाऊँ
—पृ० ३८

(ङ) झुरमुटमें अटका चाँद कहीं अटका मन मेरा भी
—पृ० ५०

(च) नहीं बिसरते हैं बिसराए तेरे नयन सनीर, लजीले
—पृ० ५२

(छ) पुष्प-गुच्छ-माला दी सबने, तुमने अपने अश्रु छिपाए
—पृ० ५४

(ज) चंचला के बाहु का अभिसार बादल जानते हैं
—पृ० ६८

(झ) हर रात तुम्हारे पास चला मैं आता हूँ, —पृ० ७६

(ञ) रात आधी खींचकर मेरी हथेली
एक उँगली से लिखा था 'प्यार' तुमने
—पृ० ८२

'प्रणय पत्रिका'के ५९ गीत प्रायः प्रवासमें (इंग्लैण्डमें) लिखे गये हैं। विदेशमें बसनेवाले तन और स्वदेशमें बसनेवाले मनका यह पत्राचार बड़ा हृदयग्राही है।

'नीरजकी पाती'में प्रेमकी उफान और टीस बड़ी सहज ढंगसे व्यक्त हुई है—

और लम्बी न करो मेरी प्रतीक्षा की उमर
जिस तरह से भी बने एक घड़ी आ जाओ
जिन्दगी बनके जो आना है नहीं मुमकिन जो
मौत बनकर ही जवानी पे मेरी छा जाओ।

—पृ०

× × × ×

आज की रात तुझे आखिरी खत और लिख दूँ
कौन जाने यह दिया सुबह तक जले न जले ?
बम्ब-बारूद के इस दौर में अब ऐ हमदम
ऐसी रंगीन हवा फिर कभी चले न चले।

—पृ० १०

(५) गीति-प्रबन्ध—गीति-प्रबन्ध से तात्पर्य उन गीत-संग्रहोंसे है, जिनमें कथाके क्षीण तंतुमें गीतोंके फूल पिरोए गये हैं। जैसे मालामें फूल प्रधान होते हैं, फिर भी उन्हें एक सूत्रमें बाँधे रहनेके लिए क्षीण, नगण्य डोरकी आवश्यकता होती है, उसी तरह प्रत्येक गीत अपने आपमें स्वतन्त्र होकर भी गीति-प्रबन्धमें वे एक भाव-सूत्र या कथा-सूत्र में बँधे रहते हैं। इन्हें मुक्तक-प्रबन्ध भी कहा जा सकता है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण सूरका भ्रमरगीत है। प्रत्येक पद अपनेमें स्वतन्त्र होकर भी गोपी-उद्धव संवाद और कृष्ण-गोपी-प्रेमकी घटनाओंसे जुड़े हैं। भ्रमरगीतकी परम्परामें ही यह शिल्प है, पर भ्रमर-दूत, उद्धव शतक आदिके छन्द-विधान दूसरे हैं। इन दोनोंमें क्रमशः रोला और कवित्तों के प्रयोग हैं। अतः इन्हें गीतिके अन्तर्गत परिगणित नहीं किया जा सकता।

आधुनिक हिन्दी काव्यमें 'निशा-निमन्त्रण'[1] और 'ज्वार-भाटा'[2] में इस शिल्पका उपयोग सफलतापूर्वक किया गया है। निशा-निमन्त्रणमें १०० गीत हैं, उनका आरम्भ 'दिन जल्दी-जल्दी ढलता है' से और अन्त 'विश्वको उपहार मेरा'से है। सारी कथा एक ही मनोदशा, एक ही भाव-सूत्र—श्यामादेवीके स्वर्गारोहणके शोकमें संग्रथित है। ज्वार-भाटाके ७५ गीत हैं। उसके तीन खण्ड हैं—मिलन, विदा, वियोग—२५-२५ गीत तीनोंमें हैं। दो व्यक्तियोंमें मिलन होता है, फिर विदाके क्षण जाते हैं और अन्तमें विरहका जीवन व्यतीत करना पड़ता है। क्रमशः एक-एक गीत प्रेम-जीवनके व्यापारको आगे बढ़ाते हैं।

आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध-काव्योंमें प्रयुक्त गीत

यद्यपि प्रबन्ध और मुक्तक काव्यके दो विभिन्न वर्ग माने जाते हैं, तथापि आधुनिक

---

१. डॉ० हरिवंश राय 'बच्चन'।

२. डॉ० श्यामनन्दन किशोर।

कालमें इनका सम्मिश्रण हुआ है। प्राचीन मतावलम्बी विद्वान् इन दोनोंको विपरीतार्थक मानते हैं।[१] किन्तु नवीनताका आग्रही विद्वान् उसे अभिनन्दनीय मानते हैं।[२] डॉ० किशोरने अपने शोध-प्रबन्धके द्वादश प्रकरणमें मुक्तक-युगपर विचार करते हुए लिखा है—"महाकाव्योंमें गीतोंको समाविष्ट करनेकी शैली नाटकोंसे प्रभावित है। जिस प्रकार नाटकोंमें वातावरण, पात्र, स्थिति और मनोभावोंके प्रकाशनके लिए गीत लिखे जाते रहे हैं, उसी प्रकार उपर्युक्त कारणोंसे आधुनिक महाकाव्योंमें गीत लिखे गये हैं, पर जहाँ गद्यके माध्यमसे आयोजित नाटकोंके वार्तालाप सुनते हुए श्रोताको गीतोंकी सुखद योजनासे रस-परिवर्तनका आनन्द मिलता है, ठीक वैसा ही आनन्द महाकाव्यके पाठकोंको नहीं मिलता। इस आनन्द-भेदका कारण यह है कि नाटकोंके श्रोता दर्शक भी होते हैं। यदि नाटकों और महाकाव्योंके पाठ ही किये जायें, तो महाकाव्यके गीतोंपर पाठकोंका ध्यान नाटकोंके गीतोंकी अपेक्षा अधिक जाता है। इसका कारण यह है कि नाटकके कथा-प्रवाहके बीच पाठक भावपूर्ण गीतोंपर रीझनेकी अपेक्षा कथा-सूत्रको पकड़ना चाहता है, पर महाकाव्योंके पाठक छन्दोंके सहारे ही कथाका परिचय पाते हैं।"[३]

उपर्युक्त विचारोंको देखते हुए इतना सिद्ध होता है कि प्रबन्ध काव्योंमें गीतोंका प्रयोग नयी शिल्प-विधिका विकास है। हमारा मन्तव्य उन गीतोंका विश्लेषण करना है। प्रबन्ध काव्यमें गीतोंके उपयोगकी दृष्टिसे उल्लेखनीय काव्य निम्नलिखित हैं—

(१) साकेत,
(२) यशोधरा,
(३) विष्णुप्रिया,
(४) कामायनी,
और (५) एकलव्य।

साकेत

'साकेत'के नवम सर्गमें गीतोंको पिरोया गया है। यों भी पूरे सर्गमें मुक्तकोंका

---

१. महाकाव्य और प्रगीत एक-दूसरेके विपरीत पड़ते हैं। क्योंकि महाकाव्य सर्वांगीण प्रभावान्वितिसे युक्त होता है। प्रगीत केवल विशिष्ट अन्तर्बोध्य कराकर विरत हो जाते हैं। इसलिए उसकी योजना प्रबन्धकाव्यके प्रतिकूल पड़ती है।

—'वाङ्मय विमर्श', विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ३०।

२. यह मिश्रण-कला पाश्चात्य साहित्यकी देन है।...यह ठीक है कि इसमें काव्यके रसानन्दमें बाधा पहुँच सकती है, पर साकेत, कामायनी जैसे महाकाव्योंके शिल्पको देखते हुए यह नयापन अभिनन्दनीय लगता है, क्योंकि गुप्तजी प्रसादजीका उद्देश्य कथाकी मांसल-योजना नहीं, भावोंकी सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक योजना और चरित्रके कार्य-व्यापारसे अधिक अन्तर्मनका चित्रण है। नाटकोंकी तरह ये गीत महाकाव्योंके पात्रोंकी मनःस्थितिको स्पष्ट करते हैं।

—'आधुनिक हिन्दी महाकाव्योंका शिल्प विधान', डॉ० किशोर, पृ० ३८।

३. हिन्दी महाकाव्योंका शिल्प-विधान, डॉ० किशोर, पृ० ६१।

प्राधान्य है। वर्णनात्मक प्रसंग गौण हैं। मुक्तककी प्रधानताको देखते हुए कुछ आलोचक नवम सर्गको क्षेपक मानते हैं। किन्तु वस्तुस्थिति यह नहीं है। नवम सर्ग सारे 'साकेत'की मुकुटमणि है—काव्यकलाका चरमोत्कर्ष। 'साकेत'में निम्नलिखित गीत हैं—

१. सिद्धि शिलाओंके आधार, ओ गौरव गिरि उच्च उदार (पृ० ७४)
२. जीवनके पहले प्रभातमें आँख खुली जब मेरी (पृ० २७४)
३. वेदने तू भी भली बनी (पृ० २८०)
४. विरह संग अभिसार भी (पृ० २८०)
५. दोनों ओर प्रेम पलता है (पृ० २८१)
६. आजा मेरी निंदिया गूँगी (पृ० २८४)
७. स्नेह जलाता है यह बत्ती (पृ० २८५)
८. मनको यों मत जीतो (पृ० २८९)
९. कहती मैं चातकि फिर बोल (पृ० २९१)
१०. मेरी ही पृथिवीका पानी (पृ० २९२)
११. बरसो, बरसो, घन बरसो (पृ० २९३)
१२. सफल है उन्हीं घनोंका घोष (पृ० २९५)
१३. सखि छिन धूप और छिन छाया (पृ० २९८)
१४. निरख सखी ये खंजन आये (पृ० २९९)
१५. कोक, शोक मत कर हे तात (पृ० ३०१)
१६. सखि निरख नदीकी धारा (पृ० ३०२)
१७. हम राज्य लिए भरते हैं (पृ० ३०७)
१८. शिशिर न फिर गिर-वनमें (पृ० ३०९)
१९. भूल पड़ी तू किरण कहाँ (पृ० ३१०)
२०. पाऊँ मैं तुम्हें आज (पृ० ३११)
२१. होली ! होली, होली (पृ० ३१२)
२२. मुझे फूल मत मारो (पृ० ३१४)
२३. खिल सहस्रदल, सरस, सुवास (पृ० ३१५)
२४. अरी गूँजती मधुमक्खी (पृ० ३१७)
२५. मान छोड़ दे मान अरी !
२६. सखि, बिखर गयी हैं कलियाँ (पृ० ३१९)
२७. उठती है उरमें हाय ! हूक (पृ० ३१९)
२८. न जा अधीर धूल में (पृ० ३२०)
२९. हमारे रोनेमें मोती (पृ० ३२१)
३०. स्वजनि, रोता है मेरा गान (पृ० ३२२)
३१. यही आता है इस मन में (पृ० ३२३)
३२. अब जो प्रियतम को पाऊँ (पृ० ३२४)

३३. ऊर्मि हूँ मैं इस भवार्णव की नयी (पृ० ३२५)
३४. मेरे चपल यौवन-बाल (पृ० ३२६)
३५. लाना, लाना सखि, तूली (पृ० ३३९)
३६. हे मेरे प्रेरक भगवान (पृ० ३४०)

[२०१९ वि० सं० संस्करण]

उपर्युक्त गीतोंमें उर्मिलाकी मनोदशाओंका चित्रण है। ये गीत या तो उर्मिलाके चरित्रकी झाँकी देते हैं या उसकी दुःखात्मक अनुभूतिको चित्रित करते हैं। ये सारे गीत मुक्तक होकर भी पाठकोंको प्रबन्धात्मकताकी मनोभूमिपर ला बिठाते हैं। ये रागात्मक अभिव्यक्तियाँ मुख्य पात्रीकी अन्तर्दशाको स्पष्ट करती हैं। पहला गीत चित्रकूटकी छवि-का चित्रण करता है। यह वातावरण निर्माणके लिए लिखा गया है। वेदनासे भींगी प्रणय-कथाको प्रतीकोंमें अभिव्यक्त करनेके लिए गीत-संख्या ४, ६, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, २१, २३, २४ और २५ हैं। उर्मिलाकी वेदनाका प्रकृतिपर आरोप १, १२, २०, २१ आदि कुछ गीतोंको छोड़ प्रायः सर्वत्र है। कुछ अनुगीत अत्यन्त कलात्मक हैं—दरसो, परसो, घन बरसो, सखि छिन धूप और छिनछाया, निरख सखी ये खंजन आये, आदि। 'दरसो, परसो, घन बरसो' और 'सखि निरख नदीकी धारा'में ध्वन्यात्मकता और शब्द-संगीतकी आदर्श-योजना है। 'स्वजनि रोता है मेरा गान' 'यशोधरा'का गीत, 'रुदनका हँसना भी तो गान'की याद दिलाता है। 'मेरे चपल यौवन बाल'में मर्यादाका अभाव है। उर्मिलाकी कामातुरता झलकती है। 'लाना, लाना सखि तूली'में उर्मिलाकी चित्रकर्त्री होनेका प्रमाण मिलता है। 'अब जो प्रियतमको पाऊँ'-में अभिलाषा-आकांक्षाका प्रबल वेग है। 'मुझे फूल मत मारो'में पातिव्रत्यकी देदीप्यमान गरिमा है। नवम सर्गके पूर्व एक गीत अष्टम सर्गमें है—मेरी कुटियामें राज-भवन बन आया (पृ० ५२६), जिसमें सीताकी सन्तोष-वृत्तिका परिचय मिलता है, बाल-जीवनके सुखका आभास मिलता है।

यशोधरा

'यशोधरा' में निम्नलिखित गीत हैं—

१. घूम रहा है कैसा चक्र (पृ० १२)
२. देखी मैंने आज जरा (पृ० १३)
३. मरनेको जग जीता है (पृ० १३)
४. पड़ी रह तू मेरी भव-मुक्ति (पृ० १३)
५. ओ क्षणभंगुर भव राम, राम (पृ० १६)
६. सखि वे मुझसे कहकर जाते (पृ० २४)
७. प्रियतम ! तुम श्रुति-पथ से आये (पृ० २६)
८. आर्य ! यह मुझ पर अत्याचार (पृ० २७)
९. मैंने दूध पिलाकर पाला (पृ० २८)

१०. चला गया रे चला गया (पृ० २९)
११. हाय ! भाग्य ही खोटा (पृ० ३२)
१२. कहूँ और क्या भाई (पृ० ३३)
१३. हाय काट डाले वे केश (पृ० ३३)
१४. आओ, मेरे सिर के बाल (पृ० ३४)
१५. मिला न हा ! इतना भी योग (पृ० ३५)
१६. आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा अब है मेरी बारी (पृ० ३६)
१७. मरण सुन्दर बन आया री (पृ० ४१)
१८. जलने को ही स्नेह बना (पृ० ४१)
१९. मैंने ही क्या सहा (पृ० ४२)
२०. हूक उठी है कोयल काली (पृ० ४४)
२१. रोता है अब किसके आगे (पृ० ४६)
२२. यह छोटा-सा छोना (पृ० ४७)
२३. जीर्ण तरी, भूरि भार, देख अरी परी (पृ० ४७)
२४. इन दाँतों पर मोती वारूँ (पृ० ४९)
२५. आली चक्र कहाँ चलता है । (पृ० ५०)
२६. राहुल, राजा—भैया (पृ० ५१)
२७. हार गयी माँ हार गयी (पृ० ५३)
२८. अम्ब ! तात कब आयेंगे ? (पृ० ५३)
२९. माँ कह एक कहानी (पृ० ५८)
३०. सो अपने चंचलपन सो (पृ० ६१)
३१. पवन तू शीतल, मंद सुगन्ध (पृ० ६४)
३२. मेरे फूल रहो तुम फूले (पृ० ६४)
३३. नहीं सुधानिधि को भी छोड़ा (पृ० ६४)
३४. अब क्या रखा है रोने में (पृ० ६५)
३५. जाग, दुःखिनी के सुख जाग (पृ० ६७)
३६. अब स्वप्न देखा है रात (पृ० ६८)
३७. बस, मैं ऐसी ही निभ जाऊँ (पृ० ६९)
३८. कैसी ढीठ, कहाँ का टोना (पृ० ७०)
३९. रुदन का हँसना ही तो गान (पृ० ९८)
४०. कह मुक्ति भला किस लिए तुझे मैं पाऊँ ? (पृ० १०७)
४१. मेरा मरण तुमको खला (पृ० १०९)
४२. मरने से बढ़कर यह जीना (पृ० १०९)
४३. ओहो, कैसा था यह सपना (पृ० ११०)
४४. क्यों फड़क उठे वाम अंग (पृ० १११)

स्वरूप-विधानकी दृष्टिसे 'गद्य-पद्य तुकान्त-अतुकान्त-संयुक्त यशोधरा चम्पू काव्यके ही अन्तर्गत आती है, किन्तु इसमें 'गद्य' और 'अतुकान्त' बहुत कम है—प्रधानता गीति काव्यकी ही है। सभी मर्मस्पर्शी स्थल या विचार इसीके माध्यमसे प्रकट हुए हैं। यशोधराके सभी गीतोंका केन्द्रीय भाव वह उपेक्षा है, जिसमें गौतम नारीत्वको बन्धन मान कर बिना कहे ही घर त्याग कर चले गये हैं। यही व्यवधान है, यही कलंककी बात है। ये गीत यशोधराके व्यक्तित्वकी अभिव्यक्ति है—उसके कुमारी, परिणीता और जाया रूपों की। गीतोंकी दृष्टिसे प्रधानता परिणीता रूप की है, जिसका मूलाधार विरह-कातर उपेक्षिता-लांछिता प्रेमिकाका जीवन है। १ से ५ संख्या तकके गीत सिद्धार्थके महाभिनिष्क्रमण और उसकी प्रेरक घटनाओंसे सम्बद्ध हैं। छठा गीत 'सखि वे मुझसे कह कर जाते' केन्द्रीय भावकी अभिव्यक्ति है। सातवें गीतमें व्यथाका साधारण रूप है। ८ से १४ संख्या तकके गीत पारिवारिक सदस्यों-मित्रोंकी आह, वात्सल्य और सख्य भावोंकी पुष्टि करते हुए गौतमके संसार-त्यागकी कथाका संकेत देते हैं। १५ से २० तथा ३३,३४,३५,३७,३९,४१ और ४२ संख्याके गीतोंमें विरहिणी यशोधराके मनोवेगोंके चित्र हैं। ४३वें-४४वें गीतोंमें सुखमय भविष्यकी झाँकी मिलनी शुरू हुई है। आशा-मयी संभावनाओंसे पुलकित ये गीत हैं। ४५,४६,४८,५३ और ५७ संख्याके गीतोंमें मानिनी यशोधराका रूपांकन है। ५०,५१,५२,५४,५५,५६,५७ और ५९ संख्याके

गीतोंमें मिलनोत्सुक व्याकुलता और चिन्ता है। ६०वें-६१वें गीतोंमें भगवान् तथागत-की वाणी है और अन्तिम गीतमें यशोधराका स्वागत-निवेदन।

विष्णुप्रिया

विष्णुप्रियामें भी कुछ गीत प्रसंगानुसार आए हैं :—

१. त्यागपर तेरी नींव टिकी (पृ० २०)
२. मिला अचानक मुझको इतना (पृ० २४)
३. अब तक लौटा नहीं प्रवासी (पृ० २५)
४. मानो अब निजसे भी न्यारे (पृ० ३८)
५. स्वामी त्याग गए हैं गेह (पृ० ५१)
६. आ गया मेरा अँधेरा याम (पृ० ५२)
७. जागना था जब मुझे तब मैं अचानक सो गयी (पृ० ५३)
८. हा ! विश्वासघातिनी निद्रा (पृ० ५४)
९. सुध, तू मेरी सजनी है (पृ० ५५)
१०. मैं हूँ और अपार है (पृ० ५८)
११. क्या मरना भी अपने अधीन (पृ० ६०)
१२. कर लेंगी हम किसी प्रकार (पृ० ६६)
१३. मिला स्वयं मुझको संन्यास (पृ० ५७)
१४. सुरसरि, हाय वे हरि चरण (पृ० ६९)
१५. झूठा है अद्वैत, न आया (पृ० ६१)
१६. जान सकी मैं निपट निषिद्ध (पृ० ७३)
१७. वंशी बज रही है दूर (पृ० ७४)
१८. प्रियतम, न जानें तुम कहाँ (पृ० ७४)
१९. सखी है यह बात तुम्हारी (पृ० ७५)
२०. प्रियकी-सी तन्मयता आती (पृ० ७६)
२१. टूट पड़ेगा मेरा छज्जा (पृ० ७८)
२२. अयि उर्मिले धैर्य रख (पृ० ७९)
२३. स्वामी कहत है 'हरिबोल' (पृ० ८०)
२४. नाथ, साधु हो तुम तो मैं भी (पृ० ८१)
२५. पर्वोत्सव अब भी लौट कृपा कर (पृ० ८७)
२६. हरी भरी धरती है मेरी (पृ० ९५)
२७. देखते हैं क्या, इसे जाने वही (पृ० ९७)
२८. मेरे लिए तुम्हारे मनमें (पृ० १०९)
२९. राधा ऐसी सम्पत्ति न थी (पृ० ११२)
३०. लघु पतंगी, था तुझे क्या (पृ० ११३)

३१. दूँ मैं कैसे हाय उलहना (पृ० ११७)
३२. अब यहाँ न होगी भेट (पृ० ११९)
३३. वही पहुँचता मेरा नाथ (पृ० ११९)
३४. मुड़कर और भिखारी बनकर (पृ० १२०)
३५. दिवके नीचे दब कर कैसे ? (पृ० १२०)
३६. चले गए माधव मुँह मोड़ (पृ० १२१)
३७. रह गयी गोपियाँ अवश आज (पृ० १२२)
३८. वह अखिल सृष्टिकी खेला (पृ० १२३)
३९. यह भी एक सुयोग, रातमें (पृ० १२४)
४०. तनिक और निभ जाऊँ (पृ० १२५)
४१. रोती हूँ हाय ! न जाने क्यों (पृ० १३१)
४२. मरण नहीं आता है आली (पृ० १३२)
४३. देव, यह क्या कह चले तुम (पृ० १३५)
४४. अब और क्या करेगा (अदृष्ट) (पृ० १३६)
४५. सीते ! सीते ! सीते ! (पृ० १२६)
४६. अब तो मेरे हो राम (पृ० १३६)

ग्रन्थोंके आकारके अनुपातसे विष्णुप्रियामें गीतोंकी संख्या सर्वाधिक मानी जायगी। 'यशोधरा'की आधीसे कुछ बड़ी इस पुस्तकमें गीतोंकी संख्या उसकी तीन-चौथाई है। इस अनुपातमें साकेतमें सबसे कम गीत हैं। शिल्पकी दृष्टिसे विष्णुप्रिया कुणालगीत और यशोधराकी मध्य कड़ी है; क्योंकि इसमें कथा जोड़ने वाली वर्णनात्मक पंक्तियाँ यशोधरा सी हैं, पर गद्य नहीं है। कुणाल-गीत तो सर्वांशतः गीतोंमें नियोजित कथा है। 'विष्णुप्रिया'के ये गीत यशोधराकी शैलीके हैं। ये गीत निम्नलिखित कोटियोंमें विभाजित हो सकते हैं :—

१. चरित्र-परिचायक, जो विष्णुप्रियाका चरित्र-चित्रण करते हैं।
२. विरह-निवेदन, जो विष्णुप्रियाकी विरह-वेदनाका स्वरूप उपस्थित करते हैं।
३. घटना-संयोजक, जो घटनाओंका क्षीण आभास देते हैं।
४. ऋतुवर्णन, एक ही गीतमें छहों ऋतुओंका वर्णन है (पर्वोत्सव अब भी लौट कृपा कर मेरे घर आते हैं)।

कामायनी

जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' बीसवीं शताब्दीकी बहुत बड़ी काव्यात्मक उपलब्धि है और हिन्दी महाकाव्योंमें इसका स्थान बहुत ऊँचा है। मनोवैज्ञानिक तथ्योंके मानवीकरण, सांस्कृतिक दृष्टिकोण, सृष्टि-विकासके सूक्ष्म विश्लेषण एवं कमनीय काव्य-कलाकी दृष्टिसे यह विश्व-साहित्यमें परिगणित किया जाना चाहिए। अपने नाटकोंमें

उच्चकोटिके गीत पिरोने वाले एवं लहर, झरनाके सुप्रसिद्ध गीतिकार जयशंकर प्रसादके महाकाव्यमें भी कुछ बहुत अच्छे गीत आये हैं :—

१. किस गहन गुहासे अति अधीर, एकादश संस्करण, पृ० १६९
२. देखे मैंने वे शैल-श्रृंग, वही,
३. अपनी ज्वालासे कर प्रयास, पृ० १७०
४. इस दुखमय जीवनका प्रकाश, वही
५. जीवन-निशीथके अन्धकार, पृ० १७१
६. यह उजड़ा सूना नगर प्रान्त, पृ० १७२
७. यों सोच रहे मनु पड़े, शान्त, वही,
८. जीवनका लेकर नव विचार, पृ० १७३
९. था एक पूजता देहदीन, वही
१०. मनु, तुम श्रद्धाको गये भूल, पृ० १०४
११. यह कौन ! अरे फिर वही काम !, वही
१२. मनु ! उसने तो कर दिया दान ! पृ० १७२
१३. हाँ अब तुम बनते हो स्वतंत्र, वही
१४. यह अभिनव मानव प्रजा-सृष्टि, पृ० १७६
१५. अनवरत उठे कितनी उमंग, वही
१६. वह प्रेम न रह जाये पुनीत, पृ० १७७
१७. संतुलित असीम-अमोघ शक्ति, वही
१८. जीवन सारा बन जाय युद्ध, पृ० १७८
१९. तुम जरा-मरणमें चिर अशान्त, वही
२०. अभिशप्त प्रतिध्वनि हुई लीन, पृ० १७९
२१. करती सरस्वती मधुर नाद, वही
२२. प्राचीमें फैला मधुर राग, पृ० १८०
२३. बिखरी अलकें ज्यों तर्क-जाल, वही
२४. नीरव थी प्राणोंकी प्रकार, पृ० १८१
२५. प्रतिभा-प्रसन्न मुख सहज खोल, पृ० १८१
२६. इस विश्व-कुहरमें इन्द्रजाल, पृ० १८२
२७. शनिका सुन्दर वह नील लोक, वही
२८. हाँ तुम ही हो अपने सहाय, पृ० १८३
२९. हँस पड़ा गगन वह शून्य लोक, वही
३०. जीवन-निशीथका अन्धकार, पृ० १८४
३१. तुमुल कोलाहल कलहमें, पृ० २२८

कामायनीके तीस गीत एक ही सर्ग 'इड़ा'के हैं। केवल अन्तिम गीत 'निर्वेद' सर्ग-

का है। यों एक-एक अनुच्छेदके छोटे-छोटे गीतात्मक छन्द-बन्द पूरे दर्शन सर्गमें भी हैं। बुद्धिके प्रतीक इड़ाके चित्रण और स्पष्टीकरणके लिए कविने गीतिकाव्यका सरस आधार लिया है। दार्शनिक तथ्योंकी व्यंजना भी इन गीतोंमें बहुत सुन्दर हुई है। श्रद्धाविहीन मनुकी मनोदशा, काम और मनुकी वार्त्ता, इड़ा और मनुका मिलन, मनुके द्वारा बुद्धिवादका आश्रय आदि अनेक सूक्ष्म विचारोंका मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। अंतिम गीत 'तुमुल कोलाहल कलह'में 'मैं हृदयकी बात रे मन' 'कामायनी'का सर्वश्रेष्ठ गीत है, जिसे श्रद्धाने मनुको सुनाते हुए गाया है। मनु युद्धमें आहत होकर पड़े हैं और श्रद्धा अपने पुत्र मानवके साथ उन्हें ढूँढती हुई वहाँ पहुँची है। बुद्धिपर श्रद्धाकी विजयका यह गीत अत्यन्त प्रेरणाप्रद है। मलयकी बात, कुसुम विकसित प्रात, सरस बरसात, कुसुम ऋतु-रात और सजल जलजातके साथ अलग-अलग पाँच चित्र जुड़े हैं; जिनमें सर्वत्र परुपता और नीरसतापर कोमलता और हार्दिकताकी विजय दिखलायी गयी है। इड़ा सर्गके तीसों गीतोंकी प्रायः एक-सी शैली है। एक टेककी पंक्ति फिर उसके तुकपर गढ़ी दूसरी-तीसरी, आठवीं और नवीं पंक्तियाँ! बीचकी चार पंक्तियों-में दो-दोके अन्त्यानुप्रास एकसे।

एकलव्य

एकलव्य डॉ० रामकुमार वर्माकी अनमोल कृति है, जिसमें नयी मानवताका मूल्यांकन किया गया है और नयी शिल्प-विधियोंके मार्मिक प्रयोग किये गए हैं। उसमें गीतोंका उपयोग अष्टम सर्गमें किया गया है—'ममता'में माँके वात्सल्यको चित्रित किया गया है। निम्नलिखित गीत उस सर्गमें हैं :—

१. मेरा लाल न अब तक आया (पृ० १४७)
२. मेरे सुन्दरसे प्रिय छौने (पृ० १४८)
३. मैं भी साथ तुम्हारे जाती (पृ० १४९)
४. सुना कि तुम रजनी भर जागे (पृ० १५०)
५. यदि तुमको जाना था वनमें (पृ० १५०)
६. यह छोटा-सा धनुष तुम्हारा (पृ० १५१)
७. घरमें आज न आया कोई (पृ० १५२)
८. आशा है, जब तुम आओगे (पृ० १५३)
९. मैंने देखा स्वप्न सजीला (पृ० १५३)
१०. बहता है यमुनाका प्रवाह (पृ० १५४)
११. होगा पशु-पक्षी असहाय (पृ० १५५)
१२. कितना भीषण है ग्रीष्मकाल (पृ० १५६)
१३. कर रही वर्षा क्यों उत्पात (पृ० १५७)
१४. आया शरद प्रकृतिका मीत (पृ० १५७)
१५. हा! हेमन्त न मैं कुछ लूँगी (पृ० १५८)

एकलव्यकी माँकी कल्पना सर्वथा मौलिक है। महाभारतमें उसका उल्लेख नहीं है। 'माँ'के चरित्र-निर्माणने 'एकलव्य'की महाभारत-कथाको विस्तार दिया है और सारा महाकाव्य वात्सल्यकी रस-वर्षासे भींग उठा है। पहले गीतमें पुत्रके न लौटने की पीड़ा है। प्रियकी खोजकी विकलता दूसरे गीतमें है। तीसरे गीतमें प्रकारान्तरसे एकलव्यके दैनिक क्रिया-कलापका वर्णन है। चौथे गीतमें ज्ञानपिपासु एकलव्यकी गुरुभक्तिका संकेत मिलता है। पाँचवें गीतमें उन कठिनाइयोंकी कल्पनासे माँका मन भर आता है जो वनमें सहज संभव है। धनुर्विद्या सीखनेकी लालसाने ही एकलव्यको उसकी माँसे अलग कर दिया। इस तथ्यकी वेधक व्यंजना छठे गीतमें मिलती है। माँकी प्रतीक्षारत आँखें पुत्र-दर्शनको विकल हैं तथा वह मन बहलानेको एकलव्यके किसी मित्रतककी संगतिका अभाव पाती है। सातवें गीतमें वात्सल्य-मूर्त्तियोंकी पूर्ण निस्संगता है। आठवें गीतमें लक्ष्यवेधको लक्ष्य बनाकर कलात्मक उक्तियाँ हैं। उलझनको लक्ष्य बनाना तथा वर्त्तमानमें भविष्यका लक्ष्य वेधे ये टुकड़े बेजोड़ हैं। नवें गीतमें स्वप्नके प्रतीकोंका मनोवैज्ञानिक निरूपण है। दसवें गीतमें पुत्रकी निर्ममताका और चौदहवें गीतमें एकलव्यका गुण-कथन है। बारहवेंसे सत्रहवें गीतके षड्ऋतु वर्णनमें पर्याप्त मौलिकता है। उदाहरणार्थ शरदके लिए यह कथन—

> आया शरद प्रकृतिका मीत !
> वर्षाके मंथनसे निकला,
> जैसे यह नवनीत ॥

सम्पूर्ण ऋतु-वर्णनका केन्द्र 'मेरे बालकिशोर' है। डॉ० वर्माने काव्यदृष्टियोंकी नवीनता और प्राचीनताका मणि-कंचन संयोग इस महाकाव्यमें किया है। ममता सर्गमें

जहाँ चरित्र-चित्रण, वस्तु-वर्णन एवं कथनकी मौलिकता है, वहाँ उसमें षड्ऋतु-वर्णन तथा विरहकी ग्यारहों अन्तर्दशाओंका निर्वाह है; किन्तु इस परम्परा-पालनमें भी चर्वित-चर्वण नहीं, पर्याप्त नवीनता है। गीत-संख्या अठारहवेंसे सत्ताईसवें गीतमें क्रमशः अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता एवं मूर्च्छाका वर्णन है। मरणका वर्णन इसके बादके कवित्तमें किया गया है। अट्ठाईसवें गीतकी चार पंक्तियोंमें एकलव्यके आनेके समाचारकी विकल प्रतीक्षा है। उन्तीसवां गीत गीतिको कथातन्तुसे जोड़ता है। अन्तिम गीतमें एकलव्यके कथनकी आवृत्ति की गयी है जिसमें माता-पिता एवं गुरुकी श्रद्धा-भक्ति निवेदित है।

मूल पुस्तकमें ममता सर्ग एकतीस छन्दोंमें विभाजित है, मैंने उनमेंसे उनतीसको गीतोंके रूपमें रखा है। पुस्तकका अट्ठाईसवाँ पद कवित्त है तथा तीसवें छन्दमें एकलव्यके शुभागमनका संकेत है। एकतीसवें गीतको दो खण्डोंमें बाँटा गया है। यद्यपि दोनोंका छंदबंद एक ही है, तथापि एकमें माँका प्रत्यक्ष कथन है एवं दूसरेमें पुत्रके विचारोंकी स्मृति-आवृत्ति। सम्पूर्ण सर्गमें एकलव्यके महाकविपर अंजलि, रूप-राशि, चित्ररेखा आदिके भावुक एवं सुकोमल गीतिकारका व्यक्तित्व आच्छादित है। ऐसा लगता है जैसे विशाल हिमालयकी ऊँची चोटियोंके हिम-हासपर ज्योत्स्ना छिटक गयी हो; कि जैसे सघनविस्तृत मेघखण्डोंपर इन्द्रधनुषी वैभव बिखर गया हो।

आधुनिक हिन्दी नाटकोंमें प्रयुक्त गीत

नाटकोंकी श्रेष्ठताका एक कारण यह भी है कि उसमें कहानी, कविता, चित्रकारी, नृत्य, संगीत आदि अनेक ललित कलाओंके साथ ही उपयोगी कलाओंकी आवश्यकता होती है। जीवनके विस्तृत रूपको कथनोपकथनके माध्यमसे नाटकोंमें सजाया जाता है। जीवनमें संगीत-नृत्यका स्थान है। अतः नाटकोंके गद्यके बीच प्रायः गीतोंकी योजना की जाती है। जैसे कड़ी चट्टानोंके बीच कहीं-कहीं मीठे जलमय सोते मिल जाते हैं।

शास्त्रीय दृष्टिसे नाटकोंमें गीतका रहना आवश्यक है। लास्यके ९ भेदोंके साथ एक 'गेय पद' भी है। नाट्यशास्त्रानुसार मनोरंजनकी विविधताके लिए लास्यका[1], अतः गेय पदका विधान है। गेय पदके महत्त्वको नाट्यशास्त्रमें अलगसे बतलाया गया है।[2] कथा-प्रसंगोंको चमत्कृत करनेके लिए विशेष रूपसे इसका उपयोग है। यों ऐसे भी आनन्दवर्द्धन और अनेक रसों एवं भावोंकी पुष्टिके लिए इनका उपयोग होता है।

---

१. यानि लास्यांगानि वीयन्ते तेभ्यः कश्चिद्वैचित्र्यांशो लोकापरिदृष्टोऽपि रंजनावैचित्र्याय कवि प्रयोक्तुभिर्नद्ये निबन्धनीयः।

—नाट्यशास्त्र, अभिनव भारती, १९,१२०

२. ध्रुवागानपंचकमन्तशलापस्वररहितं यत्र प्रयोगयोग्यं भवति स काव्यप्रयोगे गेय पदमित्युक्तं भवति।

—वही, १६,१२१

हिन्दी नाटकोंमें गीतिकाव्यके प्रयोगके निम्नलिखित कारण हैं :—

१. चरित्र-चित्रणके लिए,

२. घटना-विस्तारके लिए,

३. भावोद्दीपनके लिए,

४. वातावरण निर्माणके लिए,

५. अन्तर्भावनाओंके प्रस्फुटनके लिए।

१. चरित्रचित्रणके लिए—जहाँ गीतोंके माध्यमसे पात्रोंकी चारित्रिक विशेषताओं-का पता चलता है। 'यह कसक अरे आँसू सह जा'[1]में मन्दाकिनीके अश्रु-सजल जीवन एवं अदम्य सहनशक्तिका पता चलता है। यथा उड़ना चाह रहा है उरका पंछी तोड़ क्षितिजका घेरा'[2]में जेबुन्निसाके बन्धनसे जकड़े जीवनकी छटपटाहट और उसके कवि-हृदयका, 'उतारोगे अब कब भू-भार'[3]में मातृगुप्तके ईश्वर-विश्वासका तथा 'हे मेवाड़ प्रदेश धरापर तेरी स्तुति गाते हैं सुर-नर'[4]में उदयकी देश-भक्तिका परिचय मिलता है। 'अजातशत्रु'में प्रसादकी मागधीके गीतोंमें उसके चरित्रका पतनोत्थान वर्त्तमान है।[5]

२. घटना-विस्तारके लिए—जहाँ गीत कथानकको नया मोड़ देते हों अथवा घटनाका विस्तार करते हों। जैसे, 'चन्द्रगुप्त' नाटकमें मालविका एक गीत गाकर अपने प्राणोंके उत्सर्गके लिए तैयार हो जाती है। वह जानबूझ कर हत्यारोंके षडयंत्रका शिकार बन जाती है चन्द्रगुप्तके प्राणोंकी रक्षाके लिए।[6]

नाटकोंमें प्रयुक्त प्रयाण-गीत घटनाओंको एक विशेष गति देते हैं। घटनाकी प्रेरक शक्तिके रूपमें इनका उपयोगी स्थान है। प्रमाणस्वरूप कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं। प्रसादके 'चन्द्रगुप्त' नाटकमें जब आम्भीक यह कहता है कि अकेले मैं यवनोंका आक्रमण रोकनेमें असमर्थ हूँ[7], तब अलका आकर इस जड़ताको दूर करती हुई उत्साह भरती सबको यवनोंके विरुद्ध युद्ध-प्रेरित करती है। इस तरह घटना आगे बढ़ती है। गीत है 'हिमाद्रि तुंग शृंगसे'।[8] इसी तरह मंदाकिनीका 'पैरोंके नीले जलधर हो', गीत सारे सामन्त कुमारोंको आगे बढ़नेको प्रेरित करता है।[9] बनवीरके नेतृत्वमें सेनाके

१. 'ध्रुवस्वामिनी', प्रसाद, पृ० १९।

२. 'विदा', प्रेमी, पृ० ३७।

३. 'स्कन्दगुप्त', पृ० ३९।

४. 'राजमुकुट', गोविंदवल्लभ पंत, पृ० ५८।

५. उसके गीत उसके जीवनके पतनोत्थानका परिचायक है।
—'हिन्दी नाटक, उद्भव और विकास', डॉ० दशरथ ओझा, पृ० २७३-७४।

६. ओ मेरी जीवनकी स्मृति···, पृ० २०८।

७. पृ० २१७।

८. पृ० २१७।

९. पृ० ३३।

प्रस्थानके समय उदय सिंह अपने मित्रोंके साथ गाते हुए आगमें घी डालनेका काम करता है—वारो हे सैनिक तन, मन, धन।[1]

३. भावोद्दीपनके लिए—प्रायः नर्त्तकियों और गायकों द्वारा वीर, करुण, शृंगार आदि रसोंको उद्दीप्त करनेके लिए गीतोंका आयोजन किया जाता है। जैसे वीर क्षत्रियों-में बहनोंकी लाज रखनेकी भावना भरनेके लिए चित्तौरके भीतर क्षत्राणियाँ गाती हैं—

प्रेम पर्व आ पहुँचा आज
रखो बन्धु, बहनोंकी लाज।[2]

रक्षा-बन्धनमें ही चारणी वीर-भाव जाग्रत करनेको 'जय-जय जय मेवाड़ महान्', 'वीरों समर-भूमिमें जाओ' तथा 'आज शक्तिका ताण्डव हो' गाती है।[3] 'ध्रुवस्वामिनी'में नर्त्तकियोंके गीत—

'अस्ताचलपर युवती सन्ध्याकी खुली अलक घुँघराली है
लो मानिक मदिराकी धारा अब बहने लगी निराली है।'

प्रस्तुत करनेके बाद विजयमें मदोन्मत्त शकराजके समक्ष उनके सामंतोंका प्रस्ताव आता है—श्रीमान् इतनी बड़ी विजयके अवसरपर इस सूखे उत्सवसे सन्तोष नहीं होता, जब कि कलश सामने भरा हुआ रखा है।[4] और सब पीने लगते हैं। सैनिकोंकी वासनाको इस गीतने उभारा है। 'चक्रव्यूह'में चारणके गीत 'धरामें झुकी मृत्यु दासी बनी'का उपस्थित श्रोताओंपर विशेष प्रभाव पड़ता है। सब ओरसे जैसे इस गीतकी ध्वनि सुन पड़ती है। कर्ण और अश्वत्थामा धरतीपर धनुष टेककर आँखें बन्द कर लेते हैं।[5]

४. वातावरण-निर्माणके लिए—जहाँ गीत आगामी घटना या वार्तालापके लिए अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करता है। जैसे 'विजय पर्व'की महादेवी अपने सपनोंको साकार करनेके लिए अशोकके आनेके पूर्व चित्रोंमें रंग भरती हुई गाती है—

अलि पहचान गया कविको
अपने स्वरसे स्वर्ग बनाया,
इस सुमनांजलिको।
मंद पवन धीरे बहा, उरमें भर अनुराग
कलित कुंजमें कन्तकी-मौन रही है जाग
खिलनेका संवाद कौन
देता कुसुमावलिको।[6]

'पुण्यपर्व'की विशाखा 'एक स्फटिक चत्वरपर ताराओंके क्षीण प्रकाशमें अकेली बैठी

---

१. 'राजमुकुट', गोविन्दवल्लभ पन्त, पृ० १११।
२. 'रक्षा-बन्धन', प्रेमी, पृ० ३३।
३. पृ० ५९-६६।
४. पृ० ३९।
५. पृ० ९१।
६. डॉ० रामकुमार वर्मा।

हुई' एक गीत गाती है। इसी परिपार्श्वमें अचानक सुत सोम आता है--वह भी लता-कुंजोंसे निकलकर कहता है 'कहो देवि सुध भूल होनेके पहले ही मैं कैसे आ पहुँचा।' यह गीत 'अरे ओ मेरे मनके शूल' प्रेममय वातावरणका निर्माण करता है।[१]

५. अन्तर्भावनाओंके प्रस्फुटनके लिए--जहाँ मनके भाव सुविधासे गीतोंके माध्यमसे जनसमाजके सामने प्रकट हो जाते हैं, ऐसी भावनाएँ जो गीतोंकी कड़ियोंमें ही प्रकट होती हैं—कुछ खुली, कुछ अधखुली। 'ध्रुवस्वामिनी'की कोमाके खंडित प्रेम और अतृप्त यौवनकी अभिव्यंजना—'यौवन तेरी चंचल छाया, इसमें बैठ घूँटभर पी लूँ जो रस तू है लाया' कितनी कलात्मक हुई है।[२] उसी नाटकमें मंदाकिनीके क्षुब्ध और व्यथित मनकी भावनाएँ 'यह कसक अरे आँसू सहजा' में फूट पड़ी है।[३] इसी तरह 'रक्षा-बन्धन' नाटकमें शाह शेख औलियाके गीत 'आज खुदा खुद है हैरान'में क्षुब्ध मानवताका स्वर फूट पड़ा है, लाखों हिन्दुओंकी अन्तरात्माकी आवाज फूट पड़ी है।[४]

हिन्दी नाटकोंमें नेपथ्य गीतके भी प्रयोग किये गये हैं। नेपथ्य गीतोंसे उन तथ्योंकी अभिव्यक्ति होती है, जो मंचपर उपस्थित पात्रों द्वारा सम्भव नहीं। जैसे उपर्युक्त औलियाका गीत और राज्यश्री नाटकमें 'अब भी चेत ले तू नीच' का नेपथ्य-गायन।[५] नेपथ्यगानका आश्रय वहाँ भी लिया जाता है, जहाँ रंगमंचमें एक ही पात्र हो और वह भी मौन—अपने आपमें खोया हुआ। जैसे चन्द्रगुप्त नाटकमें नेपथ्य-गीत 'कैसी कड़ी रूपकी ज्वाला।'[६] ऐसे अवसरपर श्रोता गीतकी कड़ियोंसे आनन्द लाभ करते हैं।

हिन्दी नाटकोंमें नर्त्तकियोंका सृजन प्रायः गान-नृत्यके लिए ही किया जाता है। घटनाओंके विकासमें वे खुलकर सक्रिय भाग लेती नहीं दीखतीं। दूसरी बात यह है कि प्रायः स्त्रियाँ ही गाती हैं। पुरुष गायकोंकी संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है। स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, राज्यश्री और ध्रुवस्वामिनीमें कुल मिलाकर ३७ गीत हैं, जिनमें सिर्फ २ गीत स्वतन्त्र रूपसे पुरुषोंने गाये हैं। ३ नेपथ्य गीत हैं और एक सामूहिक गीत।

इन नाटकोंमें शास्त्रीय राग-रागिनियोंमें बँधे गीत भी हैं और स्वतन्त्र या भिन्न भी। प्रसादने कुछ गीतोंकी स्वर-लिपियाँ भी दी हैं और गोविन्दवल्लभ पन्तने गीतोंके ऊपर राग-तालके उल्लेख भी किए हैं। एकांकी सम्राट् डॉ० रामकुमार वर्माने अपने नाटकोंमें कहीं-कहीं केवल नृत्यकी शास्त्रीय धुनें दे दी हैं—जिन परिस्थितियोंमें उनका निर्देशन है, वे गीतोंसे अधिक प्रभावशाली सिद्ध होती हैं। उदाहरणस्वरूप 'सत्यका स्वप्न' देखा जा सकता है। यह एक चित्त-रूपक है, जिसमें कथाकलि नृत्यका स्वर दिया गया है—क्रगदं, त्रगदं, त्रगदं-त्रगदं—उस समूचे चित्र रूपकमें कहीं गीत नहीं है। एक-एक स्थान-

१. सियारामशरण गुप्त, पृ० १४-१५।
२. पृ० ३५।
३. पृ० १९।
४. प्रेमी, पृ० ७८।
५. अंक ३, दृश्य २।
६. पृ० १९८।

पर स्तोत्र और दोहेके पाठ भर हैं। वस्तुतः इस रूपकके गद्यमें ही पर्याप्त रस और कवित्त है। भावोंका संगीत और प्रवाह है।

हिन्दीमें प्रतीक प्रधान रूपकोंमें गीतोंकी संख्या अधिक है। वे गीत मनोभावोंके चितेरे और कोमलकान्त पदावलियोंसे सने हैं। पन्तकी ज्योत्स्नामें अनेक मधुर गीत हैं, जो ज्योत्स्ना, सुरभि, कल्पना, उषा, इन्द्र, स्वप्न, अरुण, छाया, विहग, किरण आदि सुकुमार प्रतीकोंको सचित्र बना देते हैं। प्रसादकी 'कामना' सुकुमार मनोवृत्तियोंके पात्र होनेके कारण अतिशय मसृण हैं। इसमें एक गीत ऐसा भी है, जिसकी एक पंक्ति कामना, दूसरी उसकी सखी और तीसरी उसकी दूसरी सखी गाती है—

कामना सखी—

जाओ सखी, तुम जी न जलाओ हमें न सताओ जी

(१) तुम व्यर्थ रही बकती
कामना-तुम जान नहीं सकतीं
मनकी कथा है कहनेकी नहीं
(२) मत बात बनाओ जी।
(१) समझोगी नहीं सजनी
(२) भव प्रेममयी रजनी।
भर-नैन सुधा छबि चारु गयीं
अब क्या समझाओ जी।[१]

गीतकी इस शैलीपर पारसी थियेटर और यात्रा-पार्टीकी छाप है।

निस्सन्देह हिन्दी नाटकोंमें प्रयुक्त गीत आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यके विकास और उपलब्धिकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। लेकिन धीरे-धीरे नाटकोंमें उनकी संख्या कम ली जा रही है और उनकी जगह भावनाओंके उतार-चढ़ावके मनोवैज्ञानिक चित्र आते जा रहे हैं।

इस तरह आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यकी उपलब्धियोंके प्रसंगमें यह देखा गया कि गीतिकाव्यकी प्रयोग-भूमि कितनी विस्तृत है। गीतकी अभिव्यक्तियोंकी विविध शैलियाँ तो हैं ही, साथ-साथ उनका प्रसार प्रबन्धकाव्यों और नाटकोंमें भी है। वस्तुतः हिन्दी काव्यका सम्पूर्ण विस्तृत आँगन गीतोंसे मुखरित-गुंजित है।

---

१. पृ० ७४।

अध्याय २

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका स्वर्णकाल—छायावाद

व्यक्तियोंका नामकरण उनके गुणोंके आधारपर हो या न हो साहित्यिक युगों, धाराओं एवं प्रवृत्तियोंको उनकी प्रमुख विशेषताओंके आधारपर ही अभिहित किया जाता है, क्योंकि मनुष्यके नाम तब दिये जाते हैं, जब उसके व्यक्तित्वका प्रस्फुटन नहीं हुआ होता, दूसरे व्यक्तिके नामकरणमें प्रायः माता-पिता या परिवारके कुछ सदस्योंका ही हाथ होता है। इसके विपरीत साहित्यिक वृत्तियों या गुणोंका नामकरण उनकी प्रवृत्तियोंके प्रत्यक्ष हो जानेके बाद ही होता है तथा उसकी परख करने वाले व्यक्ति भाषा और साहित्यके प्रबुद्ध अध्येता होते हैं। हिन्दीमें वीरगाथा या चारणकाल, भक्तिकाल, रीति या श्रृंगार कालके नामकरण समसामयिक साहित्यिक विशेषताओंको दृष्टिपथमें रखकर ही किये गये। कभी-कभी नये युगके प्रवर्त्तक नयी विचारधाराओंके प्रतिष्ठापक किन्हीं युगान्तकारी साहित्यकारके नामपर भी साहित्यिक अवधिका नामकरण होता है। हिन्दीमें भारतेन्दु-युग एवं द्विवेदी-युगके नामकरण इसी आधारपर हुए।

एक विलक्षण बात यह है कि उपहासकी मुद्रामें एक काव्य-प्रवृत्तिका जो नामकरण हुआ उसने अपनी अनेक मौलिक विशेषताओं तथा अविस्मरणीय उपलब्धियोंके कारण अपना ऐतिहासिक महत्त्व स्थापित किया। उन्नीस सौ बीस—मेरे शोधका प्रारम्भिक वर्ष इस बातके लिए महत्त्वपूर्ण है कि जबलपुरकी 'श्रीशारदा' पत्रिकामें पंडित मुकुटधर पाण्डेयने चार खण्डोंमें 'हिन्दीमें छायावाद' शीर्षक निबन्ध प्रकाशित कराया था। इसी निबन्धके आधारपर यह अनुमान किया जा सकता है कि छायावादपर इसके पूर्व भी नाक-भौं सिकोड़नेवालोंकी थोड़ी बहुत संख्या मौजूद थी। आचार्य द्विवेदीकी 'सरस्वती'-में जून १९२१में 'हिन्दीमें छायावाद' शीर्षक एक निबन्ध प्रकाशित हुआ था। लेखक सुशील कुमारने छायावादपर अनेक आरोप लगाये। दोनों ही लेखकोंने इसपर अस्पष्टता ('मिस्टिसिज्म'के अनुवाद)का आरोप लगाया। सुकवि किंकर नामसे आचार्य द्विवेदीने छायावादका अर्थ 'भावोंकी छाया'के रूपमें ग्रहण किया।[1] तात्पर्य यह कि इस नयी कवितामें वस्तुनिष्ठके स्थानपर व्यक्तिनिष्ठ दृष्टि होनेके कारण भावनाओंकी प्रधानता तथा विषयकी सूक्ष्मताके कारण इतिवृत्तात्मक युगके वर्णन-प्रधान काव्य पाठकोंको ये रचनाएँ छायाकी तरह धुँधली मालूम होने लगीं। स्पष्ट ही इसमें उपहासका भाव था। इस युगके कवियोंने विष्णुकी तरह अपने विरोधी भृगुओंके इस प्रहारको सादर स्वीकार

---

१. छायावादसे लोगोंका क्या मतलब है, कुछ समझमें नहीं आता। शायद उनका मतलब है कि किसी कविताके भावोंकी छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावादी कविता कहना चाहिये। —सरस्वती, मई, २७।

कर अपना महत्त्व बढ़ा लिया। उपेक्षासे दी गयी यह संज्ञा[1] ही उनके लिए विशेषण सिद्ध हुई। तत्कालीन कवियोंके सम्बन्धमें उपहासका भाव आचार्य शुक्लकी इन पंक्तियों-से प्रकट होता है—"पुराने ईसाई संतोंके छायाभास तथा यूरोपीय काव्यक्षेत्रमें प्रवर्त्तित आध्यात्मिक प्रतीकवादके अनुकरणपर रची जानेके कारण बंगालमें ऐसी कविताएँ छायावाद कही जाने लगी थीं। यह 'वाद' क्या प्रकट हुआ, एक बने-बनाये दरवाजे-का रास्ता खुल पड़ा और हिन्दीके कुछ नये कवि उधर एकबारगी झुक पड़े। यह अपना क्रमशः बनाया हुआ रास्ता नहीं था। इसका दूसरे साहित्यक्षेत्रमें प्रकट होना, कई कवियोंका इस पथपर एक साथ चल पड़ना और कुछ दिनोंतक इसके भीतर अँगरेजी और बंगलाकी पदावलीकी जगह-जगह ज्योंका त्यों अनुवाद रखा जाना, ये बातें मार्गकी स्वतन्त्र उद्भावना सूचित नहीं करतीं।"[2]

आज आधुनिक कविताके क्षेत्रमें लम्बे बाल जी, अनन्तकी ओर जी, निराकार जी आदि सम्बोधनोंसे पुकारे जानेवाले कवियोंका स्थान कितना ऊँचा है, यह सर्वविदित है। जैसे प्राचीन हिन्दी कवितामें भक्तिकालको उसकी काव्यगत विशेषताओंके लिए हिन्दी काव्यका स्वर्णयुग कहा गया, उसी प्रकार आधुनिक हिन्दी कविताके क्षेत्रमें और वह भी गीतिकाव्यके लिए छायावादको स्वर्णयुग माननेमें दो मत नहीं हो सकते। छायावादके गीति-सौन्दर्यपर वे भी रीझे हैं;[3] जिन्होंने छायावादकी 'शव-परीक्षा'की है अथवा उसका 'पतन' देखा है।

स्वर्ण-युगका अर्थ अत्यन्त काव्य-वैभव-सम्पन्न कालसे है और इस प्रकरणमें छाया-वादकी उपलब्धियोंके विवेचनके बाद यह स्पष्ट हो जायगा कि गीतिकाव्यकी दृष्टिसे आधुनिक कालमें छायावाद सर्वाधिक वैभव-सपन्न काल है। किन्तु यह जाननेके लिए कि किन परिस्थितियोंमें साहित्यकी मनीषा वर्णनात्मकता छोड़ भावात्मकताकी ओर झुकी, वैयक्तिकताका विस्फोट हुआ और साहित्यके क्षेत्रमें एक अभिनव क्रान्ति हुई, यह आवश्यक है कि हम छायावादी गीतिकाव्यके आविर्भावकी समसामयिक परिस्थि-तियोंका अवलोकन करें, उसकी साहित्यिक तथा सांस्कृतिक प्रेरणा-भूमिके दर्शन करें।

---

१. छायावाद नाम सर्वथा अपर्याप्त है। यह पहले अवहेलनासूचक था।

—अज्ञेय, 'पुष्करिणी', पृ० १६।

२. हिन्दी-साहित्यका इतिहास, पृ० ६५१।

३. (क) किन्तु स्वरूप-विधानकी दृष्टिसे इस गीति-काव्य-प्रधान युगने दो ऐसी वस्तुएँ दी हैं, जो आधुनिक हिन्दी काव्य-साहित्यके लिए सर्वथा अभिनन्दनीय हैं—और वे हैं, गीति-प्रबन्ध और मुक्तवृत्त-प्रबन्ध। ये दोनों हिन्दी काव्य-साहित्यमें सर्वथा नूतन प्रयोग हैं।

—प्रो० नवलकिशोर गौड़, 'साहित्यिक निबन्धावली', पृ० १२५।

(ख) जहाँ छायावादके सूक्ष्म अवेक्षण तथा कल्पना-वैभवने हमारी सौन्दर्य-वृत्तिका उन्मेष और शिक्षण किया, वहाँ उसके संगीतने हमारे काव्यको उपयुक्त मधुरता प्रदान की। इस प्रकार छायावादने सरस एवं सप्राण काव्य-सृष्टिके प्रायः सभी उपकरणों को प्रस्तुत कर दिया।

—'छायावादका पतन', डॉ० देवराज, पृ० २०।

समसामयिक परिस्थितियाँ एवं छायावादकी प्रेरणा-भूमि

यद्यपि १९२०के आस-पाससे छायावादी काव्यके स्पष्ट रूप प्रकट हो गये थे, तथापि १९१५ की रचनाओंमें इसके स्पष्ट लक्षण मिलते हैं।[१] १९१४में प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ। १९१८ तक पाँच वर्षोंमें क्यासे क्या हो गया। कितने नगर ध्वंस हुए, कितने लोग मारे गये। विधवाओं और निपूताओंके हाहाकारसे लाखों घर भर गये। जीवनके प्रति हतोत्साह, निराशा, मनुष्यताके प्रति अनास्था एवं विद्रोहकी भावना भर उठी। निर्धनों, बेकारों और मजदूरोंकी संख्या बढ़ने लगी। मशीनी सभ्यताके विकासने बेरोजगारोंकी संख्या बढ़ा दी। पूँजीपतियों और निर्धनोंके बीचकी खाई चौड़ी हो गयी। अपने व्यवसायके विकास और प्रश्रयके लिए राज्य-विस्तारकी लिप्साने युद्धकी ओर राष्ट्रोंको प्रेरित किया। उस कालका बड़ा ही चित्रमय वर्णन डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीने उपस्थित किया है—

"समृद्धिशाली राष्ट्र क्रुद्ध भेड़ियोंकी तरह एक-दूसरेपर टूट पड़े। सबकी पूँछमें कोई न कोई देश बँधा था। देखते-देखते इस धरतीकी पीठपर सम्पूर्ण संसार भयंकर जिघांसासे मत्त होकर जूझ पड़ा, कुछ हारे, कुछ जीते, कुछ बुरी तरह बरबाद हो गये।"[२]

भारतवासियोंने अँगरेजोंका साथ इस आशासे दिया था कि वे बदलेमें इन्हें मानवोचित अधिकार और मुक्ति देंगे। इन्होंने उन्मुक्त भावसे अपना रक्त बहाया। भारतीय राजा-महाराजाओं और व्यवसायियोंने झूठी प्रशंसा, खिताबों और लाभ-लोभसे धन देकर तथा मध्यवर्ग और निर्धनोंने प्राण देकर उनकी सहायता की। पुरस्कारके रूपमें १९१९ ई० में 'मोन्टेग-चेम्सफोर्डप्रविवरण'के आधारपर भारतीयोंको भुलावा देनेको औपनिवेशिक स्वराज्यकी जगह प्रान्तीय एवं केन्द्रीय धारासभाओंमें कुछ जगहें दी गयीं। 'वायसराय' और 'गवर्नरों'की अधिकार-प्रमत्तता बनी रही। इतना ही नहीं, अँगरेज आन्तरिक भेद-नीतिका सहारा ले मुसलमानोंको हिन्दुओंके खिलाफ भड़काने लगे।

१९१८में विश्वयुद्ध समाप्त हुआ और राज्य-भक्ति, मित्रता एवं त्यागकी कीमत मिली १९१९के जालियाँवाला बागमें जब कि निहत्थे हिन्दुस्तानियोंपर गोलियोंकी बौछार हुई और हजारों मौतके घाट उतार दिये गये। इसी वर्ष रवि ठाकुरने 'सर'की और गांधीने 'केसरे हिन्द'की उपाधियाँ लौटायीं थीं। भारतीयोंके अपमान, उपेक्षा और शोषणको संस्कृति और राजनीतिके दो महान् नेता कैसे सह सकते थे—झूठे राजसम्मानकी चकाचौंध उन महापुरुषोंको कैसे प्रभावित कर सकती थी! १९२५में 'मुडीमैन' समितिका जो प्रतिवेदन था, वह १९१९के 'मोन्टेग चेम्सफोर्ड' समितिका ही रूपान्तर था। इसकी बतायी गयी दुहरी शासन-प्रणालीको अनुपयुक्त सिद्ध किया गया। मोतीलाल

---

१. वस्तुतः १९१५ ई०में मुकुटधर पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त एवं बदरीनाथ भट्टके काव्यमें मुक्तक एवं छायावादी काव्यके लक्षण प्रस्तुत होने लगे थे।

—'आधुनिक हिन्दी-साहित्यमें स्वच्छन्दवातादकी पृष्ठभूमि', डॉ० रामचन्द्र मिश्र, पृ० ६५।

२. 'हिन्दी-साहित्य : उद्भव और विकास', पृ० ४६८।

नेहरू इसके अग्रणी थे। इसी बीच 'रौलेट ऐक्ट'ने रही-सही आशापर भी पानी फेर दिया। जालियाँवाला बागको देश भूला नहीं था। अंगरेजोंकी 'हण्टर कमिटी' और कांग्रेसकी जाँच-रिपोर्टमें मेल नहीं बैठा। काँग्रेसकी जाँचने अंगरेजोंके अत्याचारका पर्दा-फाश कर दिया।

१९२०के कलकत्ता काँग्रेसमें गांधीके असहयोग आन्दोलनकी सैद्धान्तिक स्वीकृतिसे गांधी-युगका प्रारम्भ माना जाना चाहिये। ध्यान देनेकी बात है कि १९२० छायावाद और गांधीवाद दोनोंके जन्मका वर्ष है। ऐसा लगता है कि समान परिस्थितियोंने दो प्रकारकी प्रतिक्रियाओंको जन्म दिया—गांधीवाद निराशासे लोहा लेने, परिस्थितियोंसे जूझनेका प्रयास है और छायावाद भावनाकुंजमें छिपकर कल्पना-लोकके सुखके अनुभव की चेष्टा। डॉ० नगेन्द्रने इसे ही कर्मवृत्ति और भाव-वृत्ति कहा है।[१]

तात्पर्य यह कि छायावादी कविता उस कालमें पनपी, जिस समय भारतीय जीवनमें एक गहरी निराशा व्याप गयी थी। इसकी प्रतिक्रिया दो रूपोंमें हुई थी—एक तो वे थे जो डटकर परिस्थितियोंका सामना करना चाहते थे और दूसरे वे जो उनसे ऊबकर भाग खड़ा होना चाहते थे। पहली प्रतिक्रियाने राष्ट्रीय चेतनाको जन्म दिया, दूसरेने छायावादी प्रवृत्तिको। सामाजिक वैषम्य एवं शोषित मानवता छायावादके रेशमी आँचल-में छिपकर पलभर चैनकी साँस लेने लगी।

१९२०के पूर्वकी साहित्यिक भूमि छायावादके जन्म और विकासके लिए अत्यन्त उर्वरा सिद्ध हुई। रीतिकालीन मनोभावनाको बहुत दूरतक धो-पोंछनेमें स्वामी दयानंद सरस्वतीके आदर्शवादी एवं नैतिकतावादी प्रचारोंका बहुत दूरतक हाथ माना जा सकता है। उनके ओज, बौद्धिकता एवं ब्रह्मचर्यकी दीप्तिसे भींगी वाणीने परतंत्रताकी बेड़ियोंमें जकड़े देशकी तंद्रा तोड़ दी। एकबार यह देश अपनी बेड़ियोंको तोड़नेको कसमसा उठा। कोरी भक्ति और निरे प्रेमके गीतोंके स्थानपर राष्ट्रीय जागरणके स्वर सुनायी पड़ने लगे। शुद्ध आनन्दवादी कविता-धाराके बीच विचारोंकी धरती दीखने लगी। भारतेन्दुकी राष्ट्रीय कविताओंमें इसी सामाजिक जागरण और चिन्तनका उन्मेष दीखता है।

द्विवेदी युगके आदर्शोंमें स्पष्टता थी। एक ऐसी इतिवृत्तात्मकता थी जो नये युगकी कठोरताको सह सके; वह कठोरता, जो जीवनको संयमित करनेके लिए अपेक्षित होती है। द्विवेदीयुगीन कवियोंने जीवन और जगत्‌से एक कर्मठ गृहस्थीकी भाँति नाता जोड़ा, जिसने पारिवारिक रसका आनन्द लिया और जो समस्याओंकी धूपमें कुम्हलाये बिना आगे बढ़ता गया। वह सामाजिक दायित्वों एवं संघर्षोंका तटस्थ दर्शक नहीं रहा, भोक्ता हो गया। 'राधा-गुबिन्द सुमिरनके बहाने' इस युगमें कहीं नहीं किये गये।

१. जिन परिस्थितियोंने हमारी कर्मवृत्तिको अहिंसाकी ओर प्रेरित किया, उन्होंने भाव-वृत्तिको छायावाद की ओर।

—'विचार और अनुभूति', पृ० ५३।

राधा-कृष्णका जो रूप प्रिय-प्रवासमें आया भी, वह लोक-जीवनको अत्यन्त ऊँचा उठानेवाला। विरह-विदग्धा, दीना-हीना न होकर राधिका लोक-सेविकाके रूपमें परिणत हो गयी। अधिकांश कविताएँ देश-दुर्दशा, आत्म-प्रताड़ना, उद्बोधन एवं सामाजिक-पारिवारिक दायित्वोंसे भरी हैं। शृंगार है भी तो ऐसा, जो कामुकताको बढ़ावा न दे, कर्म-पथसे विचलित न करे।

प्रत्येक साहित्यिक चेतनाकी कुछ-न-कुछ गुत्थियाँ बन जाती हैं, जिनके फलस्वरूप एक प्रतिक्रियाका जन्म होता है। द्विवेदीयुगीन काव्यके दुर्बल पद आगे आनेवाले कवियोंकी प्रतिभाके नये उन्मेषके आधार बने। द्विवेदी-युगका कमजोर पहलू यह भी था कि उस कालकी भाषा नये भावोंकी अभिव्यंजनाके बहुत अधिक अनुकूल सिद्ध नहीं हुई थी। खड़ी बोलीका संस्कार 'सरस्वती'के प्रकाशनके साथ-साथ होना प्रारम्भ हुआ था। नवयुगकी क्रान्तिकारिणी सांस्कृतिक चेतनाको एक ऐसी भाषामें बाँधनेका प्रयत्न करना, जिसकी साहित्यिक परम्पराका अभाव हो, एक बहुत बड़ा दुस्साहस था! द्विवेदीयुगीन कविताकी नीरसता, रुक्षता या तथ्य-बहुलताका एक कारण भाषागत सीमा भी थी। इस भाषाको अधिकसे अधिक व्यंजक बनानेकी स्पर्द्धाने छायावादी आन्दोलनकी ओर कवियोंको प्रेरित किया। द्विवेदी-युगकी भाषा पौराणिक आख्यानों, ऐतिहासिक इतिवृत्तों, वर्णनात्मक प्रसंगों एवं नीतिपूर्ण पदावलियोंके लिए चाहे जितनी समर्थ थी, उसमें बादमें आनेवाली सूक्ष्म भावधाराओंके चित्रणका सामर्थ्य नहीं था। इस तथ्यकी घोषणा प्रसादने स्पष्ट रूपसे की—'सूक्ष्म आभ्यन्तर भावोंके व्यवहारमें प्रचलित पद-योजना असफल रही। उनके लिए नवीन शैली, नया वाक्य-विन्यास आवश्यक था।'[१] महादेवीने भी कुछ ऐसी ही बात कही—"...भाषा लचीलेपनसे मुक्त थी, व्रजभाषाके अभ्यस्त कानोंको ध्वनिमें कर्कशता जान पड़ती थी और उक्तियोंमें चमत्कार न मिलता था।'[२] यह भाषा-सम्बन्धी परिमार्जन—नयी अर्थवत्ता और अभिव्यंजनाकी दिशामें प्रगति इतनी क्षिप्रतासे हुई कि आश्चर्य होता है। मैथिलीशरण गुप्तकी रचनाओंमें भाषाके इस क्रमशः निखारको भली-भाँति देखा जा सकता है।

द्विवेदी-युगकी दूसरी दुर्बलता थी यौन-भावनाका दमन, शृंगारका सप्रयास बहिष्कार एवं नारीकी पवित्रताके प्रति अतिशय सजगता। रीतिकालकी शृंगारिकताके विरुद्ध जन्मी द्विवेदीयुगीन पवित्रताने मानवकी स्वाभाविक कामवृत्तिको बेतरह दबोच दिया। नारीके वन्दनीय रूपसे आदर्शको बल मिला, भावनाएँ तुष्ट नहीं हो सकीं। वीरत्व, त्याग, स्वाभिमान आदि पुण्यभावोंके बीच नारीकी सहज-सुलभ कोमलता और सुन्दरता दब गयी। शृंगारिकताके विरोधने प्रेम-विहगके पंख कुतर डाले और नारीकी सहज प्रेरणाकी उपेक्षा की। पाठकोंके मनकी पुरुष-भावनाको नारीके इस रूपने प्रभावित तो किया, पर अनुप्राणित नहीं। उसके प्रति श्रद्धा तो जगी, पर प्यार नहीं उमड़ा।

---

१. 'काव्य-कला तथा अन्य निबन्ध', पृ० १२३।

२. अपने दृष्टिकोणसे, 'आधुनिक कवि', पृ० १५।

द्विवेदी-युगकी विषय-सम्बन्धी धारणाने भी छायावादका मार्ग प्रशस्त किया। इस युगमें प्रत्यक्ष जीवन और प्रतिदिनकी, परिचित वस्तुओंको कविताका विषय बनाया गया। 'अतिपरिचयादवज्ञा'—इनके प्रति आकर्षणका भाव बहुत दिनोंतक नहीं रहा—धीरे-धीरे लुप्त होता गया। सामान्यतः पाठकोंका बहुत बड़ा दल अपने दैनिक जीवनके कर्म-कोलाहलको भूलकर पल भरको कल्पना-लोककी रंगीनियोंमें खो जाना चाहता है। द्विवेदी-युगमें ऐसी कविताका अभाव बना रहा, जिसकी पूर्त्ति छायावादने की। डॉ० सुधीन्द्रने द्विवेदी-युगके इसी दुर्बल पक्षको ध्यानमें रखकर लिखा—'स्वपक्ष अर्थात् आत्म-जगत्‌की पुकार इतनी उत्कट हो उठी कि कविको उधर भी झुकना पड़ा।'[१] तात्पर्य यह कि वस्तु-निष्ठताकी पराकाष्ठाने कवियोंको आत्म-निष्ठताकी ओर प्रेरित किया। यह आत्मनिष्ठता न केवल वाह्य परिस्थितियोंकी प्रतिक्रिया थी, वरन् मनके भीतर कसकने वाली अभिलाषाओं, मँडरानेवाले स्वप्नों और गूँजनेवाले गीतोंको अभिव्यक्त करनेवाली विकलताका मूर्त्त रूप भी थी। यह आत्मनिष्ठता व्यक्तिको समाजमें विलुप्त न कर समाज-को व्यक्तिमें उभरनेका अवसर दे सकी। सामाजिक उत्पीड़नोंसे व्यक्तिकी मुक्ति ही अन्ततः सामाजिक मुक्ति होती है। समाजकी तृषा व्यक्तिके प्यासे कंठकी पुकार बनी। द्विवेदी-युगमें दबी रूप-सौन्दर्य-लालसा इसी आत्मनिष्ठताका शृंगार बनी।

एक विवाद इस बातको लेकर बहुत दिनोंतक चलता रहा कि छायावादकी प्रेरणा-भूमि लौकिक है या आध्यात्मिक! उसमें वर्णित प्रेम किसी मानवसे सम्बद्ध है या परमात्मासे! छायावाद और रहस्यवादको एक माननेकी भ्रान्तिने छायावादके वास्तविक मूल्यांकनसे उसे दूर कर रखा। आचार्य शुक्लने अपने 'हिन्दी-साहित्यके इतिहास'में छायावादको दो रूपोंमें ग्रहण किया—"एक रहस्यवादके अर्थमें जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतमको आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषामें प्रेमकी अनेक प्रकारसे व्यंजना करता है" और 'छायावाद शब्दका दूसरा प्रयोग काव्य-शैली या पद्धति विशेषके व्यापक अर्थमें है'[२]। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयीने इस मतके सम्बन्धमें लिखा है 'छायावादको हम शुक्लजीके अनुसार केवल अभिव्यक्तिकी एक लाक्षणिक प्रणाली नहीं मान सकेंगे। इसमें एक नूतन सांस्कृतिक मनोभावनाका उद्‌गम है और स्वतन्त्र दर्शनकी नियोजना थी।[३] आचार्य वाजपेयी छायावादको 'मानव तथा प्रकृतिके सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्यमें आध्यात्मिक छायाका भान"[४] समझते हैं। इस आध्यात्मिकताकी व्याख्या उन्होंने 'आधुनिक साहित्य'में प्रस्तुत की है—"नयी छायावादी काव्यधाराका भी एक आध्यात्मिक पक्ष है; परन्तु उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है। उसे हम बीसवीं शताब्दीकी वैज्ञानिक और भौतिक प्रगतिकी प्रतिक्रिया

---

१. 'हिन्दी कवितामें युगान्तर', पृ० ३५६।

२. पृ० ६६८।

३. 'जयशंकर प्रसाद', पृ० १८।

४. वही।

भी कह सकते हैं। भारतीय परम्परागत आध्यात्मिक दर्शनकी नव प्रतिष्ठाका वर्त्तमान अनिश्चित परिस्थितियोंमें यह एक सक्रिय प्रयत्न है।"[१]

छायावाद और रहस्यवादके प्रसिद्ध महाकवि डॉ० रामकुमार वर्मा भी दोनोंको एकरूप मानते हैं—"छायावाद वास्तवमें हृदयकी एक अनुभूति है। वह भौतिक संसारके क्रोड़में प्रवेश कर अनन्त जीवनके तत्त्व ग्रहण करता है और उसे हमारे वास्तविक जीवनमें जोड़कर हृदयमें जीवनके प्रति एक गहरी संवेदना और आशावाद प्रदान करता है। कविको ज्ञान होता है कि संसारमें परिव्याप्त एक महान् और दैवी सत्ताका प्रतिबिम्ब जीवनके प्रत्येक अंगपर पड़ रहा है और उसीकी छायामें जीवनका पोषण हो रहा है। एक अनिर्वचनीय सत्ता कण-कणमें समाई हुई है। फूलोंमें उसीकी हँसी, लहरोंमें उसका बाहु-बन्धन, तारोंमें उसका संकेत, भ्रमरोंमें उसका गुंजार और सुखमें उसकी सौम्य हँसी छिपी हुई है। इस संसारमें उस दैवी सत्ताका दिग्दर्शन करानेके कारण ही इस प्रकारकी कविताको छायावादकी संज्ञा दी गयी।"[२] डॉ० वर्माने 'अंजलि'की भूमिकामें स्पष्टतः दोनोंके एकरूप होनेका कथन किया है—'छायावादका अर्थ रहस्यवादके अन्तर्गत ही समझना चाहिये'[३]। उन्होंने छायावादको इतने उच्च आध्यात्मिक धरातलपर प्रतिष्ठित किया है कि उन्हें 'अंजलि'के प्रकाशन-वर्ष सन् १९२९ तक 'सच्ची छायावादी कविता'के दर्शन नहीं हुए—मुझे ऐसी कविता आजतक देखनेको नहीं मिली जिसमें छायावादकी सच्ची अभिव्यक्ति हो।"[४] डॉ० वर्माने आत्मा-परमात्माके अन्योन्याश्रित सम्बन्धको छायावाद माना है।[५]

महादेवी भी रहस्यवादी तत्त्वको स्पष्टतः स्वीकार करती हैं—"छायावादका कवि धर्मके अध्यात्मसे अधिक दर्शनके ब्रह्मका ऋणी है जो मूर्त्त और अमूर्त्त विश्वको मिलाकर पूर्णता पाता है। बुद्धिके सूक्ष्म धरातलपर कविने जीवनकी अखण्डताका भावन किया, हृदयकी भाव-भूमिपर उसने प्रकृतिमें बिखरी सौन्दर्य-सत्ताकी रहस्यमयी अनुभूतिकी और दोनोंके साथ स्वानुभूत सुख-दुःखोंको मिलाकर एक ऐसी काव्य-सृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद, छायावाद आदि अनेक नामोंका भार सँभाल सकी।"[६]

---

१. पृ० ३७१।

२. 'विचार-दर्शन', पृ० ७२।

३. 'अपने विचार', पृ० १३।

४. वही, पृ० १६,१७।

५. परमात्माकी छाया आत्मामें पड़ने लगती है और आत्माकी छाया परमात्मामें। यही छायावाद है। अनंत पुरुषका आभास शान्त प्रकृतिमें होने लगता है। अपरिमित ईश्वर परिमित संसारमें छाया फेंकता हुआ नजर आता है। पुरुष या ईश्वरकी यही छाया जब कवि संसारके अंगोंमें वर्णन करता है तो उस वर्णनको छायावादका नाम दिया जाता है।

—अंजलि, पृ० १४।

६. 'महादेवीका विवेचनात्मक गद्य', पृ० ६०-६१।

पं० शांतिप्रिय द्विवेदी, जो छायावादके प्रबल समर्थकोंमें हैं, ने भी छायावादकी परिणति 'रहस्यवादमें मानी है—'अनेकमें एक चेतनाके आभाससे ही तो परब्रह्मके 'एकोऽहं द्वितीयोनास्ति'का बोध होता है। छायावाद इस बोधमार्गका एक साहित्यिक सोपान है, जिसकी पूर्णता रहस्यवादमें है।'[1]

डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर'ने छायावादकी रहस्य-भावनाको 'बौद्धिक जिज्ञासाओं-का परिणाम'[2] माना है। लेकिन उन्हें छायावादियोंकी रहस्यवादितासे सन्तोष नहीं है—"यदि विश्वकी समस्त रहस्यात्मक अनुभूतिको सामने रखकर सोचें तो कहना पड़ेगा कि छायावादी कवियोंने रहस्यवादी अनुभूतियोंकी लड़ीमें एक भी नयी कड़ी नहीं जोड़ी।"[3] यों डॉ० दिनकरने दूसरे स्थानपर आध्यात्मिकताको काव्यका एक सामान्य गुण माना है—"जब कविका भावुक हृदय उन्मेष-लाभ कर जीवनके हर्ष-विषादका आध्यात्मिकताकी पृष्ठभूमिमें वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे स्वच्छ निरूपण करता है तब उसीको काव्य कहते हैं।"[4]

उपर्युक्त विचारोंको देखनेसे यह ज्ञात होता है कि छायावादकी प्रेरणा-भूमि किसी न किसी रूपमें आध्यात्मिक है। किन्तु इन विचारोंके विरुद्ध विचार भी मिलते हैं। डॉ० रामविलास शर्माने रहस्यवादके तत्त्वको अस्वीकार करते हुए लिखा है—"छाया-वादी कवितामें जहाँ-जहाँ रहस्यवाद और पलायनका पुट है, उससे मैं कभी भी सहमत नहीं रहा।"[5] डॉ० देवराजने छायावादकी प्रेरक शक्तिका उल्लेख करते हुए लिखा है—"छायावादी काव्यकी प्रेरक शक्ति प्रकृतिके कोमल रूपोंका आकर्षण है, न कि सामा-जिक वास्तविकताका विकर्षण, उसके मूलमें प्रेम और सौन्दर्यकी वासना है, न कि आध्यात्मिक पूर्णताकी भूख।"[6]

मेरी धारणा यह है कि छायावादका जो आन्दोलन आया उसमें दो प्रकारके गीत-कार हमारे सामने उभर कर आये—एक वे जो मानव और प्रकृतिके प्रेमपरक भावोंके गायक थे और दूसरे वे जो आत्मा और परमात्माके विरह-सम्बन्धोंका चित्रण करते थे। पहली कोटिके अन्तर्गत आनेवाले गीतकारोंकी वाणी मानव-प्रकृतिके सुख-दुःखात्मक स्वरूपोंसे उद्भूत थी और वे अपनी प्रेमिकाका रूप नैसर्गिक प्रकृतिके साथ सम्बद्ध करके देखते थे। दूसरी कोटिके कवि जिज्ञासा, कुतूहल, परिचय, विरह-वेदना, तड़पन, आत्म-लीनता आदिके भावोंसे दीप्त गीत लिखते थे। एकमें आत्मा और आत्माके सम्बन्धोंके तथा दूसरेमें आत्मा और परमात्माके सम्बन्धोंके चित्रण मिलते हैं।

छायावादमें प्रमुखता वैसे ही गीतों की है, जिनमें मानव और प्रकृतिके सौन्दर्य-

---

१. 'कवि और काव्य', पृ० १५१।
२. 'काव्यकी भूमिका', पृ० ४१।
३. वही, पृ० ४०।
४. 'मिट्टीकी ओर', पृ० १४४।
५. 'संस्कृति और साहित्य', पृ० ३६।
६. 'छायावादका पतन', पृ० १२२।

चित्रोंकी प्रधानता है। लौकिक कायापर आध्यात्मिकताकी छाया—धूप-छाँहकी आँख-मिचौनी जिन गीतोंमें मिलती है, उनकी संख्या भी पर्याप्त है। निराला, रामकुमार और महादेवीके अनेक गीत ऐसे ही हैं। निरालाके कुछ गीत, रामकुमारके अधिकांश गीत और महादेवीके प्रायः सभी गीत आध्यात्मिक प्रेमकी प्रतिध्वनियाँ हैं। निरालाकी 'अनामिका' (१९३३), 'गीतिका' (१९३६); डॉ० वर्माकी 'चित्ररेखा' (१९३५), चंद्रकिरण (१९३७) और महादेवीकी 'यामा' और 'दीपशिखा' (क्रमशः १९४०, ४२) आदि अनेक संग्रहोंके गीत इस बातके प्रमाण हैं। इन आध्यात्मिक गीतोंमें सगुण नहीं, निर्गुण ब्रह्मकी आराधना है, जो माधुर्य भावके रागात्मक सम्बन्धोंके चित्रणसे भरपूर हैं। मार्मिक संकेतों एवं कलात्मक अभिव्यक्तियोंसे पूर्ण इन गीतोंमें कवियोंकी प्रेम-विकल आत्माकी पुकार मिलती है। सूक्ष्म, शृंगार-प्रधान और भावात्मक इन रहस्य-गीतोंमें प्रकृति, मानव और ब्रह्मकी एक-दूसरेको प्रभावित करनेवाली अनेक भंगिमाएँ मिलती हैं।

छायावाद : आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका स्वर्णकाल—क्यों और कैसे ?

'स्वर्ण' विशेषण अंग्रेजीके 'गोल्डेन'के अर्थमें प्रयुक्त होने लगा। यह आधुनिक कालमें विशेष प्रतिष्ठा पाने लगा। भौतिक दृष्टि-प्रधान यूरोपीय सभ्यताने वस्तुगत मूल्योंके आधारपर मानव-जीवनको आँकनेका प्रयास किया। तभी तो महापुरुषोंकी रजत, स्वर्ण और हीरक जयन्तियोंकी प्रथा चली। रोमांटिक काव्यकी भाँति 'स्वर्ण' विशेषण छायावादी काव्यमें रूप और गुणका बोधक बनकर प्रयुक्त हुआ। किसी कालका 'स्वर्ण' विशेषण उसके चरमोत्कर्षका बोधक बन गया है। जैसे भक्तिकाल हिन्दी काव्यका स्वर्ण-काल है, वैसे ही छायावाद हिन्दी गीतिकाव्यका स्वर्णकाल माना जा सकता है।

छायावाद आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका स्वर्णकाल है, अर्थात् आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य छायावाद कालमें पूर्ण प्रौढ़िपर था। वस्तुतः छायावाद गीतिप्रधान काल ही है। प्रायः सभी कवियोंने इस अवधिमें अपनी अनुभूतियोंको अभिव्यक्त करनेका माध्यम गीतिकाव्यको चुना। इस तथ्यको अनेक व्यक्तियोंने स्वीकार किया है—

(क) "छायावादकी प्रवृत्ति अधिकतर प्रेम-गीतात्मक होनेके कारण हमारा वर्तमान काव्य-प्रसंगोंकी अनेकरूपताकी नयी-नयी अर्थभूमियोंपर कुछ दिनोंतक बहुत कम चल पाया।"[१]

(ख) छायावादका विवेचन करते हुए डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, "काव्यमें विषयीके प्रधान होनेसे उन गीतात्मक मुक्तकोंका प्रचलन बढ़ गया है जो व्यक्तिगत भावोच्छ्वासको आश्रय करके लिखे जाते हैं।"[२]

(ग) "एक विशेष प्रकारकी अनुभूतियोंके प्रकाशनके लिए प्रगीत श्रेष्ठतम माध्यम है। छायावाद युगकी अनुभूतियोंके लिए इस माध्यमका अच्छासे अच्छा उपयोग किया गया।"[३]

---

१. 'हिन्दी साहित्यका इतिहास', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६७६।
२. 'हिन्दी साहित्य', पृ० ४५७।
३. 'नया साहित्य, नये प्रश्न', आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० १४९।

(घ) 'संगीतके पंखोंपर चलनेवाले हृदयवादकी छायामें गीत विविधरूपी हो उठे।'[1]

(ङ) 'छायावाद कृष्ण-काव्यकी तरह मुख्यतः गीतिकाव्य था।'[2]

(च) 'प्रगीत काव्यका निचुड़ा हुआ रूप होता है और छायावाद मुख्यतः प्रगीतोंका आन्दोलन था। छायावाद कालमें हिन्दीके कुछ अद्भुत गीत लिखे गये जो अपनी ज्योतिर्मयताके कारण अलग पहचान लिये जायेंगे।'[3]

(छ) 'गीत-रचना और उसका अधिकाधिक परिष्कार-संस्कार ही इस युगकी विशेष उल्लेखनीय घटना है। इस युगमें प्रगीतोंका बहुत ही प्रचलन हुआ। युग-जीवन एवं चिन्तनकी विश्रृंखलताके कारण जमकर महाकाव्य तो अधिक नहीं लिखे गये। पर हृदयकी रागिनियोंको गुंजानेके लिए गीत-प्रगीत बहुत लिखे गये।'[4]

(ज) 'और जहाँ उसकी भाव-राशिपर विदेशी कवियोंका और उसकी पदावलीपर बंगला काव्यका प्रभाव माने जानेकी संभावना है, वहाँ कहना होगा कि उसमें छन्द और उसका संगीत सर्वथा उसकी अपनी चीज है।'[5]

(झ) 'हिन्दीमें सफल प्रगीतकी रचना सबसे पहले छायावाद युगमें ही हुई।'[6]

(ञ) 'गेयता छायावादी कविताकी अन्य विशेषता है।'[7]

(ट) 'छायावाद गेय मुक्तकोंका काव्य है।'[8]

उपर्युक्त विचारोंको देखते हुए मेरी इस धारणाको बल मिलता है कि छायावादमें आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यके श्रेष्ठ उदाहरण मिलते हैं और इस कालके कवियोंने प्रगीत तत्त्वको अपने काव्यका प्रमुख अंग बनाया। अब उन तथ्योंपर विचार करना समीचीन होगा जिनसे छायावादी गीतोंकी विशिष्टता प्रमाणित होती है। उन कारणोंको ढूँढ़ निकालना आवश्यक होगा जिनके आधारपर छायावादको आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य-का स्वर्णकाल माना जा सकता है।

छायावादी गीत क्षण-विशेषकी संवेदनाओंकी पूर्ण अभिव्यक्ति है। यह हार्दिक व्यापारोंकी अभिव्यंजना है। कल्पना इसे सँवारती है और बुद्धि वृत्तियोंकी सुव्यवस्था करती है। इन गीतोंमें भावात्मक लयकी प्रमुखता है और वैयक्तिक रागात्मक तत्त्वकी प्रधानता।

सांगीतिकता छायावादी गीतोंमें प्रचुर मात्रामें मिलती है। यह आन्तरिक और

---

१. 'महादेवीका विवेचनात्मक गद्य', गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ० १६३।
२. 'वृत्त और विकास', शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० ४४।
३. 'काव्यकी भूमिका', डॉ० दिनकर, पृ० ४२।
४. 'छायावादकी काव्य-साधना', प्रो० क्षेम, पृ० २९६।
५. 'छायावादका पतन', डॉ० देवराज, पृ० १९-२०।
६. 'आधुनिक हिन्दी-साहित्यकी प्रवृत्तियाँ', डॉ० नामवर सिंह, पृ० ३९।
७. 'हिन्दी-साहित्य' (१९२६-४७), डॉ० भोलानाथ, पृ० ३३६।
८. 'आधुनिक हिन्दी कविता', डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ० ३०३।

बाह्य दोनों रूपोंमें है। शब्दोंकी ऐसी सुष्ठु योजना रहती है जो सहज लयात्मकताका सृजन करती है या फिर राग-रागिनियोंके बन्धनमें शास्त्रीयताकी। ऐसे गीत भी पर्याप्त मात्रामें मिलते हैं, जिनमें दोनों प्रकारकी सांगीतिकता मिलती है।

छायावादमें ऐसे प्रेम-गीतोंकी प्रधानता है, जो व्यक्तिगत सुख-दुःखकी अनुभूतिसे निखरे हुए हैं। अपने जीवनमें घटनेवाली घटनाओंकी जो प्रतिक्रिया छायावादी कवियोंके मनपर पड़ी, उनका घनीभूत चित्रण उन्होंने गीतोंके माध्यमसे किया है। इनमें भावोंकी सूक्ष्मताके साथ ही ऐन्द्रियता भी मिलती है।

छायावादी गीतोंमें विचारोंकी योजना भी मिलती है। ये विचार विशेषतः राष्ट्रीय गीतोंमें मिलते हैं। वे गीत, जिनमें रहस्यवादी भावोंके अन्तर्गत आत्मा-परमात्माके गूढ़ सम्बन्धोंका चित्रण है, बुद्धि-वैभवके अच्छे उदाहरण हैं। पर यह ध्यान देनेकी बात है कि छायावादके सामान्य गीतोंमें बौद्धिकताका आभास शैलीके कारण ही मुख्यतः है। बुद्धि-तत्त्व कल्पनाको नियन्त्रित और सृजनात्मक बनाता है और स्वानुभूतिको रसानुभूतिके रूपमें परिणत होनेमें सहायक होता है।

प्रकृतिका जितना उदार, भाव-प्रवण और कलात्मक रूप छायावादी गीतोंमें मिलता है, उतना अन्यत्र नहीं। प्रकृति मानव-भावनाओंसे रँगकर सहस्रमुखी हो गयी है। चेतनाकी शत-शत छवियाँ इन गीतोंके प्रकृति-निरूपणमें मिलती हैं। प्रकृतिकी नवीन भंगिमाएँ छायावादी गीतोंमें देखनेको मिलती हैं। प्रकृति-चित्र सबसे अधिक मांसल पन्तके गीतोंमें है, सबसे सूक्ष्म महादेवीके गीतोंमें।

अधिकांश छायावादी गीतोंमें पूर्ण मात्रामें संक्रमणशीलता है। वे पाठकोंके मनमें आनन्दकी लहर उत्पन्न करनेमें पूर्णतः समर्थ हैं।[1] इसका कारण यह है कि उनकी वैयक्तिक अनुभूतियाँ संयमित हैं। उनके भावोच्छ्वास चित्रोंमें बँधे हैं और उनकी विशिष्ट अनुभूतियाँ सामान्य तथ्योंके रूपमें ढली हुई हैं। ये गीत वैयक्तिक भावनाओंकी लोकाभिव्यक्तियाँ हैं। जैसे कोई नदी एक विशिष्ट पर्वतसे निकलकर वन-प्रान्तरों और गाँवोंको सींचती, तृप्त करती हुई निकलती है।

छायावादी गीतका आन्तरिक पद अपरिवर्तनशील भावनाओंका पुंज है। बाह्य प्रभाव, बाह्य आकार, रूप-विधान और शिल्पपर ही है। चिरन्तन सत्योंको अभिव्यक्त करनेवाले ये गीत सार्वकालिक और सर्वजन संवेद्य हैं।

ये गीत नवीन सौन्दर्य-बोधसे अनुप्राणित हैं। नवीन सौन्दर्य-बोध, जो जग और जीवनको अधिक संवेदनासे देखनेकी चेष्टा है। रीतिकालीन स्थूलताके स्थानपर सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्तिका परिचय मिलता है। रूप-चित्रण भी प्रायः भाव-चित्रणोंके रूपमें

---

१. ......आजकलके प्रगीत मुक्तकोंमें यद्यपि व्यक्तिगत अनुभूतियोंका प्राधान्य है तो भी वे इसलिए हमारे चित्तमें आनन्दका संचार नहीं करते कि कविकी व्यक्तिगत अनुभूति है, बल्कि इसलिए कि वे हमारी अपनी अनुभूतियोंको जाग्रत करते हैं। जो बात हमारे मनको आनन्दसे तरंगित कर देती है वही हमारी 'अपनी' होती है।—'हिन्दी-साहित्य', डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ४५९।

परिवर्तित हो गये हैं। यह सौन्दर्य-चेतना मानव और प्रकृति दोनों ही क्षेत्रोंमें व्याप्त मिलती है। हिन्दीमें नयी काव्य-दृष्टिका सूत्रपात छायावादी गीतोंसे होता है। इस तथ्य-को 'छायावादका पतन' देखनेवाले आलोचक भी मानते हैं।[1] छायावादी सौन्दर्य-चेतनाकी बहुत बड़ी उपलब्धि स्थूल और सूक्ष्म, मांसल और पारदर्शी सौन्दर्य-चित्रोंके सन्तुलनमें है। छायावादकी सौन्दर्य-चेतना विचार-परिष्कारक और जन-रुचि परि-मार्जक है।

चित्रात्मकता छायावादी गीतोंकी एक ऐसी विशेषता है, जो अर्थ-बोध, रस-बोध और सौन्दर्य-बोधकी वृत्तियोंको उकसाती है। ये चित्र भावोंको साकार रूप प्रदान करनेवाले हैं और उन्हें बोधगम्य बनानेवाले हैं। इन गीतोंके एक-एक अनुच्छेद प्रायः कई-कई चित्रोंसे जगमग हैं। कहीं-कहीं तो चित्रोंके माध्यमसे ही सारे मन्तव्य—टेकसे अन्तरा या अन्तरासे टेकतक आते-आते स्पष्ट हो जाते हैं। महादेवीका गीत 'कितना अस्थिर है संसार' इसका अच्छा उदाहरण है।[2] कहीं-कहीं तो सारा गीत ही प्राकृतिक चित्रोंके माध्यमसे अपना आशय प्रकट करता है। डॉ० रामकुमार वर्माका गीत 'अन्तिम संसार' इस तथ्यका आदर्श प्रमाण माना जा सकता है।[3] इस गीतमें प्रकृति-वर्णन जीवन-दर्शनका माध्यम बन गया है। सन्तोंकी अन्योक्तिका रूप प्रकट हो गया है। पूरा चित्र-वृत्त एक ही केन्द्र-बिन्दुपर खचित है—यही इसका शिल्प है।

वर्ण्य-विषयके अनुकूल पदावलियोंका प्रयोग इन गीतोंमें किया गया है। अंग्रेजीके रोमांटिक कवियों एवं बंगलाके प्रभावके साथ ही इन गीतकारोंने द्विवेदीयुगीन प्रवृत्तियों-

---

१. साहित्यिक दृष्टिसे छायावादी काव्यकी मुख्य उपलब्धि हिन्दी पाठकोंमें सौन्दर्य-दृष्टिका उन्मेष और प्रसार है।—डॉ० देवराज, पृ० १८।

२. हँस देता जब प्रात, सुनहरे
आँचलमें बिखरा रोली
लहरोंकी बिछलनपर जब
मचली पड़ती किरणें भोली,
तब कलियाँ चुपचाप उठाकर पल्लवके घूँघट सुकुमार,
छलकी पलकोंसे कहती हैं, 'कितना मादक है संसार।'—'आधुनिक कवि', गीत ३।

३. तरुवरके ओ पीले पात,
किस आशासे तन्तु सम्हाले रहते है दिन-रात ?
रात हो या कि प्रभात ॥
पतले एक हाथसे पकड़े हो तरुवरका गात।
अन्य तुम्हारे स्वजन हरे रंगोंका ले परिधान।
हँसते हैं पीलेपनपर क्या, मर मर मर कर गान ?
सुनते हो चुपचाप अन्य पत्तोंका यह अभिशाप।
उनका है आनन्द तुम्हारा यह विस्मय सन्ताप।
गिर जाना भूपर, समीरमें हिलडुल कर इस बार !
दिखला देना पत्तोंको उनका अन्तिम संसार !—'अञ्जलि', पृ० १३-१४।

के प्रतिक्रियास्वरूप कोमल-कान्त पदोंके प्रयोग किये। डॉ० दिनकरका यह मत सर्वांशतः ठीक है कि 'छायावाद युगकी सबसे बड़ी देन रही कि उसके यन्त्र-गृहमें, एक समय कर्कश समझी जानेवाली, खड़ीबोली गलकर मोम हो गयी।'[१] इस कालमें पर्यायवाची कहे जानेवाले शब्दोंके सूक्ष्म अन्तरकी परख की गयी। हिलोर, लहर, तरंग, वीचि, उर्मि आदि शब्द भिन्न-भिन्न चित्रोंको लेकर प्रस्तुत होने लगे। शब्दोंका सावधान और कलात्मक प्रयोग छायावादके पूर्व नहीं हो सका। सुष्ठु शब्दोंके प्रयोग द्वारा इन गीतकारोंने अपनी रचनामें संगीत, आकर्षण एवं चित्रात्मकता उत्पन्न किये।

छायावादी गीतोंमें रस-शास्त्रीय पद्धतिका अनुसरण आवश्यक नहीं। वहाँ संचारियों, अनुभावों आदिकी सम्यक् योजना कर रस-निरूपणकी प्रक्रिया नहीं दीखती। स्थायी भावोंको पुष्ट करनेकी सायास योजना इनमें नहीं मिलती। अपनी अनुभूतियों और भावनाओंको भाषा-शैलीके साथ एकरूप करते ये कवि सहज रूपसे गाते चले। ये वस्तुनिष्ठ बाह्य वर्णनोंमें न डूबकर अन्तर्वृत्तियोंके चित्रणमें लगे रहे। इनमें आलम्बनका नहीं, आश्रयके चित्रणकी प्रधानता है।

इन गीतोंमें वेदनाकी प्रधानता मिलती है, नश्वरता और निराशाकी सजल दृष्टि मिलती है। अतः इसे दुःखवादी कविताधारा कहनेकी परिपाटी-सी है। इसका कारण छायावादी गीतकारोंकी अतिशय भावुकता और संवेदनशीलता है। इस दिशामें तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियोंका भी हाथ था, जिसमें भाँति-भाँतिके असन्तोष, कुंठा, अभाव एवं क्षोभका वातावरण फैला हुआ था। इस प्रकरणके प्रारम्भमें छायावादके जन्मकी समसामयिक परिस्थितियोंका विवरण उपस्थित करते हुए मैंने इनकी ओर विस्तारसे संकेत किया है। साथ ही, वैयक्तिक जीवनके अभाव और असन्तोषने भी इस भावधाराको बल दिया। इन कवियोंका मानसिक धरातल इतना कल्पनामय था कि समाजमें उसकी तदनुरूप पूर्ति संभव नहीं थी। इनके सपने यथार्थकी धूपमें सहज ही कुम्हला गये। इन कवियोंपर बौद्ध दर्शनके प्रभावने इस दुःखवादको और गंभीर बना दिया। महादेवीने अपने गीतोंपर इसके प्रभावको स्वीकार करते हुए लिखा है—'करुणा बहुल होनेके कारण बुद्ध सम्बन्धी साहित्य भी मुझे बहुत प्रिय रहा है।'[२] मेरी दृष्टिमें छायावादी रचनामें वेदनावादकी प्रमुखताका कारण समसामयिक परिस्थितियों और कवियोंका अपना वैयक्तिक जीवन ही था। निरालाका सारा जीवन ही अभावकी क्रीड़ा-भूमि है—'दुःख ही जीवनकी कथा रही।' महादेवीका दाम्पत्य-जीवन खण्डित है। चिर-कुमार पन्तने जीवनके एक पक्षका रसास्वादन ही नहीं किया। रामकुमारकी काव्य-भूमि रहस्यवादी होनेके नाते उसमें आध्यात्मिक तड़पकी शाश्वत गूँज है। बच्चनकी प्रथम पत्नीके स्वर्गवासका दाह उनके सैकड़ों गीतोंमें है और ऐसे ही न जाने कितनी वैयक्तिक परिस्थितियाँ जीवनमें कार्य करती रहीं। साथ ही, प्राचीन रूढ़ियों और विचारों,

---

१. 'काव्यकी भूमिका', पृ० ४१।

२. 'आधुनिक कवि'का 'अपने दृष्टिकोणसे', पृ० ३६।

आर्थिक अभाव आदिसे लड़ते ही अधिकांश कवियोंका जीवन कटा। बौद्ध-दर्शनके कारण कुछ कवियोंकी दृष्टिकी सजलता स्वीकार की जा सकती है, पूरे छायावादी काव्य-पर इसके पूर्ण प्रभावका आकलन समुचित नहीं जँचता।[१] इससे अधिक तो रहस्यवादी भाव-धाराके प्रभावसे विरहके कारण दुःखका प्राधान्य दीखता है। विरहिणी आत्माका परमात्माके लिए तड़पना—यही तो रहस्यवादी कविताओंका मूल स्वर है।

ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि छायावादी गीतोंकी वेदना साधना बन गयी है। वेदनाको इन कवियोंने अपने जीवनका वरदान माना है और उसे सौ-सौ रूपोंमें सजाया है। किसीने 'जलनको अमर शान्तिकी जननि' (द्विज) माना है, किसीने अपने 'मधुर मन'को सतत 'तपने'की सलाह दी है (पन्त), किसीने अपने 'आँसू'को 'कसक सह जाने'के लिए बाध्य किया है (प्रसाद), किसीने 'दुःखको जाग्रति'के रूपमें देखा—'दुःखकी इस जाग्रतिमें कैसे तुम्हें जगाकर मैं सुख पाऊँ' (रामकुमार), किसीने कहा—'जानता हूँ प्यार, उसकी पीरको भी (बच्चन), तो किसीने लिखा—'दुःखको मैं तो साध रहा हूँ' (किशोर)। इन छायावादी गीतोंमें अभिव्यक्त दुःखमें हृदयको बाँधने, सम्पूर्ण मानवताके प्रति सहानुभूति जगाने एवं उदारवृत्तियोंको जगानेकी पर्याप्त क्षमता है।

छायावादी गीतोंकी यह बहुत बड़ी विशेषता मानी जायगी कि उसमें कामुकतापूर्ण संयोग-चित्रण बहुत कम मिलते हैं। एक तो संयोगके चित्र कम हैं और जहाँ हैं भी वहाँ प्रेमवर्णन और भावुकता ही भावुकता है—स्थूल ऐन्द्रियता बहुत कम! शृंगारिक तटस्थता निरालामें सर्वाधिक मात्रामें है। जहाँ शृंगार खुलता-खिलता है वहाँ या तो सिन्दूरी सौन्दर्य है या फिर सांकेतिकता अधिक। छायावादी गीतोंमें मनोभावोंके बड़े मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलते हैं। यह कला अपने शीर्षबिन्दुपर कामायनी महाकाव्यमें है। विरह और संयोग दोनोंकी तीव्रताके अनमोल चित्र जवानीके कवि बच्चनके गीतोंमें मिलते हैं। विस्तारसे इनका विवेचन अगले प्रकरणमें है, यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि 'निशा-निमन्त्रण' और 'मिलन यामिनी'की कड़ीके रूपमें 'सतरंगिनी'को देखना चाहिये। 'है चिताकी राख करमें माँगती सिन्दूर दुनिया', 'एक अपनी शान्तिकी कुटिया बसाना कब मना है' और 'रतनारी प्यारी सारी मैं तुम, प्राण मिलीं, नव लाज भरी' एक भावात्मक विकास है।

छायावादी गीतोंमें मानवकी प्रतिष्ठाका तीव्र स्वर है। छायावादको मानव-काव्य ही कहा जाना चाहिये। मानवके रूप-गुण—उनके बाह्य और आन्तरिक स्वरूपोंका अत्यन्त कलात्मक चित्रण इस कालमें मिलता है। मनुष्यको उसकी स्वाभाविक दुर्बल-ताओंके बीच प्यार करनेकी प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। स्वर्गके स्थानपर धरतीका प्यार सर्वत्र मिलता है। रहस्यवादी गीतकारोंकी अर्चना-वन्दनाका माध्यम भी इस धरतीकी

१. ······छायायुगीन काव्य-साधनाको बुद्धसे एक सजल दृष्टि मिली।—'छायावादके गौरव चिह्न', प्रो० क्षेम, पृ० ९६।

शोभा प्रकृति ही है। यह मानवतावादी स्वर राष्ट्रीयताको भी विश्व-बन्धुत्वके स्तरपर प्रतिष्ठित करता है। इसने उपदेश और वर्णन-प्रधान राष्ट्रीय स्वरको वीर भावनाओंसे ओजस्वी बनाया। छायावादका मूल आग्रह सामंती मर्यादाओंके खण्डनका था। जो रस देशभक्तोंने अंग्रेजी शासनके उन्मूलनमें लिया, वही रस इन छायावादी गीतकारोंने प्राचीन मान्यताओंके—चाहे वह काव्यगत हो या विचारगत—खंडनमें लिया।

छायावादी गीतोंमें पलायन वृत्ति देखनेवाले आलोचक इस बातको भूल जाते हैं कि छायावादकी प्रेरणा और विकासकी भूमि यह विस्तृत समाज ही है। व्यक्ति-स्वातंत्र्य, सामाजिक क्रान्ति, नयी मानवताके मूल्योंका उद्योतन आदि इसके विशेष गुण हैं।

छायावादी गीतोंमें लाक्षणिक वैचित्र्यके अद्भुत उदाहरण मिलते हैं। साद्धर्म्य, वैपरीत्य, सामान्य-विशेष भाव, कार्य-कारण भाव, आधार-आधेय भाव, सारोपा गौणी लक्षणा, शुद्धालक्षणा, साध्यवसाना, मूर्त्तके लिए अमूर्त्त और अमूर्त्तके लिए मूर्त्त विधान आदि अनेक रूपोंमें लक्षणा प्रयुक्त हुई है। छायावादी प्रतीकोंमें भी लक्षणाके प्रयोग मिलते हैं। प्रतीकयोजना भी मूर्त्तसे अमूर्त्तकी ओर जा रही है। इसी तरह कथनकी भंगिमाके लिए मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय, नाद-सौंदर्य, चित्र-व्यंजना, समासोक्ति, अप्रस्तुत प्रशंसा, विरोधाभास, रूपक, निदर्शना, आदिके कलात्मक उपयोग किये गये हैं। रूपकोंका व्यधिकरण प्रयोग भी मिलता है—रूपकमें विभक्तियोंका उपयोग और संयोजक चिह्नका लोप।

छायावादी गीतोंमें विभिन्न छन्दोंका मिश्रण मिलता है। लीकपर नहीं चलनेवाले ये कवि गीतोंमें विविध शैलियोंका निर्माण कर सके। विषम मात्रिक छन्दोंमें विविध शैलियोंका निर्माण कर सके। विषम मात्रिक छन्दोंमें सहस्रों गीत लिखे गये। टेक और अन्तराकी भी विभिन्न शैलियोंका सूत्रपात किया गया। कहीं एक पंक्ति टेक, कहीं दो पंक्तियोंकी। कहीं अन्तरा पहले, टेक बादको, कहीं दो पंक्तियोंकी अन्तरा, कहीं चार, छह या आठ पंक्तियोंकी। इसी तरह इन छंदोंकी मात्रा-पूर्त्ति, संगीत-योजना और तुकके आग्रहसे कुछ नये शब्द गढ़े गये—सूत्रधारकी जगह सूत्राधार, अनिर्वचनीयकी जगह अनिर्वच, हरासे हरियाला, लहरसे लहरील आदि। पन्तने बादल कवितामें लालसा भरे अर्थमें लालसाका प्रयोग सालसके वजनपर किया है। यही स्वतन्त्रता-वृत्ति लिंगोंके प्रयोगमें कहीं-कहीं दीखती है—पंतने 'गुंजन', प्रभात, गर्जनका स्त्रीलिंग रूपमें प्रयोग किया है, दिनकरने हुंकारको पुलिंग रूपमें।

छायावादी गीतोंमें विशेषणके बड़े ही मार्मिक प्रयोग हुए हैं। विशेषणोंके सार्थक प्रयोग कविकी श्रेष्ठताके प्रमाण हैं।[१] दो कवियोंकी पारस्परिक उच्चताका निर्णय नहीं होनेपर उनके विशेषण-प्रयोगोंको देखा जा सकता है। ये विशेषण संवेदनाओंके विभिन्न प्रकारोंसे सम्बद्ध हैं। स्पर्श-संवेदना, दृष्टि-संवेदना, घ्राण-संवेदना एवं श्रुति-

---

१. शब्दोंके सार्थक प्रयोगकी जैसी पहचान विशेषणमें होती है, वैसी संज्ञा और क्रियामें नहीं।
—'कविताकी भूमिका', डॉ० दिनकर, पृ० १४५।

संवेदनासे सम्बद्ध छायावादी गीतोंमें प्रयुक्त विशेषण अत्यन्त कलात्मक है। जिह्वासे अनुभूत होनेवाले भावोंके व्यंजक विशेषण (जैसे, मधुर, रुचिकर, तिक्त आदि) भी पर्याप्त मात्रामें प्रयुक्त हुए हैं। स्वप्निल, फेनिल, रजत, स्वर्ण, मदिर, सजग पीर, मौन आख्यान, आलोक-मधुर, नीरव सन्ध्या, स्नेह-विकल, सजल-करुण, अलस हाल, तरल गान, सजल गीत, रोमिल, स्वर्ण-विहान, चकित पुकार, नील झंकार आदि अनेक विशेषणोंके नवीन प्रयोग छायावादी गीतोंमें देखनेको मिलते हैं।

छायावादी गीतोंमें जिस नारीका चित्रण है, वह न तो वीरगाथाकालीन उपभोग-की वस्तु, न भक्तिकालीन माया और न रीतिकालीन कामुकताकी प्रतिमूर्त्ति है। वह एक मानवी है, विशुद्ध मानवी, जो स्नेहके स्वरमें सरला, प्रणयके स्वरमें प्रेयसी और श्रद्धाके स्वरमें देवी कल्याणी बन गयी है। प्रेम और सौन्दर्यकी प्रतिमूर्त्ति नारीके अपने भावमय सूक्ष्म चित्र इन गीतोंमें मिलते हैं। पं० शान्तिप्रिय द्विवेदीके शब्दोंमें 'छाया-वाद निसर्गके चन्द्रिकाधौत स्पर्शसे शृंगार काव्यका शुक्ल पक्ष बन गया है।'[१] छाया-वादी गीतोंमें भी नारी शरीरसे अधिक प्राणोंकी, काव्यशास्त्रसे अधिक मनोविज्ञानको छूनेवाली शक्ति है। नारीकी शोभा प्रकृतिके माध्यमसे व्यक्त हुई और प्राकृतिक छवियोंके नारी रूपकी प्रतिष्ठा बढ़ी—दोनोंने एक-दूसरेको प्रभावित किया।

इन गीतोंमें तथ्यगत और परिस्थितिगत सत्योंसे सम्बद्ध सूक्तियाँ भी मिलती हैं। उक्ति-वैचित्र्य और प्रकृतिका बिम्ब-प्रतिबिम्ब भावसे भरे गीतोंमें जीवनके सम्बन्धकी नयी स्थापनाओंके भी दर्शन होते हैं। इनमें जाज्वल्यमान कथनों, वैचित्र्यपूर्ण उक्तियों एवं भाव-वृत्तियोंके प्रसंगहीन चित्रण नहीं मिलते। ये गीतोंकी केन्द्रीय भावनाओंके अंगके रूपमें चित्रित हुए हैं। टेककी भावनाको संगीत और चित्रके सहारे क्रम-क्रमसे आगे बढ़ानेकी कलामें छायावादी कवि निष्णात हैं।

इन गीतोंमें अतीतके रमणीय चित्रोंका स्मृति-संचारीके रूपमें चित्रण मिलता है। 'पीठपर आँख' उनके लिए बाधक है, जिनकी आगेकी आँखें खुली नहीं होतीं। जिनकी दोनों आँखें खुली हैं, वे सुतीक्ष्ण बुद्धिवाले हो जाते हैं—अतीत और भविष्यके ज्ञाता। छायावादमें दोनों ही प्रकारके भाव मिलते हैं—वर्त्तमानसे ऊबकर अतीतमें छिप जाने-वाली प्रवृत्ति और अतीतसे प्रेरणा लेकर भविष्य-निर्माणकी प्रेरणा। अतीतका सम्बल लेकर भविष्यकी मंजिलतक जानेवाले कवियोंमें प्रसादका स्थान ऊँचा है।

स्वाभाविकता इन गीतोंकी प्रकृत विशेषता मानी गयी है। इनमें संवेगोंका सहज रूप मिलता है। इनका जन्म अनायास होता है, सप्रयास नहीं। ये कवि लिखनेके लिए गीत नहीं लिखते, भावोंके आवेगमें गीत लिख जाते हैं। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीने ठीक ही लिखा है, 'मानवीय दृष्टिके कविकी कल्पना अनुभूति और चिन्तनके भीतरसे निकली हुई वैयक्तिक अनुभूतियोंके आवेगकी स्वतः समुच्छित अभिव्यक्ति—

---

१. 'युग और साहित्य', पृ० २२।

बिना किसी आयासके और बिना किसी प्रयत्नके, स्वयं निकल पड़ा हुआ भाव-स्रोत—ही छायावादी कविताका प्राण है ।'[१]

गीतिकाव्यकी दृष्टिसे छायावादने दो सर्वथा नयी शैलियोंको जन्म दिया—(क) गीति-प्रबन्ध, प्रबन्धकाव्यमें गीतोंकी योजना, जैसे कामायनी, साकेत, यशोधरा आदि और (ख) प्रबन्ध गीति, जिसमें गीतोंको कथासूत्रमें पिरोया गया है, जैसे 'निशा-निमंत्रण' और 'कुणाल-गीत' । दूसरी शैलीका बीजरूप भ्रमरगीतमें मिलता है, लेकिन उसमें वार्तालापका सहारा लिया गया है । 'निशा-निमंत्रण'में भावोंका क्रमशः विकास है । इसमें वैयक्तिकताकी अटूट छाप है । इसी प्रकार छायावादी गीतोंने 'मैं' शैलीको प्रधानता दी । वैयक्तिकताकी छाप उत्तम पुरुषकी शैलीमें ही अधिक स्पष्ट होती है । प्रायः सभी गीतोंमें 'मैं' सर्वनाम मिलता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद कालमें हिन्दीमें गीतोंके क्षेत्रमें एक बहुत बड़ी क्रांति हुई । भाषा, भाव, छन्द, अलंकार, प्रकृति-चित्रण, वस्तु-वर्णन, रस-निरूपण आदि गीतिकाव्यके अन्तरंग एवं बहिरंग रूपोंमें नये-नये प्रयोग किये गये । छायावादने गीतिकाव्यके क्षेत्रको अधिक व्यापक बनाया । स्वच्छन्द वृत्तिके प्रकाशनका यही मार्ग उसने चुना । शृंगारके दोनों पक्षोंके अतिरिक्त राष्ट्रीय और विश्वजनीन भाव-चित्रोंको भी इसने अंगीकृत किया । छायावादने कृष्णमार्गी कवियोंकी प्रेमिल भावनाएँ लीं और सन्तोंका रहस्यवादी दृष्टिकोण । दोनों ही प्रकारकी प्रवृत्तियाँ वैयक्तिक सुख-दुखसे उद्भासित होकर सर्वथा नये परिपार्श्वमें सामने आयीं ।

इस प्रकरणमें सैद्धन्तिक रूपसे उन तथ्योंपर प्रकाश डाला गया जो छायावाद कालमें रचे गये गीतोंकी श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं और जिनके कारण छायावादको आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका स्वर्णकाल माना गया । यहाँ 'आधुनिक'से तात्पर्य भारतेन्दु-युगसे अबतकका काल है । अर्थात् इस काल-सीमामें सर्वश्रेष्ठ गीत छायावादमें लिखे गये । आगेके प्रकरणमें मैं प्रतिनिधि गीतिकारोंकी गीति-कलाके विस्तृत विवेचनमें इन सैद्धान्तिक पक्षोंको भी व्यावहारिक कसौटीपर परखनेकी चेष्टा करूँगी । छायावादोत्तर कालके गीतिकारोंमें सामान्यतः इन गुणोंका ही विस्तार और परिष्कार हुआ ।

---

१. 'हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास', पृ० ४६२-६३ ।

अध्याय ६

आधुनिक कालके हिन्दीके प्रमुख गीतकार : उनकी उपलब्धियाँ और मूल्यांकन

पिछले प्रकरणमें मैंने छायावादी गीतोंकी प्रमुख विशेषताओंका लेखा-जोखा उपस्थित किया है और अब इस प्रकरणमें उन प्रमुख गीतकारोंकी व्यावहारिक आलोचना प्रस्तुत करनी है, जो आधुनिक कालमें मेरे शोधकी सीमाके अन्तर्गत (सन् १९२०-६० ई०) आते हैं। वस्तुतः छायावाद कालमें जिन कवियोंने अपनी गीति-प्रतिभासे हिन्दी जनताको विस्मय-विमुग्ध किया, वे सब आज भी प्रसिद्धिके शिखरपर आरूढ़ हैं। इनके अतिरिक्त नवयुवक कवियोंका एक बहुत बड़ा दल हमारे सामने आया, जिसने अपने गीतोंमें उन दोषोंके परिमार्जनका प्रयास किया, जिनके कारण छायावादके विरुद्ध जिहाद बोला जा रहा था। छायावादोत्तर कालके हिन्दी गीतिकारों (जिनमें स्वयं छायावादके कवियोंकी एक बड़ी सरणि भी सम्मिलित है) की भाषामें और अधिक सफाई आयी। उनकी अभिव्यंजना-कलामें और अधिक निखार आया तथा भावोंकी कुहेलिका बहुत हद तक दूर हो गयी। उनमें आकाशी वायवीयताके स्थानपर मिट्टीकी सोंधी गन्ध अधिकसे अधिक मात्रामें आयी।

इतना ही नहीं, प्रगतिवाद और प्रयोगवादकी जो दो-दो प्रवृत्तियाँ छायावादके बाद हिन्दी काव्यके क्षेत्रमें विकसित हुईं, उनके अन्तर्गत भी नयी भंगिमाओं वाले गीत लिखे गए। छायावादी दर्शनसे विलग हँसिए-हथौड़ेके गीत लिखे गए, नयी उपमाओं और नयी व्यंजनाओंसे भरे तारसप्तकके कवियोंके गीत हमारे सामने आये।

इतना ही नहीं, गीतकारोंके बाजारूपन, उनकी फरमाइशी रचना-वृत्ति आदिपर इस अवधिमें, करारे व्यंग्य भी किये गये। भवानीप्रसाद मिश्रके 'तार-सप्तक'में संगृहीत 'गीत-फरोश' कविता इस दृष्टिसे अत्यन्त सफल है। गीतोंमें सामाजिक कुरीतियोंपर व्यंग्यकी दृष्टिसे भी यह बादका काल सफल रहा। हास्यरसके अनेक सफल गीत इस कालमें लिखे गये। छायावादी गीतोंकी अनेक विडम्बनाएँ (पैरोडी) भी इस कालमें लिखी गयीं।

ऐसी तीन बहुत बड़ी घटनाएँ छायावाद कालके बाद घटीं, जिनका व्यापक प्रभाव आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यपर पड़ा। एक घटना थी—एक लम्बी दासतासे राष्ट्रकी मुक्ति ! 'अपनी धरती, अपना आसमान', मुक्तभाव, मुक्त गान। १९४७से ६०के बीचके सैकड़ों गीत प्रसन्नताकी इस लहरसे उद्भासित हैं। छायावादकी घुटन निराशा और कुंठासे भिन्न एक नवीन वातावरणका सृजन इन गीतोंमें हुआ। सिवा महादेवीके अन्य सभी जीवित कवियोंने अपने स्वरको नये साँचेमें ढाला और महादेवीकी कैफियत

यह रही कि उन्होंने पद्यसे प्रायः संन्यास-सा ले लिया। गद्यके क्षेत्रमें तथा व्यक्तिगत जीवनमें उन्होंने राष्ट्रीय कार्योंके प्रति पूर्ण जागरूकता दिखलायी। संभव है कि यदि वे इस बीच पद्यके क्षेत्रमें भी सक्रिय रहतीं, तो शायद नये युगके अनुकूल कुछ लिख लेतीं। क्योंकि बंगालके दुर्भिक्ष आदिके समय उन्होंने पूर्ण सक्रियता दिखलायी।

दूसरी घटना हुई हिन्दुस्तान-पाकिस्तानका विभाजन। अपनी मातृभूमि की छातीके दो टुकड़े होते देखना कुछ हँसी-खेल नहीं था! राजनैतिक प्रपंचोंके कारण उत्पन्न विवशताने भारतके दो टुकड़े कर दिये। इतना ही नहीं, इस भयानक निर्णयने विनाशके जो नग्न नृत्य उपस्थित किये, वे बड़े लोमहर्षक सिद्ध हुए। मानवताकी हत्या और विज्ञ कहे जानेवाले मानवका मानवके प्रति नृशंस व्यवहारका जैसा रूप साम्प्रदायिक दंगोंके समय देखा गया, वह सृष्टिके इतिहासमें पूर्णतः रक्तरंजित पृष्ठ माना जायगा। इस घटनाका सर्वाधिक प्रभाव हिन्दी-उर्दूके कथा-साहित्यपर पड़ा है, लेकिन हिन्दी गीत भी इससे अछूते नहीं रहे। कोमल प्राण कवियोंने अनेक गीतोंमें अपनी प्रतिक्रियाओंको व्यथा, क्षोभ, आक्रोश और शान्ति-प्रार्थनाके रूपमें प्रकट किया है। बापूकी नोआखाली यात्रापर भी अनेक गीत लिखे गये।

तीसरी बड़ी घटना राष्ट्रपिता महात्मा गांधीका महाप्रयाण है। यह सारा आधुनिक भारत गांधीकी देन है। छायावाद तक गांधीवादसे प्रभावित माना गया है।[१] उनके स्वर्गारोहण (और वह भी हत्या, वह भी एक हिन्दूके हाथों)से कवियोंका भावुक मन तिलमिला उठा। सैकड़ों गीत श्रद्धांजलिके रूपमें समर्पित किये गये। पंत और बच्चनने ही अकेले कितनी कविताएँ लिखीं।[२] आकाशवाणीके विभिन्न केन्द्रों तथा पत्र-पत्रिकाओंके सामान्य एवं विशेषांकोंमें कितने ही गीत प्रकाशित हुए।

इस तरह हम देखते हैं कि छायावाद कालके बाद भी गीतोंकी दुनियामें नयी-नयी समस्याएँ आती गयीं और नये-पुराने कवियोंके स्वरमें पर्याप्त मात्रामें उतार-चढ़ाव आये। यों तो प्रत्येक कविकी अपनी विशेषताएँ हैं, जो उसे दूसरोंसे भिन्न करती हैं, पर प्रतीक रूपमें हम यदि प्रतिनिधि कवियोंका सम्यक् विवेचन कर दें, तो प्रायः सभी गुणों-का आकलन हो जायगा। इसीलिए मैंने इस प्रकरणमें २०से ६०के बीचके प्रतिनिधि गीतकारोंकी काव्य-कलाका विवेचन करना आवश्यक समझा है। साथ ही, उन छोटे-बड़े अनेक कवियोंकी मर्मस्पर्शी पंक्तियोंको प्रसंगवश उद्धृत करनेका विचार किया है, जिनसे गीतिकाव्यके विशिष्ट आयाम, रूपों और विशेषताओंका परिचय मिलता है।

यद्यपि गीतिकाव्यकी दृष्टिसे इस आयोजनका प्रारम्भ प्रसादसे होना चाहिए था, तथापि मैं प्रारम्भ इसे मैथिलीशरण गुप्तसे कर रही हूँ। यह ठीक है कि गुप्तजी मुख्यतः प्रबन्धकार हैं। लेकिन कालानुसरणकी अद्भुत क्षमतावाले इस कविने गीतोंके क्षेत्रमें भी

---

१. 'साहित्यिक निबन्धावली', प्रो० शर्मा द्वारा सम्पादितमें प्रकाशित, प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्रका निबन्ध 'छायावाद और गांधीवाद' देखा जा सकता है।

२. 'सूतकी माला' और 'खादीके फूल'।

कुछ उल्लेखनीय प्रयोग किये हैं। रहस्यवादी गीतोंकी कड़ीमें झंकारको कैसे छोड़ा जाय! और गीत-प्रबन्धके क्षेत्रमें साकेत और यशोधराके गीतोंको कैसे 'भुलाया जाय! साथ ही, उन्होंने जो अनेक राष्ट्रीय गीत समय-समयपर पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित कराये हैं, वे भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं! वस्तुतः पूरे खड़ी बोली काव्यके विकासको सम्यक् रीतिसे जाननेके लिए मैथिलीशरण गुप्तका अध्ययन आवश्यक है।

मैथिलीशरण गुप्त

मैथिलीशरण गुप्तके अधिकांश सुन्दर गीत प्रबन्धकाव्योंमें ही नियोजित हैं। मैंने चतुर्थ प्रकरण (आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यकी अभिव्यक्तियाँ)में 'प्रबन्ध काव्योंमें प्रयुक्त गीत' उपशीर्षकके अन्तर्गत साकेत, यशोधरा और विष्णुप्रियामें आये गीतोंका उल्लेख किया है। इनके अन्य गीत झंकार और कुणालगीत तथा पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुए हैं। अनघ गीतिनाट्य है, उसमें भी अनेक गीत हैं। गीत 'मंगलघट'में भी संगृहीत हैं। 'विश्व-वेदना'में भी प्रगीतात्मक तत्त्व है। यही बात 'अंजलि और अर्घ्य'के साथ भी है। 'वैतालिक'में जागरण और उद्बोधनकी भावनाओंसे भरा एक बहुत लम्बा छन्द है, जिसे किसी हद तक प्रगीत माना जा सकता है। भारत-भारतीके अन्तमें 'सोहनी'के अन्तर्गत एक अच्छा प्रार्थना-गीत लिखा मिलता है, जिसमें राष्ट्रीयताका मूलाधार है। भारतेन्दुकी 'कहाँ करुणानिधि केसव सोए ?'का ही विस्तार 'भगवान् भारतवर्षको फिर पुण्यभूमि बनाइये'में हुआ है।

'झंकार'की रचना उस समय हुई थी, जब छायावाद अपने पूर्ण यौवनपर था और छायावादके प्रशंसक उस समयकी रचनाओंकी रहस्यवादी व्याख्या कर रहे थे। डॉ० रामकुमार वर्मा जैसे समर्थ कवि और आलोचक छायावाद-रहस्यवादको परस्पर सम्बद्ध मान रहे थे। १९२९में प्रकाशित 'झंकार'के बहुतसे गीत पहले सरस्वती और प्रतिभामें प्रकाशित हो चुके थे, जिसके संबंधमें आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र लिखते हैं—'सरस्वती' और 'प्रतिभा'में प्रकाशित इन गीतोंमें कविकी सरस्वती और प्रतिभाके दर्शन सुलभ हैं।"[1] उन्होंने झंकारके गीतोंको उनकी 'सिद्धावस्था'की रचना माना है।[2] किन्तु सचाई यह है कि झंकारसे अधिक भावपूर्ण और कलात्मक गीत साकेत और यशोधरामें हैं।

'झंकार'में सगुणमार्गी रामभक्त कविकी उस आत्माके दर्शन होते हैं, जो रहस्यवादकी कुहेलिकामें भटक गयी है। दास्य भावसे भक्ति करने वाले कविके लिए 'माधुर्य भावका क्षेत्र कुछ अधिक सुकर नहीं बन पड़ा है। रहस्यवादके माधुर्यके लिए जिस दाम्पत्य भावकी अनुभूति चाहिए, उसका पूर्ण परिपाक इसमें नहीं हुआ है।

'साकेत'के ३३ गीतोंका उल्लेख मैंने चतुर्थ प्रकरणमें किया है। यहाँ उनके कला-

---

१. 'वाङ्मय-विमर्श', पृ० ५७।

२. वही।

त्मक उत्कर्षका सोदाहरण विवेचन अपेक्षित होगा। उर्मिलाकी वर्त्तमान व्यथाभावको स्मृति संचारीने और भी वेधक बना दिया है। अपने अतीत और वर्त्तमानके जीवनकी तुलना करती हुई वह कितनी विह्वल होती है—

वह कोयल जो कूक रही थी आज कूक भरती है······[1]

यहाँ जीवनके प्रभातकी स्मृतिको उसके मध्याह्न और सन्ध्याने अधिक मार्मिक बना दिया है। कविने एक ही गीतके माध्यमसे उर्मिलाके अतीतके प्रति सुखानुभूति, वर्त्तमानके प्रति व्यथा और क्षोभ तथा भविष्यके प्रति आशंका दिखलायी है—'आगे जीवनकी सन्ध्या है, देखें क्या हो आली।'

छायावादी कवियोंका गुण, वेदना-प्रियता 'साकेत'के निम्नलिखित गीतमें द्रष्टव्य है—

वेदने तू भी भली बनी ![2]

यशोधरामें भी कवि दुखको अनमोल बताकर ग्राह्य बनाता है—

होता सुखका क्या मूल्य, जो न दुख रहता ?
प्रिय-हृदय सदय हो तपस्ताप क्यों सहता ?
मेरे नयनोंसे नीर न यदि यह बहता,
तो शुष्क प्रेमकी बात कौन फिर कहता।
रह दुःख ! प्रेम परमार्थ दया मैं लाऊँ।
कह मुक्ति भला किसलिए तुझे मैं पाऊँ ?[3]

दुखसे सुख उठानेकी प्रवृत्तिका परिचय अन्यत्र भी मिलता है—

विरह संग अभिसार भी !
भार जहाँ आभार भी ![4]

एक प्रेम वह होता है जो एकको जलाता है, दूसरेको बेदाग छोड़ देता है, एककी आँखोंमें बरसात देता है, दूसरेके अधरोंकी मुस्कान भी कम नहीं करता। यह एकांगी प्रेम है। विरह इसका शाश्वत संगी है। ऐसे प्रेमीके आंगनसे पतझड़ कभी नहीं जाती, वसन्त कभी आनेका कष्ट नहीं करता। किन्तु दूसरे प्रकारका प्रेम दुहरा होता है—'दोनों तरफ है आग बराबर लगी हुई।' प्रेमके दोनों ही पक्षधर एक-दूसरेके लिए समान रूपसे विकल होते हैं। इसमें प्रेमी संयोग-सुख भी देखते हैं, वियोगदुख भी उठाते हैं। 'मेघदूत'के प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरेको कितना चाहते हैं, पर विरहकी घड़ियाँ गिनते नहीं थकते ! मैथिलीशरणने साकेतमें इस भावकी बड़ी ही सफल व्यंजना की है—

दोनों ओर प्रेम पलता है।
सखि, पतंग भी जलता है, हाँ दीपक भी जलता है।[5]

---

१. 'साकेत' पृ० २७७।
२. वही, पृ० २८०।
३. 'यशोधरा', पृ० १५५ (२०२० वि०)।
४. 'साकेत', पृ० २८०।
५. पृ० २८१।

प्रबन्धकाव्यमें नियोजित होनेके कारण इस गीतका संकेत उर्मिला-लक्ष्मणके प्रेमकी ओर है, जो एक-दूसरेको चाहते हुए भी व्यथाकी आगमें जल रहे हैं। उर्मिलाकी यह धारणा कि 'दोनों ओर प्रेम पलता है' उसके उस अटूट विश्वासका द्योतक है जो रामसे भिन्न, उसे घर छोड़ जाने वाले पतिके लिए है! किन्तु उसे इस बातका ज्ञान है कि प्रेम करने वालोंको जलना ही पड़ता है—'स्नेह जलाता है यह बत्ती।'[1] एतदर्थ उसे संतोष भी है। यही दर्शन पूरक रूपमें यशोधरामें भी है—'जलनेको ही स्नेह बना है'।[2] वहाँ स्नेह जलाता है, यहाँ स्वयं जलता है।

प्रबन्धमें परम्परापालन करनेमें भी गीतोंका सहारा लिया गया है। षड्ऋतु-वर्णन-की टेक उन्होंने कहीं नहीं छोड़ी—'साकेत'में क्रम-क्रमसे सभी ऋतुओंका वर्णन किया है—पावससे आरम्भ किया है, क्योंकि नवम सर्गका सजल वातावरण उसके अनुकूल पड़ा है। यशोधरामें एक लम्बा गीत 'मैंने ही क्या सहा, सभीने मेरी बाधा-व्यथा सही' है, जिसमें छह छन्द छह ऋतुओंके लिए लिखे गये हैं—यहाँ ग्रीष्मसे प्रारम्भ है। विष्णु-प्रियामें भी यही शैली है—एक ही दीर्घ गीत 'पर्वोत्सव अब भी लौट कृपाकर मेरे घर आते हैं, क्या दे पाते हैं, मुझे और क्या मुझसे ले पाते हैं?'में छहों ऋतुओंका वर्णन है। यहाँ एक भूमिकाके बाद शरद् ऋतुसे वर्णन प्रारम्भ होता है। अतः ऋतु-वर्णनपर यदि गीति काव्यकी दृष्टिसे विचारा जाय तो भावोंकी विविधता, चेतनाके प्रसार एवं भावुकताकी दृष्टिसे साकेत अधिक सफल है। संगीतात्मकता, चित्रात्मकता, संक्षिप्तता, ध्वन्यात्मक शब्द-योजना, एवं शब्दोंके लाक्षणिक प्रयोगकी दृष्टिसे 'दरसो परसो, घन बरसो'[3] गीत बहुत ही सफल है।

स्वदेश-संगीतकी उपदेशात्मक प्रवृत्ति कहीं-कहीं बहुत अधिक खटकती है, यथा साकेतके नवम सर्गका यह गीत—

> हम राज्य लिये मरते हैं;
> सच्चा राज्य परन्तु हमारे कर्षक ही करते हैं।[4]
> 'मरण रे तुहु मम श्याम सुभाव'—

बंगलाके इस प्रसिद्ध गीतका प्रभाव मैथिलीशरणपर बहुत अधिक है। कदाचित् इसका कारण यह है कि प्रेम-प्रसंगसे सम्बद्ध कथा-काव्यमें सर्वत्र एक करुणाकी धारा है—उर्मिला, यशोधरा, विष्णुप्रिया सबमें एक कलक, एक विवशता है—

१. जना दिया है उसने मुझको
जन-जीवन है भार भी,

---

१. पृ० २८५।
२. पृ० ४१।
३. पृ० २९२।
४. पृ० ३०७।

और मरण ? वह बन जाता है
कभी हिएका हार भी ।[१]

२. मरण सुन्दर बन आया री !
शरण मेरे मन भाया री ![२]

३. मरण नहीं आता है आली !
स्मरण मुझे आता है ![३]

रोना और गाना वेदनाके ये दो पहलू बड़े संगीतमय हैं । साधारण मनुष्य रोता है, असाधारण गाता है । दोनोंके बीच एक तारतम्य है । इस जीवन-दर्शनको हमारे कविने दो स्थलोंपर बड़े ही सटीक रूपसे बाँधा है—एक तो 'साकेत'में, जहाँ उर्मिला अपने प्रत्येक गीतमें एक उदासी, अभाव, तड़प पाती है तथा यह अनुभव करती है कि उसके गीतका एक-एक चरण दर्दसे भींगा हुआ है—

स्वजनि, रोता है मेरा गान ।
प्रियतक नहीं पहुँच पाती है उसकी कोई तान ।[४]

और दूसरे वहाँ, जहाँ यशोधरा राहुलको समझाती हुई कहती है कि 'गाती हूँ बेटा, उनके लिए रो रही हूँ तो तेरे लिए गाऊँगी क्यों नहीं ?'[५] यहाँ 'तो'का संयोजन बड़ा बेधक है । आगेका सारा गीत इसी 'तो' की व्याख्या है—

रुदनका हँसना ही तो गान ।
गा-गाकर रोती है मेरी हृत्तंत्री की तान ।[६]

पिछले प्रकरणमें मैंने महादेवी वर्माका उद्धरण देते हुए यह लिखा है कि छायावाद-के कवियोंपर बुद्धके दुख और करुणाका प्रभाव है । यशोधराका इतिवृत्त होनेके कारण बौद्ध-दर्शनके कुछ मार्मिक स्थल गीतोंमें फूट पड़े हैं—'घूम रहा है कैसा चक्र', 'देखी मैंने आज जरा', 'मरनेको जग जीता है' आदि । महाभिनिष्क्रमणकी प्रेरक भावनाओंके प्रतिनिधि गीत 'ओ क्षणभंगुर भव राम, राम'में भी यह दर्शन स्पष्ट रूपसे प्रतिबिम्बित हुआ है ।

कविने वैयक्तिक वेदनाको संतोषकी भूमिपर प्रतिष्ठित करनेके लिए कहीं-कहीं साधारणीकृत कर दिया है—

सखि, वसंतसे कहाँ गये वे,
मैं ऊष्मा-सी यहाँ रही,

---

१. 'साकेत', पृ० २८१ ।
२. 'यशोधरा', पृ० ४० ।
३. 'विष्णुप्रिया', पृ० १३२ ।
४. पृ० ३२२ ।
५. पृ० ९२ ।
६. वही ।

मैंने ही क्या सहे, सभी
मेरी बाधा-व्यथा सही ।[1]

अपनी व्यथाका प्रसार सारी प्रकृतिमें देखनेसे तड़पते दिलको थोड़ी राहत तो मिलती ही है ।

खड़ी बोलीमें सफल लोरियाँ बहुत कम लिखी गयीं—लोकगीतोंमें इनकी कमी नहीं । मैथिलीशरणने दो बड़ी कलात्मक और गेय लोरियाँ लिखी हैं—एकमें कथा-तत्त्व रहनेके कारण वह बच्चेको शान्त और एकाग्र करती है[2] और दूसरी गेयताके कारण नींदकी गोदमें डाल देती है ।[3]

लोक-गीतोंमें शकुन-विचारसे सम्बद्ध बहुत-सी रचनाएँ मिलती हैं । यह शकुन-विचार पशु-पक्षियोंके क्षेत्रसे भी जुड़े होते हैं और अंगोंके फड़कने तथा स्वप्नोंसे भी । हमारे कविने शुभ होने वाली घटनाके पूर्वाभासके रूपमें बायें (नारीके) अंगका फड़कना दिखलाया है ।—यहाँ लोकगीतोंका ही संस्कार बोलता है—

'क्यों' फड़क उठे ये बाम अंग ?
ज्यों उड़नेके पहले विहंग ।
किस शुभ घटनाकी रटना-सी
लगा रहा है अन्तरंग ![4]

और इसके ठीक पहले कविने स्वप्नके द्वारा होनेवाले शुभ शकुनका वर्णन किया है—

बहता वहाँ पास ही जल था
किन्तु कहाँ जानेका बल था ?
मन-सा तन भी बड़ा अचल था,
भार आप ही अपना !
ओहो ! कैसा था वह सपना ?[5]

यहाँ उस परिस्थितिका प्रतीक है, जब बुद्धके घर आनेपर भी यशोधरा मानवश स्वयं नहीं जा पाती ! 'उसका विश्वास है कि भक्त कहीं जाते नहीं, आते हैं भगवान ।' उपर्युक्त गीतके कुछ प्रतीक अत्यन्त सफल हुए हैं ।

स्त्री अर्द्धांगिनी है और वह जीवन-रथके दो पहियोंमें एक है । कोई भी दर्शन, कोई भी साधना उसकी उपेक्षा कर पूरी नहीं हो सकती । इस आशयका एक बड़ा ही मर्म-स्पर्शी गीत विष्णुप्रियाके कविने लिखा है—

---

१. 'यशोधरा', पृ० ४२ ।
२. 'माँ कह एक कहानी', पृ० ५८ ।
३. 'सो, अपने चंचलपन सो', पृ० ६९ ।
४. 'यशोधरा', पृ० १११ ।
५. वही, पृ० ११० ।

स्वामी कहते हैं 'हरिबोल !'
उनका यह कीर्त्तन है आधा,
उनके साथ नहीं यदि राधा।
भूल गये हरि उसकी बाधा,
चले गये विष घोल।
स्वामी कहते हैं 'हरिबोल'।[१]

अन्तिम अनुच्छेदमें कृष्णका गोपियोंका सुख-लाभ उठाकर फिर मथुराका शासन सँभालने लगना—प्रेमको प्रभुत्वपर वार देना—गोरसपर सुरा-पानकी तरह है—यह सूझ तो अत्यन्त हृदयग्राही है, सर्वथा नवीन।

विचारपूर्ण गीतोंकी रचना वहाँ हुई है, जहाँ कविने कोई संदेश दिया है अथवा जहाँ दार्शनिक चिन्तन प्रकट हुआ है—

व्यथा वरण करके रोना क्या ?
अपना धीरज-धन अपने ही हाथोंसे खोना क्या ?
क्लेश नामसे ही कर्कश है
किन्तु सहन तो अपने वश है।
भीतर रस रहते बाहरके विष होना क्या ?[२]

× × ×

आली, चक्र कहाँ चलता है ?
सुना गया, भूतल ही चलता, भानु अचल जलता है।
कटते हैं हम आप घूम कर, निर्वंश-निर्बलता है,
दिनकर-दीप द्वीप-शलभोंको पल-पलमें छलता है।[३]

उपदेशात्मकता इस कविका स्वभाव बन गयी है। आचार्य वाजपेयीने ठीक ही लिखा है कि 'गुप्तजीकी आदर्शवादिताके साथ उपदेशक-वृत्ति भी उनकी रचनाओंमें आदिसे अन्त तक देखी जाती है।'[४] उपदेशात्मकताकी यह वृत्ति गीतिकाव्यमें भी दीखती है, यद्यपि आज यह प्रवृत्ति बहुत कम हो गयी है—

कलिके तेरा ही जन्म धन्य !
हम सब तो हैं बस अहम्मन्य।
जीवन है कितना अल्प हाय !
उसमें भी तू उत्फुल्ल काय,

---

१. पृ० ८०।
२. 'कुणाल गीत', पृ० ५९।
३. 'यशोधरा', पृ० ७४।
४. 'हिन्दी-साहित्य, बीसवीं शताब्दी', पृ० ३३ (१९४५ संस्करण)।

कर जाती है इतना उपाय
गुण गाता है अलि-सम्प्रदाय !
तुझ-सा उदार है कौन अन्य ![1]

समय-समयपर कविने महापुरुषोंके स्वर्गारोहणसे सम्बद्ध शोक-गीत भी लिखे हैं। महात्मा गांधीसे सम्बद्ध शोकगीत 'अंजलि और अर्घ्य'में सम्मिलित हैं। इन्होंने सरस्वती, फरवरी १९२९में आचार्य द्विवेदीकी मृत्युपर भी एक शोक-प्रगीत लिखा है। पर इसमें संगीतात्मकता नहीं है—

सरस्वतीके हार-पद्यमें आज उसी मुख की उनहार।
मरण वस्तुतः परिवर्त्तन है, जीवन गतिमय अमर उदार।

गेयताकी दृष्टिसे मुंशी अजमेरीके प्रति लिखी गयी रचना अधिक सफल है—

ओ मेरे अभिमानी।
रहा अन्तमें याचक ही तू होकर भी चिर दानी।
सो, तू सुखपूर्वक सो, भाई
मृगने मरीचिका तो पाई
पर जाने वह मेरा न्यायी
उसने कैसी ठानी।[2]

'हिन्दू'में एक अच्छा सम्बोध-गीति संकलित है—

मेरे शुद्ध समीर रे !
मेरा देश स्वच्छ सुरभित है,
शुचि-रुचि-शाली रंग-रहित है।
उसमें निज पर-हित समुचित है,
साक्षी तू ध्रुव-धीर रे ![3]

पर्याप्त मात्रामें विभिन्न प्रकारके गीतोंकी रचना करनेपर भी मैथिलीशरण कथा-काव्यमें ही अधिक सिद्धहस्त माने जायेंगे। उनकी वृत्ति उस हद तक गीतोंके क्षेत्रमें नहीं जमी। यही कारण है कि 'हिन्दी-साहित्य उसका उद्भव और विकास'में स्पष्ट रूपसे लिखा गया है कि 'उनके मनमें परिवार-विच्छिन्न प्रेमकी ऐकान्तिक संवेदना जाग्रत करनेवाले भावावेगका बहुत अधिक मूल्य नहीं है। इसलिए वे आधुनिक कालके अत्य-धिक लोकप्रिय गीतिकाव्योंकी शैलीको प्रयत्न करके भी नहीं अपना सके।'[4] प्रकारान्तरसे आचार्य वाजपेयी भी इसी बातको स्वीकार करते हैं—'गीतकाव्यकी छटा वास्तवमें

---

१. 'अनघ', पृ० ७२।
२. मैथिलीशरण गुप्त—'कवि और भारतीय संस्कृतिके आख्यानसे उद्धृत'।
३. पृ० ३४६-४७।
४. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ४४३।

अभी-अभी देख पड़ी है, पर जहाँतक नवीन भावनाओंका सम्बन्ध है, हम कह सकते हैं कि गुप्तजीके अन्तःकरणमें उसकी आभा सबसे पहले जमी थी।'[१]

जयशंकर प्रसाद

छायावादके जनक कहे जानेवाले प्रसादमें उच्चकोटिकी प्रगीतात्मक प्रतिभा थी। बहुलतासे कलात्मक गीतोंकी रचना करनेवाले ये खड़ी बोलीके प्रथम श्रेष्ठ कवि कहे जा सकते हैं। उनके गीतकारका रूप स्वतंत्र कविता-संग्रहोंमें ही नहीं, महाकाव्य और नाटकोंमें भी देखा जा सकता है। पिछले प्रकरणमें 'गीतिकाव्यकी अभिव्यक्तियाँ'के अन्तर्गत कामायनी एवं नाट्य कृतियोंमें प्रयुक्त गीतोंका उल्लेख किया जा चुका है। यहाँ कविके गीतिकार रूपका सामान्य विवेचन किया जायगा।

प्रसादके गीतोंके दो अनमोल संग्रह हमारे सामने हैं, जिनमें आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका प्रारम्भिक इतिहास छिपा हुआ है। इनमें युवावस्थाके भावुक मनके अनेक उतार-चढ़ाव ध्वनित-प्रतिध्वनित हैं। जैसे पहाड़ी झरना अपने उद्दाम वेगमें, अकृत्रिम रूपसे गाता-नाचता बढ़ता जाता है, वैसे ही 'झरना'के गीतोंमें प्राणोंकी वेगवती अनुभूतिसे उच्छल संगीतात्मक प्रवाह दिखायी पड़ता है, सौन्दर्यानुभूति उन गीतोंकी आत्मा है। वैयक्तिक जीवनके सुख-दुख रागात्मक तीव्रता और व्यापक आत्म-प्रसारके कारण अत्यन्त प्रभविष्णु हो गये हैं। 'झरना'में 'आँसू' की वेदनाका विस्तार हुआ है। उसमें एक विषण्ण अवसादका वातावरण है।[२]

'झरना'का प्रकाशन यद्यपि १९२७में हुआ था, तथापि इसकी अधिकांश रचनाएँ १९२०के भी पहले की हैं, प्रायः '१६से '१९के बीच लिखी गयीं। अर्थात् '२७से लेकर ३०-३१ वर्षोंकी आयुकी यह कृति है। 'झरना'में प्रसाद-काव्यके प्रायः सभी गुण अपने प्रारम्भिक रूपमें मिल जाते हैं। एकाकी जीवनका स्वाद, वेदनाकी छाया, आत्मचेतनाकी प्रबलता, प्रकृतिके साथ साहचर्य और एकरूपता आदि तत्त्व झरनामें दीख पड़ते हैं। द्विवेदीयुगीन काव्यके विरुद्ध प्रतिक्रियाका एक बहुत बड़ा प्रमाण मिलता है—प्रेमके विविध प्रसंगोंका खुला-खिला चित्रण ! विषयी-प्रधान कविताका प्रारम्भ प्रसादके गीतोंसे होता है। स्वयं कवि वर्ण्य-विषय बना है और वह अपनी अनुभूतिको अधिकसे अधिक व्यापक बनानेका प्रयासी दीखता है।

'लहर' प्रसादका अन्तिम गीत-संग्रह है। इसमें प्रायः १९२०से १९२५ तकके गीत संगृहीत हैं। इस बीच नाटकोंमें इनके गीत आते रहे। लहरके बादकी गीतात्मक प्रौढ़ि कामायनी महाकाव्यमें देखनेको मिलती है। लहरमें 'आँसू'ने इन्द्रधनुषकी चित्र उत्पन्न किए हैं अर्थात् आँसूके व्यथा द्रवित हृदयमें कुछ रंगीनियाँ मिलती हैं, आशा एवं नवीन

---

१. 'हिन्दी-साहित्य, बीसवीं शताब्दी', पृ० ४०।

२. 'झरना'में एक विचित्र अवसाद जो नवीन बौद्धिक अन्वेषणों और तज्जन्य संशयोंका परिणाम जान पड़ता है, बहुत ही स्पष्ट है।

—'हिन्दी-साहित्य, बीसवीं शताब्दी' पृ० १२३।

प्रेरणाके संदेश मिलते हैं—जैसे कज्जल जलमें रक्तकमल निकल आया हो ? लहरमें गीतोंके साथ मुक्तछन्दोंके भी प्रयोग किये गये हैं—अशोककी चिन्ता, शेरसिंहका शस्त्र-समर्पण, पेशोलाकी प्रतिध्वनि, प्रलयकी छाया आदि रचनाएँ कविके अतीत-प्रेमको प्रकट करती हैं, जिनका पूर्ण विकास नाटकोंमें हुआ है।

प्रसादके गीतोंपर विचार करते हुए निम्नलिखित तथ्योंका ज्ञान होता है :—

स्वचेतनता, आन्तरिक भावोंका चित्रण, वैयक्तिक जीवनकी घटनाओंकी प्रतिध्वनि और आत्माका स्फुरण। प्रसाद पहले कवि हुए, जिन्होंने छायावादको नयी काव्यदृष्टिके रूपमें अपने काव्यमें प्रतिष्ठित किया—

मेरी आँखों की पुतलीमें,
तू बन कर प्राण समा जा रे।
जिसके कन-कनमें स्पंदन हो,
मनमें मलयानिल चंदन हो,
करुणा कानन अभिनंदन हो,
वह जीवन-गीत सुना जा रे![1]

अतीतके प्रति-प्रेम—मनुष्यका स्वभाव है कि वह वर्तमानकी यंत्रणाओं, क्रान्ति, अभाव, निराशा और अनिच्छित वातावरणसे हटकर कल्पनाके पंखोंपर अतीत या भविष्यकी ओर उड़ जाना चाहता है। भविष्य एक कल्पना है, अतीत एक अनुभूति! अतः एक कल्पना दूसरी कल्पना तक पहुँचनेकी अपेक्षा अनुभूतितक जाना अधिक श्रेयस्कर समझती है। अतीतकी भूमि भविष्यसे अधिक ठोस भी होती है। वहाँ कल्पनाके चरण सुविधासे जम पाते हैं। प्रसादमें यह अतीत प्रेम अधिक प्रबल है। वह अतीतकी राष्ट्रीय संस्कृति और अतीतका व्यक्तिगत जीवन दोनोंको प्यार करते हैं। भारतकी प्राचीन संस्कृति और सभ्यताके प्रेमका परिचय कानन-कुसुम और लहरके आख्यानक काव्यमें, नाटकों एवं महाकाव्यके कथानकमें मिलता है। गीतोंमें उनके वैयक्तिक जीवनके गत क्षणोंकी स्मृतिका स्वर अत्यन्त तीव्र है :—

आह रे वह अधीर यौवन!
अधरमें वह अधरों की प्यास,
नयनमें दर्शनका विश्वास,
धमनियोंमें आलिंगनमयी—
वेदना लिए व्यथाएँ नयीं,
टूटते जिससे सब बन्धन,
सरस सीकरसे जीवन-कन,
बिखर भर देते अखिल भुवन![2]

× × ×

१. 'लहर', पृ० २८।
२ वही, पृ० २१।

तुम्हारी आँखोंका बचपन !
खेलता था जब अल्हड़ खेल,
अजिरके उरमें, भरा कुलेल,
हारता था हँस-हँस कर मन,
आह रे वह व्यतीत जीवन ![1]

प्रेमकी पुलक, दृढ़ता और तीव्रताका गान—प्रसादने प्रेमके विविध रूपोंका बड़ा हृदयग्राही वर्णन किया है। प्रेम, जिसमें मिलनोत्सुकता है, प्रेम, जिसमें त्यागका सेज है, प्रेम, जिसमें विरहका अन्तर्दाह है, प्रेम, जिसमें मिलनका सुख है—ये सभी चित्र बड़ी सूक्ष्मतासे इनके गीतोंमें चित्रित हुए हैं। कुछ उदाहरण इस तथ्यकी पुष्टि करनेके निमित्त नीचे दिए जा रहे हैं—

आज इस यौवनके माधवी कुंजमें,
कोकिल बोल रहा है !
मधु पीकर पागल हुआ
करता प्रेम प्रलाप
शिथिल हुआ जाता हृदय
जैसे अपने आप
लाजके बन्धन खोल रहा ![2]

अथवा,

देखी नयनोंने एक झलक,
वह छविकी छटा निराली थी,
मधु पीकर मधुप रहे सोए,
कमलोंमें कुछ-कुछ लाली थी ![3]

प्रेम-संवेगके मधुर-मादक अनुभवके बाद प्रेम तृषातुर मनकी पुकारका एक चित्र—

मुझको न मिला रे अभी प्यार !
पागल रे ! वह मिलता है कब
उसको तो देते ही हैं सब
आँसूके कन-कनसे गिनकर
यह विश्व लिए है ऋण उधार,
तू क्यों फिर उठता है पुकार ?—
मुझको न मिला रे कभी प्यार[4]।

---

१. 'लहर', पृ० २३।
२. 'चन्द्रगुप्त', पृ० १७०।
३. 'विशाख', पृ० २९।
४. 'लहर', पृ० ३७।

प्रेमका अन्तिम निष्कर्ष क्या है ?—एक दुख, चिर-विरहकी शाश्वत हूक ! प्रसादके प्रेमी जीवनको क्या पुरस्वर मिला ? प्रेम-पात्रसे क्या भेंट मिली ?—एक अनन्त वेदना, एक अथाह अभाव—

आह ! वेदना मिली विदाई !
छल-छलके सन्ध्याके श्रमकण,
आँसूसे गिरते थे प्रतिक्षण।
मेरी यात्रापर लेती थी—
नीरवता अनन्त अँगड़ाई ![1]

इसी छलका चित्रण स्कन्दगुप्तकी देवसेनाके इस गीतमें भी हुआ है—

भरा नैनोंमें मनमें रूप
किसी छलियाका अमल अनूप,[2]

प्रेम अजस्र है, अशेष है, वह व्यथा-द्रवित है, उसे कैसे अपनाया जाय, कैसे सँभाला जाय उसका तुनुक किन्तु कठिन भार !

सम्हाले कोई कैसे प्यार,
मचल-मचल उठता है चंचल
भर जाता है आँखोंमें जल,
बिछलन कर, चलता उसपर
लिए व्यथाका भार !
सिसक-सिसक उठता है मनमें,
किस सुहागके अपने पनमें,
छुई-मुई-सा होता, हँसता
कितना है सुकुमार।[3]

मिलनके क्षणोंमें भी प्रेम कैसा मर्यादित है, नग्न कामुकता प्रसादके गीतोंमें कहीं नहीं मिलती !

जैसे अतीतकी शरणमें मनुष्य वर्त्तमानसे ऊब कर चला जाना चाहता है, वैसे ही मनुष्य अपने आपको भुलावा देकर कुछ क्षणको वर्त्तमानकी यंत्रणाओंको भूल जाना चाहता है। जहाँ साधारण मानव मादक-द्रव्योंका सेवन कर गम गलत करता है, वहाँ असाधारण मानव—कहीं एक मादक भ्रममें, एक कल्पना-प्रसूत लोकमें खो जाना चाहता है। प्रसादके गीतोंमें कहीं-कहीं मनोविज्ञानके इस सत्यका बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुआ है। प्रसादका यह प्रसिद्ध गीत, जिसे कुछ आलोचकोंने पलायनवादी मनोवृत्तिका सूचक माना है, निश्चय ही उपर्युक्त तथ्यका प्रतिपादक है, इनमें पलायन नहीं, सुखानु-

---

१. 'स्कन्दगुप्त', पृ० १४६।

२. पृ० ४५।

३. 'राज्यश्री', पृ० ४२-४३।

भूतिके लिए एक तड़प है, अभिलाषाका कल्पनासे संयोग है और वर्त्तमानके दुख और अतीतके सुखके बीच सन्धि-बिन्दु—

ले चल मुझे भुलावा देकर
मेरे नाविक ! धीरे-धीरे,
जिस निर्जनमें सागर लहरी,
अम्बरके कानोंमें गहरी—
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे ।[१]

प्रसादने सदैव जीवनकी शान्त-एकान्त साधनाको प्रश्रय दिया है—कोलाहलकी अवनी तज कर जानेवाले प्रसादने 'कामायनी'में ऐसे ही वातावरणसे ऊबी श्रद्धाके माध्यमसे यह कहलवाया है, 'तुमुल कोलाहल कलहमें मैं हृदयकी बात रे मन !'[२]

प्रसादका भ्रम-भुलावा कहीं अभिशाप है कहीं वरदान ! उपर्युक्त गीत 'ले चल मुझे भुलावा देकर······' में वह वरदान है क्योंकि वह जीवनके धूल-धुँआसे त्राण दिलाता है, पर निम्नलिखित गीतमें वह अभिशाप है, क्योंकि उसीके कारण जीवन वेदनाका भार बन जाता है—

आह वेदना मिली विदाई !
मैंने भ्रमवश जीवन-संचित
मधुकरियोंकी भीख लुटाई !

जहाँ कहीं ब्रह्म-संबंधी दार्शनिक सूत्रोंका छन्दोबद्ध रूप, बिना किसी आत्मानुभूतिके (क्योंकि वह संतों-साधकोंके लिए शक्य है !) चित्रित होता है, वहाँ किसी नवीन काव्य-वैभवका समावेश कठिन होता है। प्रसादके गीत भी इस दुर्बलताके अपवाद नहीं है—

खेल लो नाथ विश्वका खेल ![३]

अथवा

पूर्णानुभव कराता है जो
अहमितिसे निज सत्ताका
तू मैं ही हूँ, इस चेतनका
प्रणव मध्य गुंजार किया ![४]

किन्तु, जहाँ प्रसादकी स्वानुभूति सहज प्रक्रियामें दर्शनको जन्म देती है, वहाँ मर्म-स्पर्शी पंक्तियोंका सृजन हो जाता है—

१. 'लहर', पृ० १४ ।
२. पृ० २२८ ।
३. 'कामना', पृ० ८४ ।
४. 'जनमेजयका नागयज्ञ', पृ० ७८ ।

सब जीवन बीता जाता है
धूप-छाँहके खेल सदृश
सब जीवन बीता जाता है ।[१]

अथवा,

एक घूँटका प्यासा जीवन
निरख रहा सबको भर लोचन ।
कौन छिपाए है उसका धन
कहाँ सजल वह हरियाली है ।[२]

दुर्बल मनकी साधना-बाधाका कितना तुनुक चित्र है—

जब करता हूँ कभी प्रार्थना
कर संकलित विचार,
तभी कामनाके नूपुर की
हो जाती झंकार,
चमत्कृत होता हूँ मनमें,
विश्वके निर्जन काननमें ![३]

प्रसादकी सौन्दर्य-चेतना बहुत ही तीव्र थी। उनकी कामायनी आन्तरिक और बाह्य सौन्दर्यानुभूतिकी अमर विभूति है। गीतोंमें भी उनकी प्रतिभाका यह अमर स्पर्श दीखता है। 'लज्जा'का अपूर्व मानवीमूर्त्त रूप तो कामायनीमें है ही, चन्द्रगुप्तकी सुवासिनीका यह गीत 'लाज भरे सौन्दर्य'का कितना लुभावना चित्र है—

तुम कनक किरणके अन्तरालमें
लुक-छिप कर चलते हो क्यों ?
नतमस्तक गर्व वहन करते,
यौवनके घन, रसकन भरते
हे लाज भरे सौन्दर्य ! बता दो
मौन बने रहते हो क्यों ?
अधरोंके मधुर कगारोंमें
कल-कल ध्वनि की गुंजारोंमें
मधु सरिता-सी वह तरल हँसी
अपनी पीते रहते हो क्यों ?
बेला विभ्रमकी बीत चली
रजनी गंधा की कली खिली

---

१. 'स्कन्दगुप्त', पृ० ९४।
२. 'एक घूँट', पृ० २१।
३. 'झरना', पृ० १८।

अब सांध्य मलय-आकुलित
दुकूल कलित हो, यों छिपते हो क्यों ?[१]

'मौन सलज्ज और भारावनत' सौन्दर्यकी कैसी मोहिनी मूर्त्ति है ? एक-एक शब्द, एक-एक क्रियाकलाप विशेष अर्थको साक्षात् करते हुए ! लाज भरे सौन्दर्यका प्राकृतिक सुषमापर आरोपित एक चित्र लहरके इस गीतमें मिलता है—

वह लाज भरी कलियाँ अनन्त
परिमल घूँघट ढँक रहा दन्त
कँप-कँप चुप-चुप कर रही बात !
कोमल कुसुमों की मधुर रात ।[२]

सौन्दर्यकी मादकताको प्रसादने कितनी सरलता और कलात्मकतासे चित्रित किया है—

अगरु धूम-सी श्याम लहरियाँ, उलझी हो इन अलकोंसे
मादकता लालीके डोरे इधर फँसे हो पलकोंसे ।
व्याकुल बिजली सी तुम मचलो आर्द्र हृदय घनमालासे
आँसू वरुनीसे उलझे हों, अधर प्रेमके छालासे ।
इस उदास मनकी अभिलाषा अँटकी रहे प्रलोभनसे
व्याकुलता सौ-सौ बल लाकर उलझ रही हो जीवनसे ।[३]

सौन्दर्यके रहस्यका, उसके कौतूहल-मिश्रित रूपका चित्रण चन्द्रगुप्तकी अलकाके स्वरमें है—

समय-विहगके कृष्ण पक्षमें रजत चित्र-सा अंकित कौन
तुम हो सुन्दर तरल तारिके ! बोलो कुछ बैठो मत मौन !
मन्दाकिनी समीप भरी फिर प्यासी आँखें क्यों नादान
रूप-निशाकी ऊषामें फिर कौन सुनेगा तेरा गान ।[४]

प्रसादकी सौन्दर्य वृत्तिको ध्यानमें रखकर डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीने लिखा है—'प्रसाद प्रकृतिके और मनुष्यके सौन्दर्यको पूर्णरूपसे उपभोग्य बनानेवाले कवि हैं ।'[५]

चित्रकी पूर्णता—प्रसादके गीतोंमें मूर्त्तिमत्ता, लाक्षणिकता और सांकेतिकताके साथ ही चित्रोंकी पूर्णता मिलती है । सार्थकता उपमा और रूपकके सहारे ये चित्र और भी

---

१. 'झरना', पृ० ६४ ।
२. पृ० २५ ।
३. 'स्कन्दगुप्त', पृ० १५५
४. पृ० ९३ ।
५. (i) 'हिन्दी-साहित्य : उद्भव और विकास', पृ० ४७१ ।
   (ii) प्रसादके समान सौन्दर्यके प्रेमी कवि बहुत ही विरल हैं और पार्थिव सौन्दर्यको स्वर्गीय महिमासे मण्डित करके प्रकट करनेका सामर्थ्य तो इतना और किसीमें है ही नहीं । वही, पृ० ४४४ ।

स्पष्ट हो जाते हैं। प्रसादका सारा गीति-काव्य ऐसे चित्रों में भरपूर हैं, कहींसे भी उदाहरण लिया जा सकता है—

निकल मत बाहर दुर्बल आह,
लगेगा तुझे हँसीका शीत
शरद नीरव मालाके बीच
तड़प ले चपला-सी भयभीत।[१]

× × ×

चिर निराशा नीरधरसे,
प्रतिच्छायित अश्रु - सरमें
मधुप-मुखर मरंद - मुकुलित
में सजल जलजात रे मन।[२]

× × ×

अब जागो जीवनके प्रभात!
रजनीकी लाज समेटो तो
कलरवसे उठकर भेंटो तो
अरुणाचलमें चल रही वात।[३]

× × ×

उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर
तू लौट कहाँ जाती है री,
यह खेल-खेल ले ठहर-ठहर
तू भूल न इस पंकज वनमें
जीवनके इस सूनेपनमें
ओ प्यार पुलकसे भरी ढुलक
आ चूम पुलिनके विरस अधर।[४]

संश्लिष्ट वर्णन, पूर्ण चित्रण, कलात्मक प्रकृति-चित्रण और संगीतात्मकताकी दृष्टिसे प्रसादका यह पूरा गीत बेजोड़ है—

बीती विभावरी जाग री!
अम्बर-पनघटमें डुबो रही
तारा-घट ऊषा-नागरी।[५]

१. 'चन्द्रगुप्त', पृ० १३।
२. 'कामायनी', पृ० २२८।
३. 'लहर', पृ० २४।
४. वही, पृ० ९।
५. वही, पृ० १९।

सांगीतिकता—प्रसादके गीतोंमें सर्वत्र सांगीतिकता है। अनुरणनात्मकता शब्दोंसे घुली-मिली है। कुछ गीतोंको शास्त्रीय रीतिसे भी गाया जाता है—प्रसादने कुछकी स्वर-लिपियाँ भी प्रकाशित की हैं। शब्द और स्वरका मधुर समन्वय प्रायः सभी गीतोंमें है—

उठ-उठ री ! लघु-लघु लोल लहर !
उठ-उठ गिर-गिर फिर-फिर आली
नर्त्तित पद-चिह्न बना जाती
सिकतामें रेखाएँ उभार !
भर जाती अपनी तरल सिहर ।[१]

खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा,
किसलयका अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लायी—
मधु-मुकुल नवल-रस गागरी।
बीती विभावरी जागरी।

झूम-झूम, निर्झर, झर-झर, बुद-बुद, कलरव, कल-कल, छल-छल, मर्मर, रल-मल, कंपन, उभार, गुन-गुन, ठहर-ठहर, चंचल आदि अनेक ध्वन्यार्थक शब्द प्रसादमें सहज ही मिलते हैं।

रंगोंकी पहचान—प्रसादके गीतोंमें वर्णोंकी अच्छी पहचान मिलती है। यह वर्ण-ज्ञान एक तो वातावरणको रंगीन बना देता है, दूसरे सौन्दर्यके यथार्थ चित्रणमें सहायक होता है। रंगोंमें भी प्रसादको नील रंग बहुत अधिक प्रिय है—समस्त काव्यमें यही बात झलकती है—

है सागर-संगम अतल नील !
× × ×
रंध्र खोजती थीं रजनीकी नीली किरणें
× × ×
मेरी लहरीली नीली अलकावलि समान
× × ×
जब नील निशा अंचलमें
× × ×
विस्मृतिका नील नलिन रस
× × ×
ऊषा-सी सजल गुलाबी जो
घुलती है नीले अम्बरमें आदि !

---

१. 'लहर', पृ० ९।

प्रसादके गीतोंकी विविधता और नवीन शिल्प-विधिको दृष्टि-पथ में रखकर ही महाकवि निरालाने लिखा है 'खड़ी बोलीमें नये गीतोंके भी प्रथम सृष्टिकर्ता प्रसादजी हैं।'[1]

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यके क्षेत्रमें प्रयोग और उपलब्धिकी दृष्टिसे निरालाका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। रहस्यवाद, छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद—इन सभी काव्य-धाराओंके आदर्श उदाहरण इनके गीतोंमें मिलते हैं। आधुनिक हिन्दी काव्यके ये मूर्त्तिमान इतिहास थे। इनके लिए अतीत-कालका प्रयोग करते हुए कलेजा मुँहको आ जाता है। आँखोंके सामने अपने गीत गाते हुए, तन्मय उस दिव्य मूर्त्तिका ध्यान हो जाता है, जिनसे मैंने अर्चना और आराधना की कई रचनाएँ सुननेका सौभाग्य प्राप्त किया था। स्वर, मुद्रा और शब्दोंका ऐसा विरत संयोग !

निरालाकी प्रायः सभी काव्य-पुस्तकोंमें कुछ-न-कुछ गीत अवश्य ही मिल जाते हैं। परिमल, अनामिका, अणिमा, बेला, नये पत्ते, अर्चना, आराधना और गीत-गुंजमें अनेक गीत हैं। गीतिका तो मात्र गीतोंका ही संग्रह है। तुलसीदास खण्डकाव्य है और कुकुरमुत्ता मुक्त छन्दमें लिखी व्यंग्यात्मक कविता-पुस्तक—इनमें गीतका प्रश्न ही नहीं उठता। नये पत्तेमें एक ही गीत है—खूनकी होली जो खेली। इस संग्रहकी मूलधारा भी व्यंग्य-प्रधान ही है। अणिमामें सम्बोध-गीतिकी प्रधानता है। परिमल, अनामिका और बेलामें गीत और अन्य कविताएँ मिश्रित रूपसे संकलित हैं, पर गीतिका, अर्चना, आराधना और गीतगुंजमें गीत ही गीत हैं। अतः गुणकी दृष्टिसे ही नहीं, मात्रा की दृष्टिसे भी निरालाकी रचनाओंमें गीतोंका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। गीतोंमें सांगीतिक योजनाकी दृष्टिसे तो निराला सर्वश्रेष्ठ कवि हैं—पूरे खड़ी बोली काव्यके।

निरालाने हिन्दी संगीत-पद्धतिका परिष्कार किया। उन्हें उन गवैयोंका संगीत खटकता था, जो हिन्दी भक्तोंके पद गाते हुए, उसके भाव-सौन्दर्य की रक्षा नहीं कर पाते थे। उन्हें हिन्दी संगीतकी शब्दावली भी खटकती थी। उन्होंने गीतिकाकी भूमिकामें लिखा है "......हिन्दी संगीतकी शब्दावली और गानेके ढंग दोनों मुझे खटकते रहे।.....प्राचीन गवैयोंकी शब्दावली, संगीतकी संगतिकी रक्षाके लिए, किसी तरह जोड़ दी जाती थी, इसलिए उसमें काव्यका एकान्त अभाव रहता था। आजतक उनका यह दोष प्रदर्शित होता है।"[2] निरालाके गीतोंमें इन दोषोंका परिमार्जन है। उनके गीत मात्र शास्त्रीयताकी रक्षाके लिए तुकबन्दी नहीं हैं, उनमें काव्यके अन्तरंग और बहिरंग पक्षोंका सन्तुलन है। उदाहरण-स्वरूप 'दादरा' का एक उदाहरण लें—दादरामें छह मात्राओंकी ताल मानी, गयी है। निरालाके निम्नलिखित गीत दादराके रूपमें गेय हैं—

---

१. 'गीतिका', पृ० १३।

२. पृ० ६।

(क)

सखि, वसन्त । आया– ।
भरा हर्ष । वनके मन ।
नवोत्कर्ष । छाया– ।
किसलय-वस । नानद-दय । लतिका– ।
मिली मधुर । प्रिय-उर तरु । पतिका– ।
मधुप वृन्द । बन्दी, पिक ।
स्वर-नभ सर । साया– ।

(ख)

अपने सुख । स्वप्नसे कि । ली– ।
वृन्त की क । ली– ।
उसके मृदु । उरसे प्रिय ।
अपने मधु । पुरके– ।
देख पड़े । तारोंके । सुरसे– ।
विकच स्वप्न । नयनोंसे । मिली फिर मिली– वह ।
वृन्तकी क । ली– ।

निरालाने इस गीतके विषयमें लिखा है—' 'ली' के बाद बाकी मात्राएँ स्वर-विस्तारसे पूरी होती है । अन्तमें एक जगह 'ली' के साथ 'वह' आ गया है । वहाँ 'ली' की दो मात्राएँ स्वरसे और दो मात्राएँ लेती हैं, बाकी दो 'वह' में आ जाती हैं, यों 'ली'—दो मात्राओंकी होती हुई भी ऊपर छह मात्राएँ पूरी करती हैं, यानी चार मात्राएँ स्वरके विस्तारसे आती हैं । बाकी छः का विभाजन पूरा है, स्वर घटता-बढ़ता नहीं । जहाँ बीच में, घट-बढ़ होना बुरा माना जाता है, वहाँ, बादको कला ।''[१]

मैं इस बातको स्पष्ट करना चाहती हूँ कि निरालाके उपर्युक्त गीत इस बातके प्रमाण हैं कि दादराके शास्त्रीय विभाजनके उपयुक्त होते हुए भी उनमें भावोंकी प्रचुरता है । वसन्त और वृन्तकी कलीके रूप-यौवनके लावण्य एवं शोभा-श्रीके चित्र आद्यन्त निरालाकी उपयुक्त शब्दावलियोंमें प्रकट हो गये हैं । संगीत भावोंके रक्षक हैं, संहारक नहीं ।

निरालाके गीतोंके मूल्यांकनके लिए उनका वर्गीकरण कर लेना आवश्यक है । परिमलसे लेकर गीतगुंजतकके गीतोंको निम्नलिखित खण्डोंमें विभाजित किया जा सकता है :—

१. प्रेमगीत—संयोग और वियोगके ।
२. सौन्दर्य प्रधान-गीत—मानव और प्रकृतिके ।
३. प्रार्थना गीत—आध्यात्मिक और रहस्यवादी गीत ।
४. राष्ट्रीय-गीत ।
५. बेला और नये पत्तेके सामाजिक चेतना और उर्दू बहरोंके गीत ।

---

१. 'गीतिका', पृ० ११ ।

निरालाके प्रेम-गीतोंमें मानव-हृदयकी अनेक भाव-दशाओंके चित्र मिलते हैं। उन्होंने शृंगारके अनेक रमणीय और मर्यादित रूप साहित्यको दिये हैं। वियोगकी व्यथाके तरल गीत भी अनेक हैं।

संयोग—निरालाके संयोग-शृंगारके चित्र मनको आकर्षित करते हैं, गुदगुदाते हैं, पुलकित करते हैं, लेकिन वासनाको उभारते नहीं—गीतिकाकी 'प्रिय यामिनी जागी', 'दृगोंकी कलियाँ नवल खुली।' 'स्पर्शसे लाज लगी' आदि रचनाएँ इस दृष्टिसे अत्यन्त सफल हैं।

हिन्दीमें मुद्रा-चित्रणकी शैली निरालामें सबसे अधिक है। इस दृष्टिसे वे किसी भी भाषाके श्रेष्ठ कविसे तुलनीय माने जा सकते हैं। निरालाके मुद्रा-चित्रणकी सूक्ष्मताके प्रमाण-स्वरूप अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, यहाँ कुछ चुनकर दिए जा रहे हैं—

(क) हेर उर-पट, फेर मुखके बाल,
लख चतुर्दिक चली मन्द मराल।[१]

इस गीतमें पूर्व पंक्तियाँ भी अप्रत्यक्ष रूपसे गतिशील सौन्दर्यका संकेत करती हैं—झटके-के साथ सिरको हिलाकर बालको बिखरानेका चित्र है—

खुले केश, अशेष शोभा भर रहे
पृष्ठ-ग्रीवा बाहु-उरपर तर रहे।[२]

इस गीतमें 'फेर मुखके बाल' का विस्तार 'खुले अशेष······तर रहे' में है।

(ख) 'सोचती अपलक आप खड़ी'[३]—इसमें 'विरह-वृन्तपर खिली हुई कुन्द-कली बनी विषण्ण' भावोंमें खोयी नायिकाका चित्र है।

(ग) चुम्बन-चकित चतुर्दिक चंचल
हेर, फेर मुख, कर बहु सुख-छल,
कभी हास, फिर त्रास, साँस बल
उर-सरिता-उमगी।[४]

इसमें प्रियके सान्निध्यसे उमगी हुई नायिकाका चित्र है। चुम्बन-चकितचतुर्दिक चंचल पढ़कर जुहीकी कलीकी ये पंक्तियाँ याद आ जाती हैं :—

चौंक पड़ी युवती—
चकित चितवन निज चारों ओर फेर,
हेर प्यारेको सेज-पास,
नम्र मुखी हँसी-खिली,
खेल-रंग, प्यारे संग।[५]

---

१. 'गीतिका', पृ० २।
२. वही।
३. वही, पृ० ६।
४. वही, पृ० ३३।
५. 'मतवाला', संख्या १८।

वियोग—निरालाके विप्रलम्भ शृंगारके गीतोंमें भी वे ही विशेषताएँ मिलेंगी जो संयोगके गीतोंमें। कहीं भी प्रिय-स्मरणमें वासनाका स्खलित संयोग नहीं दीखता। प्रिय-विरहका दुःख सूक्ष्म भावोंसे पूर्ण है—कहीं विरहके हल्के-फुल्के प्रसंग नहीं—

गाया जो राग, सब बहा,
केवल मिजराब ही रहा,
खिंचा हुआ हाथ शून्य
यह सितार तार।
तुम छोड़ गए द्वार,
तबसे सूना यह संसार।[१]

(ख) दुःखका उदात्त रूप, गहरे प्रेमसे उत्पन्न आत्मविश्वास और मिटकर भी प्रियकी प्रीतिको जीतनेका दृढ़ संकल्प निम्नलिखित पंक्तियोंमें कितनी सुन्दरतासे व्यंजित हुआ है—

मैं न रहूँगी जब, सूना होगा जग,
समझोगे तब, यह मंगल-कलरव सब
था मेरे ही स्वरसे सुन्दर जगमग;
चला गया सब साथ।
याद रखना, इतनी ही बात।
नहीं चाहते, मत चाहो तुम
मेरे अर्घ्य, सुमन-दल नाथ।[२]

(ग) प्रतीक्षारत नायिकाके आत्म-समर्पणसे पूर्ण मनका विषय कितना मार्मिक है—

तोड़ दिए जब सब अवगुंठन
रहा एक केवल सुख-लुंठन,
तब क्यों इतना विषय-कुंठन
असमय समय न करो, खड़ी प्रिय।
कबसे मैं पथ देख रही प्रिय;
उर न तुम्हारे रेख रही प्रिय।[३]

नायिकाको वियोगका एक ही आधार है नाम-स्मरण और नामस्मरणसे उत्पन्न पुलक और भावावेशकी अन्तिम परिणति है—अश्रु-वर्षा।—

प्राण-धनको स्मरण करते
नयन झरते नयन झरते।[४]

---

१. 'गीतिका', पृ० २५।
२. वही, पृ० ३०।
३. वही, पृ० ३१।
४. वही, पृ० ५२।

प्रतीक्षाकी भी एक सीमा होती है। एक अनन्त दुःख, एक असह्य वेदना विरहको कितना कातर बना देती है—

कहती, 'प्रिय-पथ दुस्तर—
वे गए असह्य दुख भर।'
जीवनके मंगलके
रवि अस्ताचल दलके;
निशि, तिमिर-ग्रस्त,
वसन - ग्रस्त
त्रस्त नयन छलके
तरुणीके, अम्बरपर।
वे गये असह्य दुख-भर।
वारिद झर-झर झरकर।[1]

'दुख ही जीवनकी कथा रही' लिखनेवाले कविका यह गीत उचित ही है—

जीवन चिरकालिक क्रन्दन।
मेरा अन्तर वज्र कठोर,
देना जी भरसक झकझोर,
मेरे दुखकी गहन अन्ध
तम-निशि न कभी हो भोर
क्या होगी इतनी उज्ज्वलता—
इतना वन्दन-अभिनन्दन।[2]

निरालाका जीवन उपेक्षा, प्रतारणा और शोषणकी गाथा है। हिन्दीके आधुनिक महाकवियोंमें किसीने इतनी यातनाएँ नहीं सहीं। प्रसाद, पन्त, महादेवी, रामकुमार, बच्चन आदि सभी इस दृष्टिसे सुखी रहे हैं। इसलिए निरालाके प्रेमगीतोंमें एक प्यास मिलती है—प्रेमकी अतृप्ति—

मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा?
स्तब्ध, बन्ध मेरे मरुका तरु
क्या करुणाकर मिल न सकेगा?[3]

निरालाका हृदय प्यारके अभावमें उदार बन गया है, कठोर नहीं। वह दूसरोंके प्रेमको अधिकसे अधिक समृद्ध देखना चाहते हैं:—

तृष्णाकुल होंगे प्रिय जाओ,
सलिल-स्नेह मिल मधुर पिलाओ,

---

१. 'गीतिका', पृ० ६२।
२. 'अनामिका', पृ० ९२।
३. 'गीतिका', पृ० ४५।

सब दुखश्रम हर लाज-रूपधर ।
अपनाओ-सत्वर ।
स्नेहकी सरिताके तटपर
चल रही युगल कमल-घट भर ।[१]

निराला प्रेमको विश्वकी सभी निधियोंसे श्रेयस्कर मानते हैं। उनका साधन, साध्य-सब कुछ प्रेम है। प्रियको सम्बोधित कर वे कहते हैं:—

कुछ न हुआ, न हो
मुझे विश्वका सुख, श्री, यदि केवल
पास तुम रहो ।[२]

इस गीतमें इस बातकी स्वीकारोक्ति है कि कविने जीवनमें व्यथा ही व्यथा सही है—संसारका कोई सुख उसे न मिला, फिर भी वह प्रियके सान्निध्यसे सब सुख प्राप्त कर लेगा। प्रियाके दिव्य रूपका चित्रण निम्न गीतमें है—

तनकी, मनकी, धनकी हो तुम ।
काम कामिनी कभी नहीं तुम
सहज स्वामिनी सदा रही तुम,
स्वर्ण दायिनी नदी बही तुम,
अनयन-नयन-नयन ही हो तुम ।[३]

निरालाके गीतोंकी प्रेरणा प्रेमका वह उज्ज्वल रूप है, जिसका केन्द्रबिन्दु उसकी प्रिया है। 'प्रिया' शीर्षक कवितामें कविने अपने गीतोंके उत्सका उल्लेख किया है—

तेरे सहज रूपसे रँगकर
झरे गानके मेरे निर्झर
भरे अखिल सर,
स्वरसे मेरे सिक्त हुआ संसार ।[४]

अपने गीतोंको वे प्रियाकी देन मानते हैं:—

कहा जो न, कहो !
नित्य नूतन, प्राण, अपने
गान रच-रच दो ।[५]

गीतोंमें जिस प्रेमको उन्होंने ग्रहण किया है, उसका स्वरूप उन्होंने अनामिकाके 'प्रेमके प्रति' शीर्षक कवितामें स्पष्ट किया है:—

---

१. 'गीतिका', पृ० ४४।
२. 'अनामिका', पृ० ११६।
३. 'अणिमा', पृ० १०२।
४. 'अनामिका', पृ० ४३।
५. वही, पृ० १३५।

प्रेम, सदा ही तुम असूत्र हो
उर-उरके हीरोंके हार
गूँथे हुए प्राणियोंको भी
गूँथे न कभी, सदा ही सार ![1]

आशंका प्रेमके कच्चे रूपमें भी होती है, सधे रूपमें भी ! एकमें प्रेम-पात्रकी चंचलता कारण होती है, दूसरेमें प्रेमकी अतिशयता ! कभी-कभी प्रेमाधिक्यकी भावुकता प्रियाके वियोगमें भाँति-भाँतिकी आशंकाएँ उठाती हैं:—

फिर किधरको हम बहेंगे
तुम किधर होगे
कौन जाने फिर सहारा
तुम किसे दोगे ?[2]

निरालाके गीतोंमें प्रेमका चित्रण नरकी ओरसे भी है, नारीकी ओरसे भी। दोनों ही स्थितियोंमें प्रेमका धरातल ऊँचा है। प्रायः सर्वत्र तनपर मनकी विजयका स्वर है। संयोग और वियोग-प्रेमके दोनों ही पक्षोंमें मर्मस्पर्शी चित्र हैं।

(२) प्रार्थना-गीत—प्रेमका आध्यात्मिक रूप और शृंगारका अलौकिक सन्दर्भ आधुनिक कालके गीतोंमें भी मिलता है। वस्तुतः भारतीय चिन्ताधाराका कोई भी काल ऐसा नहीं है जब आध्यात्मिक दृष्टि सर्वथा लुप्त रही हो। सांसारिक शक्तियोंसे निस्सहाय व्यक्तिके लिए पारलौकिक शक्तियोंपर भरोसा रखना जरूरी हो जाता है।

निरालाके गीतोंमें आध्यात्मिकता पर्याप्त मात्रामें है। यों तो परिमल और अनामिकासे ही उनकी दिव्य दृष्टिका परिचय मिलता है, पर जीवनके उत्तरार्द्धमें निरालाने मुख्यतः आध्यात्मिक गीत ही लिखे—अर्चना, आराधना और गीत-गुंजमें।

प्रार्थनापरक रचनाएँ प्रायः गेय होती ही हैं, क्योंकि उनमें आत्माभिव्यंजन और आन्तरिक संगीतकी पुलक होती है। इसी सांगीतिकताके कारण गवैये प्रायः प्राचीन भक्तोंके पद गाते हैं। निरालाने सगुण निर्गुण दोनों ही ब्रह्मोंकी आराधना की है। वे विवादोंसे परे पूर्णशक्तिके पुजारी हैं। रामकृष्ण मिशन और विवेकानन्दसे प्रभावित होकर माँके रूपमें इन्होंने आदिशक्तिकी वन्दना की है। सरस्वतीकी भी मातृरूपमें आराधना की गयी है। यथा—

धन्य कर दे माँ, वन्य प्रसूत,

—'गीतिका', पृ० ३६।

माँ तू भारतकी पृथ्वीपर

—वही, पृ० ३९।

---

१. 'अनामिका', पृ० ३२।

२. 'परिमल', पृ० ७।

जननि, दुख-अवनिको

—'गीतिका', पृ० ५८ ।

जननि, जनक-जननि-जननिको

—पृ० ८३ ।

जननि, दुखहरण, पद-राग-रंजित मरण !

—पृ० ९७ ।

आया, जननि, नैश अन्ध पथ पार कर

—पृ० १०० ।

जननि, मोहकी रजनी

—'अर्चना' पृ० ८१ ।

हे जननि, तुम तपश्चरिता

—पृ० १०१ ।

माँ अपने आलोक निखारो

—पृ० १०८ ।

क्या गाऊँ ?—माँ क्या गाऊँ ?

—'अनामिका', पृ० ४० ।

निरालाके प्रार्थना-गीतोंमें ईश्वरको अनन्त, अविनाशी मानते हुए उन्हें घट-घट-वासी माना गया है। ईश्वरतक पहुँचनेमें अनेक प्रकारकी लौकिक बाधाओंको पार करना पड़ता है। निरालाने ऐसी माया बाधा और उसकी सहज जयका चित्रण सफलतापूर्वक किया है—

लगे जो उपल पद, हुए उत्पल ज्ञात,
कण्टक चुभे जागरण बने अवदात,

—'गीतिका', पृ० १०० ।

इस मायावी विश्वका चित्र उन्होंने अन्य गीतोंमें भी चित्रित किया है यथा, अर्चनाके ग्यारहवें गीत 'शिविरकी शर्वरी हिंस्र पशुओं भरी', चालीसवें गीत 'निविड़ विपिन पथ अराल, भरे हिंस्र जन्तु व्याल', इक्कावनवें गीत 'घन तमसे आवृत्त धरणी है' आदिमें ।

निरालाके प्रार्थना-गीतोंकी एक बहुत बड़ी विशेषता है लोक-कल्याणकी कामना, व्यक्ति और समाज दोनोंकी उद्धार-कामना । यथा—

दलित जनपर करो करुणा
दीनतापर उतर आये
प्रभु, तुम्हारी शक्ति अरुणा ।
× × ×
दूर हो, अभिमान संशय
पूर्ण-आश्रम-गत महामय

जाति-जीवनको निरामयं
वह सदाशयता प्रखर दो !

परमात्माको भव-सागरका खेवनहार मानकर निरालाने अनेक प्रार्थना-गीत लिखे हैं। एक अर्चनामें ही कितने गीत हैं—

(१) पार पारावार कर तू

—'गीतिका', पृ० ३।

(२) भवसागरसे पार करो हे
गह्वरसे उद्धार करो हे।

—पृ० ७।

(३) पार करो यह सागर
दीनके लिए दुस्तर,
करुणामयि, गहकर कर
ज्योतिधमनी !

—पृ० ४२।

(४) तरणि तार दो
अपर पार को।
से-लेकर थके हाथ,
कोई भी नहीं साथ
श्रम-शीकर भरा-माथ,
बीच धारा ओ।

—पृ० ७२।

(५) कठिन यह संहार, कैसे विनिस्तार ?
उर्मि का पाधार कैसे करे पार ?
अयुत भंगुर तरंगों टूटता सिन्धु
तुमुल-जल-बल-भार, क्षार-तल, कुल विन्दु,

—पृ० ७५।

विनय आत्माके अहं-विसर्जनका प्रमाण है। ज्ञानोदय और आत्मोदयके कारण ही विनय संभव है। निरालाकी भक्ति-भावना विनयसे मोहक है। अनामिकाका 'विनय', अणिमाका 'मैं बैठा था पथपर', तुम आप, 'तुम्हीं हो शक्ति', बेलाका 'नाथ तुमने गहा', आये पलक पर, जग के, जयके, प्रतिजनको करो सफल, आप नतवदन आदि गीत विनय-भावनासे भरे हैं। शान्ति भक्तिभावकी परिणति है। शान्त रसके दो गीत उल्लेखनीय हैं—अणिमाका पाँचवाँ और ग्यारहवाँ गीत, क्रमशः 'सुन्दर है, सुन्दर' एवं 'मैं अकेला'। निरालाके उपदेश एवं आत्म-चेतना-प्रधान गीतोंका विवेचन प्रसंगानुसार पिछले प्रकरणमें किया जा चुका है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि कविकी उद्‌बुद्ध आत्माने संसारकी नश्वरता और छल-प्रपंच से बचने की सलाह दी है।

दार्शनिक गीतोंमें आत्म-चेतनाकी प्रबलधारा मिलती है। ज्ञान और भावके मणिकांचन संयोगकी दृष्टिसे निरालाके अनेक गीत महत्त्वपूर्ण हैं—मरणको जिसने वरा है (अणिमा), सबसे तुम छूटे, शान्ति चाहूँ मैं, बीनकी झंकार, अशब्द हो गयी वीणा, मृत्यु है जहाँ, उन्हें न देखूँगा, अहरह तुम्हारे (बेला), बन जाय भले, लग लगन, सरल तार, खोल अमलिन (अर्चना), दुख भी सुखको, रमणी न रमणीय (आराधना), जिधर देखिये श्याम बिराजे, (गीतगुंज), जगका एक देखा तार, प्रतिक्षण मेरा मोह-मलिन मन, खोलो दृगोंके हृदयद्वार, निशिदिन तन धूलि में मलिन, रहा तेरा ध्यान, रे अपलक मन, (गीतिका) आदि।

(३) सौन्दर्य-प्रधान गीत—सौन्दर्य—आन्तरिक और बाह्य सौन्दर्य के चित्रणमें निराला सिद्धहस्त हैं। मानव और प्रकृति दोनोंके रूप-चित्रणके अनेक उदाहरण निराला-की रचनाओंमें मिलते हैं। आन्तरिक सौन्दर्य प्रेमगीतोंमें मिलता है।

निरालाने स्थिर और गतिशील सौन्दर्योंके चित्र उपस्थित किये हैं—

स्थिर—(१) रूप अतन्द्र, चन्द्रमुख, श्रम रुचि,
पलक तरल-तम, मृग-दृग-तारे।
—'गीतिका', पृ० ४३

(२) किसलय वसना नव-वय-लतिका
मिली मधुर प्रिय-उर तरु-पतिका,
—पृ० ५

गतिशील—(१) खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे।
—'गीतिका', पृ० ४

(२) वङ्कभोह, शंकित दृग नत मुख,
× × ×
कमलासन पर बैठ, प्रभा-तन,
वीणा-कर करती स्वर-साधन,
अंगुलि-धाति गुंजा मृदु गुंजन,
भर देती शत गान, तान तुम। —'गीतिका', पृ० ७२

श्रृंगारिक गीतोंको उद्दीप्त करनेवाले सौन्दर्यका चित्रण भी निरालाने किया है—'नयनोंके डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली' में ऐसा ही चित्रण है। निरालाने सौन्दर्यको कहीं-कहीं अत्यन्त सूक्ष्म प्रेरणाके रूपमें लिया है। 'अनामिका'में दो गीत इस दृष्टिसे बड़े सुन्दर हैं—'और और छबि' (पृ० १९२) और 'मेरी छबि ला दो' (पृ० १९२)।

प्राकृतिक सौन्दर्यके विभिन्न गीत—निरालाको बहुत अधिक प्रिय हैं—वर्षा और वसन्त। वर्षाके रूप और गुणसे सम्बद्ध गीत-मुक्ता दल जल बरसो, बीन वारणके (अर्चना), छाये धराधर धावन है (आराधना), शाप तुम्हारा गरज उठे सौ-सौ

बादल, श्याम गगन नव घन मँडलाये, बढ़-बढ़कर बहती पुरवाई, जिधर देखिये श्याम विराजे, बादल रे, जी तड़पे, आओ आओ वारिद वन्दन, गगन मेघ छये, धिक मनस्सब, मान गरजे बदरवा, फिर नभ घन घहराये, प्यासे तुमसे भरकर हरसे (गीत गुंज) आदि ।

कहीं-कहीं निरालाने पावसको प्रियकी रूप-सज्जाके साथ एक रूप कर दिया है—

प्राण तुम पावन-सावन गात;
जलज जीवन-यौवन अवदात !
मृदु बूँदों चितवन की लड़ियाँ,
केश, मेघ, सुख पलक अँखड़ियाँ,
प्रमन चारु चिन्तन की घड़ियाँ,
जलधर भूमि सुजात, प्राण तुम···।

—'गीतगुंज', ० ३१

अथवा,

बादल में आये जीवन-धन ।
अपल-नयन सुवास-यौवन नव,
देख रही तरुणी कोमल तन ।
नव-अपांग-शर-हत व्याकुल उर
आतुर वारिद वारि-धार स्फुर,
उगा रहा उर में प्रेमांकुर
मधुर-मधुर कर-कर प्रशमित मन,

—'गीतिका', पृ० १५

वसंतके वर्णनमें कविने उसके छवि-चित्रणको अधिक प्रमुखता दी है, होलीके प्रसंगमें श्रृंगारिकता अधिक है । इस दृष्टिसे सखि, वसंत आया, रूखी री यह डाल, रंग गयी पग-पग, मार दी तुझे पिचकारी (गीतिका), फूटे हैं आमोंमें बौर, खेलूँगी कभी न होली, केशरकी कलिकी पिचकारी, अट नहीं रही है, कुंज-कुंज कोयल बोली है (अर्चना) फेर दी आँख, बोरे आम कि भौंरे बोले (गीत-गुंज), हँसीके तारके होते हैं ये बहारके दिन, हँसीके झूलेमें फूले हैं वे बहारके दिन, उनके बागमें बहार (बेला) आदि । ऋतुओंमें शरद ऋतुका वर्णन अच्छा हुआ है—शरदकी शुभ्रगंध फैली, शुभ्र शरत् आयी अम्बरपर, शरद विभावरी, नभ, तारा (गीत-गुंज), वह चली अब अलि, शिशिर-समीर (गीतिका) आदि। गीतिकाके अन्तिम गीतमें शरदमें मिलनेवाली शेफालीका चित्र बड़ा मोहक है ।

(४) राष्ट्रीय-गीत—राष्ट्रीय गीतोंका उल्लेख चतुर्थ प्रकरणमें प्रसंगवश किया जा चुका है । यहाँ यह निवेदन करना आवश्यक है कि निरालाके राष्ट्रीय गीत किसी राजनैतिक चेतनाके फलस्वरूप नहीं लिखे गये हैं और न उनमें किसी विशेष वादकी गन्ध है । वे

शुद्ध देश-भक्तिके उद्‌गार हैं। उनमें कोई नारा नहीं, कोई सस्ती भावुकता नहीं। कलात्मक अभिव्यंजना मिलती है। राष्ट्रकी समृद्धिके लिए कवि सदैव उत्सुक दीखता है। 'जागो जीवन धनिके'[१] में वाणिज्यकी उन्नतिकी भी कामना है।

राष्ट्रीय भावनाओंवाले प्रमुख गीत हैं—भारत ही जीवन (अणिमा), जला दे जीर्ण-शीर्ण प्राचीन, भारति जय विजय करे (गीतिका) आदि।

(५) **बेला और नये पत्तेके गीत—सामाजिक चेतना एवं उर्दू बहरोंके गीत—** गीतिकाव्यकी दृष्टिसे बेलाका महत्त्व है नये पत्तेका नहीं। नये पत्ते मुक्त छन्द प्रधान व्यंग्यात्मक रचना है, जो १९४६ में द्वितीय महायुद्धकी समाप्तिपर प्रकाशित है। उसमें सामाजिक और राजनैतिक वस्तुस्थितियोंपर व्यंग्य है। कुछ रचनाएँ कुकुरमुत्तासे संगृहीत हैं। श्री रमेशचन्द्र मेहराने अपनी पुस्तक 'निरालाका परवर्ती काव्य'के परिशिष्ट-में नये पत्तेकी कविता 'देवी सरस्वती'को गीतिकाव्यके अन्तर्गत वर्गीकृत किया है और उसे विनय-गीत माना है।[२] किन्तु यह रचना भक्ति और विनयसे पूर्ण होकर भी गीत नहीं मानी जा सकती। यह ८८ पंक्तियों की एक लम्बी वर्णनात्मक रचना है।

बेलामें नयी शैलीके गीत हैं। कविने स्वयं सूचित किया है—'बेला मेरे नये गीतों-का संग्रह है। प्रायः सभी तरहके गेय गीत इसमें हैं।'[३] नयी शैली इसलिए कहा कि इसमें उर्दू बहरोंका प्रभाव है और इसकी भाषा-शैली नये प्रकारकी है। प्रगतिशील दृष्टि-कोण पग-पगपर मिलता है। इसमें कई प्रकारके गीत हैं—सामाजिक, राजनीतिक, प्राकृतिक और आध्यात्मिक। रूपकी धाराके इस पार, कैसे गाते हो बीनकी झंकार नाथ तुमने गहा, आये पलकपर, जीवन-प्रदीप, चेतन, सबसे तुम छूटे, चलते पथ, शान्ति चाहूँ मैं, छला गया, जबके मुसीबतसे कटे हैं दिन, प्रतिजनको करो सफल, मनमें आप संचित, अपनेको दूसरा, कहाँकी मित्रता, नये विचारोंके, प्रभुके नैनोंसे, आये हो आ सके, फूलसे चुन लिया, बन्दीगृह वरण किया, मृत्यु हो जहाँ, आये नत वदन, साधना आसन हुई संसारके व्यापारमें, ऐंड़ ली तिरछी, अतिसुकृत भरे, मिट्टीकी माया, मायाकी गोद, मन हमारा, उन्हें न देखूँगा और अहरह तुम्हारे न जो प्राण हारे गीतोंका स्तर आध्या-त्मिक है। सर्वत्र एक दार्शनिक दृष्टि परिव्याप्त है।

शुभ्र आनन्द आकाशपर छा गया, स्वरके सुमेरु हे झर-झरकर, खिला कमल किरण पड़ी, कुन्द हासमें अमन्द, श्वेत गन्ध छायी, उठकर छबिसे आता है पल, हँसीके तारके होते हैं ये बहारके दिन, हँसीके झूलेके झूले हैं वे बहारके दिन, छाये आकाशमें काले-काले बादल देखे, जिसको तुमने चाहा, आँखसे मिला, आरे गंगाके किनारे, राजे दिनकर जैसे, लूके झोको झुलसे हुए थे जो साहस कभी न छोड़ा, आगे कदम बढ़ाई, पग आँगनमें रखकर आये और कैसी तर हवा चली—इन गीतोंमें प्रकृति-की विभिन्न सुषमाओं और ऋतुओंकी विशेषताओंका चित्रण है।

---

१. 'गीतिका', पृ० १७।

२. वही, पृ० २५७।

३. 'आवेदन', पृ० ५।

रूपके अमोघ प्रभाव और उसपर ऐकान्तिक समर्पणका बड़ा आकर्षक चित्र इस गीतमें है--

आँखें वे देखी है जब से
और नहीं देखा कुछ तब से,
सभाएँ सहस्रों अब तक की,
वैसी आँखें न कहीं देखी,
उपमाओं की उपमाएँ दीं,
एक सही न हो सकी तबसे[१] ।

इसे पढ़कर सूरके पद 'उपमा एक न नैन गही' का स्मरण हो आता है। प्रेममें खोये रातभर प्रियाकी चर्चा उन्मादक होती है—

बातें चलीं सारी रात तुम्हारी;
आँखें नहीं खुलीं प्रात तुम्हारी ।[२]

आँखोंका प्रभाव-चित्रण इन पंक्तियोंमें भी सफल हुआ है—

निगह तुम्हारी थी, दिल जिससे बेकरार हुआ,
मगर मैं गैर से मिलकर निगहसे पार हुआ ।[३]

अथवा

नयन हो गये हैं वे
अयन जिनका खो गया,
सुख के शयन के लिए
आये हैं असि की धार पर ।[४]

प्रकृतिके उल्लासमय वातावरणमें मानव कितने सहज व्यवहार करता है, इस साधारण चित्रको असाधारण सफलताके साथ कविने पचीसवें गीतमें चित्रित किया है। उदाहरणार्थ एक चित्र देखें--

किरणें कैसी-कैसी फूटीं
आँखें कैसी-कैसी तुलीं,
चिड़ियाँ कैसी-कैसी उड़ीं,
पाँखें कैसी-कैसी खुलीं ।

भाई भतीजों के संग,
नैहर की आयी हुई,

---

१. 'बेला', पृ० २९ ।
२. वही, पृ० २५ ।
३. वही, पृ० ३७ ।
४. वही, पृ० ३९ ।

सहेलियाँ कैसी-कैसी
बगीचों में मिली-जुली ।[१]

निरालाने 'आराधना'में जो गीत' ऊँट-बैलका साथ हुआ है'[२] लिखा है, उसका स्रोत बेलाके कई गीतोंमें ढूँढा जा सकता है । सामाजिक वैषम्यका चित्रण कहीं-कहीं बड़ा वेधक है—

भीख माँगता है अब राह पर
मुट्ठी भर हड्डी का यह नर
एक आँख आज के बानिज की
पराधीन होकर उस पर पड़ीं;
कहा कला ने, कल का यह वर ।[३]

सामाजिक और आर्थिक साम्यका सपना निरालाने स्पष्ट रूपसे देखा था—

जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ आओ-आओ ।
आज अमीरों की हवेली किसानों की होगी पाठशाला
धोबी, पासी, चमार, तेली खोलेंगे अँधेरे का ताला,
एक पाठ पढ़ेंगे, टाटें बिछाओ ।[४]

निरालाने उर्दूशैलीकी रचनाओंमें व्यंग्यको प्रधानता दी है । कुछ ऋतु-वर्णन लिखे हैं । उर्दूकी यह प्रवृत्ति मुक्त छन्दवाली कविताओंमें है । गजलोंमें दो प्रकारकी प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं—एक जिनमें छन्द उर्दूका और शब्दावलि तत्सम है । कुछमें शब्दावलियाँ भी उर्दूकी हैं । हिन्दीमें उर्दूके छन्दोंको अपनानेकी पूर्ण क्षमता है ।[५] बेलामें गजलों और उर्दू बहरोंके अन्यान्य रूप मिलते हैं ।

इनमें कहीं आध्यात्मिकता है, कहीं राष्ट्रीयता ।

नाथ तुमने गहा हाथ वीणा बजी,
विश्व यह हो गया साक्षी, द्विविधा लजी ।—यहाँ आध्यात्मिक चेतनाकी ध्वनि है । उर्दू छन्दके सहज प्रयोग निम्नलिखित पंक्तियोंमें मिलते हैं—

हँसी के तार के होते हैं, ये बहार के दिन ।
हृदय के हार के होते हैं, ये बहार के दिन ।[६]

अथवा,

आँख के आँसू न शोले बन गये तो क्या हुआ ।
काम के अवसर न गोले बन गये तो क्या हुआ ।[७]

---

१. 'बेला', पृ० ४१ ।
२. वही, गीत ७२ ।
३. वही, पृ० ६१ ।
४. वही, पृ० ७८ ।
५. '...हिन्दीमें उर्दू कविता-धाराको पूर्णतः आत्मसात् करनेकी शक्ति है ।'
—'आधुनिक हिन्दी काव्यमें छन्द-योजना', डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल, पृ० ११४ ।
६. पृ० ३१ ।
७. पृ० ७४ ।

दो बड़ी अच्छी कजलियाँ निरालाने लिखी हैं—एक छात्रोंपर पुलिसके प्रहारके अवसरपर—यह नये पत्तेमें है—

युवक जनों की है जान,
खून की होली जो खेली,
पाया है लोगों में मान,
खून की होली जो खेली।[1]

दूसरी कजली बेलामें है—

काले-काले बादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल
कैसे-कैसे नाग मंडलाये, न आये वीर जवाहरलाल।[2]

शोषकोंका भेद निरालाकी गजलकी इन पंक्तियोंमें साफ-साफ शब्दोंमें मिलता है—

खुला भेद विजयी कहाये हुए जो
लहू दूसरों का पिए जा रहे हैं।[3]

'बेला'की एक गजलमें पूँजीपतियोंका भी भण्डाफोड़ किया गया है—

भेद कुल खुल जाय वह
सूरत हमारे दिल में है।
देश को मिल जाय तो
पूँजी तुम्हारी मिल में है।[4]

निष्कर्ष रूपसे हम कह सकते हैं कि निरालाका प्रतिनिधि कवि-व्यक्तित्व उनके गीतोंमें ही प्रकट हुआ है। हिन्दीमें गीतोंके जितने प्रयोग निरालाने किए, उतने अन्य किसीने नहीं। भक्तिकालके उपरान्त आधुनिक युगमें निरालाकी रचनाओंमें ही काव्य और संगीतका कलात्मक मिश्रण हुआ। रागोंका संयोजन, शब्दोंका अनुशासन, वैयक्तिकताका आग्रह और भावोंकी विविधताकी दृष्टिसे निरालाके गीत अनमोल हैं।

सुमित्रानन्दन पंत

राग-रागिनियोंमें बँधे गीतोंकी रचनाकी दृष्टिसे नहीं, शब्दोंकी सांगीतिक योजना और कोमलकान्त पदावलिकी दृष्टिसे पंतका स्थान आधुनिक हिन्दी काव्यमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। लयात्मकताके निर्वाहके लिए पंत छन्दोंके उतार-चढ़ाव यति-गति एवं चरणोंकी मात्राओंमें मनोनुकूल परिवर्त्तन करनेके लिए प्रसिद्ध हैं। एक कुशल शब्द-शिल्पीकी भाँति उन्होंने मनोयोगपूर्वक संगीतमय पंक्तियोंका निर्माण किया है। विशुद्ध गीतोंमें सांगीतिकता, वैयक्तिकता, चित्रात्मकता, संक्षिप्तता आदि गुण आदर्श रूपसे प्रतिष्ठित हैं।

---

१. पृ० १०४।
२. पृ० ५४।
३. पृ० ६८।
४. पृ० ७५।

पन्तके गीत आत्माकी सहज अनुभूतिसे ध्वनित हैं। उनके गीतोंका उत्स नैसर्गिक है—

ज्यों मधुवनमें गुँजते भूपर
ज्यों आम्रकुंजमें पिकी मुखर,
मेरी उर तंत्रीसे रह रह
फूटते मधुर गीतोंके स्वर ![1]

इस 'आवेश' शीर्षक गीतमें उन्होंने 'झरते हुए हरसिंगार' और 'बहते हुए निर्झर'-की भाँति अपने मनके आवेशको 'गीतोंमें बिखरते' हुए बतलाया है।

पन्तने मानव-चेतनाके आध्यात्मिक उत्कर्षके लिए अनेक प्रार्थनापरक गीत लिखे हैं।

असत्के अन्धकारपर सत्यके प्रकाशके गीत उन्होंने गाये हैं—

जयति, प्रथम जीवन स्वर्गोदय,
रक्त, स्फीत, लो दिशाका हृदय,
काल तमस व्यवधान चीरके
किसने मारा स्वर्ण पंख शर ![2]

कहीं-कहीं पन्तका गीतकार इस प्रकाशमय-रूपको ही अपना प्रेरक मानता है। आत्मचेतना पूर्णतापर पहुँच जाती है—

गीत अधजगे तरु नीड़ोंमें,
स्वप्न अधमुँदे उर पलकोंमें,
मौन प्रतीक्षाका अनन्त यह,
वातायनसे मुख दिखलाओ !
ओ नवयुगकी नव ऊषा ओ,
जन मानस क्षितिजोंपर आओ ![3]

कवि-दृष्टिमें ज्योति ही विश्वके निर्माण विकास और लयका कारण है जो चिन्मय है, ब्रह्म-स्वरूप है,

चिन्मय प्रकाशसे विश्व उदय,
चिन्मय प्रकाशमें विकसित लय।[4]

प्रकाशकी मंगल-कामना ज्योत्स्नाके गीत 'हो आलोक'में भी है—

हो आलोक, हो आलोक !
इस जगके मलिन-मुखसे द्रुत,
मिटे अँधेरेका भय, शोक ![5]

---

१. 'चिदंबरा', पृ० ६२।
२. वही, पृ० १३१।
३. वही, पृ० २८।
४. 'ज्योत्स्ना', पृ० ५७।
५. वही, पृ० १०४।

आधुनिक गीतकारोंमें प्रकाशका गीत सबसे अधिक सूक्ष्मता और कलात्मकतासे पन्तने गाया है। प्रकृतिके इस जागरूक कविको बाह्य और अन्तर्ज्योतिने समान रूपसे आवृत्त किया है। संगीतमय शब्दों, विशेषणोंके सार्थक प्रयोग एवं रंगोंकी सूक्ष्म परखका बहुत अच्छा परिचय जीवन उत्सव शीर्षक गीतमें मिलता है—

अरुणोदय नव, लोकोदय नव,
रजत झाँझ से बजते तरुपल
स्वर्णिम निर्झर झरते कल-कल
मुखर तुम्हारे पग पायल
यह भू जीवन शोभाका उत्सव !

और 'हरित पीत छायाएँ सुन्दर', 'स्वर्णिम आभाएँ झरझर', 'ईंगुर रंगके खिलते पल्लव', 'रक्तोज्वल यौवन प्ररोहमें'।[1]

ज्योतिका प्रभाव पन्तपर इस हद तक है कि वे राष्ट्रीय गीतोंमें भी उसका व्यापक रूप चित्रित करते हैं। 'ज्योति भारत' गीतमें तो वे सम्पूर्ण राष्ट्रको ही ज्योति-स्वरूप देखते हैं—

ज्योति भूमिजय भारत देश !
ज्योति चरण धर जहाँ सभ्यता
उतरी तेजोन्मेष[2] आदि

पन्तने स्वदेशकी वन्दना करते हुए कई उच्च कोटिके गीत लिखे हैं, जिनमें शक्ति, उत्साह, नवीन चेतना और स्वतंत्रताकी दीप्तिके अनेक चित्र मिलते हैं। इन गीतोंमें राष्ट्रके प्राकृतिक स्वरूपका भी चित्रण हुआ है। 'ग्राम्या'का 'भारत माता ग्रामवासिनी' गीत इस दृष्टिसे अत्यन्त श्रेष्ठ है। प्राकृतिक उपादानोंका वर्णन अन्यत्र भी हुआ है— यथा पूर्व उद्धृत गीत 'ज्योति भारत'में 'समाधिस्थ सौन्दर्य हिमालय' 'गंगा यमुना जल ज्योतिर्मय।' ऐसा ही भाव भारत-गीतमें भी है—

जय जन भारत, जन मन अभिमत
जन गणतंत्र विधाता !
गौरव भाल हिमालय उज्ज्वल,
हृदय हार गंगाजल,
कटि विन्ध्याचल, सिन्धु चरण तल
महिमा शाश्वत गाता।
हरे श्वेत, लहरें नव-निर्झर,
जीवन शोभा उर्वर,……[3]

---

१. 'रश्मिबंध', पृ० ७५।
२. 'ज्योत्स्ना', पृ० २११-१२।
३. 'रश्मिबंध', पृ० १०३-४।

उपर्युक्त गीतकी शैली रवीन्द्रनाथके 'जनगणमन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता' से प्रभावित है। बंकिमचन्द्रके 'वन्दे मातरम्'का प्रभाव निम्न गीतपर है—

वन्दे मातरम् !
जन धरणी जन भरणीं
रत्न प्रसविनी भारतम् ![1]

किन्तु इन दोनों ही गीतोंका विस्तार पन्तने अपनी कल्पना और भावनाके आधार-पर रचे गए चित्रोंसे किया है। उनमें पर्याप्त नवीनता है।

पन्तने अपनी राष्ट्रीय दृष्टिका विस्तार नगर और ग्राम दोनों ही ओर किया है। वे चौवालीस कोटि नर-नारीके अन्तर्मनकी पहचान रखते हैं। प्रमाणस्वरूप दो गीत देखे जा सकते हैं—रूपं देहि और जयं देहि। इन दोनों गीतोंमें ग्राम-निवासी और नगर-निवासी भारतीयोंको क्रमशः रूप और भाव देनेकी आकांक्षा है। मानो, वे उनके वास्तविक अभावकी पहचान रखते हों ! यथा—

ये भारतके ग्राम निवासी
क्षुधित देह मन, आँखें प्यासी–
जीवन-वैभवसे हों परिचित,
उन्हें भाव दो ![2]

और,

ये धरतीके नगर निवासी
क्षुधित हृदय, आकांक्षा प्यासी,
निज आत्मिक निधिसे हों परिचित।
उन्हें भाव दो।[3]

प्रथम गीतमें भारत शब्द है, दूसरेमें 'धरती' ! यह व्यापकता भी ध्यातव्य है। तात्पर्य यह कि संसारके, अतः भारतके अधिकांश जन आत्मिक निधिसे अपरिचित हैं।

पन्त महाकवि हैं, उनकी दृष्टि केवल राष्ट्रके विकासके लिए नहीं, सम्पूर्ण मानवताके उत्कर्षके लिए चिन्तनशील है। उनके गीतोंमें विश्वकी इस कल्याण-भावनाके स्वर बड़े स्पष्ट हैं—

जीवनका श्रम-ताप हरो हे।
सुख-सुषमाके मधुर स्वर्णसे
सूने जग-गृह-द्वार भरो, हे।[4]

पन्तने अपनी इस विश्व-मानवतावादी दृष्टिका परिचय ज्योत्स्नाकी 'मानसी प्रतिमाओं'-के माध्यमसे दिया है—

---

१. 'आधुनिक कवि', पृ० ९३।
२. 'सुमित्रानन्दन पन्त' (सम्पादक-बच्चन), पृ० १३३-३६।
३. वही।
४. 'ज्योत्स्ना', पृ० १३।

हम मनः स्वर्गके अधिवासी,
जगजीवनके शुभ अभिलाषी।
नित विकसित, नित वर्धित, अर्चित
युग-युगके सुरगण अविनाशी।[1]

मानवतावादी इस गीतिकारने मानवकी वन्दनामें स्वर्ग-शक्ति-शोभाको भी नियोजित कर दिया है। सुरगण तो रामायण आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें भी पुष्पवृष्टि करते हैं, पर किनपर? उनपर जो ब्रह्म हैं—मानवके रूपमें धराधामपर चलनेवाले परमेश्वर हैं। पर पन्तने सामान्य मानवके लिए उसकी योजना की है—वह ईश्वर नहीं, ईश्वरका प्रतिनिधि मात्र है—

गाओ, जय गाओ,
ईश्वरका प्रतिनिधि नर,
दिग्विजयी मानवपर
नन्दनवनके प्रसून
हँस-हँस बरसाओ।[2]

स्वर्गिक सुषमा ज्योत्स्नाकी भावनाओंको भी इसी रूपमें प्रकट किया गया है—

न्योछावर स्वर्ग इसी भू-पर,
देवता यही मानव शोभन।
अविराम प्रेमकी बाँहोंमें
हैं मुक्ति यही जीवन-बन्धन।[3]

सभी मानव एक ही विराट् रूपके अंश हैं। उनमें जातीय, सामाजिक, आर्थिक, वैषम्य कृत्रिम है, त्याज्य है। पन्तने अपने निम्न गीतमें मानवकी समताका स्वरोच्चार किया है—

गूँजे जय-ध्वनिसे आसमान-
सब मानव-मानव है समान[4]

और

लुप्त जाति वर्ण-विवर,
शान्त अर्थ - शक्ति - भँवर,
शान्त रक्त-तृष्ण समर,
प्रहसित जग-शतदल हो![5]

---

१. 'ज्योत्स्ना', पृ० ५५।
२. 'सौवर्ण', पृ० ९६।
३. 'ज्योत्स्ना', पृ० ६१।
४. वही, पृ० ७५।
५. वही, पृ० ८६।

ज्योत्स्नामें ऐसे और भी मानवतावादी गीत हैं, जिनमें कविने मानवको निर्भय बननेका परामर्श दिया है, क्योंकि कातर व्यक्ति आत्मोत्कर्ष नहीं कर सकता—

निर्भय हो, निर्भय मानव !
निर्भीक विचर पृथ्वीपर,
विचलित मत हो विघ्नोंसे
निज आत्मापर रह निर्भर ![1]

निर्भय मनुष्यका जीवन ही कर्ममय, हास-लासमय हो सकता है। पन्तकी दृष्टि शिव और सुन्दर दोनों ही पक्षोंपर है—

मुकुलित तन हो, प्रमुदित मन हो,
सुभग सुरंग अंग, सौरभ-घन हो।
हास-लासमय जग-जीवन हो ![2]

मुकुलित तनसे सुदृढ़ स्वस्थ शरीरका और प्रमुदित मनसे चिन्तारहित आनन्दमय आत्माका बोध होता है। ज्योत्स्नाके अन्तिम गीतमें इसी भावका विस्तार है—

सुख परिमल पुलकित भव अंचल,
निखिल प्रेम मधुमय अंतस्तल,
मधुरस पूरित, मुखरित प्रतिपल
विशद विश्व मधुमय-गृह अविकल ![3]

पन्तके गीतोंमें नरका ही नहीं नारीका भी उचित मूल्यांकन मिलता है, वह न तो नारीको केवल देवी कहता है, न केवल माया, वरन् दोनों ही रूपोंका चित्रण अपने गीतसे करता है, ग्राम्याकी 'स्त्री' रचना उसका उदाहरण है—

यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वीपर, तो वह नारी उरके भीतर
और
यदि कहीं नरक है इस भू-पर, तो वह भी नारीके अन्दर ![4]

इस गीतमें 'भी' शब्द द्रष्टव्य है ! साथ ही १२ पंक्तियोंके इस गीतमें स्वर्गपक्षपर कविने ८ पंक्तियों और नरक-पक्षपर केवल ४ पंक्तियाँ लिखी हैं—कविकी दृष्टिके नारी-रूपमें शिव और अशिव तत्त्वकी आनुपातिकता कितनी है, स्पष्ट है।

पन्तके गीतोंमें प्रकृतिके रूप-गुण दोनोंके चित्रण मिलते हैं। प्रकृतिके इस अन्तर्दर्शी कविने बाह्य और आन्तरिक छवियोंके चित्रणमें समान रूपसे सफलता पायी है—

कलात्मक प्रकृति चित्रण—
१. झमझमझम झम मेघ बरसते हैं सावनके
(चिदम्बरा, पृ० १७५)

---

१. 'ज्योत्स्ना', पृ० ८०।
२. वही, पृ० १११।
३. वही, पृ० १३२।
४. सुमित्रानन्दन पन्त (बच्चन), पृ० ८१।

२. शरद चाँदनी !
 विहँस उठी अतल मौन
 नीलिमा उदासिनी

(वही, पृ० १८०)

३. सोनजुहीके बेल नवेली (चिदम्बरा, पृ० १७५, १८०, २९५)
४. वन-वन उपवन छाया उन्मन-उन्मन गुंजन
५. विहग, विहग ! फिर चहक उठे ये पुंज, पुंज
६. झर गयी कली,
७. कलरव किसको नहीं सुहाता

(गुंजन, पृ० ९, ३२, ३७, ६)

८. सौम्य शरद श्रीका यह आँगन
९. हरसिंगारकी बेला हँसती
१०. मर्मर करते तरुदल मर्मर
११. फिर वसन्तकी आत्मा आयी (उत्तरा, १०५, १४१, १४२, १४३)

प्रकृतिके आन्तरिक सौंदर्य और जगजीवनके विभिन्न प्रतीकोंकी दृष्टिसे 'उत्तरा'में एक साथ अनेक गीत आये हैं। 'उत्तरा'के गीतोंके सम्बन्धमें कविने लिखा है "वे मनुष्यके अन्तर्जगत् तथा भविष्यकी अस्पष्ट झाँकियाँ भर हैं और नवीन मानव-चेतनाके सिन्धुमें मेरी वाणीके स्वप्न अवगाहन अथवा स्वप्न निमज्जन मात्र।"[1] उत्तराके शूल-फूल सामान्य धूल-फूलोंमें भिन्न हैं—

चुभते शूल, मर्त्य पग लोहित,
झरते फूल, मनोदृग मोहित,
यह बहिरंतर क्रान्ति, श्रान्त श्लथ,
चलता जनजीवन भू-लथपथ !
विचरो प्रिय, उत्तरा गीत पथ ![2]

'उत्तरा'का बादल भी 'पल्लव'के बादलसे भिन्न है। इसमें जनजीवनका व्यथाभार है, विश्वकी सांस्कृतिक चेतनाका स्पष्ट आभास है—

दारुण मेघ घटा घहरायी !
युग सन्ध्या गहरायी !
आज धरा प्रांगणपर भीषण
झूम रही परछायीं ![3]

---

१. प्रस्तावना, पृ० २७।
२. पृ० १।
३. पृ० ५।

इस विश्व-चेतनाके आभासका कारण कविका चिन्तन है। इसका आभास कविने जगत् घन शीर्षक गीतमें दिया है—

जब-जब घिरें जगत घन मुझपर
करूँ तुम्हारा चिन्तन![1]

चिन्तनका केन्द्र वह असीम शक्ति है, जिसे ज्योतीश्वर या अनन्त ज्योति कहा जाता है। कविकी प्रार्थना अन्धकार-विदीर्ण करनेकी है, पर यह अन्धकार अज्ञान-घनके आच्छादनके कारण है। इसीलिए कवि घनसे इस बातका अनुरोध करता है कि वह 'ज्योति द्रवित हो'[2] क्योंकि प्रत्येक क्षण 'उमड़ रहीं लहरोंपर लहरें, घिरते घनपर घिर घन।'[3]

वसन्त-श्री भी उत्तरामें सार्वजनिक कल्याण-कामनासे प्रेरित हैं—

फूलोंकी चोलीमें कस दो
आज धरा उर यौवन!
प्राणोंमें जागे मधुगुंजन,
अन्तर्नभमें पंचम कूजन,
स्वप्न मंजरित हो शोभासे
युग-स्वर्णिम जन प्रांगण![4]

(अथवा)

तुम स्वर्ण चेतना पावकसे
फिर गढ़ो आज जगका जीवन
मधुके फूलोंकी ज्वालासे
रँग धरणीके उरका यौवन![5]

समाजमें एक दिन ऐसा आयगा, जब निराशा, शंका और हतोत्साहके बादल छँट जायँगे। कवि पंतका यह सपना कितना अर्थपूर्ण है, कितना अभिनन्दनीय—

अब मेघ मुक्त होता युगमन!
अटपट पढ़ते कवि छन्द चरण,
बहता भावोंमें शब्द-चयन![6]

प्राकृतिक छवि प्राणोंको प्रसन्न ही नहीं करती, विकल भी बनाती है। कवि पन्तका मन शरणागमके अवसरपर प्रिया-मिलनको कितना आतुर है, मानों शारदीय सौन्दर्यने उसके मन-प्राणोंको उत्तेजित कर दिया है—

---

१. 'उत्तरा', पृ० २१।
२. पृ० २३।
३. पृ० २५।
४. पृ० ५०।
५. पृ० ६५।
६. पृ० ८९।

आज प्राण चिर चंचल !
नवल शरद ऋतु, ओस धुला मुख,
धूप हँसी - सी निश्छल !
तुम आओगी कहता है मन,
खिलता ही क्यों ऋतुका आँगन ?
निखर मेघसे शरद रेख-सी
बरसाओगी मंगल ![1]

यहाँ "ओस धुला मुख" और "धूप हँसी-सी निश्छल"में एक साथ प्रकृतिका स्वाभाविक सौन्दर्य मानवीकी सुषमाके साथ एकरूप हो गया है ! "खिलता ही क्यों ऋतुका आँगन" इस आत्म-विश्वासको दृढ़ करता है कि तुम आओगी ! यह सम्पूर्ण गीत स्वाभाविक भावोच्छ्वास और एक प्रेमी-मनकी आन्तरिक पुलकका अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है।

'नमन' शीर्षक गीतमें कविने 'जीवनके जीवन'—अनन्त, अनादिकी प्रार्थना की है। उसकी प्रार्थना भक्तिकालीन कवियोंकी भाँति वैयक्तिक मुक्तितक ही सीमित नहीं, वह नवयुगके स्वर्णोदयका आकांक्षी है—

नमन तुम्हें करता मन !
तुम अन्तरके पथसे आओ,
चिर श्रद्धाके रथसे आओ,
जीवन अरुणोदय सँग लाओ,
युग प्रभातका नव क्षण ![2]

इसी अनन्त शीलको कविने 'वेदना' शीर्षक गीतमें करुणामयि माना है और वहाँ भी दिव्य चेतनाकी प्रार्थना लक्षित है—

खोलो, अन्तरमयि, खोलो
अपना स्वर्गिक वातायन,
दिव्य चेतनाका प्रभात नव
बन उरमें तेरा मुख,
मौन मधुरिमासे अन्तरको,
भर दे, डूबे सुख-दुख
नयनोंमें स्मित नयन भरो सखि
उठा किरण अवगुण्ठन !
खोलो, आभामयि खोलो,
निज करुणाका वातायन ![3]

१. पृ० ९९-१०० ।
२. पृ० ११३ ।
३. पृ० ११५-११६ ।

प्राकृतिक शोभाकी प्रतीक एक कलिकाके प्रति कविकी 'अभिलाषा' अत्यन्त उदार और स्पष्ट है—यह कली भावनाओंकी है। इस समर्पणकी अभिलाषामें वैसी ही पवित्रता, अपनापन और स्नेहातुरता है, जैसी किसी पुत्रीके पितामें किसी युवकको उसे समर्पित करनेकी आकांक्षामें होती है—कौन जाने, चिर कुमार पन्तजीके वात्सल्यका यह रूपान्तर हो!—

एक कली यह मेरे पास!
तुम चाहो, इसको अपनाओ,
कर दो उसका पूर्ण विकास,
तुम्हीं फूल इसके बन जाओ,
मधुकर बन इसके ढिग आओ,
प्राणवृन्तपर इसे झुलाओ,
स्वर्ग किरण बन, करो विकास![1]

उत्तराके अन्य गीतोंमें 'मुझे प्रगति दो'में अहंविसर्जित मनका पूर्ण आत्म-समर्पण है। कविने अपनेको 'मर्त्यवेणुका शून्य बाँस' और परमात्माको 'दिव्य साँस' माना है[2]—चित्रोंमें पूर्ण संगति है। नैसर्गिक सौन्दर्यके चित्रणकी दृष्टिसे 'प्रीति समर्पण' गीत अत्यन्त मोहक है—ऊषा आज लजाई! ओसोंके रेशमी जलदसे अधर रेख मुसकाई![3] होलीके अवसरपर लिखा गया 'रंगमंगल'में 'रंग'को विस्तृत पृष्ठभूमिमें लिया गया है—

आज रँगो फिर जन-जनका मन!
नवल होलिके, नव शोभासे
रँगो पुनः भारतका यौवन!
गूँजे रंग ध्वनित भूगायन,
उमड़े रंग-रंगके सौरभ घन,
नव स्वप्नोंकी रंग वृष्टिसे
रँग जाये धरतीका जीवन![4]

समाजमें ऐसे व्यक्ति पर्याप्त संख्यामें हैं, जो गरजते बहुत हैं, बरसते कम, जो आडम्बरपूर्ण होते हैं, समाजको किसी तरह उपकृत नहीं कर पाते। पन्तने 'आह्वान' शीर्षक गीतमें बादलोंको ऐसा ही प्रतीक मानकर उपदिष्ट किया है—

बरसो हे घन!
निष्फल है यह नीरव गर्जन
चंचल विद्युत प्रतिभाके कण

---

१. 'उत्तरा', पृ० १२१।
२. पृ० १२३।
३. पृ० १३६।
४. पृ० १४५।

इसलिए

बरसो उर्वर जीवनके कण,
हास अश्रुकी झड़से धो दो
मेरा मनोविषाद गंगन ![1]

सांगीतिकताकी दृष्टिसे पन्तके गीत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। यह सांगीतिकता शब्दोंकी सानुप्रास योजनामें अधिक है; किन्तु प्रायः सर्वत्र इसमें नैसर्गिक स्वाभाविकता प्रतीत होती है। ध्वनियोंकी पहचानमें पन्तकी श्रुति-संवेदना अत्यन्त तीव्र और सूक्ष्म है—

(१) वन-वन, उपवन छाया उन्मन-उन्मन गुञ्जन! (गुञ्जन, पृ० १)

(२) हास-हास-लास-लास
साँस-साँसमें सुवास। —(ज्योत्स्ना, पृ० ११३)

(३) डम-डम-डम-डमरू स्वर,
रुद्र नृत्य प्रलयंकर! —(ज्योत्स्ना, पृ० ९८)

(४) झम-झम झम-झम मेघ बरसते हैं सावनके,
छम-छम-छम गिरतीं बूँदें तरुओंसे छनके। —(चिदम्बरा, पृ० १०५)

(२) ठङ् ठङ् ठन!
लोह नादसे ठोंक पीट घन
निर्मित करता श्रमिकोंका मन,
ठङ्-ठङ् ठन।
—चिदम्बरा, पृ० ५२

(६) रजतबिन्दु चल नूपुर झंकृत,
मंत्र मुरज रव-नव घन घोषित,
मुग्ध नृत्य करती वर्हस्मित
—कल क्लाक रसना!—रश्मिबंध, पृ० १०५

सुमित्रानन्दन पन्त छायावादके उन महाकवियोंमें हैं, जिनमें युग-चेतनाके बदलते हुए मानोंको चित्रित करनेकी अद्भुत क्षमता है और उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही गीति-काव्यमय है। गीतिकाव्य ही उनकी अभिव्यक्तिका प्रख्यात माध्यम है।[2] उनके गीतकी यह बहुत बड़ी विशेषता है कि उनमें नैसर्गिक प्रकृति-चित्रण है, युग-चेतनाका स्वर्णगान है, राष्ट्रीयता और मानवतावादी दृष्टि है और इन सबको प्रभावोत्पादक बनानेवाली शक्ति है—झंकारमय शब्दोंका गुम्फन।

डॉ० रामकुमार वर्मा

राष्ट्रभाषा हिन्दीमें साहित्यकी विविध विधाओंके आधिपत्यकी दृष्टिसे कालक्रमसे

---

१. 'स्वर्णधूलि', पृ०।

२. सुमित्रानन्दन पन्तका सम्पूर्ण व्यक्तित्व गीतिमय है। वे मूलतः गीतिकाव्यके कवि हैं।—हिन्दी साहित्य (उद्भव और विकास), डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ४६५।

जयशंकर प्रसादके बाद डॉ० रामकुमार वर्माका नाम आता है। निराला, पन्त, महादेवी, माखनलाल, नवीन, बच्चन, भगवतीचरण, दिनकर सभी समसामयिक कवियोंको दृष्टि-पथपर रखकर ऐसा कहा गया है। इनमेंसे कुछ कविताके साथ कथा-साहित्य लिखते हैं, कुछ आलोचना, कुछ एकांकी और कुछ शब्दचित्र, किन्तु एक साथ कविता, एकांकी, इतिहास, आलोचना, लघु-कथा और शोधके क्षेत्रमें अधिकृत रूपसे लेखनी चलाते रहनेवाला साहित्यकार दूसरा कोई नहीं। कविताके क्षेत्रमें भी समान रूपसे गीतिकाव्य, कथाकाव्य और महाकाव्यका सफल प्रणयन करनेवाले दूसरे कवि केवल पन्त ही हैं। डॉ० वर्माने जैसे महाकाव्यके क्षेत्रमें अपनी मौलिकता और अमरता सिद्ध कर दी है, वैसे ही गीतिकाव्यके क्षेत्रमें भी ये प्रकाश-स्तम्भ हैं।

कविता मानव-मनको केवल आनन्द ही नहीं देती, वह परमानन्दका साधन भी बनती है, वह लोकजीवनसे ही रागात्मक सम्बन्ध नहीं स्थापित करती, इस जगत्के सूत्रधारसे भी एक रूप होनेमें सहायक होती है। इस दृष्टिसे डॉ० रामकुमार वर्माका गीतिकाव्य अत्यन्त ज्योतिर्मय है। डॉ० वर्माके 'वीर हम्मीर', भीष्म-प्रतिज्ञा, चित्तौड़की चिता तथा निशीथमें कथा-काव्यका सौष्ठव दर्शनीय है। वीर हम्मीरमें हरिगीतिका छन्दमें ऐतिहासिक वृत्त प्रस्तुत किया गया है—ओजसे दीप्त अनेक पंक्तियाँ कविका पौरुष प्रकट करती हैं। 'कुल ललना'में राष्ट्रभक्ति, हिन्दू-संस्कृति तथा अन्यान्य वर्णनात्मक, उपदेशात्मक और विचारात्मक कविताओंका संकलन है। चित्तौड़की चिता १२ सर्गोंमें ३८४ पंक्तियोंका काव्य है। भारतीय ललनाओंके रक्तसे रंजित चित्तौड़का कथा-पट कल्पना और सत्यके ताने-बानेसे बुना गया है। कल्पना ऐसी, जो सत्यकी सहायिका हो और सत्य ऐसा, जो कल्पनाका प्रेरक हो--परस्पर सम्बद्ध, परस्पर अनुप्राणित।

डॉ० वर्माके गीतिकाव्यपर विचार करनेके पूर्व उनके कथाकाव्यका स्मरण इसलिए करना पड़ा कि उनके कविका संगीतमय व्यक्तित्व सभी रचनाओंमें प्रवाहित है, गीति-काव्यमें प्रत्यक्ष रूपसे कथा-काव्यमें अन्तःसलिलाकी भाँति। संगीतमय व्यक्तित्वकी यह विशेषता खुलकर इनके युग-प्रवर्तक महाकाव्य एकलव्यमें प्रकट हुआ है, जहाँ कथा-काव्यके भीतर गीतोंकी योजना हुई है, जिसका उल्लेख चतुर्थ प्रकरणमें किया जा चुका है। कथा-काव्यके छन्दोंमें भी पर्याप्त संगीतात्मकता सुरक्षित है। कविने चित्तौड़की चिताकी भूमिकामें स्पष्ट रूपसे लिखा है—"छन्दका तुकान्त भी एक अलग ढंगका है।" प्रथम और चतुर्थ तथा द्वितीय और तृतीय पंक्तियोंमें तुकसाम्य है। ऐसा करनेमें मेरा एक अभिप्राय है। वह यह कि "भावकी गति प्रथम और द्वितीय पंक्तियोंके तुकान्तसे न रुककर तीसरे चरणतक आ जाती है और फिर वहाँ चतुर्थ चरणमें समाप्त होकर प्रथमका स्मरण दिलाती है। ऐसा करनेसे "भावमें एक प्रकारकी तीव्रता, ध्वनि और शक्ति आ जाती है।......संगीतके जाननेवाले कानोंको ज्ञात हो जायगा कि संगीतकी लहर जो प्रथम पंक्तिसे उठती है, वह हिलोरें लेती हुई तृतीय पंक्तितक चली जाती है और द्वितीय पंक्तिसे मिलकर एक ऐसा राग उत्पन्न करती है जिससे भावतीव्रता बहुत

बढ़ जाती है। चतुर्थ पंक्ति धीरे-धीरे वायुसे मिलकर प्रथम पंक्तिको सार्थक कर देती है।[1]

अधिकांश आलोचकोंकी धारणा है कि डॉ० वर्मा मुख्यतः रहस्यवाद और छायावादके प्रतिनिधि गायक हैं, पर जिन्होंने उनके जीवन-वृत्तको जाननेका प्रयास किया है, वे जानते हैं कि वे बाल्यकालसे ही देशभक्तिके गीत गा-गाकर जनतामें वीरताके भाव जगानेका कार्य करते थे।[2] महात्मा गांधीका मोहन रूप जिन कवियोंको विभोर कर गया, उनमें डॉ० वर्माका नाम अक्षुण्ण है। मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेशके अनेक स्थानोंपर डॉ० वर्मा राष्ट्रीय गीतोंके गायकके रूपमें जाने-माने जाते हैं। पद्मभूषणकी उपाधि देते समय राष्ट्रीय सरकारको इस बातका भी ध्यान था। जिन्होंने बापूके महाप्रयाणके समय आकाशवाणीसे डॉ० वर्माके करुणा-विगलित कण्ठसे 'आज बापूकी बिदा है' गीत सुना होगा वे उनके इस रूपका आनन्द ले सके होंगे।

गीतिकाव्यकी दृष्टिसे डॉ० वर्माके संग्रह हमारे सामने हैं—अञ्जलि, अभिशाप, रूपराशि, चित्ररेखा, चन्द्रकिरण; संकेत और आकाशगंगा। इनके प्रकाशनवर्ष क्रमशः १९२९, ३०, ३१, ३५, ३७, ३९ और ५७ है। आधुनिक कवि; तृतीय भागमें संकेत-तककी प्रतिनिधि कविताएँ संगृहीत हैं। डॉ० वर्माका मूल स्वर प्रेमके आरोह-अवरोह और मीड़-मूर्च्छनासे गुञ्जित है। यह प्रेम मुख्यतः पारलौकिक दिशामें प्रसारित है। आत्मा-परमात्माके प्रणय-सम्बन्धोंके चित्रोंसे इनके गीत जगमगाते हैं। लौकिक प्रेम-प्रसंगोंमें भी प्रेमका झुमाव आध्यात्मिक है। यथा—

> गगनमें गूँजे गर्वित गान।
> किस बालाके अधरोंको छू
> पा समीरकी गोद
> धीरे-धीरे हिलते आये
> और लुटाते मोद
> किन श्वाँसोंमें जाग
> कंठको धीरे-धीरे त्याग
> लेकर अपने साथ ओठका
> परिमल मधुमय राग
> किया है किस मदिराका पान ![3]

डॉ० वर्माकी यह बाला कोई नामधारी व्यक्तिविशेष नहीं, वरन् प्रेमकी वह दिव्य मूर्त्ति है, जिसकी कल्पना उनका भावुक मन करता है। उनके प्रेमकी यह पवित्रता सर्वत्र अमलिन है। जहाँ उन्होंने शरीर-धर्मका भी उल्लेख किया है, वहाँ अपार्थिवताकी सुगन्ध है—

१. 'परिचय', पृ० १२-१३।

२. 'अंजलिका परिचय', पृ० ६-७।

३. 'अंजलि', पृ० ३१।

मैं तुमसे मिल सकूँ यथा उरसे सुकुमार दुकूल
समय-लतामें खिले मिलनके दिनका उत्सुक फूल;
मेरे बाहु-पाशसे वेष्टित हो यह मृदुल शरीर,
चारों ओर स्वर्गके होगा पृथ्वीका प्राचीर

नभके उरमें विमल नीलिका
शयित हुई सुकुमार,
उसी भाँति तुमसे निर्मित हो,
मेरा उर-विस्तार।[१]

उपर्युक्त पंक्तियोंमें 'मेरे बाहुपाशसे वेष्टित हो यह मृदुल शरीर' जैसी पंक्ति पढ़कर भी वासना नहीं उभरती, क्योंकि तृतीय चरणके ऊपर और नीचेकी पंक्तियाँ एक उदात्त वातावरणका निर्माण करती हैं। लगता है सोलह कलावाले चन्द्रमाके अंकमें एक हल्की-सी कालिमा शृंगार बन गयी है, कि जैसे गंगाकी हीरक धारमें यमुनाकी पतली धार समाहित हो गयी है।

डॉ० वर्माके काव्यमें शारीरिक वासनाकी गंधके अभावका कारण उनकी उच्च कोटिकी आत्म-चेतना है, जिसने उनकी दृष्टिको धुँधला न बनाकर पारदर्शिनी बना दिया है। वे जीवन और यौवन, तन और मनके आरपार देख सकनेमें समर्थ हैं। वे स्पष्टतः जानते हैं कि यह शरीर शुष्क धूलका थोड़ा-सा छबि-जाल मात्र है—'क्या शरीर है ? शुष्क धूलका थोड़ा-सा छवि जाल।' और 'उस छविमें ही छिपा हुआ है वह भीषण कंकाल'।[२] कवि वासनाके मोहमें इसलिए नहीं फँस पाये कि वे उसके नग्न रूपसे परिचित हैं—

इस यौवनके इन्द्रधनुषमें भरा वासना रंग
काले बादलकी छायामें सजता है यह ढंग,
और उमंगोंमें भूला है बनकर एक उमंग,
एक टूटता-स्वप्न आँखमें कहता उसे 'अनंग'—
वह 'अनंग' जो धूल-कणोंमें भरता है उन्माद।
जर्जर मनमें भी ले आता नव यौवनकी याद।[३]

'कविर्मनीषी परिभू स्वयंभू'—कविसे क्या कुछ छिपा है—वह सर्वज्ञ है, त्रिकाल-दर्शी ! डॉ० वर्माके गीत आध्यात्मिक भावोंसे पूर्ण हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि लौकिक दृश्योंसे मँजी हुई है—जैसे कालिख कही जानेवाली वस्तु जब आँखोंमें मँज जाती है तब वह शृंगार बन जाती है, रोशनी बढ़ा देती है—लौकिकता डॉ० वर्माके गीतोंमें इसी तरह

---

१. 'रूपराशि', पृ० ४।

२. 'आधुनिक कवि', पृ० ८६।

३. वही, पृ० ८६-८७।

दिव्य भावोंका सोपान बन गयी है। वे परमात्माकी मौन करुणाका सहारा इसलिए चाहते हैं कि उन्हें संसारकी नश्वरताका ज्ञान है--

जानता हूँ, इस जगतमें
फूलकी है आयु कितनी,
और यौवनकी उभरती,
साँसमें है वायु कितनी।[१]

वे तो उस परमात्मशक्तिकी कृपासे विस्तीर्ण आकाशके समान असीम होना चाहते हैं।

रहस्यवादकी परिभाषा करते हुए डॉ० वर्माने लिखा है--रहस्यवाद जीवात्माकी उस अन्तर्हित प्रवृत्तिका प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्तिसे अपना शान्त और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है।"......रहस्यवादमें उतनी ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है जितनी प्रेमकी।......रहस्यवादकी दूसरी विशेषता यह है कि उसमें आध्यात्मिक तत्त्व हो। तीसरी विशेषता यह है कि वह सदैव जाग्रत रहे, कभी लुप्त न हो।......चौथी विशेषता यह है कि अनन्तकी ओर केवल भावना हीकी प्रगति न हो वरन् सम्पूर्ण हृदयकी आकांक्षा उस ओर आकृष्ट हो।"[२]

डॉ० वर्मा रहस्यवादके बहुत बड़े पारखी माने जाते हैं। उनकी परखका लोहा सभी मानते हैं। उनके गीतोंमें उनकी परिभाषाका निर्वाह किस सीमातक हुआ है, सोदाहरण विवेचन करना अधिक युक्तिसंगत होगा। एक-एककर उपर्युक्त तथ्योंकी परीक्षा की जाय--

(१) जीवात्माका दिव्य और अलौकिक शक्तिसे शान्त और निश्छल सम्बन्ध--डॉ० वर्माके गीतोंमें रहस्यवादी प्रवृत्तिके इस प्रथम सोपानके दर्शन पर्याप्त मात्रामें होते हैं। कविकी भावुक आत्मा ललककर अपने अक्षय प्रियसे एकाकार हो जाना चाहती है। उसकी यह ललक पूर्णिमाके चन्द्रको छूनेवाले सागरके उफनते मनकी भाँति है जो लहरके हजार हाथोंसे उसे छूना चाहता है, उसे पकड़कर अपनेमें समा लेना चाहता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं--

परिचय इस प्रवृत्तिके प्रकाशनका प्रथम सोपान है--

मैं इस जीवनमें आया हूँ
तुमसे परिचय पाने।
एक सत्यको सुखसे सो-सो
स्वप्नोंमें उलझाने॥
सागर बनकर ओस-बिन्दुमें,
आया यहाँ समाने।[३]

---

१. 'कविभारती', सम्पादक पन्त, पृ० ४६५।
२. 'कबीरका रहस्यवाद', पृ० ७, ३५, ३७, ३९।
३. 'आधुनिक कवि', ० १०।

परिचयकी आवश्यकता इसलिए पड़ी कि प्रियने उसे भुला दिया है। डॉ० वर्माके गीतका एक-एक शब्द उसी प्रियका स्नेह-स्मरण, प्रेम-निवेदन है, इसलिए उसकी भूल उन्हें काँटेके भाँति चुभती है और वे प्रियके मनमें स्थान पानेको विकल हो उठते हैं—

प्रिय ! तुम भूले मैं क्या गाऊँ ?
जिस ध्वनिमें तुम बसे उसे,
जगके कण-कणमें क्या बिखराऊँ ![1]

प्रियसे अपने हृदयके भाव व्यक्त कर सकना भी कितना कठिन है। मानवकी लघुता और उसकी सीमाओंका कितना काव्यमय चित्रण डॉ० वर्माने किया है—

शब्दोंके अधखुले द्वारसे अभिलाषाएँ निकल न पातीं,
उछ्वासोंके लघु-लघु पथपर इच्छाएँ चलकर थक जातीं,
हाय, स्वप्न-संकेतोंसे मैं कैसे तुमको पास बुलाऊँ ?[2]

'दिव्य और अलौकिक शक्तिसे शान्त और निश्छल सम्बन्ध' इस वाक्यमें सम्बन्धके लिए प्रयुक्त दोनों विशेषण अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। 'शान्त' अर्थात् जिस सम्बन्धके स्थापित हो जानेपर आत्मा पूर्णतः परितुष्ट हो जाती है, उसे कहीं भटकनेकी आवश्यकता नहीं रहती। लोक-परलोकके बीच भरमनेवाली यात्राका अन्त हो जाता है—

यह संसार शिशिर है—
तुम हो विश्वाकार वसन्त
मैं तुमसे मिल गया प्रिये !
यह है यात्राका अन्त।[3]

इसी प्रकार 'निश्छल'का अर्थ है, विशुद्ध प्रेममय सम्बन्ध, जिसमें कोई दुराव नहीं, छिपाव नहीं। कविका प्रेमी मन प्रियके पानेसे कितना प्रसन्न है। प्रसन्नताकी एक-एक लहर उसके निश्छल प्रेमकी उमङ्ग है—

तुम्हें आज पाकर चंचल हूँ,
मैं आशाओंके उभारमें।
(और) एक बारमें दो मिलाप है,
देखो तो अपने विस्तारमें॥
इसी मिलनके बलपर मैं, नश्वरता सुखसे सहन करूँगा।
अपनेपनका भार खो चुका, अश्रुधारके एक ज्वारमें॥[4]

(२) "रहस्यवादमें उतनी ज्ञानकी आवश्यकता नहीं होती, जितनी प्रेमकी।" अर्थात् कवि रहस्यवादके भावात्मक स्वरूपका आग्रही है, साधनात्मक स्वरूपका नहीं,

---

१. 'आधुनिक कवि' पृ० ११।
२. वही, पृ० ११।
३. 'रूपराशि', पृ० ३६।
४. 'आधुनिक कवि', पृ० १९।

जिसमें हठयोगकी आवश्यकता होती है। उसका प्रेम ही उसकी साधना है, वही उसका साधन और साध्य दोनों। कवि आत्मा और परमात्माको एक ही भावदशापर प्रतिष्ठित करता है। प्रेममें पारस्परिक सहानुभूति और तन्मयता होनी ही चाहिये। इस भावकी व्यंजक पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं:—

राका-शशि अपनी रश्मि-माल
जब रजनीको पहनाता हो;
अथवा जब फूलोंके तनसे
प्रेयसि सुगन्धिका नाता हो,
जब विमल ऊर्मिमें लघु-बुद्बुद
उल्लास पीन लहराता हो;
जब तरुसे लतिकाका अन्तर
मधुऋतुमें कम हो जाता हो।
उस समय हँसो, तो बरस पड़े
कण-कणमें विश्वोंका स्वरूप।
मैं तुमसे प्रतिबिम्बित होऊँ
तुम मुझमें होना ओ अनूप।[1]

(३) "रहस्यवादमें आध्यात्मिकता होनी चाहिये" अर्थात् उसका एक दार्शनिक आधार होना चाहिये। डॉ० वर्माके प्रायः सभी गीतोंकी भूमि दार्शनिक है। लौकिकके स्थानपर सर्वत्र पारलौकिक चित्रण है। डॉ० वर्मा और डॉ० बच्चनकी काव्य-कलाका यह मौलिक अन्तर है कि एकमें प्रायः सर्वत्र आध्यात्मिकता है, दूसरेमें प्रायः सर्वत्र लौकिकता। कबीरके 'घूँघटका पट खोल रे'का प्रतीक छायावादी अभिव्यंजनाका योग पाकर कितना मार्मिक हो उठा है—

दिव्य जीवन है छविका पान, यही आत्माकी तृषित पुकार।
अभय अधरोंमें है सोल्लास, मृत्यु-जीवनका सम विस्तार।
एक इस पार, एक उस पार, हटा दो घूँघट-पट इस बार।

(४) आत्माकी यह प्रेम-भावना सदैव जाग्रत रहे, कभी सुप्त न हो; अर्थात् प्रेमकी साधना निरन्तर चलती रहे। प्रेमका अर्थ ही है, एक अनबूझ प्यास! जो तृप्त होती है, वह तो वासना है। कविकी आत्मा तो सरिताकी तरह उमगती निरन्तर सागर-प्रियतमसे मिलनेको चली जा रही है—

वह सरिता है—चली जा रही—
है चंचल अविराम,
थकी हुई लहरोंको देते
दोनों तट विश्राम,

१. 'आधुनिक कवि', पृ० २७।
२. 'रूपराशि', पृ० ८।

मैं भी तो चलता रहता हूँ
निशिदिन आठों याम,
नहीं सुना मेरे भावोंने
"शान्ति-शान्ति"का नाम,
लहरोंको अपने अङ्गोंमें तट कर लेता लीन ।[1]

(५) "अनन्तकी ओर केवल भावना हीकी प्रगति न हो वरन् सम्पूर्ण हृदयकी आकांक्षा उस ओर आकृष्ट हो।"—अर्थात् ऊपरी सतहपर अनन्त प्रियकी ओर भावनाएँ उन्मुख न हों, बल्कि सच्ची लगन, पूरा अनुराग और पूर्ण आत्मसमर्पण हो। अनन्त मिलनको जीवनका चिर सम्बल बनानेवाले कविकी उक्तिमें कैसी आकांक्षा है—

मैं तुमसे मिल गया प्रिये !
यह है जीवनका अन्त
इसी मिलनका गीत कोकिले।
गा जीवन पर्यन्त ।[2]

डॉ० वर्माने गीतिकाव्यके लिए भावनाकी एकरूपता, सांस्कृतिक चेतना, अनुभूतिकी तीव्रता, आशाकी ज्योति और मधुर संगीतको आवश्यक माना है।[3] उनका यह सिद्धान्त कोरा आदर्शवादी नहीं है, उनका प्रतिफलन उनके गीतोंमें मिलता है। एक-एककर उपर्युक्त गुणोंका उदाहरण दे रही हूँ—इन तत्त्वोंका विवेचन प्रसङ्गवश पिछले प्रकरणमें हो चुका है !

(१) **भावनाकी एकरूपता**—डॉ० वर्माके गीतोंमें प्रायः एक ही केन्द्रियभाव परिव्याप्त रहता है। जहाँ दूसरे भाव आये हैं वे भी मूल भावके सहायक होकर ही—जैसे छोटी-छोटी लहरियाँ बड़ी लहरको शक्ति देती हैं। इस दृष्टिसे अंजलि, अभिशाप, रूपराशि, चित्ररेखा, चन्द्रकिरण, संकेत और आकाशगंगाके प्रायः सभी गीत द्रष्टव्य हैं। भावोंमें एकताकी दृष्टिसे कोई एक गीत चुन लिया जा सकता है—जैसे—"एक दीपक किरणका हूँ।[4] इस गीतमें दीपक अपना परिचय अपनी लघुताके माध्यमसे दे रहा है—"मैं एक दीपक हूँ" यह न कहकर वह "दीपक-किरण-कण" कह रहा है—नन्हेंसे दीपककी नन्हींसी लौका भी एक छोटा भाग। इस लघुताके भावमें कैसी विराटता है। जीवात्माके प्रतीक इस किरण-कणका आत्म विस्तार सम्पूर्ण गीतमें है—"अनलका हाथ", "जलनका साथी", "साधनाका ज्वलित क्षण", "अखिल प्रण", "तुम्हारी ही शरण"—ये सारी शब्दावलियाँ दीपक-किरण-कणकी महत्ता सिद्ध कर रही हैं। एक दीपक-किरण-कण—आत्माकी महत्ता सिद्ध करनेके लिए कितना सार्थक चित्र प्रस्तुत किया गया है।

---

१. अभिशाप, 'आधुनिक कवि', पृ० ८५।

२. 'रूपराशि', पृ० ३५।

३. देखिये, काव्य पुस्तकोंकी भूमिकाएँ।

४. चन्द्रकिरण, 'आधुनिक कवि', पृ० २५।

व्योमके उरमें अपार
भरा हुआ है जो अँधेरा,
और जिसने विश्वको
दो बार, क्या सौ बार घेरा।
उस तिमिरका नाश करनेके लिए मैं अखिल प्रण हूँ।

और इतना अधिक महत्त्वपूर्ण होकर भी वह किरण-कण, वह आत्मा, परमात्माके वशीभूत है, उसीकी सेवामें नियुक्त है, उसीकी शरण है--दूसरोंको अमरत्व देनेवाला वह किरण-कण स्वयं अपनी मुक्तिके लिए उस अनन्त ज्योतिका मुखापेक्षी है--

शलभको अमरत्व देकर
प्रेमपर मरना सिखाया
सूर्यका सन्देश लेकर
रात्रिके उरमें समाया।
पर तुम्हारा स्नेह खोकर भी तुम्हारी ही शरण हूँ।

यहाँ स्नेहके श्लेषमें अद्भुत चमत्कार है! इस गीतका एक-एक अनुच्छेद मूलभावकी पुष्टि करता चलता है। सर्वत्र भावोंकी एकरूपता है, नये-नये चित्रोंसे, नयी-नयी उक्तियोंसे अनुप्राणित, अनुमोदित!

२. अनुभूतिकी तीव्रता—गीतिकाव्यमें अनुभूतिकी तीव्रतासे डॉ० वर्माका तात्पर्य भावात्मक स्थितिकी चरम परिणतिसे है। कच्चे, विशृंखल या भग्न अनुभव वेगवान हो ही नहीं सकते और बिना वेग आये संवेदनाका उभार गीतकी टेकके रूपमें प्रकट हो ही नहीं सकता।

अनुभूतिकी यह तीव्रता कविके सभी गीतोंमें मिलती है। उदाहरणस्वरूप चित्ररेखाका यह गीत देखा जा सकता है 'मेघोंका यह मण्डल अपार'।[1] इस गीतमें उमड़ते हुए बादलोंको देखकर, उसके रूप-गुणको देखकर कविके मनमें अनुभूतियाँ घनीभूत होती जाती हैं और तब वह गुनगुना उठता है—मेघोंका यह मण्डल अपार! जिन भावोंने अनुभूतियोंको तीव्रता प्रदान की है, वे हैं--तमका चीत्कार, नभके जीवनमें काले-काले भाग्य-अंकका लिखा जाना, अश्रुबिन्दु-सी तरल बूँदोंका निराधार होना, जीवनका साँसोंके छोटे-छोटे भागोंमें चिर विलाप होनेके कारण अश्रु-धारका भाररूप होना, बिजलीका विचलित वेष धारण कर नभका रोमांच होना आदि।

प्रकृतिके चित्र जिन मानवीय भावनाओंको उकसा कर अनुभूतिको तीव्र बना सके हैं, वे हैं—

(क) यह पूर्व दिशा जो थी प्रकाशकी जननी छविमय प्रभापूर्ण
निज मृतशिशुपर रख नमित माथ बिखराती
घन-केशान्धकार।

---

[1] 'आधुनिक कवि', पृ० ३९।

(ख) जीवन है साँसोंका छोटे-छोटे भागोंमें चिर विलाप,
अब भार-रूप हो रही मुझे मेरी आँखोंकी अश्रु-धार।
(ग) वर्षा हे, नभ ओ धरा बीच मिलनेका है क्या बँधा तार?

प्रथम चित्रमें 'मेघोंके छा जानेपर प्रकाशका लुप्त हो जाना' इस कथनको जिस भंगिमाके साथ, जिस चित्र-रूपके सहारे प्रस्तुत किया गया है, वह अनुपमेय है—"पूर्व दिशा' (यहाँ स्त्रीलिंगवाची शब्दका कलात्मक प्रयोग द्रष्टव्य है!) जो प्रकाशकी जननी है, वह अपने पुत्र प्रकाशकी मृत्युपर उसपर अपना सिर झुका कर रोती है, ऐसी स्थितिमें उसके खुले काले बाल उसपर झुक जाते हैं।" जब माँ मृत शिशुके मरणपर रोती है, तब उसके बाल अस्त-व्यस्त हो खुल ही जाते हैं, क्योंकि वह सिर नोचती है, सिर पीटती है और फिर वह चूमनेको, छातीसे लगानेको लाशपर झुकती भी है। यह मानवीय व्यवहार प्राकृतिक दृश्यसे कितना साम्य रखता है। मेघोंके मण्डलाकार घिर जानेपर पूर्वकी दिशा भी क्षण-क्षण अन्धकारपूर्ण होती जाती है। यह कलात्मक चित्र विश्व-साहित्यकी निधि है।

३. सांस्कृतिक चेतना—सांस्कृतिक चेतनासे डॉ० वर्माका तात्पर्य उस विराट् परम्पराका ज्ञान है, जिसके अभावमें मौलिकता सिद्ध नहीं हो सकती। गीतोंमें सामान्य कविताकी अपेक्षा अधिक सांकेतिकता होती है, क्योंकि उसमें अपेक्षाकृत अधिक संक्षिप्तता है। इस सांकेतिकताके लिए अनेक परम्परागत अर्थ वाले शब्दोंके प्रयोग करने पड़ते हैं। बिना सांस्कृतिक चेतनाके ऐसे शब्दोंके प्रयोग समुचित रूपसे नहीं हो सकते। जैसे मिट्टीके दीएमें तेलके बीच जलनेवाली वर्त्तिकाका उपयोग और उसपर जल-जल कर मरनेवाले शलभोंका निर्वाण पाना यह दृष्टिकोण भारतीय और एशियाई दृष्टि है। यूरोपीय सभ्यता और संस्कृतिमें यह दृष्टिकोण महत्त्व नहीं पा सका। 'एक दीपक किरण हूँ' के अन्तिम अनुच्छेदमें प्रयुक्त चित्रका निर्माण और उसका अर्थ-ग्रहण बिना सांस्कृतिक चेतनाके सम्भव नहीं है। आत्मा और परमात्माके जिन संबंधोंका चित्रण डॉ० वर्माने अपने गीतोंमें किया है, वे भी बिना सांस्कृतिक चेतनाके बोधगम्य नहीं हो सकते।

'वह बोल उठी कोकिल अधीर'में वासन्तिक शोभामें कोयलका कूकना! इस वातावरणको भी बिना भारतीय संस्कृतिकी चेतनाके हृदयंगम नहीं किया जा सकता। साधना-प्रधान, संन्यास-गौरवान्वित इस देशकी सांस्कृतिक चेतनाके आधारपर ही 'समय शान्त हे मौन तपस्वी-सा तपमें लवलीन'[1] वाक्यका अर्थ लगाया जा सकता है। सम्पदा-श्री और भौतिकवादी आदर्शोंके पीछे दौड़नेवाले अमेरिका और इंगलैण्डके लोग बिना भारतीय साधनाकी महिमा समझे 'मौन तपस्वी-सा तपमें लवलीन'का वास्तविक अर्थ नहीं समझ सकते और न कोई विदेशी कवि ऐसे विशेषणोंका प्रयोग 'समयकी शान्ति'के लिए ही कर सकता है। रहस्यवादकी साधनामें लीन और कबीरकी आत्माके पारखी डॉ० वर्माका ऐसा लिखना परम स्वाभाविक है!

---

१. 'रूपराशि', पृ० ४।

४. **आशाकी ज्योति**—गीतिकाव्यमें 'आशाकी ज्योति'का होना, यह डॉ० वर्माका निजी दृष्टिकोण है। यह उनके मानवतावादी दृष्टिकोणका प्रतिफल है। यह उस राष्ट्रीय चेतनाका प्रभाव है जिसमें उनका किशोर जीवन भींगा हुआ है। वस्तुतः डॉ० वर्मा भौतिकवादी क्षेत्रमें निराशाके विरोधी हैं, "आध्यात्मिक क्षेत्रमें तो चिरविरह, चिरनिराशा ही स्वाभाविक है।" वे विचार-दर्शनमें लिखते हैं—"मैं केवल अध्यात्म-क्षेत्रमें निराशाका पोषक हूँ। भौतिकवादकी निराशा कविताकी कल्याणकारी भावनाको दूरतक नहीं ले जा सकती।"[१] चूँकि डॉ० वर्माके अधिकांश गीत आध्यात्मिक मुद्रामें लिखे गये हैं, इसलिए उनमें निराशावाद है। यह निराशा, इसलिए आशाकी प्रतिरूप है, क्योंकि आत्माकी इस जीवनकी तड़प और कातर पुकार ही उस जन्मकी प्रसन्नता बन जाती है। जो इस जन्ममें प्रियके वियोगमें रोया नहीं, वह भला उससे मिलकर सुख कैसे उठायेगा। उस जन्मकी आशा लानेवाली इस जन्मकी निराशाके अनेक चित्र डॉ० वर्माके गीतोंमें मिलते हैं :—

१. मैं भूल गया यह कठिन राह !
इस ओर एक चीत्कार उठा, उस ओर एक भीषण कराह ![२]

२. इस भाँति न छिपकर आओ,
अन्तिम यही प्रतीक्षा मेरी इसे भूल मत जाओ।[३]

३. नश्वर स्वरसे कैसे गाऊँ आज अनश्वर गीत
जीवनकी इस प्रथम हारमें कैसे देखूँ जीत ?[४]

चिर सच्चिदानन्दका आनन्दस्वरूप, आशाका महोच्चार निम्नलिखित पंक्तियोंमें मिलता है—

मेरी गति है वहाँ जहाँपर करुणाका है नाम नहीं,
मैं रहता हूँ वहाँ जहाँ रहनेका कोई धाम नहीं।[५]

५. **मधुर संगीत**—संगीत गीतिकाव्यको अन्य काव्य-विधाओंसे भिन्न बनाने वाला मुख्य तत्त्व है। यह सांगीतिकता डॉ० वर्माके गीतोंमें घुला मिला है—

१. निर्झरके निर्मल जलमें
ये गजरे हिला-हिला धोना।
लहर-लहर कर यदि चूमे तो,
किंचित् विचलित मत होना।
(अंजलि, पृ० ७)

---

१. 'विचार-दर्शन', पृ० ११९।
२. 'आधुनिक कवि', पृ० ३५।
३. वही, पृ० ४२।
४. वही, पृ० ८३।
५. 'अंजलि', पृ० ४४।

२. शान्त, क्या न है श्रान्त, प्रान्त एकान्त भयानक निर्जन

(अंजलि, पृ० १५)

३. मेरा सेज सुमन-तन हो
मेरी आँखोंमें स्वप्नोंका, कुसुमित सुरभित मधुवन हो।

(रूपराशि, पृ० ७)

४. शिशिर-ग्रीष्म-पावस-शिशु
हँसकर, जलकर, रोकर आह !
बाकी हैं ! (क्यों अरे, तुम्हारे, दृग
में अश्रु-प्रवाह !!)

(वही, पृ० १९)

५. अरे, निर्जन वनके निर्मल निर्झर !

(वही, पृ० ५५)

६. निस्पंद तरी, अति मन्द तरी।
चल अविचल जल कल-कलपर
गुंजित कर गतिकी लघु लहरी।

(आधुनिक कवि, पृ० ४६)

डॉ० वर्माकी भाषा तत्सम-प्रधान है। उनके गीत १२ से १६ पंक्तियोंमें पूरे भाव उभार कर रख देते हैं। प्रायः १६ मात्राओं तककी पंक्तियाँ ही मिलती हैं—फलतः संगीत-प्रधान शब्द आस-पास सटे-जुटे मिलते हैं। इनके गीतोंमें गुम्फित संगीत आन्तरिक और बाह्य संगीतको एकाकार करनेवाले हैं। वे ऊपरसे लादे हुए या सप्रयास संयोजित नहीं हैं। सर्वत्र नियमित लघु मात्रा और वर्ण-संख्या है। डॉ० वर्माका यह सिद्धान्त उनके गीतमें उदाहरण बनता है कि "कविता संगीत द्वारा जितना हृदयस्पर्श करती है उतना साधारण वाक्योंसे नहीं।"[१] निरालाके गीतोंमें कहीं-कहीं यह आभास झलकता है। फलतः वहाँ या तो भाव दुरूह हो गये हैं या सामान्य कोटिके।

आजकल जीवनकी भाँति कवियोंके काव्यालोचन सम्बन्धी विचारोंके सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षोंमें प्रायः गहरा दुराव रहता है। उपर्युक्त विवेचनसे यह सहज सिद्ध हो जाता है कि डॉ० वर्माने रहस्यवाद और गीतिकाव्यके लिए जो कसौटियाँ रखी हैं, उनपर वे खरे उतरे हैं। अब मैं उनके गीतिकाव्यके अन्य सूक्ष्म तत्त्वोंका उल्लेख करूँगी।

डॉ० वर्माके गीतोंमें कल्पनाका उपयोग उस साधनके रूपमें हुआ है, जो दृश्य-अदृश्य, यथार्थ-आदर्श एवं स्वप्न-सत्यके बीच सेतुका कार्य करता है। डॉ० वर्माने लिखा है "कवितामें मुझे कल्पना सबसे अच्छी मालूम होती है। वही एक सूत्र है, जिसको पकड़कर कवि इस संसारसे उस स्थानपर चढ़ जाता है, जहाँ उसकी इच्छित

१. 'अंजलि', भूमिका, पृ० २।

भावनाओंके द्वारा एक स्वर्ण-संसार निर्मित होता है।"[1] कल्पनाका यह विलास इनके गीतोंमें पग-पगपर मिलता है। यथा मेरे सुखकी किरन अमर, वृन्दावनका वह रास-रंग, मेरी सेज सुमन-तन हो (रूपराशि), भूलकर भी तुम न आये, तुम्हें आज पाकर चंचल हूँ (संकेत), मेरे जीवनमें एक बार, बोल उठी कोयल अधीर (चन्द्रकिरण), यह तुम्हारा हास आया, मैं भूल गया यह कठिन राह, मेघोंका यह मंडल अपार, इस भाँति न छिपकर आओ (चित्ररेखा), नश्वर स्वरसे कैसे गाऊँ, क्या शरीर है शुष्क धूलका (अभिशाप), फूलोंकी अधखुली आँख, इस सोते संसार बीच, अरे निर्जन वनके निर्मल निर्झर, ओ समीर, प्रातः समीर, तरुवरके ओ पीले पात (अंजलि) आदि गीत कल्पना वैभवके उच्च प्रासाद हैं : इनमें कल्पना और अनुभूति एकाकार हो गयी हैं।[2]

डॉ० वर्माके गीतोंमें प्रकृति-तत्त्वोंका कहीं-कहीं प्रेयसी-रूपमें चित्रण किया गया है। कवि कहता है "जैसे मैं साख्यशास्त्रका पुरुष बन गया हूँ और अपने चारों ओरकी प्रत्येक वस्तु—लता, कली, लहर, सन्ध्या, पवन-प्रकृति बनकर मेरी प्रेयसी हो रही है।"[3] ऐसे स्थलोंपर प्रकृतिके साथ भावात्मक सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए उच्च कोटिकी भावुकताकी आवश्यकता होती है। यथा—

यह ज्योत्स्ना तो देखो,
नभकी बरसी हुई उमंग,
आत्मा-सी बनकर छूती है
मेरे व्याकुल अंग।[4]

डॉ० वर्माके गीतोंमें व्याप्त करुणा उनके कथा-काव्योंमें विस्तृत रूपसे फैल गयी है। निशीथ, शुजा और एकलव्यमें करुणा विशेष रूपसे हृदयग्राही है। डॉ० वर्माके एकलव्य महाकाव्यको आलोचकोंने करुणान्त माना है, लेकिन डॉ० किशोरने उसके विरोधमें अपना मत प्रकट किया है।[5] मैं समझती हूँ करुणाकी यह उदात्त भावना इनके गीतोंमें भी है—

१. दुखकी इस जागृतिमें कैसे
तुम्हें जगाकर मैं सुख पाऊँ ?

---

१. 'रूपराशि', परिचय, पृ० १।

२. डॉ० वर्माकी अनुभूति ऐसी नहीं जो मात्र अनुभूति रूपमें उपस्थित हो, वह कल्पनाका साहचर्य छोड़ नहीं सकती।—'गीतिकाव्य,' डॉ० रामखेलावन पाण्डेय, पृ० ३७२।

३. 'रूपराशि', परिचय, पृ० १।

४. 'आधुनिक कवि', पृ० ३३।

५. "इसे दुखान्त या करुणान्त भी नहीं माना जा सकता, क्योंकि नायक एकलव्यके भीतर दुख या शोकका भाव नहीं, त्यागकी अपूर्व दीप्ति है।"

—'आधुनिक हिन्दी महाकाव्योंमें करुण रस', बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्-पत्रिका, वर्ष ४, अंक ३, पृ० ११४।

२. मैं ससीम, असीम सुखसे सींचकर संसार सारा,
   साँसकी विरुदावलीसे गा रहा हूँ यश तुम्हारा।
३. सुख दुख तो कंटकसे है देखो इनको दुखहारिणी,
   ये लगते रहते हैं, जिससे मन इनमें उलझाऊँ।
   मैं तुमसे मिल जाऊँ।
४. इसी मिलनके बलपर मैं, नश्वरता सुखसे सहन करूँगा।
५. चिर दुखोंकी रात्रि भी मुझको लगे मधुयामिनी।
६. पर तुम्हारा स्नेह खोकर भी तुम्हारी ही शरण हूँ।
७. कितने प्राणोंके स्वातीमें यह मोती-सा उज्ज्वल प्यार,
   करुणाका गहरा गुञ्जार

—आधुनिक कवि, पृ० ११, १३, १७, १९, २४, २५, ४४

करुण रसकी व्यापक दृष्टिके कारण ही डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्तने यह माना है कि "उन्होंने अपनी कविताओंमें मुख्यरूपसे करुण रसको स्थान दिया है।"[१]

डॉ० वर्माके गीत सौन्दर्य-चित्रोंसे उद्भासित हैं। ये सौन्दर्य-चित्र भावनाओंकी उदात्तभूमिके रेखा-चित्र हैं। चित्र-रेखाके परिचयमें उन्होंने स्वीकार किया है कि "कलाकार चाहे कवि हो अथवा चित्रकार पहले अपने सौन्दर्यकी भावनाकी तृप्ति करता है। अतएव मेरे इन प्रयासोंमें जो गीतिरूपोंमें आपके सामने हैं—सौन्दर्यकी भावना अन्य भावनाओंसे अधिक स्पष्ट है।" कुछ पंक्तियाँ तो अत्यन्त रमणीय हैं और विश्व-काव्यकी अमर विभूतियाँ हैं—

१. सुरभिसे शृङ्गार कर नव वायुप्रिय पथमें समायी,
   अरुण कलियोंने स्वयं सज, आरती उरमें सजायी,
   वन्दना कर पल्लवोंने नवल वन्दनवार छाये।
२. यह तुम्हारा हास आया।
   इन फटे-से बादलोंमें कौन-सा मधुमास आया?
३. राका-शशि अपनी रश्मि-माल जब रजनीको पहनाता हो
   अथवा जब फूलोंके तनसे प्रेयसि सुगन्धिका नाता हो
   जब तरुसे लतिकाका अन्तर मधुऋतुमें कम हो जाता हो,
   उस समय हँसो, तो बरस पड़े कण-कणमें विश्वोंका स्वरूप।
४. यह नवबाला है नारि-वेष रखकर आया है क्या वसन्त?
   जिसकी चितवनसे पंचबाण निकला करते हैं बन अनन्त;
   जिसकी करुणाकी दृष्टि विश्व संचालित कर देती तुरन्त
   उसके जीवनका एक बारके क्षुद्र प्रणयमें व्यथित अन्त!

---

१. 'आधुनिक हिन्दी कवियोंका काव्य-सिद्धान्त', पृ० ४५७।

अथवा

ओसोंका हँसता बालरूप, यह किसका है छविमय विलास,
विहगोंके कण्ठोंमें समोद यह कौन भर रही है मिठास ?
सन्ध्याके अम्बरमें मलीन, यह कौन हो रहा है उदास ?
मेरी उछ्वासोंके समीप कर रहा कौन छिपकर निवास !

५. चन्द्र-किरणका उज्ज्वल पावस, बरस बरसकर सस्मित हो ।
तारोंका अस्फुट शिशुपन, लुक-छिपकर छविपर विस्मित हो ।

६. और (याद आया अब)—मृगनयनीका नयन-विलास,
हँसती और लजाती थी चितवन कानोंके पास,
गोल गुलाबी गालोंमें भरकर ऊषाका रंग,
पैना तीर चला चितवनका करती थी भ्रू-भंग,

(आधुनिक कवि, १३, २४, २७, ३७, ५४, ८६)

'तमसो मा ज्योतिर्गमय'का प्रतिबिम्ब डॉ० वर्माके अनेक गीतोंमें मिलता है। अन्धकारमें भी प्रकाशकी रेखा, अज्ञानपर ज्ञानकी विजयकी अनुभूति अनेक स्थलोंपर मिलती है। छायावादके निराशा-चित्रोंमें ऐसा भव्य रूप बहुत कम स्थलोंपर मिलता है। यथा—

(१) यह तुम्हारा हास आया,
इन फटे-से बादलोंमें कौन-सा मधुमास आया

(२) रजनीके विस्तृत नभको जब मैं दृगमें भर लेता,
एक-एक तारेको कितने भावयुक्त कर देता ।
उसी समय खद्योत एक, आता वातायन द्वारा,
मैं क्या समझूँ, मुझे मिला उज्ज्वल संकेत तुम्हारा ।

अथवा

मेरे जीवनमें जब आवें,
अन्धकारके श्याम प्रहर,
तब तुम खद्योतोंमें छिपकर
आ जाना चुपचाप उतर ।

(रूपराशि, पृ० १३)

(३) एक मनोहर, इन्द्रधनुष फैला है नील गगनमें,
क्या यौवनकी लहर वही है वर्षाके जीवनमें ।

(४) जब मेरे क्षण सोते होंगे अन्धकारके अम्बरपर ।
तब तुम प्रथम प्रकाश-ज्योति बन उन्हें जगाना चूम अधर ।

(आधुनिक कवि, पृ० २४, ४२, ४८, ६१)

दूसरे उद्धरणमें खद्योतका प्रतीक अत्यन्त मार्मिक और उपयुक्त है। यहाँ टेनिसनसे

भी अधिक कलात्मकता है, क्योंकि यहाँ "हाथसे अधिक सूक्ष्म और लाक्षणिक प्रयोग डॉ० वर्माने किया है।"[१]

अन्धकारमें प्रकाशका संकेत ही निराशामें आशाकी पुलकका संचार करता है। प्रेमकी दृढ़ता प्रतीक्षारत निराश मनको भी टूटने नहीं देती—मानो वह सोमनाथके मन्दिरका घण्टा हो, जो बिना किसी सहाराके मात्र आकर्षण-शक्तिपर लटक रहा हो—

> तुम न आओगे कभी, फिर भी प्रतीक्षा है तुम्हारी
> बस, तुम्हारी याद है प्रिय, और है यह रात सारी।[२]

अथवा

> जो प्रतीक्षामें पली वह बात क्या तुम जानते हो,
> प्रेमकी यह साधना कितने युगोंकी एक-सी है,
> आँसुओंकी बूँद ही प्रिय-मिलनका अभिषेक-सी है
> क्यों विरह वरदान था अज्ञात, क्या तुम जानते हो ?[३]

'चित्ररेखा'[४]का कवि 'आकाश-गंगा'[५]में अधिक आशावादी हो गया है।

डॉ० वर्माने जीवनके सनातन प्रश्न और शाश्वत भावोंके गीत गाये हैं। डॉ० शिवकुमार मिश्रने इस तथ्यको नहीं समझ सकनेके कारण ही यह लिखा है कि "रहस्य तथा अध्यात्मसे मंडित उनकी वाणी किसी एक काव्य-युगके लिए भले ही उपयुक्त हो, वस्तुतः उसीका पूरी विविधता और सम्पूर्णतामें साक्षात्कार करनेमें असमर्थ वह न तो उसी काव्य प्रवृत्ति (छायावाद)की प्रतिनिधि बन सकी है और न नये युगकी मान्यताओंको ही ग्रहण कर सकी है।"[६] वस्तुतः डॉ० मिश्रने इस बातपर ध्यान नहीं दिया है कि आध्यात्मिकता—आत्मा-परमात्माके सम्बन्ध जीव और ब्रह्मके रागात्मक संबंध किसी युगके नहीं युग-युगके विषय हैं। यदि यह बात न होती, तो पिछले पाँच-साढ़े पाँच सौ वर्षोंमें महाकाल कबीरको खा नहीं गया होता। मगर आज भी उनके पद आत्माको झकझोर देते हैं। सत्कवि युगके पीछे नहीं चलता। युग ही उसका अनुसरण करता है। इतना लिखते हुए भी श्रीशिवदान सिंह चौहान[७]का हवाला देते हुए डॉ० मिश्रको यह लिखना पड़ा है कि "परन्तु चूँकि वह कविकी प्रिय वाणी है और काव्यवादोंके इस युगमें भी उसपर कविकी

---

१. And out of darkness came the hands
That reach thro' nature, moulding men.
—In Memorium, Sec CXX1V.

२. 'आकाश-गंगा', पृ० २।

३. वही, पृ० ५।

४. जीवन है साँसोंका छोटे-छोटे भागोंमें चिर विलाप,
अब भार रूप हो रही मुझे मेरी आँखोंकी अश्रुधार।

५. मुझसे यह मत कहो कि जीवन आज और कलका संचय है।
यौवनके साथीसे मेरा, देखो, युग-युगका परिचय है।

६. 'नया हिन्दी काव्य', पृ० ९१।

७. 'काव्यधारा', पृ० १९५५।

गहरी निष्ठा है, उसीके बलपर उसने हिन्दी कविताको कतिपय अतीव सुन्दर भाव भरे गीत प्रदान किये हैं।[1]

अध्यापक रामकुमारका शील-संयम कवि वर्माके गीतोंमें सर्वत्र व्याप्त है। एक मौन पूजा, स्मित हासके साथ दुःख झेलनेकी कठिन साधना पर्याप्त मात्रामें है। विश्वम्भर मानवने ठीक ही लिखा है "असंयम यों रामकुमारकी जीवनव्यापी साधनामें कहीं नहीं है।[2] जहाँ कहीं भावनाएँ स्खलित हो सकती थीं, वहाँ एक कलात्मक आवरण है। शृङ्गारका ऐसा मार्जन बहुत कम कवियोंमें है। उदाहरण स्वरूप रूप-राशिका यह गीत देखा जा सकता है—

> वृन्दावनका वह रास-रंग !
> तुम रति-सी आयी थीं सभीत, मैं ? मैं था उच्छृङ्खल अनङ्ग।[3]

जिस गीतका प्रारम्भ इतना शृङ्गारमय है, उसका विकास कितना मर्यादित है—सब कुछ कहकर भी जैसे कुछ न कहा गया हो—एक अपूर्व सांकेतिकता है—

> मेरे हाथोंसे तन समेट, घर जानेका था नया ढङ्ग।
> मेरी वनमाला तोड़-तोड़, अपनी मालासे जोड़-जोड़।
> मेरे उर तटपर सदा छोड़ देती थी साँसोंकी तरङ्ग।
> तुम रति-सी आयी थीं सभीत, मैं ? मैं था उच्छृङ्खल अनङ्ग।[4]

'मैं था उच्छृङ्खल अनङ्ग'में 'मैं'के प्रयोगका नाट्य-शिल्प भी दर्शनीय है।

दार्शनिक मान्यताएँ गीतिकाव्यमें महाकाव्योंकी अपेक्षा अधिक सावधानीसे प्रयुक्त होनी चाहिए, क्योंकि एक तो इसका कलेवर छोटा होता है, दूसरे उसमें इतिवृत्तात्मकताका सर्वथा अभाव होता है। तीसरे, आत्माभिव्यञ्जनकी प्रधानताके कारण गीतिकाव्यमें दार्शनिकताका अवकाश तभी हो सकता है जब वह अनुभूतिके रंगमें घुल गयी हो। डॉ० वर्माके गीतोंमें जीवन-दर्शन अलगसे गूँथा हुआ नहीं है। वह उसकी आत्मा बन गया है। एक-एक दार्शनिक कथन भावोंमें रमा हुआ है, ऐसा लगता है कि जैसे गीत तार हों और दार्शनिकता झंकार—उससे निकली हुई, उसीमें समाहित—दार्शनिकता कैसे आत्मानुभूति बन गयी है, इसके उदाहरण सहस्रों हैं। कुछ उदाहरण देना पर्याप्त होगा—

> १. सागर बनकर ओस-बिन्दुमें, आया यहाँ समाने।
> उड़ जाऊँगा तो क्षण ही में—जाने या अनजाने।
> २. यह जीवन तो छाया है, केवल सुख-दुखकी छाया।
> ३. वारिधिके मुखमें रखी हुई यह लघु पृथ्वी है एक ग्रास
> जिसमें रोदन है कभी, या कि रोदनके स्वरमें अट्टहास,

१. 'नयी हिन्दी काव्य', पृ० ९१।
२. 'हमारे प्रतिनिधि कवि', पृ० ३२०।
३. वही, पृ० ९।
४. 'रूपराशि', पृ० ९।

है जहाँ मृत्यु ही शान्ति और जीवन है करुणामय-प्रवास,
वयके प्यालेमें क्षण-क्षणके कण बढ़ा रहे हैं अधिक प्यास।
४. जीवन है साँसोंका छोटे-छोटे भागोंमें चिर विलाप।
५. कैसा वह प्रदेश है जिसमें एक उषा, वह भी नश्वर है।
उज्ज्वल एक तड़ित् है जिसका जीवन भी केवल क्षण भर है।
६. जीवनकी एक कहानी है।
७. क्या है अन्तिम लक्ष्य निराशाके पथका ? अज्ञात !
८. क्या शरीर है ? शुष्क धूलका थोड़ा-सा छवि जाल,
उस छविमें ही छिपा हुआ है वह भीषण कंकाल,
९. गिर जाना भूपर समीरमें हिलडुल कर इस बार
दिखला देना पत्तोंको उनका अन्तिम संसार।

—आधुनिक कवि, पृ० १०,२६,३६,३९,४५,४८,८३,८६,१०१।

निष्कर्ष रूपमें यह कहा जा सकता है कि डॉ० रामकुमार वर्मा अपनी दार्शनिक ऊँचाई, सात्त्विक अनुभूतिकी तीव्रता, शब्दोंके सुष्ठु प्रयोग, कल्पनाकी सूक्ष्म चेतना, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण, आन्तरिक-बाह्य सांगीतिक संतुलन, मानवतावादी भावना एवं संश्लिष्ट चित्रात्मकताके कारण एक गीतकारके रूपमें हिन्दीकी अमर विभूति हैं। "क्या गीत, क्या महाकाव्य, क्या नाटक, क्या आलोचना, क्या शब्दचित्र—सबमें उनकी महान् मानवतावादी दृष्टिका प्रसार है; एक ऐसी दृष्टि, जो करुणाके जलसे सदैव भींगी और स्वर्णिम भविष्यकी आशा-ज्योतिसे सदैव जगमग है। डॉ० वर्मा, राष्ट्रभाषाके प्रतीक हैं और हैं आधुनिक हिन्दी साहित्यके मूर्त्तिमान इतिहास ! महाकाव्यकी भूमिपर ये हिमालयकी तरह महिमावान हैं, स्थिर, गम्भीर और अपने गीत गुनगुनाते हुए। ये कल-कल, छल-छल करती गंगा-धाराके समान हैं—चिर प्रवहमान, चिर पुनीत, चिर संगीतमय।"[1] इनकी गीत-कलाका ध्यान रखते हुए ही महाकवि बिस्मिलने लिखा है—

इनकी कविता दर्द है संगीतमें डूबी हुई,
रातमें पिछले पहर जैसे बजे चंगो-ख्वाब ॥[2]

महादेवी वर्मा

मीराके बाद हिन्दी काव्यके क्षेत्रमें महादेवीसे बड़ी महिला कवि-प्रतिभा नहीं दीखती। ये आधुनिक कालमें भारतकी सर्वश्रेष्ठ महिला साहित्य-साधिका हैं। आधुनिक कालमें सभी कवियोंने गीतोंके अतिरिक्त भाँति-भाँतिकी अन्य कविताएँ भी लिखीं, पर महादेवीने एक मात्र गीतिकाव्यको ही अपनी अभिव्यक्तिका माध्यम माना। कदाचित् विविधताके अभावमें ही महादेवीने आजकल कविताओंसे विराग-सा ले लिया है।

१. 'दृष्टि', डॉ० रामकुमार वर्मा—विशेषांक, भूमिका, डॉ० श्यामनन्दन किशोर।
२. वही, पृ० ३।

निरालाने आजीवन लिखा। उनके समकालीन अन्य कवि आज भी लिखते जा रहे हैं, पर महादेवी पद्यके क्षेत्रसे प्राय: अवकाश प्राप्त कर चुकी हैं।

महादेवीके गीतोंमें आत्मा-परमात्माके प्रेम-संबंधोंका निरूपण है। रहस्यवादी धाराके अन्तर्गत उनकी गणना की जाती है। रहस्यवादमें आत्मा वियोगिनी बन परमपति परमात्माके लिए तड़पती है। जब पुरुष इस आराधना वृत्तिको स्वीकार करते हैं, तो उन्हें अपनेको स्त्री रूपमें मानना पड़ता है। इसलिए अनुभूतिकी तीव्रता उतनी अधिक नहीं होती, पर स्त्रीके लिए उस कल्पनाकी आवश्यकता नहीं होती। महादेवीको यही सुविधा है। रहस्यवादी साधनाके पाँचों अंगोंकी पुष्टि महादेवीके गीतोंमें मिलती है। पहले प्रकृतिमें परमात्म तत्वोंकी झाँकी देखकर जीवको 'विस्मय' होता है फिर उस शक्तिको जाननेकी 'जिज्ञासा' होती है फिर उससे मिलनकी 'अभिलाषा' होती है, फिर उसके एकाकार होनेकी 'प्रयत्न-साधना' चलती है और अन्तमें प्रेमानुभूतिकी चरम सीमा-में जीव-ब्रह्म 'एकाकार' हो जाते हैं।

महादेवीके गीतोंमें रहस्यवादी साधनाके वे चारों सोपान मिलते हैं—

१. विस्मय-कुतूहल

स्वप्नलोकके फूलोंसे कर
अपने जीवनका निर्माण,
'अमर' हमारा राज्य सोचते
हैं जब मेरे पागल प्राण
आकर नव अज्ञात देशसे, जाने किसकी मृदु झंकार,
गा जाती है करुण स्वरोंमें 'कितना पागल है संसार।'[१]

× × ×

कनकसे दिन मोती सी रात
सुनहली साँझ गुलाबी प्रात।
मिटाता रंगता बारम्बार
कौन जगका वह चित्राधार?[२]

२. जिज्ञासा

उषाके छू आरक्त कपोल
किलक पड़ता तेरा उन्माद
देख तारोंके बुझते प्राण
न जाने क्या आ जाता याद?

---

१. 'नीहार', पृ० ९।
२. 'आधुनिक कवि', पृ० २५।

हेरती है सौरभ की हाट
कहो किस निर्मोहीकी बाट ?[१]

... ...

ढुलकते आँसूका सुकुमार
बिखरते सपनों-सा अज्ञात,
चुरा कर ऊषाका सिन्दूर
मुस्कुराया जब मेरा प्रात,
छिपा कर लालीमें चुपचाप
सुनहला प्याला लाया कौन ?[२]

... ...

कुमुद दलसे वेदनाके दागको
पोंछती जब आँसुओंसे रश्मियाँ
चौंक उठतीं अनिलके निश्वास छू
तारिकाएँ चकित सी अनजान सी,
तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूरके संगीत सा वह कौन है ?[३]

३. अभिलाषा

मेरे जीवनका आज मूक
तेरी छायासे हो मिलाप !
तन तेरी साधकता छू ले
मन ले करुणाकी थाह नाप ![४]
नयन श्रवण मय, श्रवण नयन मय
आज हो रही कैसी उलझन !
रोम-रोममें होता है सखि
एक नया उर का-सा स्पन्दन ![५]

४. प्रयत्न-साधना

शून्य मंदिरमें बनूँगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी !
नूपुरोंका मूक छूना,

---

१. 'यामा', पृ० ६२।
२. 'नीहार', पृ० १२।
३. 'आधुनिक कवि', पृ० ३१।
४. वही, पृ० ९५।
५. वही, पृ० ६५।

सखि करदे विश्व सूना,
यह अगम आकाश उतरे कम्पनोंका हो भिखारी ![1]

... ...

सुनाई किसने पलमें आन कानमें मधुमय मोहक तान ?
तरीको ले जाओ मँझधार डूब कर हो जाओगे पार,
विसर्जन ही है कर्णाधार; वही पहुँचा देगा उस पार ![2]

... ...

करुणामयको भाता है
तमके परदेमें आना !
ओ नभ की दीपावलियों,
तुम पल भरको बुझ जाना ![3]

५. आत्मा-परमात्माकी एकरूपता—साधना की चरम अवस्था

वीणा होगी मूक बजाने वाला होगा अन्तर्धान,
विस्मृतिके चरणोंपर आकर लोटेंगे सौ सौ निर्वाण
जब असीमसे हो जायेगा मेरी लघु सीमाका मेल,
देखोगे तुम देव ! अमरता खेलेगी मिटनेका खेल ।[4]

... ...

मेरे जीवन की जागृति !
देखो फिर भूल न जाना,
जो वे सपना बन आवें
तुम चिर निद्रा बन जाना ।[5]

... ...

आकुलता ही आज बन गयी तन्मय राधा,
विरह बना आराध्य, द्वैत क्या, कैसी बाधा ![6]

महादेवीके रहस्य गीतोंमें प्रकृति प्रिय मिलनका साधन, उद्दीपन और पृष्ठभूमि बन कर आयी है । कहीं वह संकेत देती है (मुस्कराता संकेत भरा नभ अलि क्या प्रिय आने वाले हैं !) कहीं वह संदेश भेजती है (लाये कौन संदेश नए घन), कभी अरुणोदयमें प्रियका सहास मुख और रजनीमें उसकी विषादमयी परछाईं दीख पड़ती है (तेरा मुख

---

१. 'यामा', पृ० २१२ ।
२. 'नीहार', पृ० ३० ।
३. 'यामा', पृ० २४ ।
४. 'नीहार', पृ० ७ ।
५. 'आधुनिक कवि', पृ० २० ।
६. वही, पृ० ८३ ।

सहास अरुणोदय, परछाईं रजनी विषादमय), कभी अरुणबाणके चुभते ही गान फूट पड़ते हैं (चुभते ही तेरा अरुणबाण, बहते कन-कनसे फूट-फूट मधुके निर्झरसे सजल गान) कभी मधु बयार स्मृतिको उभारती है (जाने किस जीवनकी सुधि ले लहराती आती मधु बयार) और कभी पूर्ण सांध्य गगन ही जीवनका प्रतिरूप बन जाता है (प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन) ।[१]

महादेवीकी साधना बाह्य पूजोपचारसे विरत है। कबीरने जिस अन्तःसाधनाका उल्लेख किया है वह महादेवीकी इन पंक्तियोंमें मिलता है—

क्या पूजा क्या अर्चन रे ?
उस असीमका सुन्दर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे ।[२]

प्रेमकी लता अश्रु-जलसे परवान चढ़ती है। महादेवीके गीतोंमें वेदनाका स्वर सर्व-प्रमुख है। वे अपनेको पीड़ाकी सम्राज्ञी मानती हैं, सूनेपन की रानी ! कितना मधुर उलाहना, अपने अभावपर कैसा मोहन अभिमान है—

चिन्ता क्या है, हे निर्मम !
बुझ जाये दीपक मेरा ।
हो जायेगा तेरा ही
पीड़ाका राज्य अँधेरा ।[३]

तृप्ति महादेवीके लिए अनिच्छित वस्तु है, पीड़ाएँ असीम होकर सुखकी अनुभूति देने लगती हैं—अतः लिखती हैं—

मेरे छोटे जीवनमें देना न तृप्तिका कण भर
रहने दो प्यासी आँखें भरती आँसू की गागर ।[४]

सम्पूर्ण जीवनको ही विरहकी देन मानने वाली महादेवीकी वाणी करुणा-कातर है—कहीं वे लिखती हैं 'मैं नीर भरी दुखकी बदली'[५] तो कहीं यह मानती हैं कि 'विरह-का जलजात जीवन' ।[६] अश्रु ही उनका शृंगार है[७] अंगार ही उनकी रंगशाला ।[८] उनके लिए शूल अक्षत है और धूलि चन्दन (हुए शूल अक्षत, मुझे धूलि चंदन)[९] ।

पत्रको आधा मिलन माना जाता है। पत्र-लेखनकी विधि विरहकाव्यकी प्राचीन

१. 'आधुनिक कवि', पृ० सं० क्रमशः ६५,६९,५६,२४,८२,७४ ।
२. 'सन्धिनी', पृ० ६५ ।
३. 'आधुनिक कवि', पृ० ७ ।
४. वही, पृ० २८ ।
५. 'सन्धिनी', पृ० ७६ ।
६. वही, पृ० ४८ ।
७. 'क्यों अश्रु न हो शृंगार', वही, पृ० ११२।
८. 'अंगार मेरी रंगशाला', वही, पृ० ७३ ।
९. 'दीपशिखा', पृ० ७७ ।

निधि है। महादेवीने भी पत्र लिखनेका प्रयास किया है—अज्ञातके प्रति ज्ञातका असीम-के प्रति ससीमका पत्र ! वस्तुतः इन पत्रोंमें प्रेमकी निश्छल अभिव्यक्ति मिलती है—

(क) अलि कहाँ संदेश भेजूँ ?

मैं किसे संदेश भेजूँ ?
उड़ रहे यह पृष्ठ पलके,
अंक मिटते श्वास चलके,
किस तरह लिख सजल करुणाकी कथा सविशेष भेजूँ ?[1]

(ख) कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती ?

दृग जलकी सित मसि है अक्षय,
मसिप्याली झरते तारक द्वय,
पल-पलके उड़ते पृष्ठोंपर
सुधिसे लिख श्वासोंके अक्षर—
मैं अपने ही बेसुधपनमें
लिखती हूँ कुछ-कुछ लिख जाती ![2]

महादेवीके गीतोंमें प्रतीकोंकी योजना बड़े व्यापक स्तरपर है। उन्होंने आत्माको वीणा, दीपक, ज्ञानकी ज्योति; माया-ग्रसित आत्माको तम; साधकको गायक; आनन्दको वसंत-प्रभात; जीवन-विकासको उषा; जीवनको तरी; भावावेशको लहर; संघर्षको झंझा; रोषको ग्रीष्म; करुणाको वर्षा; जड़ताको शिशिर; दुखको पतझड़ आदि रूपोंमें व्यक्त किया है। दीपशिखामें दीपके संबंधमें सर्वाधिक गीत हैं।

आत्माभिव्यंजन गीतिकाव्यका आवश्यक तत्त्व है और छायावादी काव्यमें वह 'मैं'-की शैलीमें प्रकट हुआ है। महादेवीके गीतोंमें भी उत्तम पुरुष की प्रधानता है। यह 'मैं' महादेवीके लिए, प्रकारान्तरसे आत्माके लिए प्रयुक्त है। इसी तरह 'तुम' प्रिय अर्थात् प्रकारान्तरसे परमात्माके लिए प्रयुक्त हुआ है। निम्नलिखित पंक्तियोंमें दोनों ही रूप एक साथ मिलते हैं—

(क) चित्रित तू, मैं हूँ रेखाक्रम,
मधुर राग, तू मैं स्वर-संगम
तू असीम, मैं सीमाका भ्रम।[3]

(ख) तुम हो विधुके बिम्ब
और मैं मुग्धा रश्मि अजान।[4]

प्रिय-प्रियतम, आत्मा-परमात्माके संबंधको विभिन्न कलात्मक रूपों और कोणोंसे

---

१. 'दीपशिखा', पृ०।
२. 'नीरजा', पृ० ४६।
३. 'आधुनिक कवि', पृ० ५७।
४. 'सन्धिनी', पृ० ३४।

देखनेमें महादेवीने अद्भुत सफलता पायी है—सर्वत्र एक मधुरिमा है, एक कम्पन है, एक व्यथा—

(क) बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ

—सन्धिनी, पृ० ४९

(ख) मैं तुमसे हूँ एक, एक हैं जैसे रश्मि प्रकाश
मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों घनमें तड़ित् विलास

—वही, पृ० ३९

(ग) मेरे जीवनका आज मूक,
तेरी छायासे हो मिलाप,
तन तेरी साधकता छू ले
मन ले करुणा की थाह नाप !

—यामा, पृ० २२१

महादेवीकी शब्द-चेतना इतनी उर्वर और सूक्ष्म है कि उनकी इच्छाएँ सिहरती हैं, आशा मुस्कराती है, आहें सोती हैं, चाँदनी रोती हैं, करुणा छलकती है, शून्य गाता है और किरणें बिछलती हैं। मानवीकरणकी जो प्रवृत्ति छायावादी काव्यमें है, उसका कलात्मक निखार महादेवीमें दीखता है।

आधुनिक गीतकारोंमें चित्रकलाका अभ्यास एकमात्र महादेवीको है। फलतः उनके गीतोंमें रंग और रेखाओंके व्यापक एवं संतुलित रूप मिलते हैं। अधिकांश चित्र प्रकृति-से आये हैं। अन्यान्यमें दीपका चित्र कवयित्रीको अधिक प्रिय है। रंगोंका समुचित प्रयोग हुआ है—

रजत किरणोंसे नैन पखार
उषाके छू आरक्त कपोल

—नीहार, पृ० ९१–९२

हँस देता जब प्रात सुनहरे अंचलमें
बिखरा मोती

... ...

स्वर्ण वर्णसे दिन लिख जाता

—वही, पृ० ८–९

दृग जल की सित मसि है अक्षय

—नीरजा, पृ० ४६

चरणोंसे चिह्नित अलिन्दकी भूमि सुनहली

... ...

स्निग्ध सुधि जिनकी लिये कज्जल दिशामें
धँस चला तू

—आधुनिक कवि, पृ० १०३–४

विशेषणोंके भी बड़े मार्मिक प्रयोग महादेवीके गीतोंमें मिलते हैं—ये अमूर्त्त भावों-को बहुत दूर तक मूर्त्त करनेमें सहायक होते हैं—

साथ तेरा चाहती एकाकिनी बरसात।

... ...

व्यंग्यमय है क्षितिज घेरा
प्रानमय हर कण निठुर-सा

—दीपशिखा, पृ० १३७

यह मंदिरका दीप उसे नीरव जलने दो?

... ...

झंझा है दिग्भ्रान्त रातकी मूर्च्छा गहरी।

—वही, पृ० ८९

कहता है जिनका व्यथित मौन
हमसा निष्फल है आज कौन?

—नीहार, पृ० ५१

मुखर पिक हौले बोल!
हठीले हौले-हौले बोल!

—नीरजा, पृ० ३२

माधुर्य गुण-प्रधान महादेवीके गीतोंमें संगीतपूर्ण कोमल-कान्त पदावली बड़ी स्वाभाविक रीतिसे गुँथी हुई है—

तारकमय नव वेणी बन्धन,
शीश-फूल कर शशिका नूतन,
रश्मि-वलय सित घन-अवगुण्ठन
किसमें देख सँवारूँ कुन्तल,
अंगराज पुलकोंका मल-मल
स्वप्नोंसे आँजूँ पलकें चल,

—सन्धिनी, पृ० ४१,५५

मधुरिमाके मधुके अवतार
सुधासे सुषमासे छविमान

—आधुनिक कवि, पृ० २१

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतमका पथ आलोकित कर!

—वही, पृ० ५८

ऐसे संगीतमय स्थल अनुप्रासों, ध्वनिपूर्ण शब्दों एवं दुहरे-तिहरे तुकोंके कारण अधिक प्रभावशाली हो गये हैं।

महादेवीके गीतोंमें सम्बोधनात्मक एवं प्रश्नात्मक शैलियाँ भी मिलती हैं ? प्रायः अपनी ही आत्माको सम्बोधित किये गये हैं, उसीसे प्रश्न ! कहीं-कहीं यह सम्बोधन परमात्मा और सखिको भी है—

(क) चिन्ता क्या है हे निर्मम !

—आधुनिक कवि, पृ० ७

(ख) कैसे कहती हो, सपना है अलि ! उस
मूक मिलन की बात;

—वही, पृ० ३

(ग) यूथी की मीलित कलियों से अलि दे मेरी कबरी सँवार।

—वही, पृ० ८२

निष्कर्ष रूपसे यह कहा जा सकता है कि महादेवीके गीत वेदनासे सुलगे हुए और आँसूसे भींगे होनेके कारण आहके धुएँके रूपमें परिणत हो गये हैं। सर्वत्र एक उदासी, एक अभावका वातावरण फैला मिलता है। उन्होंने कुछ रचनाओंको छोड़ (जैसे, रश्मिकी दो रचनाएँ 'अलि' और 'पपीहे' दुर्मिल सवैया हैं) शेष सभी गीत काव्यात्मक हैं। उन्होंने अपनी रुचिका पूर्णतः निर्वाह किया है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीने ठीक ही लिखा है कि "वे पूर्णरूपसे गीतिकाव्यात्मक प्रकृति की हैं, बहुत जल्दी उन्होंने अपने वास्तविक स्वरूपको समझ लिया"[१] इनके गीतोंमें जो नारीसुलभ सुकुमारता है, वह आधुनिक कालमें कहीं और नहीं मिलती। आचार्य वाजपेयीके शब्दोंसे कभी सहमत होंगे कि "यह स्त्रियोचित सात्त्विकता भी महादेवीजीके काव्यकी सार्वत्रिक विशेषता है।"[२] महादेवीने अपने गीतोंमें रहस्यवादी दर्शनके प्रति अपनी गहरी आस्थाका परिचय दिया है—उस आस्थाका, जिसका विश्लेषण उन्होंने स्वयं किया—

"माता जिस प्रकार आस्थाके बिना अपने रक्तसे सन्तानका सृजन नहीं कर सकती, धरती जिस प्रकार ऋतुके बिना अंकुरको विकास नहीं दे सकती, साहित्यकार भी उसी प्रकार गंभीर विश्वासके बिना अपने जीवनको अपने सृजनमें अवतार नहीं दे सकता।"[३]

हरिवंशराय 'बच्चन'

आधुनिक हिन्दी गीतकारोंमें सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं डॉ० हरिवंशराय बच्चन। वैयक्तिकताका तीव्रतम स्वर इनके गीतोंमें पाया जाता है। बच्चन विशुद्ध गीतिकार हैं; विशुद्धका तात्पर्य यह कि इन्होंने हिन्दीको गीत, केवल गीत दिये हैं—अनेक शैली, अनेक भाव, अनेक शिल्पवाले गीत। इस दृष्टिसे ये महादेवीसे भी एक पग आगे हैं। महादेवीने तो अपने आपको गद्यकी विधाओं—संस्मरण, रेखाचित्र, लेख, आदिमें भी अपनेको अभिव्यक्त किया है पर बच्चनने अपनी अभिव्यक्तिका एक ही माध्यम

१. 'हिन्दी साहित्य, उद्भव और विकास', पृ० ४७५।
२. 'हिन्दी साहित्य, बीसवीं शताब्दी', पृ० १७६।
३. 'साहित्यकारकी आस्था और अन्य निबन्ध', महादेवी, पृ० २१।

अपनाया है—गीत, केवल गीत। कुछ और भी छोटी-मोटी विशेषताएँ उनकी हैं—अपने काव्यकी लम्बी भूमिका लिखना या अपनी तस्वीरें उनमें प्रकाशित करना, ये सामान्य औपचारिकताएँ भी उनकी कविता-पुस्तकोंमें नहीं रहीं। कविका विश्वास है कि कविताएँ अपनी व्याख्या आप हैं, उनके लिए किसी प्रस्तावनाकी आवश्यकता नहीं।[१]

इनकी एक पुस्तक निशा-निमन्त्रणके ही अबतक आठ संस्करण हो चुके हैं, मधुशाला तो और भी अधिक लोकप्रिय हो चुकी है। लाखों पाठक ऐसे हैं, जो इनकी रचनाओंकी प्रतीक्षा करते हैं। हिन्दीमें ही नहीं, किसी भी भारतीय भाषामें अभी अपनी वैयक्तिक जीवन-गाथाके उतार-चढ़ावको इतनी सफलतासे चित्रित करनेवाला दूसरा गीतिकार नहीं है। बिना किसी आडम्बरके, बिना किसी दार्शनिक मुखौटाके, इनके गीत आत्मानुभूतिकी स्वाभाविक शब्द-झंकृति हैं।

बचनके गीतोंका मुख्य वर्ण्य-विषय तो प्रेम और उसके दोनों पक्ष—संयोग और विप्रलम्भ हैं, पर वे कविताके लिए किसी भी विषयको वर्ज्य नहीं समझते।[२] इसके दो रूप हमारे सामने आते हैं—एक तो इन्होंने मधुशालाको ही नहीं बंगालके कालको भी लेखनीबद्ध किया; दूसरी ओर स्वयं गीतोंमें भी, जहाँ कि आत्मनिष्ठताके कारण विषय गौण-सा रहता है, उन्होंने जीव और जगत्के अत्यन्त व्यापक 'केनवास'को चित्रित किया। इनके गीतोंमें यदि गुल-मुहर, गुल-हजारा, चाँद, प्रभात और मलय है, तो गिरजेके घण्टे भी हैं।[३] कंकड़-पत्थर भी हैं,[४] श्वान[५] और बिस्तुइए[६] भी। निशा-निमंत्रण-के वातावरणको ये शब्द जीवन्त बना देते हैं—लगता है कि कविकी आँखें खुली हैं, कान खुले हैं। कहीं परम्परागत काव्यका बोझ नहीं मालूम पड़ता। एक उन्मुक्त हृदयका आनन्द विह्वल शब्द-चयन।

जीवनके प्रति बचनकी आस्था सुदृढ़ है और वह शूल-फूल, आग-पानीसे भरे जीवन-की हर चुनौतीको स्वीकार करनेको तत्पर दीखता है। जीवनकी धूल, धुँआ और धूपने ही उसके गीतोंको जन्म दिया है। उसने स्पष्ट घोषणा की है कि "कविको सिंहासनपर

---

१. कविता जब कविकी लेखनीसे निकल गयी तो उसका अपना अस्तित्व हो जाता है और पाठक-से अपना सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए उसे किसी समालोचक, व्याख्याता, यहाँ तक कि स्वयं कविका भी मुँहताज नहीं होना चाहिए। कुछ इसी प्रकारके विचारोंने मुझे चुप रखा है।
—'निशा-निमन्त्रण', अपने पाठकोंसे, पृ० ५–६

२. 'बचन'का कहना है कि मैं जीवनकी समग्र अनुभूतियोंको कविताका विषय बनाता हूँ लेकिन मेरी अनुभूतिमें कल्पना और जीवनमें मरण भी सम्मिलित है।
—राजपाल एण्ड सन्स द्वारा प्रकाशित कविकी पुस्तकोंका कवर!

३. 'गिरजेसे घण्टेकी टन-टन', 'निशा-निमन्त्रण', पृ० ४०।

४. 'यह कंकड़-पत्थर चुन लाऊँ', वही, पृ० १११।

५. 'रात-रात भर श्वान भूकते', वही, पृ० ६८।

६. 'पहुँच गयी बिस्तुइया सत्वर', वही, पृ० ३८।

बैठा हुआ, बादलोंमें उड़ता हुआ, आसमानको छूता हुआ समझनेकी जरूरत नहीं।"[१] कविका यह विश्वास कोरा सैद्धान्तिक नहीं, उसके गीतोंसे भी यही स्वर फूटा है—

'हैं लिखे मधुगीत मैंने हो खड़े जीवन-समरमें।'[२] जीवन-समरमें खड़े होकर (गिर-पड़कर, करवटें बदल कर नहीं) अर्थात् डटकर कविने अपने गीत लिखे हैं। इतनी स्पष्टोक्ति अन्य कवियोंमें नहीं मिलती।

बच्चनने साहित्यकी तीव्रानुभूतिकी एक कसौटी रखी है—"साहित्यके क्षेत्रकी तीव्रानुभूति वही है, जो अभिव्यक्ति या तीव्रानुभूति जगानेमें समर्थ हो। इसीके दूसरे नाम आनन्द और रस भी हैं। इस वक्तव्यका अर्थ यह हुआ कि (क) अभिव्यक्तिमें तीव्रता हो, (ख) वह तीव्रता पाठकों या श्रोताओंके मनमें भी समान रूपसे तीव्रता संक्रमित कर सकनेमें समर्थ हो और (ग) इसी स्थितिमें यह तीव्रानुभूति रस-निष्पत्तिका रूप धारण कर लेती है। बचनके गीतोंको यदि हम उपर्युक्त कसौटीपर कसें तो वे सफल उतरती हैं। इसका कारण यह है कि बचनकी अनुभूति पुस्तकीय या उधार ली हुई नहीं है। वह बुद्धिकी देन नहीं, हृदयकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। इसीलिए बचनके गीत इतने लोकप्रिय हैं। उनके गीतोंको पढ़कर ऐसा लगता है, जैसे, अपने हृदयकी बातें पढ़ी जा रही हों। बचनको घोर वैयक्तिकतावादी कहनेवाले समीक्षक इस बातपर ध्यान नहीं देते कि उनके वैयक्तिक जीवनकी घटनाओंकी प्रतिक्रिया अनुभूतिकी रसमय प्रक्रियामें घुल-मिलकर सर्वसामान्य हो गयी हैं। उदाहरणस्वरूप निशा-निमन्त्रण और सतरंगिनीके गीत देखे जा सकते हैं, जिसका सम्बन्ध उनकी दोनों परिणीताओंसे है।

इनकी धर्मपत्नी श्यामादेवीका स्वर्गवास हो गया है। विवाहके प्रस्ताव उनके सामने आ रहे हैं। ऐसी स्थितिमें मनकी वितृष्णा इन शब्दोंमें प्रकट होती है—

> आज मुझसे दूर दुनिया !
> वह समझ मुझको न पाती,
> और मेरा दिल जलाती,
> है चिता की राख करमें माँगती सिन्दूर दुनिया।[३]

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि पत्नी तो बचनकी स्वर्गीय हुई है, पर इन पंक्तियोंकी करुणा, विवशता और उदासीका प्रभाव अविवाहितों और सुख-सुहागसे भरे दम्पतियोंपर क्यों पड़ता है? स्पष्टतः इसका कारण वही तीव्रानुभूति है, जिसका उल्लेख कविने किया है। कवि और पाठकके मनमें इसी तीव्रानुभूतिके कारण भावनात्मक एकरसता हो जाती है, जो एक-सी वेदनाका अनुभव हो पाती है।

इसी तरह सतरंगिनीके गीत 'जो बीत गयी सो बात गयी'[४] या 'नीड़का निर्माण

---

१. 'प्रणय पत्रिकाका', 'अपने पाठकोंसे', पृ० ९-१०।
२. 'प्रणय-पत्रिका', पृ० १०।
३. 'निशा-निमन्त्रण', पृ० ९५।
४. 'सतरंगिनी', पृ० ८६।

फिर-फिर'[1] में दूसरी शादी करनेकी जो वैयक्तिक बात है, उसका साधारणीकरण हो गया है। फलतः कविके जीवनकी घटनाका नहीं, शुद्ध भावका—निराशासे आशाकी ओर गमन, उजड़ कर बसनेकी लालसाका नशा पाठकोंपर छा जाता है। बच्चनकी यह विशेषता—वैयक्तिकताकी निर्वैयक्तिक शक्ति, सर्वत्र है।

गीतकाव्यकी एक बड़ी मार्मिक परिभाषा बच्चनने प्रणय-पत्रिकामें दी है—"गीतकी सबसे बड़ी खूबी यह है कि वह अपने आपमें परिपूर्ण है। उसके लिए किसी संदर्भ-प्रसंगकी आवश्यकता नहीं है। जीवनके असंख्य तारोंवाली वीणापर गीतकार केवल एकको चुनकर उसपर टुनकी लगाता है। उसकी सफलता इसीमें है कि उसकी प्रथम टुनकीसे ही श्रोताका हृदय प्रतिध्वनित हो उठे। उसी तारपर इनी-गिनी टुनकियाँ देते हुए कमसे कम समयमें वह एक पूरी गत बना दे। गीत समाप्त हो जाय पर उसकी गूँज श्रोताके कानोंमें बस जाय और बहुत-सी अनुगूँजें जगाये।"[2] इस कसौटीपर बच्चनके गीतोंको परखनेका प्रयास करना युक्तिसंगत होगा—

बच्चनके गीत अपने आपमें परिपूर्ण हैं। मुक्तककी यह विशेषता है ही कि वह किसी संदर्भका मुँहताज न हो। जिन गीतोंके बीच भावनाओंकी एकसूत्रता मिलती है, वे भी स्वतन्त्र रूपसे पूर्ण अर्थ-द्योतनमें समर्थ हैं, जैसे मिलन-यामिनीके गीत! एक साथ पढ़नेपर उनमें भावनाओंका चढ़ाव मिलता है, एक विशेष प्रकारका आनन्द मिलता है, पर अलग-अलग भी वे पूर्ण आनन्द देते हैं। बच्चनके कहींसे किसी गीतको उठाकर उसकी परिपूर्णताकी जाँच की जा सकती है। उदाहरणार्थ निशा-निमन्त्रणका एक गीत ले लें—

बीत चली संध्या की वेला!
धुँधली प्रतिपल पड़ने वाली
एक रेख में सिमटी लाली
कहती है, समाप्त होता है सतरंगे बादल का मेला!
नभ में कुछ द्युतिहीन सितारे
माँग रहे हैं हाथ पसारे—
'रजनी आए, रवि किरणोंसे हमने है दिनभर दुख झेला!'
अंतरिक्ष में आकुल-आतुर,
कभी इधर उड़, कभी उधर उड़।
पंथ नीड़ का खोज रहा है पिछड़ा पंछी एक—अकेला।[3]

इस गीतमें सन्ध्याकी समाप्तिके बाद आनेवाली रजनीके दार्शनिक निष्कर्ष, उसकी आकुल प्रतीक्षा और उदास एवं निराश वातावरणका चित्रण है। सन्ध्याकी समाप्तिके

१. 'सतरंगिनी', पृ० १०५।
२. 'प्रणय पत्रिका', पृ० ११-१२।
३. 'निशा निमन्त्रण', पृ० २९।

समय आकाशमें धीरे-धीरे सिमटनेवाले प्रकाशको कितने मार्मिक विशेषणोंसे चित्रित किया गया है—'धुँधली प्रतिपल पड़नेवाली' और 'सिमटी'। इस चित्रकी पारदर्शिता इस दार्शनिक निष्कर्षमें ध्वनित है कि "संसारमें सब कुछ नश्वर है—सतरंगे बादलोंका मेला भी।"

सूर्यके प्रकाशमें सितारे दीख नहीं पाते। इस भौतिक तथ्यको कवि सत्यके रूपमें कितनी सफलतासे प्रकट किया गया है—'रवि किरणोंसे हमने है दिनभर दुख झेला।' दुःख झेलनेवाले सितारेका विशेषण 'द्युतिहीन' है, उसकी क्रिया कितनी उपयुक्त है—'माँग रहे हैं हाथ पसारे।' जो कान्तिहीन दुःखके मारे, हारे होते हैं वे ही तो हाथ पसारते हैं। (रजनी आये—निशा-निमन्त्रण नामके उपयुक्त माँग है।) 'रजनी आए' यह सितारोंकी माँग है, तात्पर्य यह कि प्रत्येक व्यक्ति या शक्तिके लिए उपयुक्त पृष्ठभूमिकी आवश्यकता होती है।

तीसरे चित्रमें सारे गीतका मर्म चरमसीमापर आ जाता है—एक ऐसे पंछीके चित्रण द्वारा, जो अपने साथीसे 'पिछड़कर शून्य अन्तरिक्षमें भटक रहा है—आकुल-आतुर !' उदास वातावरणको चित्रित करनेवाले शब्द कितने व्यंजक हैं—आकुल-आतुर! बिछड़ाकी जगह पिछड़ा शब्द भी द्रष्टव्य है। पिछड़ामें बिछड़ा शब्दका भाव अन्तर्भुक्त है, क्योंकि पिछड़कर साथ नहीं रहा जा सकता। किन्तु पिछड़ाका अपनी एक अलग विशेषता है—वह है कि आगे निकल कर भी बिछड़ा जा सकता है, पीछे रहकर भी; पर पीछे रहनेमें जीवनकी दौड़को हार और असमर्थताका विशेष रूपसे भान होता है।

एक मुख्य भाव एक गीतमें हो—ऐसा बच्चनका मन्तव्य है (असंख्य तारोंवाली वीणापर गीतकार केवल एकको चुनकर उनपर ठुनकी लगाता है)। यहाँ एक मुख्य भावका अर्थ यह होता है कि गीत-काव्यमें एक क्षण-विशेष एक दृष्टिकोण-विशेषका चित्रण होता है, उसीकी पुष्टिके लिए दूसरे चित्र आते हैं।

उस पूरे गीतमें 'सन्ध्या बीत गयी है' इसके व्यंग्यार्थ आगेकी पंक्तियोंमें बड़ी खूबीके साथ व्यक्त हुए हैं। एक केन्द्रीय भाव—संध्या बीत गयी है, अपनी पूर्ण अर्थ-छवियों एवं गम्भीर वातावरणका निर्माण करता है ! कविकी वैयक्तिकता, उसका आत्माभिव्यंजन अन्तिम अनुच्छेदमें आकर चरमबिन्दुपर पहुँच जाता है। यह पूरा गीत अपने पूरे व्यक्तित्वके साथ उभरा है। मैंने एक उदाहरण लिया। यह विशेषता प्रायः सभी गीतोंकी है।

बच्चनने 'कमसे कम समय'में पूरी गत बनानेकी बात कही है—अर्थात् वे गीत-काव्यकी संक्षिप्तताका उल्लेख कर रहे हैं। बच्चनके गीतोंमें यह संक्षिप्तता पूर्ण मात्रामें है—८-१०-१२ पंक्तियोंके गीत सभी संग्रहोंमें हैं। बहुत लम्बे हुए, छोटे-छोटे चरणोंवाले हुए, तो १६ पंक्तियोंवाले।

गीतकी गूँज कानोंमें बस जाये और वह अनुगूँज उत्पन्न करे—बच्चन यह कहकर गीतके स्थायी प्रभाव और एक भावसे उत्पन्न अनेक व्यंग्यार्थोंकी ओर संकेत करते हैं। बच्चनके गीत तत्क्षण प्रभाव उत्पन्न करते हैं और वह प्रभाव इतना घनीभूत होता है कि बहुत देरतक कुछ सोचते रहनेको विवश करता है, उससे एक ऐसे वातावरणका

निर्माण मनके चारों ओर हो जाता है कि श्रोता या पाठक उसमें खोये रह जाते हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियोंको देखा जाय—

मीठी सुधियोंकी घड़ियाँ
कितनी छोटी होती हैं,
शबनम कितने सपनों की
सब रंगीनी धोती है,
ऊषा कितने होठों की लाली
हर ले जाती है,
धुँधली करता कितने नयनों की ज्योति सवेरा भी।
किरणों में अटका चाँद, कहीं भटका मन मेरा भी।[1]

उपर्युक्त पंक्तियोंमें पूरे गीतका वातावरण मनको वेध जाता है और कविके साथ कुछ क्षणको पाठकोंका मन भी चाँदके साथ अटक कर कुछ सोचने लग जाता है। बच्चनने गूँज-अनुगूँजका जो प्रश्न अपने गीतमें उठाया है,[2] उसका एक ही उत्तर पाठकोंकी ओरसे होता है—'हाँ सदैव'!

अब प्रश्न आत्मानुभूतिका उठता है। बच्चन लिखते हैं—"गीतकारके लिए आत्मानुभूति आवश्यक है। अनुभूतिको स्थूल घटनाओंतक सीमित रखना ठीक नहीं। वह कल्पनामें जो जीता, बरतता, रहता-सहता, सँजोता वह भी अनुभूतिका सूक्ष्म रूप है।"[3] तात्पर्य यह कि वे अनुभूतिको कल्पनासे सँवारनेके पक्षपाती हैं। बात ठीक है। अनुभूतिको कल्पना ही दूसरोंके ग्रहण योग्य बनाती है, वही उसे लोकप्रिय होनेको पंख देती है। उदाहरणस्वरूप 'मधुकलश'की गुलहजारा रचना देखी जाय। इन पंक्तियोंमें दीर्घ रुग्णताके बाद स्वर्गीय हुई पत्नीका चित्र कितना वेधक है।[4]

मृत्युशय्या पर पड़े अति
रुग्ण की अन्तिम हँसी-सी,
यत्न करके खिल रही है,
एक लघु कलिका निराली,

---

१. 'प्रणय-पत्रिका', पृ० ५१।

२. जैसे गरुड़ गगन में उड़ता,
महाकाव्य-सा लिखता जाता,
जैसे हंस सलिल पर तिरता,
लघु लहरों की पंक्ति बनाता,
लिपि-अंकित संगीत प्रकृति का
करता, सहज स्वरों से मेरे।
गीत निकल अन्तर-अन्तरमें ध्वनित कभी क्या हो पायेंगे?, वही, पृ० ४५।

३. वही, पृ० १२।

४. 'निशा-निमन्त्रण'का अपने पाठकोंसे, पृ० ९।

यहाँ द्रष्टव्य यह है कि आत्मानुभूति (रुग्ण पत्नीकी अन्तिम हँसीका दंश) कल्पना (गुलहजाराके खिलनेमें उसका आरोप) के सहारे कितनी प्रभावपूर्ण हो गयी है।

छायावादोत्तर कालमें प्रेमके क्षेत्रमें सबसे स्पष्टवादी कवि बच्चन ही हैं। उनके गीतोंमें स्पष्टवादिताका स्वर इस हदतक है कि उनके आलोचकोंकी (यहाँ आलोचक-का अर्थ जड़ निन्दकोंसे है जिनमें बहुतसे बादको प्रशंसक बन गये।) संख्या बढ़ती रही। तभी तो बच्चनको लिखना पड़ा—

(क) भूल कर जगने किया किस-किस तरह अपमान मेरा।[1]
(ख) क्या किया मैंने नहीं जो कर चुका संसार अब तक।
वृद्ध जग को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी।[2]
(ग) हैं कुपथ पर पाँव मेरे आज दुनिया की नजर में।[3]
(घ) विश्वमें उपहास जिसका।[4]

बच्चनकी एक बहुत बड़ी विशेषता यह भी है कि उन्होंने कभी अपने व्यक्तित्वको बढ़ा-चढ़ा कर नहीं देखा, बल्कि उन्होंने विनम्रतावश घटाकर देखा। आधुनिक प्रचार-वादी युगमें यह एक बहुत बड़ी मिसाल है। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं—

(क) है नहीं निष्फल कभी यह
गीतमय अस्तित्व मेरा,
प्रतिध्वनित यदि एक उर में
एक क्षीण कराह मेरी।[5]
(ख) क्यों कवि कह कर संसार मुझे अपनाये
मैं दुनिया का हूँ एक नया दीवाना।[6]
(ग) कवियोंकी श्रेणीसे अबसे मेरा नाम हटाओ।[7]

बच्चनके प्रारम्भिक गीत उनके हालावादी प्रतीकोंसे प्रतिध्वनित हैं। यौवन, आनन्द, मस्ती और नव्य चेतनाकी प्रतीक हाला और उसमें सम्बद्ध वस्तुएँ और वातावरण भी उन्मादक हैं। मधुबाला और मधुकलशके गीत इसके प्रमाण हैं। मधु-शालाकी रुबाइयोंकी बातें अलग हैं। यहाँ गीतोंका उल्लेख हो रहा है। कविने मधु-बाला, मालिक-मधुशाला, मधुपायी, सुराही, प्याला, हाला आदि गीतोंमें इन प्रतीकोंका बड़ा अच्छा निर्वाह किया है। शराबको अधरोंतक भी न ले जानेवाले कविका इतना

---

१. 'मधुकलश', पृ० ५५।
२. वही।
३. वही, पृ० ६९।
४. वही, पृ० ७८।
५. 'मधुकलश', पृ० ८२।
६. 'मधुबाला', पृ० १२४
७. 'मिलनयामिनी'।

मनोरम और जीवन्त रूप-चित्रण करना, अद्‌भुत कल्पना-शक्ति और प्रतीक-विधानका परिचायक है। उसने जिस सुराका पान किया है, वह स्वयं लिखा है।[1]

बच्चन इसपार-उसपारके नहीं, मँझधारके गायक हैं। वे तूफान और झंझावातके कवि हैं। मस्ती उनका जन्मसिद्ध अधिकार है, जवानी उनकी अक्षय है। प्रमाण-स्वरूप निम्नलिखित कुछ पंक्तियाँ उद्‌धृत हैं—

(क) सिन्धुके इस तीव्र हाहा-
कारने विश्वास मेरा,
है छिपा रखा कहीं पर
एक रस-परिपूर्ण गायन।
तीर पर कैसे रुकूँ मैं, आज लहरोंमें निमन्त्रण।[2]

(ख) तुम तूफान समझ पाओगे ?
गीले बादल, पीले रजकण
सूखे पत्ते, रूखे तृण घन
लेकर चलता करता 'हरहर' इसका गान समझ पाओगे ?[3]

(ग) शब्द 'हरहर' शब्द 'मरमर'
तरु गिरे जड़ से उखड़ कर,
उड़ गये छत और छप्पर मच गया उत्पात साथी।
प्रबल झंझावात साथी।[4]

(घ) उठ गया लो पाँव मेरा
छूट गया, जो ठाँव मेरा।
अलविदा, ऐ साथ वालो,
और मेरा पंथ-डेरा,
तुम न चाहो मैं न चाहूँ,
कौन भाग्य-विधान रोके।
कौन यह तूफान रोके।[5]

व्यक्तिगत जीवनके आरोपोंका उत्तर, 'मधुकलश'का यही प्रधान स्वर है। कविकी वासना, कविकी निराशा, कविका गीत, पथभ्रष्ट, कविका उपहास आदि गीत इसी दिशाके सूचक हैं। 'मधुकलश' गीतमें एक अक्षुण्ण जीवन-धाराका प्रखर स्वर मुखरित है—

---

१. मैं स्नेह-सुराका पान किया करता हूँ—'मधुबाला', पृ० १२२।

२. 'मधुकलश', पृ० ९९।

३. 'निशा-निमन्त्रण', पृ० ३४।

४. वही, पृ० ४५।

५. 'सतरंगिनी', पृ० ११४।

जल में, थल में, नभमण्डल में
है जीवन की धारा बहती,
संसृति के कूल-किनारों को
प्रतिक्षण सिंचित करती रहती,[१] आदि।

बच्चनके गीतोंकी सम्बोधन-शैलीमें विविधता और सहजता है—

—है यह पतझड़ की शाम, सखे !
—प्रबल झंझावात, साथी !
—दीप अभी जलने दे, भाई !
—आज सुखी मैं कितना प्यारे !
निशा-निमन्त्रण, पृ० ३५, ३६, ४५, ८३

यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि निशा-निमन्त्रणके कवि विधुर बच्चनके सारे सम्बोधन पुल्लिंग हैं, जब कि मिलन-यामिनी और प्रणय-पत्रिकाके सम्बोधन स्त्रीलिंग—

(क) आज मन वीणा, प्रिये फिरसे कसो तो
(ख) आज संगिनि, प्रीतिके तुम गीत गाओ
(ग) सखि अखिल प्रकृतिकी प्यास कि हम-तुम भींगे
(घ) कहाँ विमोहिनि, ले जाओगी
—मिलन-यामिनी, पृ० २५, ३७, १४९, १६६

(ङ) सुमुखि, कभी क्या मेरे जीवनके भी ऐसे दिन आयेंगे
(च) तुम अपने जीवनकी गाँठें खोलो संगिनि, मैं भी खोलूँ
(छ) सखि, अभी कहाँसे रात अभी तो अम्बरमें लाली
(ज) हो चुका है चार दिन मेरा तुम्हारा, हेम हंसिनि, और इतना भी यहाँ पर कम नहीं है।
—प्रणय-पत्रिका, पृ० ४४, ९०, ९४, ११

महादेवीकी वेदना हारी हुई आत्माकी विजित वाणी है। बच्चनकी वेदना आगे आनेवाली विपत्तियोंको सहनेका अभ्यास। एकमें पराजय है, दूसरेमें संघर्षरत व्याकुलता! एक टूट गयी है, दूसरा टूटेको जोड़नेकी अदम्य लालसा और साहस लिये हुए। दुःखमयी परिस्थितियोंको वह एक प्रत्याशित घटना मानता है—

(१) सौ-सौ तीखे काँटे आये
फिर-फिर चुभने तन में मेरे !
था ज्ञात मुझे यह होना है,
क्षण-भंगुर स्वप्निल फुलझड़ियों।
बदला ले लो सुख की घड़ियों।[२]

---

१. 'मधुकलश', पृ० २७।
२. 'आकुल-अन्तर', पृ० १६।

चोट सहनेकी उसमें वीरता है—
चोट दुनिया देव की सह
गर्व था, मैं वीर ।[1]

साधनाका मौन किसी व्यक्तिकी महत्तम उपलब्धि है । आकुल-अन्तरके नवें गीतका शब्द-शोध कविकी गहरी अनुभूतिका परिचायक है । अन्तमें निष्कर्ष-रूपमें कवि कहता है—

कौन आया और किसके पास कितना,
मैं करूँ अब शब्द पर विश्वास कितना,
कर रहे थे जो हमारे बीच छल-व्यापार ।
क्षीण कितना शब्दका आधार ।[2]

सौन्दर्य-वृत्ति और क्षुधा-वृत्तिकी समस्याके निम्नलिखित चित्रमें कविकी गहरी दृष्टि-का परिचय मिलता है—बाह्य परिस्थिति और आन्तरिक प्रतिक्रियाका कैसा पुष्ट उदा-हरण है—

इस अँधेर नगरके अन्दर,
दोनोंमें ही सत्य बराबर,
बिस्तुइयाकी उदर क्षुधा और
तितलीके परकी सुन्दरता ।
वह तितली थी, यह बिस्तुइया ।[3]

बच्चनका आशावादी स्वर सतरंगिनीमें खुलकर फूटा है । अपने निराश मनको तर्कों और भावोंसे समझानेके प्रयासकी कला श्लाघ्य है । आशाका उदय इन पंक्तियोंमें हुआ है—

मेरे दृगों के अश्रुकण
को पार करती किस नयन
की तेजमय, तीखी किरण
जो हो रही चित्रित हृदयपर एक तेरी संगिनि ।[4]

आगे उसीकी पुष्टि हुई है—

१. अँधेरी रातमें दीपक
जलाए कौन बैठा है ?[5]

२. है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

---

१. 'आकुल-अन्तर', पृ० १८ ।
२. वही, पृ० २४ ।
३. वही, पृ० ७७ ।
४. 'सतरंगिनी', पृ० ७ ।
५. वही, पृ० ३१–३४ ।

एक अपनी शान्तिकी
कुटिया बनाना कब मना है ?[१]

३. साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही, मुसाफिर ।[२]

४. सोच न कर सूखे नन्दनका
देता जा बगियामें पानी ।[३]

५. जो बीत गयी सो बात गयी ।[४]

६. महानाशकी छातीपर तू
कर सकता था नव निर्माण ।[५]

७. नीड़का निर्माण फिर-फिर ।[६] आदि-आदि ।

अपने गीतोंके सम्बन्धमें बच्चनने बहुतसे गीत लिखे हैं—गीतके गीत । एक साथ ऐसे इतने गीत किसी कविने नहीं लिखे—

१. प्राण, मेरा गीत दीपक-सा जला है ।
२. आज संगिनि, प्रीतिके तुम गीत गाओ ।
३. गीत मेरे; देहरीके दीप-सा बन
४. मैं गाता हूँ इसलिए कि पूरबसे सुरभित
५. मैं गाता हूँ, इसलिए जवानी मेरी है

—मिलन-यामिनी, पृ० २२, ३७, ५१, ५५, १२४

६. वेदनाका गीत गाकर वेदना तुमने बँटा ली ।
७. तुम गा दो मेरा गान अमर हो जाये ।

—सतरंगिनी, पृ० २३५, २३८

८. कोई पार नदीके गाता
९. कहते हैं तारे गाते हैं ।
१०. मैंने दुर्दिनमें गाया है ।
११. अब वे मेरे गान कहाँ हैं ।
१२. मैं गाता, शून्य सुना करता ।

—निशा-निमन्त्रण, पृ० ४९, ५४, ७९, ९३, १०२

१३. गीत कह इसको न दुनिया,

---

१. 'सतरंगिनी', पृ० ६३ ।
२. वही, पृ० ६९–७४ ।
३. वही, पृ० ८१–८५ ।
४. वही, पृ० ८६–८८ ।
५. वही, पृ० १०३ ।
६. वही, पृ० १०५–१०८ ।

यह दुखों की माप मेरे

—मधुकलश, पृ० ७३

१४. आज गीत मैं अंक लगाये
भू मुझको, पर्यंक मुझे क्या,

१५. एक यही अरमान गीत बन, प्रिय, तुमको अर्पित हो जाऊँ।

१६. बादल घिर आए गीतकी बेला आई।

—प्रणय-पत्रिका, पृ० ३४, ३८, ६४

बच्चनकी बहुत बड़ी विशेषता है भाषाकी सरलता। सरल लिखना सरल नहीं है, इस कथनकी सिद्धि हैं बच्चनके गीत। छायावादकी भाषाको जनतातक लानेके युग-प्रवर्त्तनका कार्य इस कविने किया। एकस्वरसे इसे सभी स्वीकार करते हैं।[1] बच्चनने अभिधा-शक्तिसे सम्पन्न गीतोंमें भी अद्भुत मार्मिकता भर दी है। ऐसा अनुभूतिकी तीव्रताके कारण ही संभव हुआ है।

सांगीतिकता बच्चनके गीतोंमें सहज-समाहित है। १२-१६ मात्राओंके गीत—सरल-तरल शब्दोंमें अनुस्यूत सहज ही गेय हैं। आकाशवाणीके सुगम संगीतमें इनके गीतोंकी धुनें इस बातकी प्रमाण हैं। त्रिभंगिमा और चार खेमे चौंसठ खूँटेमें लोकधुनोंका आधार है। निशा-निमंत्रण और एकान्त संगीतके गीत अधिक ताल-बद्ध है। डॉ० नगेन्द्रने ठीक ही लिखा है—"निशा-निमंत्रणके अनेक तथा एकान्त संगीतके कुछ गीतोंकी रागात्मक अन्विति हिन्दी गीतिकाव्यके लिए आदर्श है। निशा-निमंत्रणमें तो यह अन्विति पृथक्-पृथक् गीतोंमें ही नहीं मिलती उसकी सम्पूर्ण गीतमालामें ही प्रबल रागात्मक अन्विति वर्त्तमान है, और यह ठीक ही कहा गया है कि निशा-निमंत्रण स्फुट गीतोंका संकलन न होकर मानव-जीवनकी करुणाका एक महागीत है।"[2]

---

१. "बच्चनजीने भाषाकी संभावनाओंका भी अनुसंधान किया तथा अपने भावानुरूप उसका एक ऐसा स्वरूप ढूँढ़ निकाला जो हर तरहसे कविताकी शोभा और शक्तिको बढ़ाने वाला था। उनका आविर्भाव, हालमें हिन्दी साहित्यकी प्रमुख घटनाओंमेंसे एक है तथा उनके हाथों जनता-के बीच हिन्दी कविताका बहुत बड़ा यशोविस्तार हुआ है।"

—दिनकर, मिट्टीकी ओर, पृ० ३५।

... ...

—बच्चनजीके इन प्रगीतोंमें नये काव्य-साधनोंका प्रयोग हुआ था—नयी सामान्य भाषा और नया सरल भाव विन्यास—जो इन्हें एक स्वतंत्र काव्यस्वरूप और रचनात्मक विशेषता देते थे।

—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, पृ० ३४।

... ...

छायावादी कवियोंने लाक्षणिक वक्रतासे भाषाको दुरूह बना दिया था, बच्चनने उसे इस वक्र भंगिमासे बचाया। सहज सीधी भाषामें, सहज सीधी शैलीमें, अपनी बात कहनेके कारण बच्चन बहुत ही लोकप्रिय हुए।—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, 'हिन्दी साहित्य, उद्भव और विकास', पृ० ४७९।

२. आधुनिक हिन्दी कविताकी मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ० ९३-९४।

बच्चन गीतिकाव्यके इतिहासमें बहुत अधिक पृष्ठोंके अधिकारी हैं। ये आकाशके नहीं धरतीके गीतकार हैं, इनके स्वरको जीवनकी ठोस अनुभूतियाँ प्रेरणा देती हैं। गीतको भाव-भाषा और शिल्प सभी दृष्टियोंसे इन्होंने सँवारा है।[1] इन्होंने सैकड़ों नवयुवक कवियोंको प्रभावित किया है।

रामधारी सिंह 'दिनकर'

दिनकरकी प्रतिभा वीररसात्मक, ऐतिहासिक और वर्णनात्मक ओजपूर्ण कविताओंके क्षेत्रमें अधिक विकसित हुई है। उनकी काव्य-कलाका उत्कर्ष इतिहास और राजनीतिकी साहित्यिक अभिव्यंजनामें है। उनकी दृष्टि लघुता और संक्षिप्तताके नहीं, व्यापकता और विशालताके उपयुक्त है। वे विचारके कवि हैं। प्रबन्धके क्षेत्रमें उनके महाकाव्यत्वका नया शिल्प कुरुक्षेत्र और उर्वशीमें है।

फिर भी दिनकरके कुछ गीत अत्यन्त सुन्दर हैं—हिन्दी गीतिकाव्य की निधियाँ। चाहे वे 'निरुद्देश्य प्रसन्नता'के क्षणमें लिखे गये हों, चाहे उन्हें लिखकर कवि अपने हाथोंसे छूट गया हो।[2] भावुक क्षणोंको अमर बनाने वाले ये गीत वैयक्तिकताकी कसौटीपर खरे उतरे हैं।[3] गीतिकाव्यकी दृष्टिसे रसवन्ती और नीलकुसुम महत्त्वपूर्ण संग्रह हैं। दिनकरके गीत उनके सुदृढ़ विचारमय व्यक्तित्वसे फूटे हैं—जैसे चट्टानोंसे निर्झर—

जग तो समझता है यही,
पाषाणमें कुछ रस नहीं,
पर गिरि-हृदयमें क्या न
व्याकुल निर्झरोंका वास है![4]

गीत-शिशु कवितामें गीतोंके प्रति कविकी प्रीति भरी दुर्बलता प्रकट होती है—

छूकर भाल वरद करसे, मुख चूम बिछा दो इनको
आशिष दो ये सरल गीति-शिशु विचरें अजर-अमरसे
दिशि-दिशि, विविध प्रलोभन जगमें, मुझे चाह बस इतनी
कभी निनादित द्वार तुम्हारा हो इनकी जय-जयसे।[5]

---

१. भावकी दृष्टिसे हिन्दी कविताको बच्चनकी देन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ही, इसके अतिरिक्त शैलीकी सरलता और माधुर्यकी दृष्टिसे भी हिन्दी कविताको बच्चनने बहुत सबल बनाया है। हिन्दी काव्यके शिल्प विधानको बच्चनकी यह देन निस्सन्देह नवीन दिशा देनेवाली सिद्ध हुई है।
—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, 'हरिवंशराय बच्चन', पृ० २४।

२. ......रसवन्तीकी रचना निरुद्देश्य प्रसन्नतासे हुई है...इन गीतोंमें, अपने हाथसे छूट-सा गया हूँ...
—रसवन्तीकी भूमिका, पृ० १।

३. ...चित्र लेते समय मैं तटस्थ नहीं रह सका और दृश्योंके साथ तत्संबंधी अपनी निजी भावनाओंको भी अंकित कर गया। —वही।

४. वही, पृ० ३।

५. 'रसवन्ती', पृ० ४।

जैसे दिनकरकी कविताओंमें उनके विचार और भाव बड़े स्पष्ट हैं, वैसे ही उनके गीतोंमें भी चित्रोंकी सुस्पष्टता है। 'गीत अगीत कौन सुन्दर है'में गीत और अगीतकी व्याख्या करनेवाले चित्र दोनों पक्षोंको अलग-अलग चित्रित करते हुए भी एक साथ सम्बद्ध हैं। ऐसा लगता है कि गंगा-यमुना एक धार होकर बहती हुई भी उज्ज्वल नील रंगोंसे स्पष्ट है—

गाकर गीत विरहके तटिनी,
वेगवती बहती जाती है,
दिल हलका कर लेनेको
उपलोंसे कुछ कहती जाती है।
तटपर एक गुलाब सोचता—
'देता स्वर यदि मुझे विधाता,
अपने पतझड़के सपनोंका,
मैं भी जगको गीत सुनाता।'
गा-गाकर बह रही निर्झरी,
पाटल मूक खड़ा तटपर है।
गीत अगीत कौन सुन्दर है।[1]

एक ही विषयको विविध कोणोंसे देखनेकी क्षमता दिनकरके गीतोंमें बहुत सफल है। प्रीति क्या है? वह अरुण साँझके घनके समान पल भर चमक कर निखर जानेवाली है, वह, नील गगनके समान गंभीर है, वह पूर्णचन्द्रके समान नहीं है, वरन् दूज-कलाकी भाँति है। प्रीति अनबोल है, अगम्य है। विरहिणी तिल-तिल जलती है। उसका अन्तर्दाह मंगलमय है, मधुर है।

—दिनकरकी ये स्थापनाएँ दो-दो पंक्तियोंमें वेधकताके साथ चित्रित हुई हैं—

—प्रीति न अरुण सांझके घन सखि!
—प्रीति नील, गंभीर गगन सखि!
—प्रीति न पूर्ण चन्द्र जगमग सखि!
—दूज-कला यह लघु नभ-नग सखि!
—मनकी बात न श्रुतिसे कह सखि!
—कितना प्यार? जान मत यह सखि!
—तृणवृत् धधक-धधक मत जल सखि!
—अन्तर्दाह मधुर मंगल सखि![2]

प्रेम एक अतृप्ति है, एक विवशता है! वह सौन्दर्य है अप्रतिम! एक गीतमें कविके ये भाव कितने मोहक ढंगसे व्यक्त हुए हैं—

---

१. 'रसवन्ती', पृ० १३।
२. वही, पृ० २१।

उरकी यमुना भर उमड़ चली,
तू जल भरनेको आ न सकी,
मैंने जो घाट रचा सरले!
उसपर मंजीर बजा न सकी।
दिशि-दिशि उँड़ेल विगलित कंचन,
रँगती आयी सन्ध्याका तन,
कटिपर घट, करमें नील वसन,
कर नमित नयन चुपचाप चली,
ममता मुझपर दिखला न सकी,
चरणोंका धो कर राग नील—
सलिलाको अरुण बना न सकी।[१]

गीत और अगीतसे आगे बढ़ कविने अगेयकी महत्ताका गान इन पंक्तियोंमें किया है—

गायक गान, गेयसे आगे
मैं अगेय स्वप्नका श्रोता मन!
सुनना श्रवण चाहते अब तक
भेद हृदय जो जान चुका है,
बुद्धि खोजती उन्हें, जिन्हें जीवन
निजको कर दान चुका है।
खो जानेको प्राण विकल है
चढ़ उन पद्मोंके ऊपर—
बाहुपाशसे दूर जिन्हें विश्वास
हृदयका मान चुका है।
जोह रहे उनका पथ दृग,
जिनका पहचान गया है चिन्तन।[२]

रहस्य और सम्बल शीर्षक गीत चिन्तन-प्रधान हैं। किन्तु चिन्तनने भावनाको उभारा है, दबाया नहीं—

तुम समझोगे बात हमारी?
उडु-पुंजोंके कुंज सघनमें,
भूल गया मैं पंथ गगनमें
जगे-जगे आकुल पलकोंमें बीत गयी कल रात हमारी।[३]

... ...

---

१. 'रसवन्ती', पृ० ६२।

२. वही, पृ० ९०।

३. वही, पृ० ९६।

सोच रहा, कुछ गा न रहा मैं।
निज सागरको थाह रहा हूँ,
खोज गीतमें राह रहा हूँ,
पर यह तो सब कुछ अपने हित, औरोंको समझा न रहा मैं।[१]

प्रतीक्षाका एक स्वाभाविक चित्र बड़े प्रवाहपूर्ण छन्दमें आया है—

तुम जानती सब बात हो,
दिन हो कि आधी रात हो,
मैं जागता रहता कि कब
मंजीरकी आहट मिले,
मेरे कमल-वनमें उदय
किस काल पुण्य प्रभात हो,
किस लग्नमें हो जाय कब
जानें कृपा भगवान की।
अयि संगिनि सुनसान की।[२]

किन्तु क्या मनके भाव शब्दोंमें बँध पाते हैं ? क्या मनुष्य वह सब कुछ गा सकता है, जो वह चाहता है ? उत्तर दिनकरके शब्दोंमें सुनिए—

संगिनि, जी भर गा न सका मैं।
गायन एक व्याज इस मनका,
मूल ध्येय दर्शन जीवनका,
रँगता रहा गुलाब पटीपर अपना चित्र उठा न सका है !

... ...

गाता गीत विजय-मद-माता,
मैं अपने तक पहुँच न पाता,
स्मृति-पूजनमें कभी देवताको दो फूल चढ़ा न सका मैं ![३]

ऋतु-संबंधी गीतोंमें पावस-गीतकी शब्द-झंकृति कर्ण-सुखद है—

अम्बरके गृह गान रे, घन-पाहुन आए।
दृष्टि-विकल घनका गुरु गर्जन,
बूँद-बूँद में स्वप्न-विसर्जन,
वारिद सुकवि समान रे, बरसे कल पाए !
तृण, तरु, लता, कुसुमपर सोई,

---

१. 'रसवंती', पृ० ९७।
२. वही, पृ० ९९।
३. वही, पृ० १०१।

बजने लगी सजल सुधि कोई,
सुन-सुन आकुल प्राण रे, लोचन भर आए ।[१]

छन्द और समस्त-पद-प्रधान गीतोंमें दो गीत सफल हैं—

एक—

नाचो हे नाचो नटवर !
चन्द्रचूड़, त्रिनयन ! गंगाधर ! आदिप्रलय ! अवटर ! शंकर
आदि लास अविगत, अनादिस्वन
अमर, नृत्य, गति ताल चिरन्तन
अंगभंगि हुंकृति-झंकृति कर थिरक-थिरक हे विश्वम्भर ![२]

इस गीतमें ओज है !

दूसरा—

जागो हे अविनाशी !
जागो किरण-पुरुष ! कुमुदासन ! विधु-मंडलके वासी !
विभा-सलिलका मीन करो हे !
निज में मुझको लीन करो हे !
विधु-मंडलमें आज डूब जानेका मैं अभिलाषी ![३]

मनकी व्यथा प्रियके अभावमें घनीभूत होकर गीत बन जाती है। कवि रोता है, लक्ष्यार्थकी भाषामें गीत रोते हैं—

तुम बसे नहीं इन में आकर
ये गान बहुत रोये
इनको समेट मनमें लाकर
ये गान बहुत रोये !
पर, कहीं नहीं तुमको पाकर
ये गान बहुत रोये।
यह सोच विरहमें अकुलाकर
ये गान बहुत रोये !

ऊपर टेककी पंक्तियाँ दी गयी हैं। 'इन'की सटीक व्याख्या अन्तराओंमें की गयी है।[४]

गायकका चित्रण करते हुए कविने उसकी विविध छवियों और कार्य-कलापोंको उपयुक्त भाषा-शैलीके सहारे उपस्थित किया है—

---

१. 'नीलकुसुम', पृ० २२।
२. 'रेणुका', पृ० १।
३. 'नीलकुसुम', पृ० २३।
४. वही, पृ० २४-२५।

ढलकते गीतमें मोती
चमकती आँखमें शबनम !
नहा कर सात रंगोंमें
कहींसे वेदना आयी
उदासी या किसी गम की
उषाके लोकमें छायी
कसकती वेदना ऐसे कि
जैसे प्राण हिलते हों,
किरण-सी फूटती, मानों
तिमिरमें फूल खिलते हों,
अँधेरी रातमें ज्यों बज
रही हो ज्योति की सरगम ![1]

दिनकर भारतके अतीत और वर्त्तमानके दिव्य गायक रहे हैं, जिन्होंने भविष्यके सपनेकी आकुल तस्वीर उतारी है। एक गीत अतीत भारतका लें, जिसमें सोये भारतीयोंको जगानेका आग्रह है—

रे प्रवासी, जाग, तेरे देशका संवाद आया !
सिन्धु-तटका आर्य भावुक
आज जग मेरे हृदयमें,
खोजता उद्गम विभाका
दीप्त-मुख विस्मित उदयमें
उग रहा जिस क्षितिज-रेखा
से अरुण, उसके परे क्या ?
एक भूला देश धूमिल-सा मुझे क्यों याद आया ![2]

दूसरा चित्र वर्तमान भारतका है, जिसमें कविकी अन्तर्वेधी दृष्टिने बाह्य अनेकरूपताके भीतर झाँक कर उसके वास्तविक स्वरूपको परखनेका प्रयास किया है—

तुमको या तेरे नदीश, गिरि, वनको नमन करूँ मैं !
मेरे प्यारे देश ! देह या मनको नमन करूँ मैं !
किसको नमन करूँ मैं भारत ! किसको नमन करूँ मैं ![3]

दिनकरका प्रकृत स्वरूप वहाँ स्पष्ट हुआ है, जहाँ उन्होंने वीरता या इससे सम्बद्ध प्रसंगोंको गाया है। शहीदोंके स्तवनमें उनकी वाणी कितनी ओजपूर्ण और लयात्मक है—

१. कलम आज उनकी जय बोल !
पीकर जिनकी लाल शिखाएँ

---

१. 'नीलकुसुम', पृ० २७।
२. 'रसवन्ती', पृ० ८५।
३. 'नीलकुसुम', पृ० २१।

उगल रही लू-लपट दिशाएँ,
जिनके सिंहनादसे सहमी धरती रही अभी तक डोल !

२. नमन उन्हें मेरा शतबार,
जिनकी चढ़ती हुई जवानी
खोज रही अपनी कुरबानी
जलन एक जिनकी अभिलाषा, मरण एक जिनका त्योहार !

३. आनेवालो, तुम्हें प्रणाम !
फिर डंकेपर चोट पड़ी है
मौत चुनौती लिए खड़ी है
लिखने चली आग, अम्बरपर कौन लिखाएगा निज नाम ![1]

इस तरह दिनकरके प्रायः दो दर्जन गीत अत्यन्त प्रोज्ज्वल हैं।

जानकीवल्लभ शास्त्री

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री आधुनिक हिन्दी गीतकारोंमें जिस स्थानके अधिकारी हैं, उन्हें आजतक नहीं मिला। निरालाको प्रशंसक मिले, समझदार नहीं; उनके इस विद्वान् भक्तको समझदार मिले, प्रशंसक नहीं। गुट और प्रचारके इस युगके बहुत सारे आलोचकोंने जैसे जानबूझकर इनकी उपेक्षा की हो। इनके गीतोंके अध्ययनसे मेरी यह सुनिश्चित धारणा है कि संख्या, शिल्प, रागतत्त्वकी दृष्टिसे हिन्दीके ये अत्यन्त प्राणवान् गीतकार हैं। संस्कृतकी ज्ञानराशि इनके गीतोंमें घुल-मिलकर सहज बन गयी है। यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। प्रायः विद्वत्ता प्रतिभाके साथ गलती-पचती नहीं ! इन्होंने शास्त्रीय संगीतबद्ध गीत लिखे हैं, सरल-तरल गीत लिखे हैं, गजलें और रुबाइयाँ लिखी हैं। शब्दोंकी अनुरणनात्मकताकी अद्भुत पहचान है इन्हें। जानकीवल्लभ संस्कृतसे हिन्दीमें आये और इसका श्रेय वे निरालाको देते हैं। 'रूप-अरूप'में गीतकारके प्रारम्भिक बोल हैं, जिनमें पर्याप्त दार्शनिकता है। संस्कृतसे ताजा-ताजा आनेके कारण वेद-वेदान्त उपनिषद्का प्रभाव कुछ गहरा है। अनुभूतियाँ उतनी तीव्र नहीं।

गीतिकाव्यका निखरा हुआ रूप 'तीर-तरंग' है। कविके शब्दोंमें "तीर-तरंग'में मेरे अन्तरङ्गकी कुछ जड़-चेतन प्रवृत्तियोंकी प्रतिच्छाया है।······मेरे निर्जन जीवनकी करुण क्रमहीनता इसके गीतोंमें यथारूप प्रतिबिम्बित हो गयी है, इसलिए यह आश्वासन मुझे अनायास प्राप्त हो सकता है कि तीर-तरङ्ग जीवन-सङ्गीत ही है।"[2] सहानुभूति तत्त्व की पहचानकी ये पंक्तियाँ कितनी भली हैं—

मेरी पीर तुम्हें अति प्यारी,

---

१. 'चक्रवाल', पृ० ५८-५९।
२. 'तीर-तरंग', भूमिका।

ऐसी प्रीत-रीतपर जाऊँ
मैं तो बार-बार बलिहारी ![1]

गहरी दार्शनिकता कितनी सहज बन गयी है—

मैं न गगन हूँ, मैं न मही हूँ,
जिसी नामसे मुझे पुकारो,
उसी रूपका बना वही हूँ।[2]

शास्त्रीके गीतोंमें व्यंग्यार्थ और सांकेतिकताकी बड़ी मार्मिक व्यंजना मिलती है—

(१) सोनेका तपना ही क्यों
तुम अपना कंठहार भी देखो !

—तीर-तरङ्ग, पृ० ५

(२) पीला चाँद हुआ जाता है
गीला मेरा मुखड़ा।

—अवन्तिका, पृ० १४

शास्त्रीके बहुतसे गीतोंमें पाठ-मात्रसे सङ्गीतका आनन्द मिल जाता है। सङ्गीतमय शब्दोंकी योजना कविके भाषा-अधिकार और नाद-सौंदर्यकी परखका पता देती है—

(१) झलमल-मुक्तादल-नव-जलधर
जलधर-कुन्तल-जाला,
कज्जल-कल-चपला-चल-लोचन,
गोरोचन-रुचि-माला,
विमल-वलाका-"माला", सुरधनु—
अनुरंजित-वर "अम्बर"
मदिर मन्द-मन्थर-गत आगत,
स्वागत, पावस-बाला !

(२) मेघ-रन्ध्रमें मन्द्र-सान्द्र ध्वनि—
द्रिम-द्रिम-द्रिम उन्मद मृदङ्गकी !
भाद्र-समुद्र-रुद्र-रव-रसना,
नाच रही कस-दस-दिशि-वसना,
रिमझिम-रिमझिम, रुन-झुन, रुन-झुन,
छुनकिट तच्छुम रनरन-रुन-रुन
छुम-छुम छननन, झननन-झुनझुन,
मुक्तकेश सरका श्यामाम्बरा !
हरित सस्य-अंचल चंचलतर !!

---

१. 'तीर-तरंग', भूमिका, पृ० ३।
२. वही, पृ० ४।

(३) सर छलका, सरि उमगी, पुलकित अवनी बनी;
टुक झुक-झुक झूम रहा, गगन जीवन-धनी,

—मेघगीत, पृ० ७, १३, १४

(४) आओ, आँगनमें सखि, आओ
झूम-झूम, झुक-झुक, टुक गाओ।

—शिप्रा, पृ० ३६

शास्त्री हिन्दीमें आधुनिक कवियोंमें निरालाके बाद सबसे अच्छे मेघ गीतकार हैं। परिमाण और गुण दोनों ही दृष्टियोंसे उनके मेघगीत सुन्दर हैं। नाद-सौन्दर्य भी सबसे अधिक मेघ-गीतोंमें ही है, जो मेघकी प्रकृतिके अनुकूल ही है। इसी तरह राग-रागिनियोंमें बँधे गीत शास्त्रीय संगीतकी कसौटीपर भलीभाँति खरे उतरे हैं—

(१) केदारा—किसने बाँसुरी बजायी।
जनम-जनमकी पहचानी वह तान कहाँसे आयी ?

(२) बागीश्वरी, विलम्बित—हम मरु-तरु हैं लू-लपटोंसे—
मुरझे, झुलसे जले हुए;
हत शिशु हैं, कुश-काशवती
वनदेवि-अंकमें पले हुए···

(३) देश— तुनुक रेशमी पीला धागा,
सुधा बहनने भेजा,
मेरा रक्षा-बन्धन जागा।

—शिप्रा, पृ० २, ६०, ६२

सौन्दर्य-चित्रणमें कहीं वासनात्मक उभार नहीं, सूक्ष्मभावोंसे भरे आत्म-प्रसन्न सौन्दर्य चित्र बड़े मोहक हैं—

(१) मुकुल मुख ! फूलो ना, फूलो ना !
देखी रेख, सुनी धुनि पगकी
भूलो ना, भूलो ना।

(२) सौन्दर्य तुम्हारा नीर भरा
है दरस अमृतमय-तीर भरा
है परस वसन्त समीर भरा !

—तीर-तरङ्ग, पृ० १४, १५

(३) रूप धूप निर्धूम, सुरभिसे ही पहचाना जाता,
रूप बाँसुरी-साँस, दूरसे धुन सुन मन अकुलाता,

—अवन्तिका, पृ० ९

आत्मा-परमात्मा और जन-जीवन-सम्बन्धी दार्शनिक दृष्टिकोण कितनी सरल और मोहक भङ्गिमाओंके साथ शास्त्रीके गीतोंमें प्रकट हुए हैं—

(१) बना घोंसला पिंजड़ा पंछी !
अब अनन्तसे कौन मिलाए
जिससे तू खुद बिछड़ा पंछी ।

—तीर-तरंग, पृ० ४३

(२) आशा औ विश्वास प्रगतिके दो अश्रान्त चरण हैं,
नत-उन्नतमें घनीभूत पथ-शायी तिमिर-हरण है ।

—अवन्तिका, पृ० ४९

(३) क्यों है उन्नत यह आसमान ?
होता जो शून्य, असार, वही
रहता होकर इतना उतान ? —शिप्रा, पृ० ८६

कविने अपनी मनःस्थिति और सामाजिक परिप्रेक्ष्यका चित्रण भी अपने गीतोंमें किया है—

१. विजन वनका सुमन हूँ मैं, सुरभि अपनी सँजोए !
भ्रमरके गानसे अनजान प्राणोंको भिगोए !

—अवन्तिका, पृ० ३

२. खोया-खोया सा दिखता मैं
जब लिखता हूँ गीत !
हाँ कुछ भाव बिछड़ जाते हैं,
आँसू उमड़-उमड़ आते हैं,
नयन गगनमें गड़ जाते हैं ।

—शिप्रा, पृ० ८३

कविने कुछ सामाजिक और राष्ट्रीय भावोंसे पगे गीत भी लिखे हैं, पर उनमें भाव-विदग्धता नहीं मिलती—

१. हम प्रतिहिंसा-स्पर्द्धाकी दें सीख ?
भिक्षुकको दारिद्र्य-दैन्य दें भीख ?
हम तम देखें, जब पड़ता रवि दीख ?
जीवन पारावार, प्रेम ही इसका कूल किनारा !

—शिप्रा, पृ० ८२

२. तेरे भौतिक तनको कोई
दे पुष्ट खाद्य दे प्रबल प्राण
दे मर-मिटनेकी स्वार्थ-सिद्धि
के लिए ज्ञान, अभिमान मान !
युग ! तेरी आत्माको मेरा भी
एक शान्ति-सन्देश है ।

—तीर-तरंग, पृ० ६०-६१

कहीं-कहीं गीतोंमें व्यंग्यकी मात्रा बड़ी चोटीली हो गयी है। 'वैशाखी'में संग्रहीत रचनाओंका गीतमय रूप इन पंक्तियोंमें है—

हंसियों ही के साथ हाथका और गलेका—
लाघव दिखता है, होता है भला भलेका!
गाँवोंकी संस्कृतिका वह निःशुल्क प्रदर्शन,
कलाकारके लिए एक रखता आकर्षण!
इसी भाँति दिखते-दिखते सब दिख जाता है,
लोह लेखनीवाला क्या-क्या लिख जाता है।

—सङ्गम, पृ० २३

'कोमल स्वरसे कठिन रागिनि' गानेकी कलामें कवि निष्णात है। कल्पनाकी उड़ान भावनाओंको बल देती है। अलंकार-बोझिल चित्र बहुत कम हैं। अधिकांश स्थलपर अलंकार सहज स्वाभाविक और अर्थके स्पष्टीकरणमें सहायक है। अभीतक रूप-अरूप, तीर-तरङ्ग, शिप्रा, अवन्तिका, मेघगीत और संकेत गीतोंके केवल छः संग्रह प्रकाशित हुए हैं। गीति-नाट्य 'पाषाणी'में भी अत्यन्त मधुर गीतोंकी प्रसंगानुकूल योजना की गयी है। 'हंस किंकिणी' शिशिरकिरण, सुरसरि, उत्पलदल, माध्यन्दिनी आदि अनेक संग्रह प्रतीक्षित हैं, यद्यपि उनके अधिकांश गीत आकाशवाणी, पत्र-पत्रिकाओं एवं कवि-सम्मेलनोंमें सुयश प्राप्त कर चुके हैं। इन अप्रकाशित गीतोंमें कविका स्वर और भी सहज एवं भाव और भी ऊँचे उठ गये हैं। आधुनिक हिन्दी गीति-काव्यके क्षेत्रमें जानकीवल्लभ शास्त्रीकी कीर्त्ति अक्षय होगी।

गोपाल सिंह नेपाली

प्रायः ऐसे कवि बड़े नवीन और मार्मिक होते हैं, जिन्हें अध्ययनका मुँहताज नहीं होना पड़ता, वरन् जो केवल अपनी अमोघ प्रतिभाके बलपर नयी-नयी पंक्तियोंका सृजन करते हैं। नेपालीका स्थान ऐसे ही सहज कवियोंमें अग्रगण्य है। प्रकृति-पर्यवेक्षणकी इनमें अपूर्व क्षमता थी। किसी बातको सरल वक्रताके साथ इतनी आकर्षक शैलीमें ये रख देते थे कि श्रोता सहज ही मुग्ध हो जाते थे। ये गुनगुनाकर लिखा करते हैं—अतः इनकी मधुर कंठ-ध्वनिके अनुकूल ही झंकारपूर्ण शब्द निःसृत होते थे।

चित्रपटके क्षेत्रमें ये अर्थाभावके कारण गये। इतना मानना पड़ेगा कि इस क्षेत्रमें भी इनके गीतोंसे साहित्यिक अभिव्यक्ति छूट नहीं पायी। यह ठीक है कि इस क्षेत्रमें बहुत उच्च मर्यादाको सुरक्षित नहीं रखा जा सकता था, पर वचन-वक्रता और नवीन सूझके कारण बिना लेखकका नाम जाने ही यह कह दिया जा सकता है कि कौन-कौन गीत नेपालीके हैं। इनके व्यक्तित्वकी छाप ऐसी स्पष्ट वचन-वक्रताके कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं—

१. सौ सौ अँधियारी रातोंसे

तेरी मुस्कान कहीं सुन्दर ![1]

२. दो मेघ मिले-बोले-डोले
बरसाकर दो-दो फूल चले ![2]

३. लहर-लहर हर नैया डोले
नैयामें खेवैया रे ![3]

४. उन्तीस वसंत जवानीके
बचपनकी आँखोंमें लीन ![4]

नेपालीके गीतोंमें प्रकृतिकी सुषमाका बड़ा सहज और आकर्षक चित्रण मिलता है—

चमक रहे ओस बूँद
झलक उठे रङ्ग रङ्ग
आज सिन्धु-वक्षपर
उठ रही नयी तरङ्ग !
आज स्वर्ग-किरण सङ्ग
ज्वार-नृत्यका प्रसङ्ग
मचल रही है उमङ्ग
उछल रही है तरङ्ग
बूँद-बूँद ही सही
मंद-मंद ही सही ![5]

सङ्गीतमय स्वर भी सहज रूपसे इनके गीतोंमें आ गये हैं—कोई सप्रयास योजना नहीं है—

१. बादलका उमड़-घुमड़ आना
कलियोंकी बूँदें बरसाना
बजता था रिमझिम-रिमझिममें
कण्ठोंका प्यास भरा गाना ![6]

२. जगका जय-जयकार
मगका जय-जयकार
जगमग पर जगमग प्रकाश कण-कणका जय-जयकार
नव प्रभातके सुन्दर स्वर्णिम क्षणका जय-जयकार ।[7]

---

१. 'आकाशवाणी', पटना।
२. 'नवीन', पृ० ८ ।
३. 'आकाशवाणी', पटना ।
४. 'नवीन', पृ० ५५ ।
५. वही, पृ० ६५ ।
६. वही, पृ० १४ ।
७. वही, पृ० १९ ।

३. मैं स्पर्श जवानीका कोमल कोमल,
मैं अश्रु लोचनोंका निर्मल-निर्मल,
संगीत लहरका मैं कलकल-कलकल,
मैं किसी वरुणका मन चंचल-चंचल।[१]

नेपाली गीतोंका उत्स सम्पूर्ण जीवन मानते हैं। बच्चनकी भाँति उनका भी काव्य-क्षेत्र अनुभूतिका पूर्ण विस्तृत आँगन है। वे लिखते हैं—

कविने जो कुछ जाना
कविने जो पहचाना
बनता है वह छन्द-छन्दमें प्राण-प्राणमें जाना।
हृदय-हृदयका गाना
लोक-लोकका गाना
बनता है भव-लहरमें उठता हुआ जमाना।[२]

प्रकृतिके संगीतमय तत्त्वको उतारनेमें भी उन्हें अपूर्व सफलता मिली है। सावनकी समाप्तिपर बादल पानी बरसाकर वापस लौट रहे हैं, तो कवि लिखता है—

मृदु मंद पवनके झोंकोंमें
जैसे पर खोल चले पंछी
कानन-जीवनके क्षण-क्षणमें
जैसे रस घोल चले पंछी
वैसे उड़ चले घटाओंके
पंछी भी जीवन डालीसे
अवरुद्ध सूर्य भी झाँक उठा
झीने कुहरे की जालीसे
बादल बनकर अमराईसे
कुछ गूँज गयी, कुछ गीत गए![३]

कवि और कविता शीर्षक रचनामें कविता और प्रकृतिके अन्योन्याश्रय संबंधका चित्रण उनके गीतोंकी प्रकृति-परक दृष्टिको स्पष्ट करता है—

कुंज-कुंज रस-रूप बाँटता आता है ऋतुराज,
कविता गूँज उठी कोकिलकी बन पहली आवाज,
आती ग्रीष्म जगाती जगके कंठ-कंठमें प्यास,
कविता छाँह बनी तरुवरकी शीतल-सलिल-सुवास,

---

१. 'नवीन', पृ० ११।
२. वही, पृ० १६।
३. वही, पृ० १४-१५।

पावसमें भर गया मेघसे श्याम नील आकाश
बनकर मोर कुंजमें नाचा कविताका उल्लास,
पतझड़में झड़ गया पात बन रंग-रूप बन-बनका,
कविता रानी शरत्-चन्द्र बन चुनती तिनका-तिनका ।[1]

राष्ट्रीय भावनाएँ नेपालीमें प्रारम्भिक अवस्थासे ही मिलती हैं। अन्तमें वे चीनी आक्रमणके विरुद्ध आक्रोशके भाव जनतामें जगाते हुए, जन-जनमें 'हिमालयने पुकारा' संग्रहके गीत गाते हुए स्वर्गीय हुए। राष्ट्रीय भावनासे ओत-प्रोत उनकी कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं—

१. जंजीर टूटती न कभी अश्रु-धारसे
दुख-दर्द दूर भागते नहीं दुलारसे
हटती न दासता पुकारसे गुहारसे
इस गंग-तीर बैठ आज राष्ट्रशक्ति की
तुम कामना करो, किशोर, कामना करो।

२. झूम-झूम बदलियाँ
चूम-चूम बिजलियाँ
आँधियाँ उठा रहीं
हलचलें मचा रहीं
लड़ रहा स्वदेश हो
यातना विशेष हो
क्षुद्र जीत-हारपर यह दिया बुझे नहीं
यह स्वतंत्र भावनाका स्वतंत्र गान है।

३. जय हे भारत माता
जंजीरोंकी झनन-झनन सुन नवयुग दौड़ा आता
प्राचीके झिलमिल आँगनसे मुक्ति-दिवस मुस्काता

४. तुम आगपर चलो जवान आगपर चलो।

—नवीन, पृ० १।७।४६ और ७४।

कविका भावुक मन जीवनकी मार्मिक घटनाओं और छवियोंको चित्रित करनेमें बड़ा सफल हुआ है—नवीनमें ऐसी अनेक पंक्तियाँ हैं—

१. इस जीवनके चौराहेपर दो हृदय मिले भोले-भोले
ऊँची नजरों चुपचाप रहे, नीची नजरों दोनों बोले,
दुनियाने मुँह बिचका-बिचका कोसा आजाद जवानीको,
दुनियाने नयनोंको देखा, देखा न नयनके पानीको।

—पृ० ९

१. 'नवीन', पृ० १७।

२. जन्म, ज्योति, युग, प्रेम जवानी-लगते सदा नवीन
मृत्यु, तिमिर, जग, विरह, बुढ़ापा-लगते हैं प्राचीन
हँसता एक, दूसरा दृगमें अश्रु लिए श्रीहीन,
और बाल-रवि ज्योति उड़ा ले चला अश्रु भी छीन।

—पृ० २२

३. आयी आवाज
किसी पासके ही मकानसे आयी थी आवाज
तुम्हारे रोनेकी आवाज

—पृ० २१

नेपाली निश्चय ही हिन्दी गीतिकाव्यके क्षेत्रमें अपनी मस्तीभरी शैली, प्रवाहपूर्ण छन्दों एवं मर्मस्पर्शी भावोंकी दृष्टिसे अमर स्थानके अधिकारी हैं। उनसे हिन्दी गीति-काव्योंको बड़ी-बड़ी संभावनाएँ थीं।

श्यामनंदन किशोर

नवयुवक गीतिकारोंमें डॉ० श्यामनंदन किशोरका साहित्यिक व्यक्तित्व स्पर्धाका विषय रहा है।[१] एक गीतकारके रूपमें सन् १९४० से १९६४ तक लगभग इन्होंने तीन-सौ गीत हिन्दीको दिये हैं, जिनका प्रकाशन गीत-संग्रहोंमें हुआ है।[२] जिनका प्रचार-प्रसार आकाशवाणी और कवि-सम्मेलनोंसे हुआ है। ये मुख्यतः प्रेम और यौवनके तरल एवं उदात्त पक्षोंके कवि हैं। इनका गीत 'जवानी और जमाना' बड़ा प्रसिद्ध हुआ है—

१. जवानी जिनके जिनके पास
जमाना उनसे उनसे दूर।
जवानी जलता हुआ चिराग
जवानी उड़ता हुआ पराग
महल-कुटियापर एक समान
जवानी पूनमकी मुस्कान!
जमाना सदा जुटाता रहा
जवानी लुटनेको मजबूर।[३]

---

१. कवि-सम्मेलनोंमें इस वाणीको सम्मान मिला है, गोष्ठियोंमें इसने श्रोताओंको मंत्रमुग्ध किया है और सहृदयोंने इसकी सरसताकी मुक्तकंठसे सराहना की है। अपनी पीढ़ीके गीतकारोंके लिए यह वाणी स्पर्धाका विषय रही है—यही इसकी सफलताका प्रमाण है।

—प्रो० नवलकिशोर गौड़, 'शेफालिका', पृ० ८२।

२. 'शेफालिका', १९४७, 'विभावरी', १९४९, 'जवानी और जमाना', १९५१, 'ज्वार-भाटा', १९५५, 'गीत अधूरे हैं', १९६४, 'सूरज नया, पुरानी धरती', १९६४।

३. 'जवानी और जमाना', पृ० ३।

२. यौवन लहरोंका गीत कि जो
तूफानोंमें गाया जाता
वह खेल आगसे भी सकता
जो बुल-बुलसे मन बहलाता
दो पुलिनोंमें बँधकर भी यह निर्झर धारा बह पाती है।
छोटी-सी नाव जवानी की लहरोंपर आती-जाती है।[1]

इनके गीतोंमें प्रेमकी बड़ी मार्मिक उक्तियाँ हैं। १५ सालकी उम्रमें लिखे गये एक गीतकी पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं, जिन्हें सुनकर बेनीपुरीजी आश्चर्यचकित रह गये थे।[2]

दुर्दिनमें पँखुरियाँ
आशा की निखर रहीं।
बसनेके पहले ही
बस्ती यह उजड़ रही
किन्तु पथिक एक देख
मंजिलतक जानेको
कबसे किस इंगितपर
शनैः शनैः चल रहा!
एक दीप प्यारका न बुझ रहा, न जल रहा।[3]

निम्नलिखित गीतको सुनकर आचार्य शिवपूजन सहायने बिहार हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके मन्दार (भागलपुर) अधिवेशनमें अपनी माला उतार कर पहनाते हुए कहा था "आप मूर्त्तिमान गीत हैं—बादको यह रचना 'हिमालय'में छापी थी—यह रचना स्कूलमें पढ़ते लिखी गयी, जो बादको 'शेफालिका'में छपी थी—

तुम खुले नयनके सपने हो
जब सो जातीं बरसात लिये ये आँखें
जब शिथिल वेदनाकी हो जाती पाँखें,
तब मेरी ही कल्पना मनोरम रूप तुम्हारा धरकर
आती रँग जाता कनक रंगमें अम्बर।
सोते जगते भूलती नहीं छवि जिसकी
तुम वही प्राणके प्रिय मेरे अपने हो।[4]

---

१. 'शेफालिका', पृ० ४५।

२. ......तो मैं उसका चेहरा गौरसे देखने लगा। अभी जिसपर मसें भी ठीकसे नहीं भींगी, ऐसा एक मासूम चेहरा, ललाटपर कुछ बिखरी बिथुरी लटें। अरे यह दीप कहाँ जल रहा है? मैं इस उधेड़बुनमें था और वह गाये जा रहा था—'शेफालिका' की भूमिका, पृ० ग।

३. 'शेफालिका', पृ० ४२।

४. वही, पृ० ९।

किशोर अपने गीत प्रभावोत्पादक रीतिसे गाकर पढ़ते हैं, पर उनके गीतोंको पढ़ने मात्रसे वह प्रभावोत्पादकता नष्ट नहीं होती। आचार्य नलिन विलोचन शर्माने लिखा है "श्री किशोरकी अनेक कविताओंसे मैं प्रभावित हूँ···किशोरकी रचनाओंमें अनुभूतियोंकी एकतानता और रूपके विधानका ऐसा सहज समन्वय हुआ है जिससे उनकी प्रभावोत्पादकता अमोघ सिद्ध होती है।"[१] यही बात प्रकारान्तरसे नेपालीजीने भी सन् '४८में लिखी थी "मैं यह देख रहा हूँ कि इधर बिहारके हिन्दी गगनमें जो नये-नये अनेक सितारे जगमगा रहे हैं, उनमें तुम्हारा स्थान और आकर्षण सर्वाधिक आगे है। इतना सुन्दर लिखते हो तुम, पढ़ते हो तुम।"

किशोर विरोधाभासके चित्रणमें बड़े सफल हुए हैं—दो विपरीत दशाओं—भावों और अनुभावोंको काव्यात्मक शैलीमें अनोखे ढंगसे रख देते हैं—

१. दे चिर संचित पीर अमर यह,
   दो क्षणका मैं प्यार न लूँगा!
   तुम रूठे, बिछड़े दे मुझको,
   दिलमें आग, नयन में पानी![२]

२. प्रिय प्राणोंकी ज्वलित चितापर
   छन्न हो गए दृगके पानी
   पर मेरे मुस्काते अधरों
   की किसने पीड़ा पहचानी![३]

३. भीतर जलती आग, निकलता बाहर लेकिन धुँआ नहीं है।
   कौन कहेगा हँस कर अब तक मैंने कितनी व्यथा सही है।[४]

४. मेघ भरी पलकोंमें अपनी
   किसने बंद किया पूनमको।
   सघन गगनमें हँसती बिजली
   जलते प्रखर अमामें तारे
   कठिन शिलापर गिरिके चढ़ती,
   जाने, किसके लता सहारे
   कैसे आशाओंकी किरणें
   मिल जाती जीवनके तममें![५]

---

१. 'शेफालिका', पृ० ८२।
२. वही, पृ० १७।
३. वही, पृ० ६६।
४. 'विभावरी'आमुख।
५. 'ज्वारभाटा', पृ० ३४।

५. आँखों की गंगा-यमुनामें यौवन एक पिपासा !
लौट रहे पंथी पनघटसे क्यों प्यासाका प्यासा ![1]

६. एकाकी सूनेपनसे ही
कर जीवन आबाद रहा हूँ ।[2]

प्यारकी पीड़ाके चित्रणमें कविने कई मार्मिक उक्तियाँ कही हैं—

१. दुखको मैं तो साध रहा हूँ ।
आँसूसे अपने यौवन की
हलचल धीमे बाँध रहा हूँ ।[3]

२. दर्दके तारपर गा रहा गीत मैं
प्रेमकी एक सीमा मिलनमें सदा
पर विरहका प्रणय कल्पनातीत मैं ।[4]

इन गीतोंमें सरस भावोंके अनुकूल सुकोमल शब्द हैं ।[5] किशोरकी आसक्ति नये छन्दोंपर है ।[6] इनकी भाषा मर्मस्पर्शी और प्रौढ है[7] और उसमें विशेषणोंके बड़े प्रबल प्रयोग हैं । १९४७ में जब देशको नये प्रयाण-गीतोंकी आवश्यकता स्वतंत्रता-दिवसके अवसरपर हुई, तो इन्होंने कई गीत आकाशवाणी और राष्ट्रीय संस्थाओंको दिये, जिन्हें ड्रमपर कदमकी तालपर बखूबी गाया जा सकता है । यथा—

१. बदला-बदला मौसम है हिन्दुस्तानका
आज केतकी वनमें फूला जैसे फूल कृपाणका;

२. धरती माता है, माता है

३. नये सिरेसे उठो गिरेसे ज्योतिर्मय अभियान,
जवानों, आया नया विधान ।

---

१. 'ज्वारभाटा', पृ० ५२ ।

२. 'गीत अधूरे हैं (विभावरी)', पृ० ८५ ।

३. 'विभावरी', पृ० ४ ।

४. 'ज्वारभाटा', पृ० ७ ।

५. किशोरजीकी इन रचनाओंमें आशा और निराशाके मिखरे हुए चित्र मिलते है जिनकी रेखाओंमें सुकोमल भावनाओंके इन्द्रधनुषी रंग भरे हुए हैं । गीतिकाव्यके लिए जैसे सरस भाव और सुकोमल शब्द आवश्यक हैं, वे यथेष्ट मात्रामें इन गीतोंमें सजे है । किशोरजीके मधुर कण्ठकी वीणापर जब ये गीत गूँजते हैं तो जैसे भावनाएँ साकार होकर नृत्य करने लगती हैं —डॉ० रामकुमार वर्मा, 'शेफालिका', पृ० ८५ ।

६. कवि किशोरमें नवीनता उनके छन्दोंमें मिलती है । उनकी आसक्ति उन छंदोंपर है जो बहुत बारके प्रयोगसे अभी अनाकर्षक नहीं हुए हैं । इस क्रममें उनके कई गीतोंमें रूपमें ताजगी और नयापन है—'जवानी और जमाना', पृ० २ ।

७. रचना कवित्वपूर्ण है और भाषा साफ मर्मतक पैठती हुई—निराला, 'शेफालिका', पृ० ७९ ।

४. वेष न माने देश हमारा
एक महासागर है भारत चौआलिस कोटि जल धारा !

—सूरज नया, पुरानी धरती, पृ० ३,८,१४,२३

इनके राष्ट्रीय गीतोंकी प्रशंसा साहित्यिकों द्वारा हुई है।[१]

गोपालदास नीरज

नवयुवकोंमें दूसरे लोकप्रिय कवि हैं गोपालदास नीरज। नीरजके अधिकांश गीत निराशा और अवसादमें गहरे डूबे हुए हैं। इनके उदाहरण कविके प्रारम्भिक संग्रहों 'संघर्ष' और 'अन्तर्ध्वनि'में भी मिलते हैं। जीवनकी क्षणभंगुरता और पीड़ाकी अतिशयताको अनेक लुभावने चित्रोंके द्वारा स्पष्ट किया गया है—

१. आज पिलादो जी भर कर मधु
कलका करो न ध्यान सुनयने !

—विभावरी, पृ० ५९

२. छिन-छिन क्षीण हो रहा श्वासकोष जीवनका,
छिन-छिन बढ़ता जाता है व्यापार मरणका
हुए जा रहे टूक-टूक सब चाँद-सितारे,
बने जा रहे मरु दिन-दिन सागर-सरिसारे,
पर यह है आश्चर्य कि मिट्टी की आँखोंमें
एक बूँद आँसूका पानी अभी शेष है।

—प्राण-गीत, पृ० ३७

३. मत कहो रण-क्षेत्र है संसार,
हारता आया मनुज हर बार,
आदमी है मौतसे लाचार,
जी रहा है इसलिए संसार, —वही, पृ० ४६

वैयक्तिकताके व्यामोह और युगकी आलोचनाकी सहज चिन्ताके अन्तर्द्वन्द्वका बड़ा सुन्दर चित्रण निम्नलिखित पंक्तियोंमें हुआ है—

अपने दुखका गीत लिखा मैंने जब रो कर,
सुखी जगतने हँसकर खूब मजाक उड़ाया,
सुखका गीत रचा जब अपना दर्द दबाकर
निर्दय आलोचकने कलम-कुठार चलाया,
सोच रहा अब एक गीत ऐसा गाना मैं,
जिसको सब जग, सब युग-काल रहे दुहराते,
इसको पकड़ा दें जीवनका अंचल लेकिन
सब युगवाले शब्द नहीं मुझको मिल पाते।

---

१. सुमित्रानंदन पंत, 'विभावरी' की भूमिका।

इसलिए, कविकी यह कामना अत्यन्त अभिनन्दनीय है—

एक बार पर सजल-सजल करुणा-कज्जल निज
मेरी स्याही में घोलो शब्दांगमयी तुम !
सौ-सौ जीवन गीत गाऊँगा।
मरण की छाती पर लिख आऊँगा।[1]

जीवनके प्रति जागरूक और प्राकृतिक तत्त्वोंके प्रति सहानुभूति के पाँच चित्र 'फूलकी सारी कहानी धूलसे' शीर्षक कवितामें बड़े कलात्मक ढंगसे काव्यात्मक और वार्तात्मक शैलीमें पिरोये गये हैं।[2]

कविने अपने हृदयका परिचय देते हुए अपनी वेदनाका प्रतीकात्मक और लाक्षणिक चित्रण किया है—

यह किसी की कब्र का बुझता दिया है,
मृत्यु ने श्रृंगार खुद जिसका किया है,
स्नेह इसका जल चुका कबका न जाने,
रक्त निज पीकर अभीतक यह जिया है,
आँधियाँ इसको बुझाने को झुकी है
चूमने को लौ खड़ा अन्धड़ अभय है
यह किसी कवि का, दुखी कवि का हृदय है।[3]

अथवा,

मैं ज्वाला का ज्योति काव्य,
चिनगारी जिसकी भाषा,
किसी निठुर की एक फूँक का
हूँ बस खेल-तमाशा,
पग तल लेटी निशा, भाल पर
बैठी ऊषा गोरी,
एक जलन से बाँध रखी है
साँझ-सुबह की डोरी,
सोये चाँद सितारे भू नभ, दिशि-दिशि स्वप्न-मगन है,
पी-पीकर निज आग जग रही केवल मेरी प्यास है !
जल-जलकर बुझ जाऊँ मेरा बस इतना इतिहास है ![4]

अपने गीतको कवि ऐसे दीपकके रूपमें परिणत करना चाहता है जिससे अन्धकार

१. 'प्राण-गीत', पृ० ५९।
२. वही, पृ० ८१–८३।
३. वही, पृ० १००।
४. 'दर्द दिया है', पृ० १।

लज्जित हो और उजियारा जिसे देखकर ललचाये। कवि गीतको दुनियाके घावोंका मरहम बनाना चाहता है—"दुनियाके घावोंपर मरहम जो न बने उन गीतोंका शोर मचाना पाप है।"[१]

नीरजकी भाषा साफ-सुथरी और अभिव्यंजना पैनी है। उसपर उर्दू शब्दावलियोंका विशेष प्रभाव है। उर्दूके लय-विधानका विशेष प्रभाव है। महादेवीकी भाँति नीरजका शब्द-कोष भी बहुत सीमित है। प्यार, इन्सान, शूल-फूल, कब्र, कफन, दीप, कारवाँ आदि कुछ शब्द बहुत बार प्रयुक्त हुए हैं। शब्दोंकी सीमा और कुछ शब्दोंके बहुत अधिक प्रयोगोंके कारण चित्रोंमें साम्य भी मिलता है। कुछ रुबाइयाँ अच्छी बन पड़ी हैं। यथा—

जहाँ भी जाता हूँ, वीरान नजर आता है,
खून में डूबा हर मैदान नजर आता है,
कैसा है वक्त जो इस दिन के उजाले में भी
नहीं इन्सानको इन्सान नजर आता है।[२]

कविने समसामयिक समस्याओंपर भी गीत लिखे हैं। पर उनमें वैसी वेधकता नहीं, इस दृष्टिसे उद्‌जन बम परीक्षणपर (दर्द दिया है), दुश्मनको अपना हृदय जरा देकर देखो, भूखी धरती अब भूख मिटाने आयी है, तीस जनवरी, एक आदेश, तन तो आज स्वतन्त्र हमारा (प्रणय-गीत) आदि रचनाएँ पठनीय हैं। कविकी असफलता वहाँ प्रत्यक्ष हो उठी है, जहाँ उसने अपने विचारोंको गद्यवत् पंक्तियोंमें गूँथनेका व्यर्थ प्रयास किया है—

जो पुण्य करता है वह देवता बन जाता है,
जो पाप करता है वह पशु बन जाता है,
किन्तु जो प्रेम करता है वह आदमी बन जाता है।[३]

फिर भी इतना सत्य है कि भाषाके प्रवाह, प्रणयके वियोग-पक्षकी मार्मिकता, निराशाकी मार्मिक अनुभूति, मृत्युके सत्य-चिन्तन एवं मानवके दुर्दान्त प्रेमकी दृष्टिसे नीरज सफल गीतकार हैं।

---

१. 'दर्द दिया है', पृ० १५।
२. वही, पृ० ११।
३. वही, पृ० २१।

अध्याय ७

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका शास्त्रीय विवेचन

गीतिकाव्यमें रसके उपयोगका प्रश्न

महाकाव्यमें उसकी व्यापक कथा, जीवनके विविध प्रसङ्गों एवं चरित्रोंके सम्यक् विकासके कारण रस-निष्पत्तिका अवकाश रहता है, लेकिन गीतिकाव्यमें जीवनके एक मार्मिक कोणका प्रकाशन, संक्षिप्तता एवं कथानकके अभावके कारण यह प्रश्न कुछ टेढ़ा हो जाता है। यद्यपि यह निर्विवाद सत्य है कि रस काव्यकी आत्मा है और साहित्यकी कोई भी विधा क्यों न हो, उसका प्रमुख लक्ष्य आनन्ददान ही है। जब यह आनन्द करुण रससे भी मिलता है, तब भला जीवनके आकर्षक क्षणोंको व्यक्त करनेवाले गीत आनन्ददायक क्यों न होंगे!

मानव-जीवनके अधिकांश क्षण दैनिक अभ्यासोंके संकलन मात्र होते हैं, कुछ ही क्षण भावुकता, कल्पना और प्रेरणासे उद्वेलित होते हैं और गीतिकाव्य ऐसे ही रागात्मक अनुभूतियोंकी इकाई और समत्वसे पूर्ण होते हैं। जैसे कोई रेखाचित्रकार कुछ रेखाओंके माध्यमसे वर्ण्य व्यक्ति या वस्तुकी आकृति स्पष्ट कर देता है, वैसे ही गीतकार कुछ शब्दोंके माध्यमसे भावनाओंके चरम वेगको स्पष्ट करना चाहता है। उनमें सामान्य चित्रोंकी भाँति रङ्गोंकी गहराई नहीं होती। महाकाव्यमें सरस पंक्तियोंके बीच नीरस पंक्तियाँ भी खप जाती हैं, पर गीतकार न एक रेखा अधिक खींच सकता है, न एक कम। इतना छोटा आकार होता है गीतका कि एक शब्दके अभावमें भाव अस्पष्ट रह जायेंगे, एकके अधिक होनेसे भावका प्रभाव नष्ट हो जायगा उसे बड़ी सावधानीकी आवश्यकता होती है।

रस-निष्पत्तिके सम्बन्धमें भरतका यह सूत्र "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रस-निष्पत्तिः" सर्वमान्य है। पर प्रश्न यह उठता है कि गीतिकाव्यमें क्या सम्यक् रूपसे विभाव, अनुभाव और संचारी भावका संयोग हो पाता है? क्या इनके द्वारा गीतिकाव्यमें स्थायी भावसे रस निष्पन्न हो पाता है? उत्तर होगा नहीं। एक गीतमें ये सभी अवयव एकसाथ समन्वित हो भी सकते हैं, नहीं भी।

कारण यह है कि गीतिकाव्यमें कविकी स्वानुभूतिकी एक विशेष मानसिक अवस्थाका चित्रण रहता है, उसमें एक भाव-दशा (मूड)की अभिव्यक्ति होती है। गीतिकारका काम पाठकोंको उस मानसिक स्थितिपर पहुँचा देना है, जहाँ पहुँचकर वह अपने संस्कारमें सोये भावों और रसोंको जाग्रत कर दे। उसका काम पाठकोंके मनकी वीणाको अनुकूल स्वरमें छेड़ देना भर है। वह पाठकोंके मनके स्थायीभावको गुदगुदा देता है। इसके लिए गीतिकाव्यके पाठकोंको अधिक सहृदय होनेकी आवश्यकता है। दूसरा तत्त्व जो गीतिकाव्यमें विभाव, अनुभाव, संचारी-भाव आदिकी न्यूनताको पूर्ण करता

है, वह है सङ्गीतात्मकता। अनुभूतिकी तीव्रता और रागात्मकताको जगाकर गीतकार 'स्व'से 'पर'की ओर अपने भावोंको संक्रमित कर सकनेमें समर्थ होता है। गीत-कारकी यह सीमा ही उसकी विशेषता है। नाटकमें अभिनय, वेश-भूषा, कथा, संगीत बहुत कुछ है, महाकाव्यमें भी वर्णनात्मकता, कथात्मकता, चरित्र-चित्रणात्मकता आदि हैं, पर गीतिकाव्यमें एकमात्र शब्दोंका एवम् कुछ चित्रोंका सहारा है और वह भी बहुत संक्षिप्त, अत्यन्त लघु। गीतकार तो शब्द-झंकार, मूर्त्त विधानको ही प्रमुखता दे पाता है।

डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १४७।

विश्व-साँसका नव निर्झर प्रिय,
मधु-प्रिय कोकिलका मधु-स्वर प्रिय,
मेरे जीवनके मधुवनमें
यह है मधुकणका शृंगार ॥
सावन-शिशु घन-अंकित अम्बर,
रिमझिम-रिमझिम है पुलकित स्वर ।
कितने प्राणोंकी स्वातीमें
यह मोती-सा उज्ज्वल प्यार ॥[१]

इस गीतमें करुणा-सजल कविका मन आश्रय हुआ । उद्दीपन हुए निर्झर और कोकिल के मधु-स्वर । अनुभावके रूपमें पुलकित स्वर अर्थात् स्वर-भङ्ग माना जा सकता है । पर इसमें संचारी तो है ही नहीं, आलम्बनका भी स्वरूप स्पष्ट नहीं । निष्पत्ति करुण रसकी होती है ।

इस तरह यह प्रत्यक्ष है कि गीतिकाव्यमें प्रायः पूर्ण सावयव रस-निष्पत्तिका प्रश्न नहीं उठता । इस सम्बन्धमें डॉ० रामखेलावन पाण्डेयने ठीक ही लिखा है कि "गीति-काव्यके प्रकृति-विधानमें इनके (विभाव, अनुभाव, संचारी)के पूर्ण समावेशका स्थान नहीं; किन्तु इनका संकेत अवश्य मिल सकता है, इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टिमें जिसे साहित्य-शास्त्री रसानुभूति अवस्था मानते हैं, वह सभी गीतियोंमें सम्भव नहीं हो सकती ।"[२]

आधुनिक गीतिकाव्यमें रस, भाव और अनुभूति

गीतिकाव्यमें रसोंकी संख्याके सम्बन्धमें भी विचार करना आवश्यक है । साहित्य-शास्त्रियोंने जो १० (वात्सल्य लेकर) रस माने हैं, उनमें कुछ ऐसे हैं जिनके लिए गीति-काव्य उपयुक्त क्षेत्र नहीं है । डॉ० पाण्डेय गीतिकाव्यमें शान्त रसकी स्थिति नहीं मानते । वे लिखते हैं "गीतिकाव्यमें अनुभूतिकी उद्वेग भरी अभिव्यक्ति होती है अतः शान्त रसका स्थान कमसे कम गीतिकाव्यमें नहीं हो सकता ।"[३] वे भक्तिपूर्ण गीतमें रति-भावका शोधित रूप मानते हैं । मैं इस विचारसे सहमत नहीं हूँ । कबीर, दादू आदि सन्तमतके कवियोंके गीतमें शान्तरसके बड़े प्रभविष्णु उदाहरण मिलते हैं । "रहना नहिं देस विराना है"—इसे किस रसका गीत माना जायगा ? रति-भाव वहाँ मिलता है, जहाँ प्रेम-विषयक निरूपण है चाहे वह प्रेम आध्यात्मिक क्षेत्रका ही क्यों न हो । जैसे कबीरका ही पद "ये अँखियाँ अलसानी पिया हो सेज चलो" है ।

अद्भुतरसके गीत प्राचीन हिन्दी कवितामें मिलते हैं । सूरका पद "कर गहि पद अँगुठा मुख मेलत" ऐसा ही पद है । पर आजकलके गीतिकाव्यमें इसका अवकाश इसलिए नहीं है कि अब अलौकिक प्रसङ्गों एवं लोकोत्तर चरितनायकोंका चित्रण प्रायः

१. 'आधुनिक कवि', पृ० ४४ ।
२. 'गीतिकाव्य', पृ० १०१ ।
३. वही ।

होता ही नहीं। जो प्राचीन देवादि नायक होते भी हैं, तो प्रबन्धकाव्यों और गीत-काव्योंमें उनके चरितका भी वैज्ञानिक एवं विश्वसनीय पक्ष ही सामने रखा जाता है। वीररसात्मक गीत राष्ट्रीय भावनाओंके सम्बन्धमें मिलते हैं। १९४७के पूर्वके गीतोंमें इसके विशेष उदाहरण मिलते हैं। इधर चीनी आक्रमणके प्रसंगमें वीर और रौद्र रसका स्फुरण हुआ है। वात्सल्यरसके उदाहरण भी आजकलके स्वतन्त्र गीतोंमें नहीं मिलते। प्रबन्धकाव्योंमें इसके कुछ उदाहरण मिलते हैं। हास्यरसके गीत आधुनिक कालमें अच्छी मात्रामें लिखे गये हैं। बेढब बनारसी, बेधड़क, चोंच, गोपाल-प्रसाद व्यास आदिने अच्छे हास्यरसात्मक गीत लिखे हैं। लोकरत दृष्टिके कारण आधुनिक कालमें शान्त रसके गीत प्राचीन काव्यकी अपेक्षा बहुत कम मात्रामें मिलते हैं। रहस्यवादी कवियोंमें, विशेषतः डॉ० रामकुमार और महादेवीके गीतोंमें इसके उदाहरण मिलते हैं।[1]

आधुनिक कालमें सर्वाधिक मात्रामें श्रृङ्गार और करुणरससे सम्बद्ध गीत मिलते हैं। श्रृङ्गारके दोनों पक्षों—संयोग और वियोगके उजागर गीत बहुत बड़ी संख्यामें आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें मिलते हैं। षष्ठ प्रकरणमें जितने भी गीत उद्धृत किये गये हैं; उनमें इसी रसकी मात्रा अधिक है। पाण्डुर मानवता और अभावग्रस्त समाजमें पले छायावादके विरहाकुल व्यथित कवियोंने करुणासे भींगे गीत पर्याप्त संख्यामें हिन्दीको दिये हैं।

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यकी यह बहुत बड़ी विशेषता है कि विरोधी माने जानेवाले रसोंका सफल सम्मिलन हुआ है। साहित्य शास्त्रियोंने करुण और श्रृङ्गार रसोंका साथ-

---

१. अविरत साँसोंके पथपर, प्रिय निद्राके नर्तनमें,
निशा विभाजित हो जाती है, तारोंके कन-कनमें,
किन्तु उषाके उल्कासे इस नीरव स्वर्ग-सदनमें,
दिनकी आग आह, लग जाती यह छल परिवर्तनमें!
इस रहस्यको समझ, सुमन सूखा!
वह मुझसे ज्ञानी है॥
जीवन एक कहानी है॥
—'आधुनिक कवि', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४८।

:::: :::: :::: ::::

विकसते मुरझानेको फूल
उदय होता छिपनेको चन्द
शून्य होनेको भरते मेघ,
दीप जलता होनेको मन्द;
यहाँ किसका अनन्त यौवन!
अरे अस्थिर छोटे जीवन!
—'आधुनिक कवि, महादेवी', पृ० १८

साथ उपयोग वर्जित माना है, पर हिन्दीमें अनेक गीत ऐसे मिलते हैं, जिनमें दोनोंका सफल समन्वय हुआ है। यथा, बच्चनका यह गीत—

सन्ध्या सिन्दूर लुटाती है !
रँगती स्वर्णिम रजसे सुन्दर
निज नीड़ अधीर खगोंके पर,
तरुओंकी डाली-डालीमें कंचनके पात लगाती है।
करती सरिताका जल पीला
जो था पलभर पहले नीला।
नावोंके पालोंको सोनेकी चादर-सा चमकाती है।
उपहार हमें भी मिलता है,
शृङ्गार हमें भी मिलता है,
आँसूकी बूँद कपोलोंपर शोणितकी-सी बन जाती है ![1]

इस गीतमें ऊपरकी सात पंक्तियोंमेंसे जो शृङ्गारिक चित्र बनता है, उसकी पुष्टि अन्तिम तीन पंक्तियोंसे होती है, जो करुणासे ओत-प्रोत हैं। 'उपहार और शृङ्गार'का कितना कलात्मक और स्वाभाविक रस-परिवर्तन है ! विरोधी चित्रोंके संगठनमें ही भावोंका चरम वेग उत्पन्न होता है। अनुभूतियोंकी सघनता अन्तिम चित्रको ही मार्मिकता प्रदान कर पाती है।

गीतिकाव्यमें अनुभूतिकी सच्चाई, गहराई और उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति ही भावोंका उदय पाठकोंमें करके रसोद्रक करा पाती है। भरतनिर्देशानुसार विभावादि तत्त्वोंके संचयन होनेपर भी उपर्युक्त तथ्योंके अभावमें रस-निष्पत्ति नहीं होगी। डॉ० रामकुमार वर्माने 'साहित्यमें रस और मनोविज्ञान'का मौलिक विवेचन करते हुए ठीक ही लिखा है कि "रसोद्रेकताके लिए उपयुक्त मात्रामें अनुभूति तत्त्वकी अपेक्षा है। यही पर्याप्त नहीं कि विभाव, अनुभाव और संचारी भावका संयोग हो जाय।"[2]

सच्चाई तो यह है कि आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य स्थायी भावोंसे अधिक संचारी भावोंसे सम्बद्ध है। विभिन्न संचारी अनुभूतिको तीव्रता प्रदानकर पाठकोंके मनमें उसी मनोदशाको उत्पन्न कर देते हैं, जिसमें पड़कर स्वयं कविने गुनगुनाना प्रारम्भ किया था। डॉ० वर्माने लिखा है कि "प्राचीन पारिभाषिक शब्दोंमें कहा जाय तो आधुनिक हिन्दी काव्य स्थायी भावकी अपेक्षा संचारी भावोंमें अधिक पोषित हुआ है।"[3]

जैसे आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका सर्वप्रमुख रस शृङ्गार है, उसी प्रकार सङ्गीत-शास्त्रका भी सर्वाधिक प्रिय क्षेत्र शृङ्गार ही है। इसका एक कारण तो शृङ्गारका रस-राजत्व और व्यापकत्व है, क्योंकि भक्ति, सख्य, माधुर्य, शान्त, वात्सल्य आदिका

१. 'निशा-निमन्त्रण', पृ० २८।
२. 'साहित्य-शास्त्र', पृ० ९१।
३. वही, पृ० ९४।

अन्तर्भाव उसमें हो जाता है, दूसरे दरबारी संस्कृतिमें सङ्गीतको प्रश्रय मिलनेके कारण राजा-महाराजाओंकी शृङ्गारिक प्रवृत्तियोंके अनुकूल उसका विकास हुआ। आधुनिक गीतिकाव्यमें संयोगकी शत-शत स्थितियोंके चित्रण तो मिलते ही हैं, शास्त्रीय दृष्टिसे विरहकी सभी अन्तर्दशाओंके उदाहरण भी पर्याप्त मात्रामें मिलते हैं:—

स्मृति— जब ये पावन ध्वनियाँ आतीं,
शीश झुकाने दुनिया जाती,
अपनेसे पूछा करता तब, करूँ कहाँ मैं, किसका पूजन ?[१]

अभिलाषा—मेरे जीवनमें एक बार तुम देखो तो अनुपम स्वरूप;
मैं तुममें प्रतिबिंबित होऊँ, तुम मुझमें होना ओ अनूप ![२]

चिन्ता— आगे जीवनकी सन्ध्या है, देखें क्या हो आली !
तू कहती है—चन्द्रोदय ही कालीमें उजियाली ![३]

गुण-कथन (क)— चले गये तुम किन्तु तुम्हारे
आसनकी पहचान है।
हँसने तुम कैसे लगते
थे, आता जब यह ध्यान है।
लाल! तुम्हारी कठिन तपस्या
ही मेरा अभिमान है।
गुणकथन ही तो मेरा गान है ॥[४]

: : : : : : : : : : : : : : : :

(ख)— न जाने किस गृहमें अनजान
छिपी हो तुम स्वर्गीय विधान
नवल कलिकाओंकी-सी बाण
बाल-रवि-सी अनुपम, अनजान
न जाने कौन कहाँ अनजान,
प्रिये ! प्राणोंकी प्राण ![५]

उद्वेग— क्यों उद्वेग हृदयमें आया ?
गीत न अच्छा लगता है जो,
दो क्षण पहले मैंने गाया।[६]

---

१. 'निशा-निमन्त्रण', बच्चन, पृ० ४०।
२. 'आधुनिक कवि', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २७।
३. 'साकेत', गुप्त, पृ० २०१।
४. 'एकलव्य', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १६३।
५. 'गुंजन', पंत, पृ० ३९।
६. 'एकलव्य', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १६४।

प्रलाप— बदला ले लो सुखकी घड़ियो !
मैं कंचनकी जंजीर पहन
क्षणभर सपनेमें नाचा था,
अधिकार सदाकी तुम जकड़ो
मुझको लोहेकी हथकड़ियो ![1]

उन्माद— वेदना भगा !

वेदना जगा ![2]

व्याधि— गया श्वास फिर भी यदि आया,
तो सजीव है कृश भी काया।
हमने उनको रोक न पाया,
तो निज-दर्शन-योग-समाया।[3]

जड़ता— रूखा सूखा वेश, बड़ी है,
जैसे प्रभुता खेहकी।
आँखोंमें संकुचित हो रही,
जैसे सीमा स्नेहकी॥[4]

मरण—(क) आओ, सो जाएँ, मर जाएँ !
मौन रहो, मुखसे मत बोलो,
अपना यह मधुकोष न खोलो,
भय है कहीं हृदयके मेरे घाव न ये भर जाएँ ![5]

(ख) स्वामी मुझको मरनेका भी दे न गये अधिकार
छोड़ गये मुझपर अपने उस राहुलका सब भार
जिये जल-जलकर काया री !
मरण सुन्दर बन आया री ![6]

संयोग शृङ्गारके अन्तर्गत चुम्बन-आलिङ्गन, षड्ऋतुवर्णन, चन्द्रोदय, सूर्यास्त, वन-विहार, प्रभात, सन्ध्या, मधुपान, वस्त्राभूषण आदिके वर्णन आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें मिलते हैं। एक साथ ही कई अनुभावोंकी योजना भी एक स्थानपर मिलती है—

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात,
विकम्पित मृदु उर, पुलकित गात,

---

१. 'आकुल-अन्तर', बच्चन, पृ० १६।
२. वही, पृ० ९६-९७।
३. 'साकेत', गुप्त, पृ० २१५।
४. 'एकलव्य', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १६७।
५. 'निशा-निमंत्रण', बच्चन, पृ० ४७।
६. 'यशोधरा', गुप्त, पृ० ५८।

सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप
जड़ित पद नमित पलक दृगपात ।[१]

गीतिकाव्यके लिए भाव और अनुभूतिके सघन चित्रोंका अधिक मूल्य है । सावयव रस-निष्पत्तिकी अपेक्षा अनुभूति तत्त्वपर अधिक जोर दिया जाता है और स्थायीभावोंकी अपेक्षा संचारी भावोंके पोषणका अधिक महत्त्व है । आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें प्रायः सभी रसोंके अनेक श्रेष्ठ उदाहरण मिलते हैं । शृंगारके दोनों पक्षोंके तो सैकड़ों हृदयग्राही और अभूतपूर्व दृष्टान्त उपलब्ध हैं ।

भावोंके विभिन्न रूप और स्तर—सोदाहरण विवेचन

एक ही भाव भिन्न-भिन्न कवियों द्वारा विभिन्न स्तरोंपर प्रतिष्ठित होता है । स्वयं एक ही कवि द्वारा विभिन्न अवस्थाओंमें वर्णित भावमें स्तर-भेद हो जाते हैं । इसका कारण है मानव-प्रकृतिमें अन्तर और विभिन्न परिस्थितियोंमें भावावेशका कोण । आधुनिक गीतिकाव्यमें यह सत्य अधिक व्यापक स्तरपर प्रतिष्ठित है, क्योंकि पल-पल परिवर्त्तित आधुनिक परिवेशमें कुछ भी स्थिर नहीं है—न सामाजिक-राजनीतिक स्थितियाँ, न मानवका अपना अस्तित्व । अतः भावोंके स्तरमें अनुभूतिके वैभिन्न्यके कारण अन्तर आ जाना स्वाभाविक है ।

मानवका व्यापक भाव है दुःख । गीतिकाव्यमें सुख-दुःख अनेक रूपोंमें प्रतिबिम्बित होते हैं । अतः ऊपरकी स्थापनाके लिए आधुनिक गीतिकाव्यमें दुःखके रूप और स्तरके उदाहरण ले रही हूँ ।

इसके दो प्रकारके उदाहरण होंगे—एक तो विभिन्न गीतकारों द्वारा चित्रित दुःखके रूप और स्तर तथा दूसरे एक ही कवि द्वारा उपस्थित किये गये दुःखके विभिन्न रूप और स्तर ।

प्रथम कोटि

निरालाने दुःखको मौन सहा है । प्रियका स्मरण करते हुए आँखें चुपचाप शेफालीकी भाँति चू रही हैं—दुःख एक योग है, भाव-योग ! प्रस्तुत हैं 'गीतिका'की कुछ पंक्तियाँ—

प्राण-धन को स्मरण करते
नयन झरते, नयन झरते !
दुःख-योग, धरा
विकल होती जब दिवस-वश
हीन ताप करा,
गगन-नयनों के शिशिर-झर
प्रेयसी के अधर भरते ।[२]

---

१. 'गुंजन', पन्त, पृ० ४३ ।
२. पृ० ५२ ।

किन्तु महादेवी ठीक इसी परिस्थितिमें और अधिक संयत हैं। प्रियका नाम स्मरण करती हुई रोनेका संकेत अधिक सूक्ष्मतासे करती हैं। यह स्पष्ट नहीं करतीं कि 'नयन झरते'। लिखती हैं—

प्राण पिक प्रिय नाम रे कह !
दुख अतिथि का धो चरण तल,
विश्व रसमय कर रहा जल;
यह नहीं क्रन्दन हठीले !
सजल पावस मास रे कह ![1]

यहाँ 'सजल पावस मास' की ओर संकेत मात्र है। उपर्युक्त दोनों उदाहरण सूक्ष्म-से सूक्ष्मतर स्तरकी ओर गये हैं।

पन्तने अपने दुःखको युगके विषादके रूपमें परिणत कर दिया है। जगका दुःख ही उनका अपना हो गया है—

करुणाधारामें झर
स्नेह अश्रु बरसाकर,
व्यथाभार उर का हर,
शान्त करो आकुल मन !
ज्योति द्रवित हो, हे घन ![2]

डॉ० रामकुमार वर्मा प्रियका नामस्मरण नहीं, गुण-स्मरण करते हैं और अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्वका प्रियमें एक रूप विलयनका संकेत दिया है। उनके आँसू झरते नहीं, आँखोंमें ही उमड़ते रहते हैं। साधना यहाँ और भी गम्भीर है—

प्रिय तुम भूले मैं क्या गाऊँ ?
जुही सुरभिकी एक लहरसे निशा बह गयी, डूबे तारे।
अश्रु-बिन्दु में डूब-डूब कर, दृग तारे ये कभी न हारे॥
दुःखकी इस जागृतिमें कैसे,
तुम्हें जगाकर मैं सुख पाऊँ ?[3]

बच्चन दुःखको जीवनका अनिवार्य अंग मानते हुए उन परिस्थितियोंका उल्लेख करते हैं, जिनसे विवश होकर उन्हें रोना पड़ता है—

कैसे आँसू नयन सम्हाले !
मेरी हर आशा पर पानी,
रोना दुर्बलता, नादानी,
उमड़े दिल के आगे पलकें, कैसे बाँध बना लें।[4]

---

१. 'आधुनिक कवि', पृ० ६८।
२. 'उत्तरा', पृ० २३।
३. 'आधुनिक कवि', पृ० ११।
४. 'आकुल-अन्तर', पृ० १७।

वे रोनेको दुर्बलता मानते हुए भी अपनी आन्तरिक विवशताओंका खुला हवाला देते हैं।

नेपाली आँखोंके पानीको अपना एकमात्र साथी मानते हैं। उनके दुःखकी घड़ियों-से सुख सर्वथा तिरोहित नहीं होता—

दुखकी घनी बनी अँधियारी,
सुखके टिमटिम दूर सितारे
उठती रही पीरकी बदली,
मनके पंछी उड़-उड़ हारे
कोई भी तो साथ नहीं था,
साथी था आँखोंका पानी।[१]

दुःखका एक और चित्र! यहाँ दुःखमें भी जी भर न रो पानेकी शिकायत है और मौन जलनको ही आधार माना गया है। दुःख तो यह है कि उसके अन्ततक पर रोने-वाला कोई नहीं—

बेबसी कैसी कि दुख में
भी हृदय भर रो न पाया!
जल रहा प्रतिक्षण, मगर
कब अधरतक मैंने हिलाया!
मैं मिटूँगा पर न उमड़ेगा
किसीकी आँख पानी।[२]

द्वितीय कोटि

एक ही कवि द्वारा चित्रित दुःखके विभिन्न रूप और स्तरके उदाहरणके लिए बचनके गीतको प्रस्तुत करती हूँ।

'मधुकलश'में कविने अपने गीतोंको ही दुःखकी माप माना है—

गीत कह इसको न दुनिया
यह दुखोंकी माप मेरे।[३]

सम्पूर्ण कवि-व्यक्तित्व ही दुःखसे ओत-प्रोत है। 'निशा-निमन्त्रण'में इस दुःखके साथ देनेपर से भी विश्वास उठ गया है, निराशाकी अत्यन्त मार्मिक स्थिति है—

साथी, साथ न देगा दुख भी।
काल छीनने दुख आता है,
जब दुख भी प्रिय हो जाता है,
नहीं चाहते जब हम दुखके बदलेमें लेना चिर सुख भी।[४]

---

१. 'नवीन', पृ० ३।
२. 'गीत अधूरे हैं', डॉ० किशोर, पृ० ४५।
३. 'मधुकलश', पृ० ६३।
४ 'निशा-निमन्त्रण' पृ० १२०।

'आकुल-अन्तर'में आकर दुःख सहनेकी अपूर्व क्षमताका परिचय बच्चनने दिया है। जैसे मिट्टी भार सँभालते-सँभालते चट्टान बन जाती है, वैसे ही दुःख मनुष्यको आँसू पी जाने और सभी विपत्तियोंको हँसते-हँसते झेल जानेकी दुर्दान्त शक्ति देता है। आदमी सब कुछ सह लेता है या दुनियासे चुपचाप चल देता है, रोता-कलपता नहीं—

कंठ करुण स्वर में गाता है
नयनों में घन घिर आता है,
पन्ना-पन्ना रँग जाता है
लेकिन, प्यारे दुख तो वह है,
हाथ न डोले, कंठ न बोले,
नयन मुँदे हों या पथराये!
तूने अभी नहीं दुख पाये।[1]

'सतरंगिनी'में आते-आते कवि-जीवनकी परिस्थितियाँ बदलीं। फलतः दुःखके प्रति उसकी दृष्टि भी बदली। दुःख बँट जानेसे कम हो जाता है—उतारपर आते हुए दुःखका एक चित्र—

वेदना का गीत गाकर वेदना तुमने बँटाली।
आज अपनी वेदना के
जब कि मैंने गीत गाये,
मन-विपंथी के तुम्हारे
तार भी तन झनझनाये
साथ मेरे मंद स्वरमें तान तुमने भी निकाली।[2]

'मिलन-यामिनी' में वह दुःख विरहका आभास मात्र रह जाता है—

आभास विरहका आया था
मुझको मिलनेकी घड़ियोंमें,
आहोंकी आहट आयी थी
मुझको हँसती फुलझड़ियोंमें,
मानवके सुखमें दुख ऐसे
चुपचाप उतर कर आ जाता,
है ओस ढुलक पड़ती जैसे
मकरंदमयी पँखुड़ियोंमें;[3]

'प्रणय-पत्रिका'में दुःखसे छुटकारा पानेकी आकुलता है, उसे सँजोनेकी ललक नहीं—

१. 'आकुल-अंतर', पृ० ४२।
२. 'सतरंगिनी', पृ० १३५।
३. 'मिलन यामिनी', पृ० १७४।

मेरे मनकी पीर पुरातन, तुम न हरोगे, कौन हरेगा !
यह तो काम तुम्हारा ही है, तुम न करोगे कौन करेगा ।[१]

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें जीवन-दर्शन

दर्शन-साहित्यको सजीवनी शक्ति देता है। साहित्यका दर्शन उसके स्रष्टाके अन्तर्मनका नवनीत होता है। दर्शन ही काव्यकी वास्तविक दृष्टि है। आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका जीवनदर्शन विविध सिद्धान्तोंसे पुष्ट है।

सबसे पहले रहस्यवादी गीतोंके दार्शनिक पक्षको लें। रहस्यवादी गीतोंमें आत्मा और परमात्माके प्रणय-निवेदनका आध्यात्मिक रूप मिलता है। जिज्ञासा, परम सत्ताका अनुभव, मिलनेच्छा, सम्बन्ध-स्थापन एवं मिलनके उदाहरण पिछले प्रकरणमें दिये जा चुके हैं। यहाँ इतना ही कहना है कि रहस्यवादी गीतोंकी दार्शनिकता परा विद्याकी अपार्थिवता और वेदान्तके अद्वैतवादका प्रभाव है। आत्मा-परमात्माके प्रणय-निवेदनके विभिन्न स्वरूप इन गीतोंमें मिलते हैं। कहीं तो प्रकृति परब्रह्मके अनन्त विस्तारको देखकर कविकी आत्मा कुतूहलसे भर उठती है—

(क) ओसोंका हँसता बालरूप
यह किसका है छविमय विलास ?
विहगोंके कंठोंमें समोद
यह कौन भर रहा है मिठास ?[२]

(ख) कौन तुम मेरे हृदयमें ?
कौन मेरी कसकमें नित
मधुरता भरता अलक्षित ?
कौन प्यासे लोचनोंमें
घुमड़ घिर झरता अपरिचित ?
स्वर्ण-स्वप्नोंका चितेरा
नींदके सूने निलयमें ।[३]

(ग) किसके चरणोंकी पा आहट
रोज बदल देती है करवट ?
ऊषा बन छाती अम्बर पर
ले किरणोंका हार मनोहर
रोज सुबह प्रियतमसे मिलने

---

१. 'प्रणय पत्रिका' पृ० १२८—२९।
२. 'आधुनिक कवि', डॉ० राम० वर्मा, पृ० ३०।
३. 'आधुनिक कवि', महादेवी, पृ० ५१।

को प्रिय मेंहदी सुघर रचाती ?
कौन गगनके दीप जलाती ?[१]

परमात्म तत्त्वकी व्यापक अनुभूति उसे सर्वत्र होती है। अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्वपर उसका आच्छादन प्रतीत होता है--

तन की, मन की, धन की हो तुम !
नव जागरण, शयनकी हो तुम ![२]

आत्मा-परमात्माके अभेद सम्बन्धका चित्रण निम्नलिखित पंक्तियोंमें कितनी मार्मिकतासे हुआ है—

(क) सुनें परस्पर सुख-ध्वनियाँ हम,
मैं न अधिक हूँ, और न तू कम,
आज न कर पाऊँगा संयम,
मैं न बनूँ तो, तू बन प्रियतम,[३]

(ख) तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या ?
चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर संगम,
तू असीम मैं सीमाका भ्रम
काया छायामें रहस्यमय !
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ![४]

संसारकी नश्वरता और निरर्थकताका ज्ञान कबीरके स्वरमें आधुनिक गीतिकाव्यमें भी किया गया है। यह रूप, यह शरीर सब कुछ नश्यमान है—

क्या शरीर है ? शुष्क धूल का—
थोड़ा-सा छवि जाल,
उस छविमें ही छिपा हुआ है
वह भीषण कंकाल ।[५]

संसार मायाका प्रतिरूप है और यहाँ कोई मिलन स्थायी नहीं—

सखे ! यह है मायाका देश
क्षणिक है मेरा तेरा संग,
यहाँ मिलता काँटोंमें बन्धु
सजीला सा फूलोंका रंग;

---

१. 'शेफालिका', किशोर, पृ० ६८ ।
२. 'अर्चना', निराला, पृ० २ ।
३. 'आधुनिक कवि', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४१ ।
४. 'आधुनिक कवि', महादेवी, पृ० ५७ ।
५. 'आधुनिक कवि', डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ८६ ।

तुम्हें करना विच्छेद सहन
न भूलो हे प्यारे जीवन।[१]

छायावादमें आत्मा-आत्माका सम्बन्ध-निरूपण मिलता है। रहस्यवादमें यह सम्बन्ध आत्मा-परमात्माके बीच होता है। सर्वचेतनावाद छायावादका मूलाधार है—सारी सृष्टि चेतना-सम्पन्न है। उसमें पवन बोलता है, सन्ध्या रोती है, फूल हँसते हैं, निर्झर गाता है।

आधुनिक हिन्दी गीतोंका जीवन-दर्शन वेदनावादसे बहुत अधिक प्रभावित है। दुःखको जीवनका साधना-पक्ष मानकर उसकी बड़ी प्रबल व्यंजना की गयी है—आँसू शत-शत रूपोंमें इनमें प्रतिबिम्बित हुआ है। दुख-छल-विनाश इनके अन्तर्गत ही आते हैं। कुछ उदाहरण इसे पुष्ट करेंगे—

(क) झर गयी कली, झर गयी कली!
चल-सरित पुलिन पर वह विकसी
उर के सौरभ से सहज बसी,
सरला प्रातः ही तो विहँसी,
रे कूद सलिलमें गयी चली।[२]

(ख) सावन-शिशु घन-अंकित अम्बर,
रिमझिम-रिमझिम है पुलकित स्वर;
कितने प्राणोंके स्वातीमें
यह मोती-सा उज्ज्वल प्यार।
करुणाका गहरा गुंजार॥[३]

(ग) साथी कवि नयनोंका पानी—
चढ़ जाये मन्दिर-प्रतिमा पर,
या दे मस्जिदकी गागर भर,
या धोए वह रक्त सना है
जिससे जगका आहत प्राणी![४]

(घ) दुःख को मैं तो साध रहा हूँ
अबतक पाषाणी प्रतिमा से
मैं करता फरियाद रहा हूँ।[५]

आधुनिक गीतोंकी यथार्थवादी दृष्टि भी दार्शनिक सत्यको ही उजागर करती है—

भूल गया है क्यों इन्सान
सबकी है मिट्टी की काया,

१. 'आधुनिक कवि', महादेवी, पृ० १९।
२. 'गुंजन', पन्त, पृ० ३७।
३. 'आधुनिक कवि', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४४।
४. 'निशा-निमन्त्रण', बच्चन, पृ० ८०।
५. 'विभावरी', डा० किशोर, पृ० ४।

सबपर तमकी निर्मम छाया,
यहाँ नहीं कोई आया है ले विशेष वरदान ।[1]

यही यथार्थवादी दृष्टि कहीं-कहीं व्यंग्यपूर्ण चित्रोंके लिए प्रयुक्त हुई—

ऊँट-बैल का साथ हुआ है ।
कुत्ता पकड़े हुए जुआ है ।[2]

हिन्दीमें उमरखैयामके हालावादी प्रतीकोंका प्रभाव बच्चनकी प्रारम्भिक रचनाओं-में है । थोड़ी-सी रचनाएँ नवीनकी भी ऐसी मिलती हैं । 'मधुशाला'में तो रुबाइयाँ हैं । गीतकी दृष्टिसे मधुकलश और मधुबाला महत्त्वपूर्ण हैं ।

मार्क्सके द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद एवं समाजवादी दर्शनसे प्रभावित बहुत कम गीत हिन्दीमें साहित्यकी कसौटीपर खरे उतरते हैं । प्रगतिवादके दायरेमें आये गीतोंमें जीवन-को अनुप्राणित करने एवं मर्मको छूनेकी शक्ति नहींके बराबर है ।

मनोविज्ञान और आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इस बातको सिद्ध करता है कि इन दोनोंका एक गहरा लगाव है । पश्चिमके प्रभावसे सत्यकी परखके लिए विशेष रूपसे मनोवैज्ञानिक आधार लिया जाने लगा है ।[3]

साहित्यमें दमित इच्छाओंकी अभिव्यक्ति उदात्तीकरणकी प्रेरक बन जाती हैं । किसी भी सत् साहित्यके निर्माणमें इसकी प्रेरणाका बल होता है ।[4] ये दमित इच्छाएँ उदात्त बनकर मानसिक क्षितिजको विस्तृत बना देती हैं । उदाहरणस्वरूप बचनकी पत्नीके स्वर्गवासके दुःखका, पत्नीसे मिलनेकी दमित इच्छाका प्रतिफलन कितना उदात्त और मनोरम है—कविने अपने अश्रु पीकर मुस्करानेकी कलाका कैसा सुन्दर चित्रण किया है—

जिस परवशताका कर अनुभव
अश्रु बहाना पड़ता नीरव
उसी विवशतासे दुनियामें होना पड़ता है हँसमुख भी ।[5]

यही उदारता संसारके अन्य जीवोंके प्रति कविको सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि देती है—

---

१. 'धारके इधर-उधर', बच्चन, पृ० २२ ।

२. 'आराधना', निराला, पृ० ७२ ।

३. आधुनिक युगमें पश्चिमके प्रभावने हमारे काव्यका लक्ष्य बदल दिया है । जीवनके मूल्यांकनमें साहित्यकारोंका अधिक विश्वास हो गया है और मनोविज्ञानकी गहराइयोंमें जाकर सत्यकी समीक्षा ही साहित्यका लक्ष्य बन गया है ।
—'साहित्य-शास्त्र', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ९३ ।

४. ये दमित इच्छाएँ उदात्त (सब्लिमेटेड) होकर साहित्य-सर्जनमें सहायक होती हैं ।···साहि-त्यकारों और कलाकारोंके जीवन-चरित्रके अध्ययनसे इस तथ्यके प्रमाण मिल सकते हैं ।
—'आधुनिक हिन्दी महाकाव्योंका शिल्प-विधान', डॉ० किशोर, पृ० ३१८ ।

५. 'निशा-निमन्त्रण', पृ० १२० ।

थी न सब दिन त्रास दाता
वायु ऐसी—यह बताता
एक जोड़ा पेड़की का डालपर बैठा सिकुड़-जुड़ ।
वायु बहती शीत-निष्ठुर ।[१]

दूसरा तत्त्व जो इन गीतोंमें प्रमुख है, वह है साहचर्य-सम्बन्ध (लॉ ऑफ एसोसियेशन) का । इसमें एक वस्तुको देखकर दूसरी वस्तुका उसके साहचर्यके कारण स्मरण हो आता है । कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(क) रजनीका सूनापन विलोक
हँस पड़ा पूर्वमें चपल प्रात,
यह वैभवका उत्पात देख
दिनका विनाश कर जगी रात,[२]

(ख) कोई रोता दूर कहीं पर !
ऐसी ही थी रात अँधेरी
जब सुख की, सुखमाकी डेरी,
मेरी लूट नियतिने ली थी, करके मेरा तन-मन जर्जर ।[३]

तीसरा तत्त्व है तादात्म्यकरण अथवा किसी व्यक्ति या वस्तुके साथ अपनेको एक-रूप मानना । इसे मनोविज्ञानमें 'आइडेण्टीफिकेशन' कहते हैं । बच्चनने निस्पृह जल-जलकर मुस्कुरानेवाले दीपकके साथ अपना तादात्म्य स्थापित किया है—

मैं दीपक हूँ, मेरा जलना ही तो मेरा मुस्काना है ।
जल-जल किये हुए हूँ अपने
सपनोंके घरमें उजियाला
फैलाये हूँ अपने मनमें
चित्रोंपर आलोक निराला ।[४]

जब दो भावनाओंके बीच किसे अपनाया जाय, किसे छोड़ा जाय—यह निर्णय नहीं हो पाता, तो द्वन्द्वकी ऐसी स्थितिको मनोविज्ञानमें 'कॉनफ्लिक्ट' कहते हैं । यह एक प्रकारका अन्तर्द्वन्द्व है, एक मानसिक संघर्ष है । निम्नलिखित पंक्तियोंमें इस मानसिक द्वन्द्वका अच्छा चित्रण है—

क्या भूलूँ, क्या याद करूँ मैं !
अगणित उन्मादोंके क्षण हैं;

---

१. 'निशा-निमंत्रण', पृ० ३९ ।
२. 'आधुनिक कवि', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७ ।
३. 'निशा-निमन्त्रण', पृ० ५९ ।
४. 'प्रणय-पत्रिका', बच्चन, पृ० १३३ ।

अगणित अवसादोंके क्षण हैं,
रजनीकी सूनी घड़ियोंको किन-किनसे आबाद करूँ मैं ।[1]

मनोविज्ञानमें एक मनोरचना (मेण्टल मेकेनिज्म) है, 'प्रक्षेपण' (प्रोजेक्शन) । इसके अनुसार मनुष्य अपनी बोधात्मा (इगो)के प्रतिकूल भावों एवं इच्छाओंको किसी दूसरे व्यक्तिके मत्थे मढ़कर अपने आपको दोष-मुक्त समझने लगता है । यह प्रक्रिया अचेतन मनके द्वारा होती है । यथा—

बन जाना निर्दोष कला है
दुनिया भूल छिपा पाती है,
मेरा यही गुनाह कि दिलकी
बात अधरतक आ जाती है ।[2]

'प्रक्षेपण'के विपरीत एक मनोरचना है 'अन्तःक्षेपण' । इसमें मनुष्य दूसरेके गुण या दोषको अपना ही अंग मानता है । तादात्म्यकरण और अन्तःक्षेपणमें मौलिक भेद यह है कि एकमें हम दूसरेके व्यक्तित्वके अनुकूल होना चाहते हैं, दूसरेमें हम उसे अपने व्यक्तित्वका ही अंग मानते हैं । आधुनिक हिन्दी गीतोंमें इसका रूप वहाँ मिलता है, जहाँ कवि प्रिय व्यक्तिको अपनेसे अभिन्न समझता है । यथा—

मैं तुमसे हूँ एक, एक हैं
जैसे रश्मि-प्रकाश,
मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों
घनसे तड़ित-विलास,[3]

इसी तरह दिवा स्वप्न (डे-ड्रीमिंग), प्रतीकीकरण (सिम्बोलाइजेशन), घनीकरण (कण्डेन्सेशन) आदिके उदाहरण भी आधुनिक गीतोंमें मिलते हैं । यथा—

तुम खुले नयनके सपने हो ।
तुम आते, मेरे प्राण विकल हो जाते
तुम जाते, मेरे गान सजल हो आते !
तुम आते-जाते घर सूना का सूना
तुम रहते, फिर भी दुःख दूनाका दूना ।
है जिसका पता न कब गरजे, कब बरसे,
तुम वही मेघ सावनके सजल, घने हो ![4]

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें प्रेम : संयोग-वियोग !

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका व्यक्तित्व उस दीपके समान है, जिसमें अहर्निश

---

१. 'निशा-निमन्त्रण', बच्चन, पृ० ११६ ।
२. 'ज्वारभाटा', किशोर, पृ० ७४ ।
३. 'सन्धिनी', महादेवी, पृ० ३९ ।
४. 'शेफालिका', किशोर, पृ० ९ ।

एक ऐसी बाती जलती रहती है, जिसकी मीठी लौका मनोमुग्धकारी प्रेम-प्रकाश यदा-कदा शृङ्गारके कज्जलको भी जन्म देता है। कदाचित् प्रेम ही सभी भाषाके गीतिकाव्यका प्रमुखतम स्वर है। प्रेम ही वह शैल-शिखर है, जिससे गीतकी निर्झरिणी कल-कल, छल-छल करती थिरकती हुई लोक-हृदयके विराट् सागरमें लय हो जाती है। संयोग और वियोग ही इसके दो कूल हैं। हास और अश्रु प्रेमको पल्लवित-पुष्पित करते हैं। अश्रु तो प्रेमको और अधिक भास्वर कर देता है—वह उसका शृंगार जो ठहरा।

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें प्रेम-सम्बन्धी निम्नलिखित तथ्य विचारणीय है—

१. लिंग सम्बन्धी प्रश्न
२. दाम्पत्य प्रेम
३. प्रेम और प्रकृति
४. प्रेम और संसार
५. प्रेम और सौन्दर्य
६. प्रेममें मिलनकी उद्दामता
७. प्रेम और विरहकी कातरता
८. प्रेम और स्वप्न

१. आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें पुरुष कवि प्रायः पुलिंग सम्बोधनोंका प्रयोग करते पाये जाते हैं। कवयित्रियाँ इस दिशामें अधिक सावधान दीखती हैं। इस तरह गीतिकाव्य पुलिंग सम्बोधनोंसे भरा मालूम होता है।

पुलिंग सम्बोधनोंके कुछ उदाहरण

(क) हृदयमें छिप रहे इस डरसे,
उसको भी तो छिपा लिया था, नहीं प्रेम रस बरसे॥
पर कैसी अपरूप छटा लेकर आये तुम प्यारे।
हृदय हुआ अधिकृत अब तुमसे, तुम जीते हम हारे॥[1]

(ख) आया देखो विमल वसन्त
मलयानिल पर बैठे आओ धीरे-धीरे नाथ
हँसते आओ सुमन सभी खिल जाएँ जिसके साथ॥[2]

(ग) मेरी आँखोंकी पुतलीमें
तू बनकर प्राण समाजा रे![3]

(घ) प्रिय! तुम भूले मैं क्या गाऊँ?
जिस ध्वनिमें तुम बसे

१. 'झरना', प्रसाद, पृ० ९३।
२. वही, पृ० ९६।
३. 'लहर', प्रसाद, पृ० २८।

उसे जगके कण-कण में क्या बिखराऊँ ।[१]

(ङ) तुम सपनोंमें आये हो तो
अपने भी बन जाओगे ।[२]

(च) कौन जादू डालता है आज फिर मेरे नयनमें ।[३]

(छ) कौन मेरी कसकमें नित मधुरता भरता अलछित ।[४]

(ज) अलि क्या प्रिय आनेवाले हैं ?[५]

(झ) दृष्टिपथसे तुम जाते हो जब ।[६]

(ञ) तुम छोड़ गये द्वार
तबसे यह सूना संसार ।[७]

स्त्रीलिंग सम्बोधनके कुछ उदाहरण

(क) तुम्हारी आँखोंका आकाश;
सरल आँखोंका नीलाकाश—
सो गया मेरा खग अनजान,
मृगेक्षिणि ! इनमें खग अज्ञान ![८]

(ख) आज रहने दो यह गृहकाज
···'प्रिये लालस-सालस वातास,'[९]

(ग) प्रिय, जाने कब आओगी तुम ![१०]

(घ) शरद् सी तुम कर रही होगी कहीं शृङ्गार[११]

(ङ) आँख मिचौनी आज फिर तुम
खेलने आयी सलोनी ।[१२]

(च) प्यारको संघर्ष मत, सुन्दरि, बनाओ ।[१३]

(छ) कहा-'प्रेयसि' क्यों प्रातःकाल

---

१. 'आधुनिक कवि', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ११ ।
२. 'पर आँखें नहीं भरीं', शिवमंगल सिंह 'सुमन', पृ० ४६ ।
३. 'सतरंगिनी', बच्चन, पृ० १११ ।
४. 'सन्धिनी', महादेवी, पृ० ४५ ।
५. वही, पृ० ५६ ।
६. 'इत्यलम्', अज्ञेय, पृ० १७ ।
७. 'गीतिका', निराला, पृ० २५ ।
८. 'गुंजन', पन्त, पृ० ४८ ।
९. वही, पृ० ५२ ।
१०. 'प्रवासीके गीत', नरेन्द्र शर्मा, पृ० ३४ ।
११. पर आँखें नहीं भरीं, शिवमंगल सिंह 'सुमन', पृ० २९ ।
१२. 'सतरंगिनी', बच्चन, पृ० ११६ ।
१३. वही, पृ० ११८ ।

कुसुमका तुम करती हो चयन ।[१]

(ज) प्रिये, शब्द प्रत्येक तुम्हारा
है सुरभित सस्मित उपवन ।[२]

(झ) अपनी पलकोंपर क्या मेरे
आँसूको तुम तोल सकोगी ?[३]

(ञ) हेर उर-पट, फेर मुखके बाल,
लख चतुर्दिक चली मन्दमराल,[४]

ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जिनमें पुरुषोंने स्त्रीके रूपमें गीतोंकी भाषा गढ़ी है। यथा—

जीवन तेरे बिन भी है!
व्यथा-भारसे बोझिल पलकें
अश्रु-तुहिन आँखोंसे ढलकें,
प्राणोंपर तमसा छायी है पर सुनती हूँ दिन भी है।[५]

उपर्युक्त उदाहरणसे यह सिद्ध होता है कि प्रेमगीतोंमें लिंगोंके प्रयोगमें कविके स्त्री या पुरुष होनेसे विशेष सम्बन्ध नहीं है। इसके कारणोंकी खोज करनेपर ऐसा ज्ञात होता है कि एक तो प्रेमके आध्यात्मिक प्रसंगमें जीव अपनेको स्त्री मानकर परम पुरुष परमात्मासे प्रणय-निवेदन करता है, अतः कवि हो या कवयित्री—उनके प्रिय पुलिंग ही होंगे। दूसरी बात यह है कि प्रेम एक सूक्ष्म भाव है और कवि भावनाओंका प्राणी! कवि अपना तादात्म्य स्त्रीके साथ, पुरुषके साथ और विश्वके समस्त जड़-चेतन पदार्थोंके साथ स्थापित कर सकता है। ऐसी स्थितिमें स्त्रीलिंग-पुलिंगका विचार ही व्यर्थ है। आवश्यकता इतनी ही है कि एक गीतमें लिंगकी एकरूपता सर्वत्र रहे—और इस दृष्टिसे हिन्दीके गीत पूर्णतः खरे उतरते हैं।

(२) प्रेम यदि निर्झर है, तो दाम्पत्य जीवन एक तड़ाग। एकमें उन्मुक्तता है, दूसरेमें संयम और सीमा। हिन्दी गीतिकाव्यके आधुनिककालमें ही दाम्पत्य जीवनके बहुरंगी चित्र मिलते हैं। इस दिशामें सर्वाधिक सफल गीत बच्चनने लिखे 'निशा-निमन्त्रण' और 'आकुल-अन्तर'में स्वर्गीय श्यामादेवीसे सम्बद्ध गीत हैं और 'सतरंगिनी', 'मिलन-यामिनी' एवं 'प्रणय-पत्रिका'में श्रीमती तेजीश्वरीदेवीसे सम्बद्ध गीतोंका बाहुल्य है। इन्होंने इनमें 'निशा-निमन्त्रण' एवं 'मधुकलश'को स्वर्गता श्यामादेवीको तथा 'सतरंगिनी', 'मिलनयामिनी' एवं 'प्रणय-पत्रिका' श्रीमती तेजीश्वरीजीको समर्पित किये हैं। दाम्पत्य-प्रेमका संयोग पक्ष प्रमुखतः 'सतरंगिनी' एवं 'मिलनयामिनी'में तथा वियोग पक्ष 'निशा-निमन्त्रण', 'आकुल-अन्तर' एवं 'प्रणय-पत्रिका' में है। शास्त्रीय दृष्टि-

---

१. 'रूपराशि', रामकुमार, पृ० १६।
२. वही, पृ० २३।
३. 'ज्वारभाटा', किशोर, पृ० ६४।
४. 'गीतिका', निराला, पृ० ४।
५. 'चिन्ता', अज्ञेय, पृ० १५२।

से करुण रसका आनन्द 'निशा-निमन्त्रण' एवं 'आकुल-अन्तर' में तथा विप्रलंभ शृङ्गार-का 'प्रणय-पत्रिका' में मिलता है। इन दाम्पत्य गीतोंमें बच्चनके अत्यन्त निष्ठावान, अनुरक्त एवं रस-प्रवण हृदयका परिचय मिलता है। निश्चय ही दाम्पत्य प्रेमके क्षेत्रमें विविधता, श्रेष्ठता एवं निष्ठाकी दृष्टिसे बच्चन हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ गीतकार हैं। उपरिलिखित सम्पूर्ण रचनाएँ ही इसके उदाहरण हैं। कुछ पंक्तियोंका उद्धरण अनावश्यक है।

(३) प्रेमको व्यक्त करनेके लिए इन गीतकारोंने प्रकृतिकी सहायता ली है। विशेष रूपसे कभी वे पृष्ठभूमिके रूपमें, कभी शृङ्गार प्रसाधनों, शोभा चित्रणोंके रूपमें और कभी मनोभावोंको तीव्रतर अभिव्यक्ति प्रदान करनेके लिए इनका उपयोग करते हैं। यथा—

(क) पृष्ठभूमिके रूप में—
आज गगनकी सूनी छाती
भावोंसे भर आयी,
चपलाके पाँवोंकी आहट
आज पवन ने पायी,
डोल रहे हैं बोल न जिनके
मुखमें विधिने डाले;
बादल घिर आये, गीतकी बेला आयी।[१]

(ख) शृङ्गार-प्रसाधन : शोभा चित्रण—
इन्दु तुल्य शोभने, तुषार-शीतले।[२]
× × ×
रंजित कर दे यह शिथिल चरण ले नव अशोकका अरुण राग,
मेरे मंडनको आज मधुर ला रजनीगन्धाका पराग,
यूथीकी मीलित कलियोंसे अलि दे मेरी कबरी सँवार![३]

(ग) मनोभावोंकी तीव्रतम अभिव्यक्तिके लिए—
ओसोंके अक्षरसे अंकित
कर दूँ व्यथा-कहानी,
उसमें होगा मेरी आँखों
के मोतीका पानी
उसे न छूना, रह जावेगी
मेरी कथा अधूरी
कैसे पार करूँगी फिर मैं
हृदय अपरिमित दूरी?[४]

१. 'प्रणय-पत्रिका', बच्चन, पृ० ६४।
२. 'चिन्ता', अज्ञेय, पृ० ५९।
३. 'आधुनिक कवि', महादेवी, पृ० ८२।
४. 'अंजलि', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४२।

(४) प्रेम संसारकी छाती पर सीधे नहीं जमता। प्रेमीको संसारसे सदैव शिकायत रहती है। आधुनिक हिन्दी प्रेमगीतोंमें इन भावोंकी पुष्टिके कई उदाहरण मिलते हैं। प्रेमका उत्कर्ष काल 'जवानी और जमाना'के सम्बन्धका एक चित्र देखें—

जवानी जिनके-जिनके पास
जमाना उनसे-उनसे दूर!
जवानी मस्ती, हँसती जलन
जवानी दो प्राणोंका मिलन
जवानी हास, जवानी रुदन
जवानी तन-मनका सन्तुलन!
जमाना विधुर हृदय सुनसान
जवानीका अक्षय सिन्दूर।[१]

अथवा

एक पलड़ेपर निठुर संसारका दिल,
दूसरेपर अँट न पाता प्यार मेरा।
इस जमानाके तराजूपर पुराना,
कौन माने, जिन्दगी तोली न जाती!
कौन जाने, वेदना बोली न जाती।[२]

संसारके मायावी एवं छल-प्रपंची रूपका एक चित्रण—

मैं छिपाना जानता तो
जग मुझे साधू समझता,
शत्रु मेरा बन गया है
छल-रहित व्यवहार मेरा।[३]

संसारकी शक्ति और कविकी निरीहताके चित्र—

था जगत्का और मेरा
यदि कभी सम्बन्ध तो यह
विश्वको वरदान थे जो
थे वही अभिशाप मेरे![४]

जिस बन्धनने निशा-निमन्त्रणमें दुनियाकी क्रूरताको लक्ष्य किया था—

प्रेमियोंके प्रति रही है, हाय, कितनी क्रूर दुनिया।[५]

---

१. 'जवानी और जमाना', किशोर, पृ० ७।
२. 'ज्वारभाटा', किशोर, पृ० ९६।
३. 'मधुकलश', बच्चन, पृ० ४२।
४. वही, पृ० ६७।
५. पृ० ९५।

जिस बच्चनने 'मधुकलश'में दुनियाको व्यंग्य-बाणसे विद्ध किया था—

वृद्ध जगको क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी ।[१]

उसीने 'मिलनयामिनी'में संसारपर प्रेमकी विजयका झण्डा लहराया है—

किन्तु अन्तमें दुनिया हारी
और हमी-तुम जीते ![२]

(५) सौन्दर्य—प्रेमको उत्तेजना देता है। वह सौन्दर्य आंतरिक[३] भी होता है और बाह्य[४] भी। वह 'चेतनाका उज्ज्वल प्रकाश' है और 'ऐश्वर्योंकी सन्धान'। आधुनिक हिन्दी प्रेमगीतोंमें सौन्दर्यके विभिन्न आयाम रूपरंग-सहित चित्रित हुए हैं। पन्तने सर्वत्र ही सौन्दर्यके दर्शन किये हैं—

सुन्दर प्रशस्त, दिशि-अंचल,
सुन्दर चिर-लघु, चिर-नव पल,
सुन्दर पुराण-नूतन रे, सुन्दर-सुन्दर जग-जीवन ।[५]

प्रकृति-परिवेशमें स्थूल सौन्दर्यके मादक चित्रका यह उदाहरण कितना सटीक है—

सुधि में संचित वह साँझ कि जब
रतनारी प्यारी सारी में, तुम, प्राण, मिलीं नत लाज-भरी
मधुऋतु-मुकुलित गुलमुहर तले ।
...नीलम-सी नीली सारी में, तुम, प्राण, मिलीं उन्माद-भरी
खुलकर फूले गुलमुहर तले ।
...सित-सेमल सादी सारी में, तुम, प्राण, मिलीं अवसाद-भरी
कलि-पुहुप झरे गुलमुहर तले ।[६]

साड़ियोंके रंगके साथ मनके भावोंका कितना एकात्म है।

एक 'अरुण-मुख-तरुण-अनुरागी पंकज दृग' नायिकाके रूपका कितना कलात्मक चित्र निरालाने प्रस्तुत किया है—

खुले केश, अशेष शोभा भर रहे
पृष्ठ ग्रीवा बाहु-उर पर तर रहे
बादलोंसे घिर अपर दिनकर रहे
ज्योतिकी तन्वी, तड़ित-द्युति ने क्षमा माँगी ।[७]

---

१. पृ० ४२।

२. 'मधुबाला', भूमिका, पृ० ८।

३. सौन्दर्य बाहरकी कोई वस्तु नहीं है, मनके भीतरकी वस्तु है।
—'चिन्तामणि', भाग १, आचार्य शुक्ल, पृ० २२४

४. कुछ ऐसे विषय है, जिनको देखकर हृदयमें रसका संचार होता है...

५. 'गुञ्जन', पृ० २९।

६. 'मिलनयामिनी', बच्चन, पृ० १७४-१७८।

७. 'गीतिका', पृ० ४।

प्रथम दर्शनकी कौमार्य-दृष्टिसे रूपका चित्रण डॉ० रामकुमार वर्माने किया है—

देखा एक रूप, जिसमें है मादकता का सार,
लौट रहा उसके चरणोंपर यौवनका संसार,
प्रतिबिम्बित हैं अंग-अंग में अजित-अनंग-अनूप;
कोमल अरुण नेत्रमें बहता है आसवका रूप,
ओठोंसे हिलता आता है
मन्द वायुमें गीत ।[1]

केवल एक क्रिया हँसनेकी शोभाका हृदयग्राही चित्रण इन पंक्तियोंमें मिलता है—

तुम हँसती, झड़ती, शेफाली !
चुपके मिलन-यामिनी में खिल
श्वास-सुरभि से पल-पल हिल-हिल
लद जाती कामना-कली से
जीवन की हर डाली-डाली ।[2]

(६) **प्रेममें मिलनकी उद्दामता**—इन प्रेमगीतोंमें मिलनक्षणके अनुराग, उल्लास, उद्दाम वेग, प्यास-तृप्ति आदिके सफल चित्र मिलते हैं । मिलनके लिए उत्साहित करनेवाली ये पंक्तियाँ प्रेरक हैं—

अब तुम्हें डर-लाज किससे लग रही है,
आँख केवल प्यारकी अब जग रही है,
मैं मनाना जानता हूँ, मान कर लो;
आज आओ चाँदनीमें स्नान कर लो ।[3]

मिलनकी उद्दामताके कुछ चित्र इन गीतोंमें बड़े प्रखर हैं—

(क) गोद में तुम हो, गगन में चाँदनी है,
काल को यह भी निशा तो नापनी है,
मधु-सुधा की धार में दो याम बह लें;
है रुपहली रात, हैं सपने सुनहले ।[4]

(ख) जब तलक तुम पास, यौवन दास मेरा !
तुम पवन-सा व्याप्त होकर चूमने दो !
तुम लहर-सा आप्त होकर झूमने दो !
है दरस ज्यों चाँदनी, चन्दन परस है,
हर तुम्हारी साँस है, मधुमास मेरा ।[5]

---

१. 'रूप-राशि', पृ० ४६ ।
२. 'ज्वारभाटा', किशोर, पृ० ३२ ।
३. 'मिलनयामिनी', बच्चन, पृ० ३३ ।
४. वही, पृ० ३६ ।
५. मासिक 'ज्योत्स्ना', किशोर ।

है तुम्हारी गोदमें हरिद्वार-काशी,
है तुम्हारी बाँह में संन्यास मेरा ।

(ग) प्रिय-कर कठिन-उरोज-परस कस कसक-मसक गयी चोली,
एक वसन रह गयी मन्द हँस अधर-दशन अनबोली
कली-सी काँटे की तोली ॥[१]

(७) प्रेममें विरहकी कातरता—इसी तरह विरहके करुण-मधुर प्रसंगोंसे आधुनिक प्रेमगीत भरे हैं । कहीं प्रतीक्षाकी उत्सुकता, कहीं विरहकी तड़प, कहीं प्रियाकी स्मृतिकी तीव्रता, कहीं आँसू-हाहाकार—विरहके समस्त कार्य-व्यापार इनमें मुखरित हुए हैं । विरह-प्रसंगकी कुछ मार्मिक पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जा रही हैं—

(क) प्राण-धनको स्मरण करते
नयन झरते नयन झरते ।[२]

(ख) शायद आँखें भर आएँ—
आँचलसे मुख ढक लूँगा,
आँखोंमें, उरमें, क्या है, यह
तुम्हें न दिखने दूँगा ।
देव ! आऊँगा तेरे द्वार !
किन्तु नहीं तेरे चरणोंमें दूँगा कुछ उपहार ।[३]

(ग) खिड़कीसे झीनी-झीनी
बौछार बिखरती आई,
अनायास ही किसी निठुरकी—
याद दृगोंमें छाई ।
पानी बरसा कहीं, किसीकी बहा आँखका काजल
आज रात भर बरसे बादल ।[४]

(घ) अन्धकारका अम्बर पहले,
रात बिता दूँ सारी ।
दीप नहीं, तारक प्रकाश में,
खोजूँ स्मृति-निधि न्यारी ॥
ओस सदृश अवनी पर बिखरा-
कर यह यौवन सारा ।

१. 'गीतिका', निराला, पृ० ४६ ।
२. वही, पृ० ५२ ।
३. 'इत्यलम्', अज्ञेय, पृ० २६ ।
४. 'पर आँखें नहीं भरीं', 'सुमन', पृ० २६ ।

किसी किरणके हाथ समर्पित
कर दूँ जीवन प्यारा ।[१]

(ङ) आज आहत मान, आहत प्राण !
कल जिसे समझा कि मेरा
मुकुर-बिम्बित रूप,
आज वह ऐसा, कभी की
हो न ज्यों पहचान ।[२]

(च) पल प्रतीक्षाका, अकेलावास मधुवनका !
मिलनका चिर सुख, मधुर अभिशाप यौवनका !
राम जाने, क्यों गरलको ही, अमृत कहती प्रेम की भाषा;
चाँद-सा, घनघोर पावसमें आज मेरे अश्रु मुस्काये !
शाम आयी, तुम नहीं आये ।[३]

८. प्रेम और स्वप्न—मनोवैज्ञानिकोंने स्वप्नको अतृप्त आकांक्षाओंकी पूर्त्तिका एक साधन माना है। हर प्रेमी कुछ न कुछ सपने देखता है—कभी खुली आँखों, कभी बन्द आँखों ! स्मृतियोंसे सँवरी कविताके चित्र तो एक प्रकारके दिवा-स्वप्न होते ही हैं। कवि विरहमें मिलनके सपने देखता है, मिलनमें उसके स्थायित्वके ! आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यके प्रेम-प्रसंगोंसे ऐसे ही सपनोंके कुछ चित्र यहाँ दिये जा रहे हैं—

(क) डालपर बोलता है पपीहा—
हो भला प्राणधन, तुम कहीं ?—हा !
आ मिलो हो जहाँ।
पी ! कहाँ ? पी ! कहाँ ?[४]

(ख) हो मधुर सपना तुम्हारा !
पलकपर यह स्नेह-चुम्बन,
पोंछ दे सब अश्रुके कण,
नींदकी मदिरा पिलाकर दे भुला जग-क्रूर कारा ![५]

(ग) मैं तुमसे मिल सकूँ यथा उरसे सुकुमार दुकूल,
समय-लतामें खिले मिलनके दिनका उत्सुक फूल,
मेरे बाहु-पाशसे वेष्टित हो यह मृदुल शरीर,
चारों ओर स्वर्गके होगा पृथ्वीका प्राचीर ।[६]

---

१. 'आधुनिक कवि', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ११२।
२. 'आकुल-अन्तर', बच्चन, पृ० १८।
३. 'ज्वारभाटा', किशोर, पृ० १०४।
४. 'झरना', प्रसाद, पृ० ४९।
५. 'निशा-निमंत्रण', बच्चन, पृ० ४८।
६. 'आधुनिक कवि', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ५६।

(घ) तुम खुले नयनके सपने हो !
जब सो जाती बरसात लिये ये आँखें
जब शिथिल वेदनाकी हो जाती पाँखें,
तब मेरी ही कल्पना मनोहर रूप तुम्हारा धरकर
आती, रंग जाता कनक रंगमें अम्बर,
सोते-जगते भूलती नहीं छवि जिसकी
तुम वही प्राणके प्रिय मेरे अपने हो ।[१]

(ङ) वह कितना सुन्दर सपना हो !
जो आकर मेरे सिरहाने
तुम जलता मस्तक सहला दो ![२]

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें ऋतु-वर्णन

ऋतु-वर्णनकी परम्परा प्रबन्धकाव्योंमें विशेष रूपसे पोषित हुई है। आधुनिक युगके खण्डकाव्यों, महाकाव्यों तथा उद्धवशतक जैसे मुक्तककाव्योंमें भी इसका निर्वाह किया गया है। आधुनिकतम शैलीमें लिखा गया 'एकलव्य' भी इसका अपवाद नहीं है। गीतोंमें जीवनके कुछ ही मर्मस्पर्शी क्षण चित्रित होते हैं, अतः उनमें विशद ऋतु-चित्र आँकना उपयुक्त नहीं है।

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें मनोभावोंके अनुकूल ऋतुओंके रूप-रंग चित्रित हुए हैं—हल्की, आड़ी-तिरछी रेखाओंमें सांकेतिक रूपसे। भावोंकी नवीन भूमिसे स्पर्श प्राप्त करनेके कारण इनमें पर्याप्त मात्रामें नवीनता मिलती है। इन गीतोंमें पावस और वसन्तके चित्र संख्यामें अधिक और सफलतामें बढ़कर हैं। शेष ऋतुओंके चित्र कम मात्रामें हैं। सुख-दुख, मिलन-विरहके प्रतीकके रूपमें वसन्त और पावस ऋतुओंमें अधिक समीचीन भी है।

उपर्युक्त तथ्योंके पुष्टि-स्वरूप नीचे कुछ पंक्तियाँ दी जाती हैं—

पावस—घोर तम छाया चारों ओर, घटाएँ घिर आयीं घनघोर
वेग मारुतका है प्रतिकूल हिले जाते हैं पर्वत मूल,
गरजता सागर बारम्बार, कौन पहुँचा देगा उस पार।[३]
—धाये धराधर धावन है !
गगन गगन गाजे सावन है ![४]
—बरसो हे घन ![५]

---

१. मासिक 'हिमालय', किशोर।
२. 'प्रवासीके गीत', नरेन्द्र शर्मा, पृ० ३९।
३. 'आधुनिक कवि', महादेवी, पृ० १२।
४. 'आराधना', निराला, पृ० ३।
५. 'सुमित्रानन्दन पंत', बच्चन, पृ० ९३।

—घन इन्द्रनील,
बरसे हीरक-मुक्ता सलील ![1]

वसन्त—

—अट नहीं रही है
आभा फागुन की तन
सट नहीं रही है।[2]

—ओ पीले घन !
तुमसे ही तो जीवित है
मुकुलित वसन्तका मंजुल यौवन।[3]

—धीरे-धीरे उतर क्षितिजसे
आ वसन्त रजनी ![4]

—रुपहले, सुनहले आम्र-बौर,
नीले, पीले औ' ताम्र भौंर,
रे गन्ध-अन्ध हो ठौर-ठौर
उड़ पाँति-पाँतिमें चिर-उन्मन,
करते मधुके वनमें गुंजन ![5]

—अनगिनित बसंती फूलोंके गुच्छोंमें गिनतीके पत्ते
का अमलतास फिर एक बार कर जाता है मुझको उदास।[6]

अन्य ऋतुएँ—शरद्—

—आज प्राण चिर चंचल !
नवल शरद् ऋतु, ओस धुला मुख,
धूप हँसी-सी निश्छल
सौम्य शरद् श्रीका यह आँगन ![7]

—ओस पड़ी, शरद आई।
हरसिंगार मुस्काई।[8]

ग्रीष्म—

कितना भीषण है ग्रीष्मकाल ![9]

---

१. 'हंसमाला', नरेन्द्र शर्मा, पृ० ६२।
२. 'अर्चना', निराला, पृ० ६३।
३. 'रूपराशि', डॉ०, रामकुमार वर्मा, पृ० ५१।
४. 'सन्धिनी', महादेवी, पृ० ४१।
५. 'गुंजन', पंत, पृ० १०।
६. 'मिलनयामिनी', बच्चन, पृ० ९१।
७. 'उत्तरा', पंत, पृ० ९९,१०५।
८. 'अर्चना', निराला, पृ० २३।
९. 'एकलव्य', डॉ०, रामकुमार, पृ० १५६।

हेमन्त—

हेमपुंज हेमन्त कालके इस आतपपर वारूँ
प्रिय-स्पर्शकी पुलकावलि मैं कैसे आज बिसारूँ ?
किन्तु शिशिर ये ठंढी साँसें, हाय ! कहाँ तक धारूँ !
तन गारूँ मन मारूँ, पर क्या मैं जीवन भी हारूँ ![1]

शिशिर—

—शिशिर ! तू मुझे न अब झकझोर !
सुखके जितने पल्लव थे वे
बिखरे इस उस ओर ।[2]
—बहती है मधुवनमें अब पतझर की बयार ।[3]

संगीतशास्त्र और आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य

गीतिकाव्यका अनिवार्य तत्त्व है संगीत । संगीतात्मकताका मात्राभेद ही उसे काव्यके अन्य रूपोंसे स्पष्टतः भिन्न करता है । संगीतका माध्यम है नाद और गीतका माध्यम नादमय शब्द । शास्त्रीयताको संगीतज्ञ प्रधानता देते हैं, उसकी लयात्मकता मात्रको कवि । इस दृष्टिसे लोकगीतोंका ही विशेष विकास आधुनिक गीतिकाव्योंमें हुआ है । गीतिकाव्यमें संगीतका स्वाभाविक आग्रह होता है, अतः एक उन्मुक्तता होती है । संगीत गीतिकाव्यमें भावोंके तद्रूप स्फुरणमें सहायक होता है । गीतिकाव्यका संगीत सोये भावोंको गुदगुदाकर जगा देता है । संगीतमें लिपटे हुए शब्द और भाव बड़ी सुगमतासे प्राणोंको आह्लादित कर पाते हैं । गीतिकाव्यका संगीत शब्द और अर्थका सम्यक् विस्तार भी करता है । आधुनिक हिन्दी गीतोंमें भारतीय संगीतके लय और माधुर्य एवं पाश्चात्य संगीतके तालैक्यका निर्वाह भी किया जाता है । गीतिकाव्यमें संगीतकी पूर्ण सार्थकता वहाँ सिद्ध होती है, जहाँ वह भावके अनुकूल प्रभाव, कल्पनाके मूर्त्ति-विधान एवं अनुभूतिके दिव्य स्पर्शोंको एक तान कर देता है । मात्र संगीतका मुख्य उद्देश्य भावको जाग्रत करना है, गीतमें आकर वह बुद्धि और कल्पनाको भी जाग्रत करता है । संगीतमें भाव निराकार होते हैं, गीतमें साकार ।

भारतीय संगीतमें राग-रागिनियोंका निर्माण स्वरोंकी प्रकृतिके अनुकूल हुआ है । इस देशकी संगीत-चेतना इतनी प्रबल है कि राग-रागिनियोंका विभाजन उसकी परुषता और कोमलताके अनुसार किया गया है । भैरव, मालकौंस, हिंडोल, मेघ-मल्हार आदि राग पुरुष और भैरवी, जैजैवन्ती, आसावरी, रामकली आदि स्त्री रूपमें माने गये हैं । 'संगीत दर्पण'के अनुसार भैरव, पंचम, नाट, मल्हार, गौड़ और मालव छह पुरुष राग

१. 'यशोधरा', गुप्त, पृ० ६२ ।
२. 'एकलव्य', डॉ० वर्मा, पृ० १५९ ।
३. 'मिलनयामिनी', बच्चन, पृ० ७० ।

माने गये हैं ।[१] इनसे ही अनेक रागिनियोंका जन्म हुआ । संगीतके अनुकूल शृंगार, वीर और शान्त रस माने गये हैं । शेष रसोंको इसीमें अन्तर्भुक्त कर दिया जाता है । इस राग-रागिनियोंको समयके अनुसार भी विभक्त किया गया है । उषाकालमें ललित, रामकली, भैरव, भैरवी आदि; प्रातःकालमें देश, गांधार, टोड़ी आदि; मध्याह्नमें सारंग आदि; संध्याको गोरी, पूर्वी, श्री आदि तथा रात्रिमें केदारा, यमन, भूपाली, रातके पिछले प्रहरमें विहाग आदि ।

संगीतका भावों और विचारोंसे सम्बद्ध होना, उसकी विशिष्टता है ।[२] यह बात गीतिकाव्यके साथ लागू है । हमारे यहाँ भारतीय संगीतका विशुद्ध रूप कर्नाटकी संगीतमें मिलता है और मुसलमानोंके प्रभावसे मिश्रित और नवीन धारा हिन्दुस्तानी संगीतके नामसे जाना जाता है । हिन्दुस्तानी संगीतका क्षेत्र अधिक प्रयोगशील और नवीनतावादी है । हमारे हिन्दी गीतिकाव्यपर दोनों ही पद्धतियोंका प्रभाव है—विशेषतः दूसरी पद्धतिका ।

आधुनिक कालमें पश्चिमी संगीत-पद्धतिका प्रसार-प्रचार बंगला साहित्यमें विशेष रूपसे हुआ । डॉ० एल० राय और रवीन्द्रनाथने इसे भारतीय रूपमें ढालनेका प्रयास किया । हिन्दी संगीत-शब्दावलिको कुछ हदतक निरालाने सुधारनेका प्रयास किया । उन्होंने लिखा है "हिन्दी गवैयोंका समपर आना मुझे ऐसा लगता था, जैसे मजदूर लकड़ीका बोझ मुकामपर लाकर धम्मसे फेंक कर निश्चिन्त हुआ ।"[३] वस्तुतः आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें संगीतका निर्वाह तीन रूपोंमें हुआ है—एक जिनमें संगीत-की शास्त्रीय पद्धतिका निर्वाह किया गया है, दूसरे, जो सुगम संगीतके योग्य हैं, अर्थात् जिनमें मिश्रित राग-रागिनियोंका सहारा लिया जाता है और तीसरे वे जो कोमल पदा-वलियोंके कारण सुपाठ्य हैं । प्रधानता दूसरी कोटि की है ।

शास्त्रीयताकी दृष्टिसे निरालाकी 'गीतिका'के गीत एवं प्रसादके नाटकोंमें प्रस्तुत कुछ गीत विशेष महत्त्वके हैं । निरालाने लिखा है "दो-एक स्थलोंको छोड़कर अन्यत्र सभी जगह संगीतके छन्दःशास्त्रकी अनुवर्त्तिता की है ।"[४] धमारमें उनका गीत 'प्राण-धनको स्मरण करते, नयन झरते-नयन झरते'[५] प्रस्तुत किया गया है । इस गीतमें पहली-तीसरी पंक्तियोंमें स्वरके विस्तारको स्वर खींचकर पूरा किया गया है । झपताल, रूपक,

---

१. भैरवः पंचमो नाटो मल्लारो गौडमालवः ।
देशा ख्यश्चेति षड्रागा प्रोध्यन्ते लोक विश्रुताः ॥—संगीतदर्पणम्, २-३८ ।

२. Music when combined with a Pleasurable idea, is poetry; music without the idea, is simply music.
—*An Anthology of Critical Statements,* Edgar Allen Poe, Page 69.

३. 'गीतिका', पृ० ६ ।

४. वही ।

५. वही, पृ० ५२ ।

चौताल, तीनताल आदि तालोंकी मात्राओंको भी शास्त्रीय विधिसे गानेकी कला बतलायी गयी है। 'गीतिका'के अनेक गीत समयानुसार राग-रागिनियोंमें गाये जा सकते हैं। ऐसे 'गीतिका'के गीत भैरव, केदार, मालकंस, कल्याण, भैरवी आदि राग-रागिनियोंमें गाये जा सकते हैं।

हिन्दीमें गजल और ठुमरीकी पद्धतिपर भी अनेक गीत लिखे गये हैं। निरालाने 'बेला'में कई गजलें लिखी हैं। गजलमें ७ से १२ तक शेर होते हैं। इनमें हमवजन मिसरे होते हैं। वजन और काफिरा एक होते हैं। दिनकरके गीत 'संगिनि, जी भर गा न सका मैं' १६ मात्राओं की रचना है, जिसमें रदीफ और काफियाका नियम पाला गया है और जिसे तीन तालमें गाया जा सकता है।

जयशंकर प्रसादका गीत 'तुम कनक किरणके अन्तरालमें लुक-छिपकर चलते हो क्यों ?' खम्माच तीन तालमें, 'निकल मत बाहर दुर्बल आह' जौनपुरी टोड़ी तीन तालमें, 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' सिन्ध भैरवी तीन तालमें, 'प्रथम यौवन मदिरासे' मिश्रित भैरवी-कहरवा तालमें, 'आज इस यौवनके माधवी कुंजमें' धुन कजली-कहरवा तालमें, 'सुधासीकरसे नहला दो' कजली धुन बनारसी—कहरवा तालमें तथा 'कैसी कड़ी प्रीतकी ज्वाला' सोहनी तीन तालमें बड़ी सफलतापूर्वक गाये जाते हैं।

सुगम संगीतके अन्तर्गत १२-१६ मात्राओंके अधिकांश आधुनिक हिन्दी गीत गाये जाते हैं, जिनकी रचना उपयुक्त शब्दावलिमें हुई हो। इस दृष्टिसे पंतका गीत 'बाँध दिये क्यों प्राण प्राणोंसे', बच्चनका गीत 'मैं अग्निदेशसे आता हूँ', नेपालीका 'कल्पना करो नवीन', नरेन्द्र शर्माका गीत 'ज्योतिकलश छलके', रामकुमार वर्माका गीत 'प्रिय तुम भूले हैं क्या गाऊँ', दिनकरका गीत 'मेघरन्ध्रमें बजी रागिनी', महादेवीका गीत 'जाने किस जीवनकी सुधि ले', जानकीवल्लभका गीत 'बना घोंसला पिंजड़ा पंछी', किशोरका गीत 'नयी उषा, नयी दिशा नवीन आसमान है', नीरजका गीत' देखती ही न दर्पण रहो रात दिन' आदि कुछ अच्छे उदाहरण हैं।

प्राचीन गवैये शास्त्रीय संगीतके व्याकरणकी पूर्त्तिके लिए पद रचते थे। हरिदास, तानसेन, बैजूबावरा आदि ऐसे ही कलाकार थे। उनकी रचनाओंमें काव्यत्वपर ध्यान नहीं रखा गया है—संगीतके व्याकरणका पूर्ण निर्वाह है। मध्यकालीन हिन्दी भक्त कवियोंके पदमें गेयताका रहस्य था उनकी स्वरलहरी और गा-गाकर उसे लिखने की कला। सूर वाद्य-यंत्रके सहारे गा-गाकर पद रचते थे। मीरा नाचती-गाती पद रचती थी। इन भक्तोंके पदोंको जनताके स्वर ही सँवार कर रखते थे। उनकी लोकप्रियता जन-कंठोंके सहारे हुई। भक्तिकाल काव्य और संगीतकी दृष्टिसे आदर्श काल है। आधुनिक हिन्दी गीतोंमें शब्दोंके अर्थ और काव्यत्वको विशेष महत्त्व प्रदान किये जाते हैं। वाद्य-संगीत या कंठ-संगीतके व्याकरणसे बहुत कम गीतकार परिचित हैं। वे लय, ताल

और शब्दोंकी झंकृतिके माध्यमसे गीतोंका सृजन करते हैं। एवरक्रोम्बीने अँगरेजी 'लिरिक'के सम्बन्धमें जो बात कही है, वह इन गीतोंपर घटित होती है।[१]

मात्रिक छन्दोंके आधिपत्यसे आधुनिक हिन्दी गीतोंकी संगीतात्मकताका प्रबल आधार उसका तुक है। महाकवि सुमित्रानन्दन पंतने लिखा है 'तुक रागका हृदय है; जहाँ उनके प्राणोंका स्पन्दन विशेष रूपसे सुनायी पड़ता है, रागकी समस्त छोटी-बड़ी नाड़ियाँ मानो अन्त्यानुप्रासके नाड़ी-चक्रमें केन्द्रित रहती है जहाँसे नवीन बल तथा शुद्ध रक्त ग्रहण कर छन्दके शरीरमें स्फूर्त्तिका संचार करती रहती है। जो स्थान तालमें रागका है, वही स्थान छन्दमें तुकका। वहाँ पर राग शब्दोंकी सरल, तरल, ऋजु, कुंचित 'परनों'में घूम-फिर कर विराम ग्रहण करता है। उसका सिर जैसे अपनी ही स्पष्टतामें हिल उठता है। जिस प्रकार अनेक आरोह-अवरोहमें रागवादी स्वरपर बार-बार ठहरकर अपना रूप-विशेष व्यक्त करता है उसी प्रकार वाणीका राग भी तुककी पुनरावृत्तिसे स्पष्ट तथा परिपुष्ट होकर लययुक्त हो जाता है।'[२] उदाहरणस्वरूप कुछ गीत प्रस्तुत हैं—

(क) वन-वन उपवन—
छाया उन्मन-उन्मन गुंजन,
नव-वयके अलियोंका गुंजन[३]

(ख) चुम्बन चकित चदुर्दिक चंचल
हेर-फेर मुख, कर बहु सुख-छल,
कभी हास, फिर त्रास, साँस-बल
उर-सरिता उमगी।[४]

(ग) बीती विभावरी जाग री
अम्बर पनघटमें डुबो रही
तारा-घट ऊषा-नागरी !

खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा,
किसलयका अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई—
मधु-मुकुल नवल रस-गागरी ![५]

---

१. The poet relies, indeed, on his music for the full expression of what he has to say; but the importance of the music depends on the meaning of the words.
—*Poetry, Its music and meaning*, p. 49.

२. 'पल्लवकी भूमिका', पृ० ४०।

३. 'गुंजन', पंत, पृ० ९।

४. 'गीतिका', निराला, पृ० ३३।

५. 'लहर', प्रसाद, पृ० १९।

(घ) दरसो परसो घन बरसो
सरसो जीर्ण शीर्ण धरतीके ओ नव यौवन बरसो ![1]

इस प्रकार अधिकांश हिन्दी गीतोंकी स्वर-साधना भावानुकूल और शास्त्रीय बन्धनों-की जड़तासे मुक्त है।

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य और छन्द

छन्द कविताकी लयको कहते हैं। छन्दोंके दो प्रमुख प्रकार हैं—मात्रावृत्त और वर्ण-वृत्त ! प्रथममें मात्राओं और द्वितीयमें वर्णोंकी गणना होती है। आधुनिक कालमें मुक्तवृत्तों, अतुकान्त छन्दोंके प्रचुर प्रयोग हुए हैं। पर गीतिकाव्यके लिए छन्दोंकी सम्यक् योजना आवश्यक है, क्योंकि उसमें अपेक्षाकृत अधिक सांगीतिकताकी आवश्यकता होती है। निरालाने 'गीतिका'में इसी आशयसे माँ सरस्वतीसे प्रार्थना की है 'नव गति नव लय, ताल छन्द नव' माँगा है। आधुनिक हिन्दी गीतोंमें मात्रिक छन्दकी प्रधानता है। क्योंकि "हिन्दीका संगीत केवल मात्रिक छन्दों ही में अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्यकी सम्पूर्णता प्राप्त कर सकता है।"[2]

तुकोंका महत्त्व छन्दोंकी संगीतात्मकताके लिए आवश्यक है। आधुनिक हिन्दी गीतोंमें चरणोंके साम्यपर ध्यान देनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि भिन्नांत्यको छोड़कर शेष पाँचों भेद मिलते हैं—

(क) सर्वान्त्य—जिस छंदके चारों चरणोंके तुक मिलते हों।

देखनेको तुझे बढ़ता विश्व-पुलकित प्राण,
सकल चिन्ता-दुरित-दुख-अभिमान करता दान
वहाँ प्राणोंके निकट परिचय, प्रथम आदान,
प्रथम मधु-संचय, नवल-वयसिके, नव समान ।[3]

(ख) सर्वान्त्य—विषमांत्य—जिस छंदके विषम (पहले-तीसरे) चरणों तथा सम (दूसरे—चौथे) चरणोंका तुक एक-सा हो।

कितनी बार दिवस बीता है
कितनी बार निशा बीती है,
कितनी बार तिमिर जीता है,
कितनी बार ज्योति जीती है।[4]

(ग) समांत्य—जिस छंदमें केवल दूसरे-चौथे चरणोंके तुकान्त मिलते हों—हिन्दीमें अधिकांश गीत इसी प्रकारके हैं—

चाँदनीका शृंगार समेट
अधखुली आँखों की यह कोर

---

१. 'साकेत' (सम्वत् २०२१ संस्करण), गुप्त, नवम सर्ग, पृ० २९३।
२. 'पल्लव', पन्त, पृ० २२।
३. 'गीतिका', निराला, पृ० ६४।
४. 'आकुल-अन्तर', बच्चन, ६६।

लुटा अपना यौवन अनमोल
ताकती किस अतीत की ओर ।[१]

(घ) विषमांत्य—जिस छन्दमें पहले तीसरे चरणका तुकान्त एक-सा हो—

विजन वनका फूल हूँ मैं !
सुरभिमें जो पीर पाले
आप अपनी भूल हूँ मैं ।[२]

(ङ) सम विषमांत्य—जिस छंदमें पहले-दूसरे तथा तीसरे-चौथे चरणोंके तुक एक-से हों—

आज गृह-वन-उपवनके पास
लोटता राशि-राशि हिम-हास,
खिल उठी आँगनमें अवदात
कुन्द-कलियोंमें कोमल-प्रात ।[३]

एक प्रयोग और मिलता है, जिसमें पहले, दूसरे और चौथे चरणके तुक एक-से होते हैं। यथा—

इस तृष्णाका पाया न अंत
फिर-फिर क्यों कुसुमित हो वसन्त
बादल काले कर विकृत रूप
क्यों अस्थिर हो सागर अनन्त ।[४]

आधुनिक गीतोंमें प्राचीन छन्दोंके मिश्रणसे भी नवीन छन्द बनाये गये हैं। उदाहरणार्थ, कुणाल गीतके इस गीतको लिया जाय, जिसमें चौपाई और हरिगीतिका छंदोंका मिश्रण है—

व्यथा-वरण करके रोना क्या ?
अपना धीरज-धन अपने ही हाथोंसे खोना क्या ?
क्लेश नामसे ही कर्कश है,
किन्तु सहन तो अपने वश है।
भीतर रस रहते बाहरके विषके बस होना क्या ?[५]

इसी तरह निम्न पंक्तियोंमें दस और बारह मात्राओंके चरण हैं—

आशा थी हरा हरा
होगा भव भरा भरा

---

१. 'संधिनी', महादेवी, पृ० १४।
२. 'शेफालिका', किशोर, पृ० ६४।
३. 'गुंजन', पंत, पृ० ४६।
४. 'आधुनिक कवि', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २९।
५. मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ५९।

किन्तु प्रलय-मग्न धरा
अब न और ए रे ![1]

बरवैके आधारपर निरालाने यह गीत लिखा है---

देख चुका था जो-जो आये थे चले गये।
मेरे प्रिय सब बुरे गये, सब भले गये।[2]

दिनकरने इस छंदका विवेचन इन शब्दोंमें किया है, "यहाँ गुरुके स्थानपर लघु और लघुके स्थानपर गुरु करके बरवैको अपनी स्वाभाविक यतिपर रुकनेसे रोककर उसे तीन मात्राओं तक और आगे चला दिया गया है।'[3]

आधुनिक हिन्दी गीतोंमें १६ मात्राओंके पद्धरी छन्दका भी विशेष सत्कार हुआ। एक उदाहरण—

निशाके उज्ज्वल प्रातःकाल
तुम्हारा किस प्राचीने कहाँ
किया है रंगकर प्यार-दुलार।[4]

आधुनिक गीतोंमें अनुच्छेदोंकी नवीन योजनाके द्वारा छन्दोंका विधान किया गया है—

शान्त सरोवरका उर
किस इच्छासे लहराकर
हो उठता चंचल, चंचल !
सोये वीणाके सुर
क्यों मधुर स्पर्शसे मर्-मर्
बज उठते प्रतिपल-प्रतिपल।[5]

चौपाईके तीन चरण और मत्त सवाईके दो चरणोंके योगसे बना एक गीत—

लहरें अपनापन खो न सकीं
पायलका शिंजन ढो न सकीं,
युग चरण घेरकर रो न सकीं,
विवसन आभा जलमें बिखेर
मुकुलोंका बन्ध खिला न सकीं,
जीवन की अयि रूपसी प्रथम !
तू पहली सुरा पिला न सकी।[6]

---

१. 'झंकार', गुप्त, पृ० ८५।
२. 'परिमल', पृ० ६८।
३. 'मिट्टी की ओर', पृ० ११४।
४. 'आधुनिक कवि', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७।
५. 'गुंजन', पंत, पृ० १२।
६. 'रसवन्ती', दिनकर, पृ० ६१।

चौपाईकी अर्द्धाली और मत्तसवाईके एक चरणके योगसे बना गीत—

निज सागरको थाह रहा हूँ
उन्मन-सा कुछ बोल रहा हूँ,
मनका अलस खेल यह गुनगुन, सचमुच गीत बना न रहा मैं।[१]

सरसी और शृंगारके दो-दो चरणोंसे बना एक गीत झंकारमें—

तेरी पृथ्वीकी प्रदक्षिणा देख रहे रवि सोम,
वह अचला है करे भले ही गर्जन-तर्जन व्योम।
न भयसे, लीलासे हूँ लोल।
सखे! मेरे मत बन्धन खोल।[२]

आधुनिक गीतोंमें प्राचीन छन्दोंके किंचित् रूप-परिवर्त्तनसे अद्भुत निखार आ गये हैं। यथा—

चपाईका रूपान्तर—

शीतल कोमल चिर कम्पन सी
दुर्ललित हठीले बचपन सी
तू लौट कहाँ जाती है री,
यह खेल खेल ले ठहर-ठहर!
उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर![३]

पद्धरिका रूपान्तर—

फैलाती है जब उषा राग,
जग जाता है उसका विराग,
वंचकता, पीड़ा, घृणा, मोह,
मिलकर बिखेरते अन्धकार,
धीरेसे वह उठता पुकार,
'मुझको न मिला रे कभी प्यार।'[४]

पंचचामरका रूपान्तर—

पुकारता पपीहरा पि...आ...पि...आ
प्रतिध्वनित निनादसे हिया-हिया,
हरेक प्यारकी पुकारमें असर,
कहाँ उठी

---

१. 'रसवन्ती', दिनकर, पृ० ९७।
२. मैथिलीशरण गुप्त, पृ० २३।
३. 'लहर', प्रसाद, पृ० ९।
४. वही, पृ० ३५।

कहाँ सुनी गई
मगर ![1]

पीयूषवर्षका रूपान्तर--

और चारों ओर चाकर हैं कई,
उर्मि हूँ मैं इस भवार्णव की नई ।[2]

सारका रूपान्तर—

पत्र-पुष्प सब बिखर रहे हैं, कुशल न मेरी-तेरी
जीवनके पहले प्रभातमें आँख खुली जब मेरी ।[3]

महादेवीने २३ और २६ मात्राओंके छन्दकका प्रयोग क्रमशः निम्नलिखित गीतोंमें किया है—

(क) बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ ।[4]
(ख) धीरे-धीरे उतर क्षितिजसे आ बसन्त रजनी ।[5]

निरालाने २४ मात्राओं और २८ मात्राओंके छन्दके प्रयोग क्रमशः निम्नलिखित गीतोंमें किये हैं—

(क) रूखी री यह डाल वसन वासंती लेगी ।[6]
(ख) नयनोंके डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली ।[7]

मिलनयामिनीके गीत 'मेरा प्यार पहली बार लो तुम'[8] में कामिनी छन्दका आधार लिया गया है। महादेवीका गीत 'आँसुओंके देशमें'[9] मनोरमा छन्दमें है।

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य मात्रिक छन्दोंमें लिखे गये। इनमें प्रायः प्राचीन छन्दोंके सम्मिश्रण और परिवर्त्तनसे नयापन लाया गया। भावोंके आधारपर छन्द-परिवर्त्तन किये गये। और उनमें वे सभी गुण मिलते हैं, जिनका उल्लेख डॉ० रामकुमार वर्माने किया है—

(क) विशेष मनोभावोंकी अभिव्यक्तिमें उनके अनुरूप नाद की व्यवस्था ।
(ख) हमारी रागात्मक वृत्तियोंका अनुरंजन ।
(ग) साहित्य और संगीतका पारस्परिक सम्बन्ध ।
(घ) स्मृतिमें काव्य की सुरक्षा ।[10]

---

१. 'मिलनयामिनी', बच्चन, पृ० २२० ।
२. 'साकेत', गुप्त, पृ० २३६ ।
३. 'यशोधरा', गुप्त, पृ० ३८ ।
४. 'नीरजा', पृ० २० ।
५. वही, पृ० ३ ।
६. 'गीतिका', पृ० १६ ।
७. वही, पृ० ४६ ।
८. बच्चन, पृ० १३६ ।
९. 'दीपशिखा', पृ० १७ ।
१०. 'साहित्य-शास्त्र', पृ० १२४ ।

मुक्तछन्दके इस कालमें छन्दोंकी बहुत कुछ रक्षा गीतिकाव्यके द्वारा हुई है।

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य की भाषा-शैली

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें शब्दोंकी आत्माकी बड़ी तीक्ष्ण पहचानका पता चलता है। गीतिकाव्यके लिए कोमल-कान्त शब्दावलियोंका संयोग सहज ही मिलता है। इसमें अनोखे लाक्षणिक प्रयोग मिलते हैं। चित्रात्मकताकी क्षमता इसमें मिलती है। व्याकरणके नियमोंकी यत्र-तत्र अवहेलना भी मिलती है। प्रतीक-योजनाके कारण कथनमें लाघव आ गया है। विशेषणोंको संवेगात्मक आधार मिला है। मुख्य रूपसे आधुनिक हिन्दी गीतोंकी निम्नलिखित विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं—

(क) शब्दों की पहचान
(ख) सांगीतिकता
(ग) लाक्षणिक वैचित्र्य
(घ) मानवीकरण, प्रस्तुतके लिए अप्रस्तुत एवं अप्रस्तुतके लिए प्रस्तुतका विधान-अन्य अलंकारोंके मार्मिक प्रयोग
(ङ) प्रतीक-विधान
(च) संवेदनात्मकताके आधारपर विशेषणोंके प्रयोग
(छ) व्याकरण की यत्र-तत्र उपेक्षा

(क) शब्दोंकी पहचान—पर्यायवाची शब्द एक अर्थके होते हुए भी कुछ सूक्ष्म अन्तर लिये हुए होते हैं। यदि झंझावात पवनके आक्रोशका प्रतीक है, तो समीरण उसके शान्त स्वरूपका। पन्तने स्पष्ट लिखा "भिन्न-भिन्न पर्यायवाची शब्द प्रायः संगीत-भेदके कारण एक ही पदार्थके भिन्न-भिन्न स्वरूपोंको प्रकट करते हैं। जैसे भ्रूसे क्रोधकी वक्रता, भृकुटिसे कटाक्षकी चंचलता, भौंहोंसे स्वाभाविक प्रसन्नता ऋजुताका हृदयमें अनुभव होता है। ऐसे ही हिलोरमें उठान, लहरमें सलिलके वक्ष-स्थलकी कोमल कम्पन, तरंगमें लहरोंके समूहका एक-दूसरेको धकेलना, उठकर गिर पड़ना, बढ़ो-बढ़ो कहनेका शब्द मिलता है।"[१]

इस वक्तव्यसे पता चलता है कि आधुनिक कालके कवियोंकी श्रुति-चेतना कितनी प्रबल थी। शब्दोंकी पहचानका एक उदाहरण निम्नलिखित पंक्तियोंमें मिलता है—

आज रहने दो यह गृह-काज,
प्राण, रहने दो यह गृह-काज!
आज जाने कैसी वातास
छोड़ती सौरभ-श्लथ उच्छ्वास,
प्रिये, लालस-सालस वातास,
जगा रोओंमें सौ अभिलाष![२]

---

१. 'पल्लव', प्रवेश।
२. 'गुंजन', पन्त, पृ० ५२।

उपर्युक्त पंक्तियोंमें रोमांचित करने एवं सौ अभिलाष जगानेवाली शक्तिको तूफान नहीं कहा जा सकता, वह तो 'वातास' शब्दकी कोमलतासे ही प्रकट हो सकती है।

कहाँ तत्सम और कहाँ विदेशी शब्दका प्रयोग करना चाहिये, इसकी पहचान भी इसी कलाके अन्तर्गत होती है। निरालाके गीतसे दोनों ही उदाहरण मिल सकते हैं—गंभीर दार्शनिक एवं प्रार्थनापरक गीतोंकी भाषा सहज तत्सम-प्रधान है—

तिमिर वारण मिहिर दरसो।
ज्योतिके कर अन्ध कारा—
गार जगका सहज परसो।[1]

पर उसी संग्रहमें प्रवाहपूर्ण चलते चित्रोंके लिए हल्की-फुल्की मिश्रित भाषाका प्रयोग मिलता है—

दीप जलता रहा,
हवा चलती रही,
नीर पलता रहा,
बर्फ गलती रही।[2]

(ख) सांगीतिकता—गीतकी भाषामें सांगीतिकताके प्रश्नपर पिछले प्रकरणमें यथास्थान विस्तारसे विचार कर चुकी हूँ, यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि सांगीतिकता नादपूर्ण शब्दोंके योगसे गीतिकाव्यको सिद्धि देती है। आधुनिक हिन्दी गीतोंमें यह पर्याप्त मात्रामें है—

(i) वह रंग-दल बदल-बदल कर,
नव-नव पल्लव मल-मलकर,
जग-भौंर भुला भूलोंसे
पहनो फूलोंका हार![3]

(ii) उठ-उठ गिर-गिर फिर-फिर जाती
नर्त्तित पद चिह्न बना जाती
सिकता की रेखाएँ उभार—
भर जाती अपना तरल सिहर!
उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर![4]

(ग) लाक्षणिक वैचित्र्य—लाक्षणिक-वैचित्र्य भाषाको नयी अभिव्यंजना शक्तिसे स्फुरित कर देता है। आधुनिक हिन्दी गीतोंमें इसके सैकड़ों उदाहरण हैं—अनब्याहे गीत, अपलक नयन, गुलाबी रात, उदास आकाश, मधुराका मुस्क्याती-सी, मुसकाता

१. 'अर्चना', पृ० १६।
२. वही, पृ० १९।
३. 'गीतिका', निराला, पृ० ६५।
४. 'लहर', प्रसाद, पृ० ९।

संकेत भरा नभ, सुधिका दंशन, सुरभित गीत आदि। निम्नलिखित गीतमें लक्षणाका मार्मिक प्रयोग हुआ है—

करुणाका गहरा गुंजार !
जिसमें गर्वित विश्व पिघल कर
बनता है आँसू की धार।[१]

(घ) मानवीकरण आदि अलंकार—तथ्यों एवं भावोंको अधिक स्पष्ट और प्रभावोत्पादक बनानेके लिए इन गीतोंमेंसे मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय आदि अलंकारोंके प्रयोग किये गये। इतना स्पष्ट है कि आधुनिक गीतोंमें सप्रयास अलंकार-योजना नहीं मिलती। अलंकारोंका व्यामोह नगण्य है। कुछ उदाहरण—

मानवीकरण

इस सोते संसार बीच
जगकर सजकर रजनी बाले !
कहाँ बेचने जाती हो—
ये गजरे तारों वाले ?[२]

... ...

वह ज्योत्स्ना तो देखो नभकी बरसी हुई उमंग।[३]

विशेषण-विपर्यय

कथनको विशेष रूपसे सारगर्भित करनेके लिए ही विशेषणको लक्षणाके सहारे दूसरे स्थानपर रख दिया जाता है। जैसे—

आह ! यह मेरा गीला गान !
कल्पनामें है कसकती वेदना
अश्रुमें जीता, सिसकता गान।

यहाँ 'गीला' और 'सिसकता' गानके विशेषण हैं, पर वस्तुतः ये रोते और सिसकते मनुष्यके लिए प्रयुक्त हैं।

प्रस्तुतके लिए अप्रस्तुत (समासोक्ति)

विजन वनके ओ विहग-कुमार !
आज घर-घरमें तेरे गान;
मधुर-मुखरित हो उठा अपार
जीर्ण जगका विषण्ण उद्यान।[४]

---

१. 'आधुनिक कवि', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४४।
२. 'रूपराशि', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ५३।
३. 'आधुनिक कवि', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३३।
४. 'गुंजन', पंत, पृ० ८१।

अप्रस्तुतके लिए प्रस्तुतकी योजना (अप्रस्तुत प्रशंसा)

सागर की लहर-लहर में है हास स्वर्ण-किरणों का
सागर के अन्तस्तल में अवसाद अवाक कणों का ।[१]

अणिमाके इस गीतमें निरालाने बड़ी कुशलतासे साम्य-विधान द्वारा मानवीय तत्त्वोंका एकात्म प्रकृतिके साथ किया है—

स्नेह निर्झर बह गया है,
रेत ज्यों तन रह गया है ।[२]

आधुनिक गीतोंमें उपमान-योजनाके अन्तर्गत रूप-साम्य एवं गुण-धर्म-साम्य दोनों-के ही उदाहरण मिलते हैं—

रूप-साम्य

इन्द्रधनुष-सा यह जीवन
दुःख के काले बादल में
अंकित है इस क्षण या उस क्षण ।[३]

गुण-धर्म-साम्य

करुणा की नव अंगड़ाई-सी
मलयानिलकी परछाईं सी ।[४]

अर्थ-ध्वनन—शब्दोंका ऐसा प्रयोग कि जिससे अर्थ ध्वनित हो जाये, शब्दकी शक्ति और सौन्दर्यका अत्यन्त सफल प्रयोग माना जायगा । अनुरणनात्मक, ध्वनिपूर्ण शब्दोंके उपयोग आधुनिक गीतिकाव्यमें प्रचुर मात्रामें मिलते हैं—

(क) कण-कण कर कंकण, प्रिय
किण-किण रव किंकिणी,
रणन-रणन नूपुर, उर लाज,
लौट रंकिणी;[५]

(ख) वन-वन, उपवन—
छाया उन्मन-उन्मन गुंजन,
नव वय के अलियों का गुंजन ।[६]

(ग) खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा ।[७]

---

१. 'गुंजन', पंत पृ० १८ ।
२. 'पुष्करिणी', पृ० २२३ ।
३. 'रूपराशि', डॉ० वर्मा, पृ० २१ ।
४. 'लहर', प्रसाद, पृ० ९ ।
५. 'गीतिका', निराला, पृ० ८ ।
६. 'गुंजन', पन्त, पृ० ९ ।
७. 'लहर', प्रसाद, पृ० १९ ।

गुंजनके उपर्युक्त उदाहरणमें वीप्सा अलंकार भी है। कुछ और अलंकारोंके सुष्ठु प्रयोगके उदाहरण नीचे दे रही हूँ—

पूर्णोपमा

जीवन न दीन बने,
प्रथम यौवन के मिलन-सा चिर नवीन बने ![१]

सांग रूपक

'गीतिका' का— मौन रही हार,
प्रिय पथ पर चलती,
सब कहते शृङ्गार (पूरा गीत)[२]

तथा 'यामा' में महादेवी का गीत—

'प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती'

विभावना

चुभते ही तेरा अरुण बान !
बहते कन-कन से फूट-फूट
मधु के निर्झर से सजल गान ।[३]

विशेषालंकार

आँखों की नीरव भिक्षा में आँसू मिटते दागों में,
ओठों की हँसती पीड़ा में आहों के बिखरे त्यागों में,
कन कन में बिखरा है निर्मम !
मेरे मानस का सूनापन ।[४]

अंगांगिभाव-संकर

करुणामय को भाता है
तम के परदे में आना
ओ नभ की दीपावलियों,
तुम क्षण भर को बुझ जाना ।[५]

सारोपा लक्षणा

बीती विभावरी जाग री !
अम्बर पनघट में डुबो रही तारा-घट ऊषा-नागरी ।[६]

---

१. 'आधुनिक कवि', डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ।
२. 'गीतिका' पृ० ८।
३. 'सन्धिनी', पृ० १६।
४. 'आधुनिक कवि', महादेवी, पृ० ८।
५. वही, पृ० १६।
६. 'लहर', प्रसाद, पृ० १९।

वाक्यगत अलंकारसे वस्तु-व्यंग्य

प्रिय तुम भूले मैं क्या गाऊँ !
जुही-सुरभि की लहर से निशा बह गयी, डूबे तारे
अश्रु-बिन्दु में डूब-डूब कर दृग-तारे ये कभी न हारे ॥[1]

(ङ) प्रतिक-विधान—आधुनिक हिन्दी गीतोंमें प्रचुर मात्रामें प्रतीकोंका प्रयोग किया गया है। इसका कारण यह है कि प्रतीक किसी तथ्यको संक्षिप्त, सारगर्भित और व्यंजक बना देते हैं और गीतिकाव्यके छोटे आवरणमें इसकी आवश्यकता है। इन प्रतीकोंने अभिव्यक्ति-सौन्दर्यको बढ़ाया है, भावोंको चमत्कृत किया है, दार्शनिक भावोंको व्यक्त किया है तथा मनोवैज्ञानिक भावोंका क्षेत्र बढ़ाया है। डॉ० रामकुमार वर्माने ठीक ही लिखा है कि "प्रतीकात्मक शैलीको साहित्यिक अभिव्यक्तिके सबल माध्यमके रूपमें ग्रहण किया जाता है। संस्कृति और सभ्यताके विकासके साथ-साथ यह शैली और अधिक परिपुष्ट होकर सौन्दर्यात्मक अनुभूतिको साहित्यिक सौन्दर्य देती रहेगी।"[2]

आधुनिक हिन्दी गीतोंमें अनेक प्रतीकोंके प्रयोग किये गये हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

आँसूको करुणाका प्रतीक—

यह जीवन तो छाया है
केवल सुख-दुख की छाया;
मुझको निर्मित कर तुमने
आँसू का रूप बनाया।[3]

विष, जीवन की कटुता—

विष का स्वाद बताना होगा
ढाली भी मदिरा की प्याली,
चूसी भी अधरों की लाली,
कालकूट आनेवाला अब देख नहीं घबराना होगा।
विष का स्वाद बताना होगा।[4]

प्रात, जन्म; प्रियतम, ईश्वर; आलोक, चेतना, ज्ञान—

हुआ प्रात, प्रियतम,
कैसी थी रात, बन्धु के गले-गले।

---

१. 'आधुनिक कवि', डॉ० वर्मा, पृ० ११।

२. हिन्दी अनुशीलनके डॉ० धीरेन्द्र वर्मा विशेषांकमें प्रकाशित निबन्ध 'हिन्दी साहित्यमें प्रतीक योजना', पृ० ३८९।

३. 'आधुनिक कवि', डॉ० वर्मा, पृ० २६।

४. 'एकान्त संगीत', बच्चन, पृ० १६।

फूटा आलोक,
पर जग गया भेद, शोक।[१]

हीरे की खान, आत्म-ज्ञान—

पास हीरे हीरे की खान;
खोजता कहाँ और नादान।[२]

झंझावात, विपत्ति—

प्रबल झंझावात, साथी!
देह पर अधिकार हारे,
विवशता से पर पसारे,
करुण रव-रत पक्षियों की आ रही है पाँत, साथी।[३]

विहंगम, नवीन कवि—

तेरा कैसा गान,
विहंगम! तेरा कैसा गान?
न गुरु से सीखे वेद-पुराण······।[४]

महादेवी वर्माकी गीतिकलाका विवेचन करते हुए उनके द्वारा प्रयुक्त बहुतसे प्रतीकोंका उल्लेख किया जा चुका है।

(च) संवेदनात्मकताके आधारपर विशेषणोंके प्रयोग—मनोविज्ञानने जिन संवेदनाओंका उल्लेख किया है, उनमें श्रवण, घ्राण, स्पर्श, दृष्टि, स्वाद आदि प्रमुख हैं।

आधुनिक हिन्दी गीतोंमें इन संवेदनाओंके आधारपर बड़े ही सबल विशेषणोंके प्रयोग किये गये हैं—

कर्ण-सम्वेदनासे सम्बन्ध विशेषण—झंकृत, सुरीला, मन्द, प्रखर, नीरव, मौन, शान्त, मर्मर, छपछप, डिमडिम, कर्कश आदि। यथा—

—मैं तुम्हारी मौन गति में
—आधुनिक कवि, डॉ० वर्मा, पृ० २३

—यह निशा शान्त है यह समीर
—वही, पृ० २८

—जीवन के कर्कश अपस्वर।
—सुमित्रानन्दन पन्त, बच्चन, पृ०

—छम छम छम नाच रही आशा
डिम डिम डिम जगती अभिलाषा
—उत्तरा, पन्त, पृ० १३०

---

१. 'गीतिका', निराला, पृ० ९६।
२. वही, पृ० २७।
३. 'निशा-निमंत्रण', बच्चन, पृ० ३५।
४. 'गुंजन', पन्त, पृ० १०५।

—मर्मर करते तरुदल मर्मर
—वही, पृ० १४२

घ्राण संवेदनासे सम्बन्ध विशेषण—मधुपूरित, भीनी-भीनी, सुगंधित, सौंधी, कर्पूरी आदि। यथा—

—हल के दल; भीनी-भीनी
आई सुगन्ध मतवाली।
—गीतिका, निराला, पृ० १०१

—मधुपूरित गन्ध, ज्ञान !
—गीतिका, निराला, पृ० ९

—प्राण, उपस्थिति यह कर्पूरी !
—गीत अधूरे हैं, किशोर, पृ० १४२

दृष्टि-संवेदनासे सम्बन्ध विशेषण—सुन्दर, नीला, पीला आदि सभी रंगीनियाँ, ज्वाल, कुसुमित, नव कुंचित, झिलमिल, नव, स्तब्ध आदि। यथा—

—हरित शुभ्र स्वर में भर मर्मर।
अरुण पीत लौ में कंप-कंप कर !
...आम्र भौंर में गूँथ स्वर्णकण
किंशुक को कर ज्वाल वसन तन !
—उत्तरा, पन्त, पृ० १४३

—इन्द्रधनुष की आभा सुन्दर
—निशा-निमंत्रण, बच्चन, पृ० २७

—तव ललाट की कुंचित अलकों,
—इत्यलम्, अज्ञेय, पृ० १७

—रजनी ओढ़े जाली थी
झिलमिल तारों की जाली
—आधुनिक कवि, महादेवी, पृ० ६

—स्तब्ध पवन, नत नयन, पद्म-दल
—सुमित्रानन्दन पन्त, पृ० ६३

स्पर्श-संवेदनासे सम्बन्ध विशेषण—कोमल, कठोर, शीतल, उष्ण, मसृण, स्निग्ध, तरल आदि।

—मृदुतर भोले दृग से जागा कोमल कुसुम कुमार
—रूपराशि, डॉ० वर्मा, पृ० १५

—प्रिय-कर-कठिन-उरोज परस कस कसक मसक गयी चोली
—गीतिका, निराला, पृ० ४६

—स्निग्ध रजनी से लेकर हास
—आधुनिक कवि, महादेवी, पृ० २१

—तरल मोती-सा ले मृदु गात
—वही, पृ० ३२

—वायु बहती शीत-निष्ठुर
—निशा-निमन्त्रण, बच्चन, पृ० ३९

(छ) **व्याकरणकी यत्र-तत्र उपेक्षा**—व्याकरण सम्बन्धी जो थोड़ी बहुत भूलें मिलती हैं, उनमें अधिकांश सकारण हैं। ऐसा नहीं माना जा सकता कि वे भूलें अज्ञानतावश की गयी हैं। पन्तजीने स्पष्ट लिखा है "मैंने अपनी रचनाओंमें, कारणवश व्याकरणकी लौह कड़ियाँ तोड़ी हैं···मुझे अर्थके अनुसार ही शब्दोंको स्त्रीलिंग मानना अधिक उपयुक्त लगता है।···प्रभात और प्रभातके पर्यायवाची शब्दोंका चित्र मेरे सामने स्त्रीलिंगमें ही आता है, चेष्टा करनेपर भी मैं कवितामें उनका प्रयोग पुलिंगमें नहीं कर सकता।"[1]

किन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं। अधिकांश गीत व्याकरणसम्मत भाषापर आधारित हैं।

शैलियाँ

हिन्दी गीतिकाव्यकी प्रमुख शैलियोंके कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

१. **आत्मप्रधान शैली**—इसमें उत्तम पुरुषकी प्रधानता होती है—

मेरे प्राणोंमें आओ (पूरा गीत)
—गीतिका, निराला, पृ० १३

२. **चित्र-प्रधान शैली**—जिसमें भावोंको मुख्यतः चित्रोंके माध्यमसे स्पष्ट किया जाता है—

साथी घर-घर आज दिवाली (पूरा गीत)
—निशा-निमन्त्रण, बच्चन, पृ० ५१

३. **सांकेतिक शैली**—जिसमें भावको स्पष्ट करनेके लिए संकेतसे कुछ कहा जाता है—

—आओ हम दोनों समीप बैठें
देखें आकाश!
वे दोनों तारे देखो
कितने-कितने हैं पास!
—आधुनिक कवि, रामकुमार, पृ० २६

—और अब तो रात आयी!
चाँद की बारात आयी!
एक तारा टूट कर आया मुझे पहचान।

---

१. 'पल्लवकी भूमिका', पृ० ख-ग।

आजका दिन भी न यों ही बीत जाये प्राण।

—आकाशवाणी, किशोर

४. सम्बोधनात्मक शैली—जहाँ पुकारकर, सम्बोधित कर कुछ कहा जाता है—

साथी नया वर्ष आया है
आओ नूतन वर्ष मना लें।

—निशा-निमन्त्रण, पृ० ७०-७१

५. व्यंग्यात्मक शैली—जहाँ व्यंग्यका आश्रय लिया जाता है—

ऊँट-बैल का साथ हुआ है

—अर्चना, निराला, पृ० ७२

६. संलापात्मक शैली—जहाँ वार्तालापके सहारे मनोभावोंको व्यक्त किया जाता है—

मुझसे चाँद कहा करता है
—साथी, सो न कर कुछ बात!
—आज मुझसे बोल बादल
—मैं गाता शून्य सुना करता

—निशा-निमन्त्रण, बच्चन, पृ० ५७, ६०, ६६, १०८

७. अभिधेयात्मक शैली—जिसमें अभिधेयात्मकताके सहारे सीधी तरहसे मार्मिक उक्तियाँ कही जायँ—

मैं समय बर्बाद करता (पूरी रचना)

—आकुल अन्तर, बच्चन, पृ० ३३

८. प्रश्नवाचक शैली—जहाँ प्रश्नसे प्रारम्भ कर मनके भावोंको विस्तार दिया जाता है—

—नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ
आज अनश्वर गीत?

—आधुनिक कवि, डॉ० वर्मा, पृ० ८३

—कौन तुम मेरे हृदय में?

—आधुनिक कवि, महादेवी, पृ० ५१

—कौन गगन के दीप जलाती?

—शेफालिका, किशोर, पृ० ६८

९. निषेधात्मक शैली—जहाँ निषेधके द्वारा अनुभूतिका चित्रण हो—

—जग बदलेगा किन्तु न जीवन
—जग का मेरा प्यार नहीं था

—निशा-निमन्त्रण, बच्चन, पृ० ८१, ८५

१०. प्रश्नोत्तर शैली—जिसमें प्रश्न और उत्तर साथ-साथ दिये गये हों—इस क्षेत्र में बच्चनकी मिलनयामिनीके उत्तर भागके गीत बड़े सफल हुए हैं—

कुदिन लगा, सरोजिनी सजा न सर,
सुदिन लगा, न कंज पर ठहर भ्रमर,
अनय जगा, न रस विमुग्ध कर अधर,
—सदैव स्नेह
के लिए
विकल हृदय !

—पृ० १९७

वस्तुतः आधुनिक हिन्दी गीतोंकी भाषा अलंकृत होकर भी सहज है। इसमें वाणी-को वहन करनेकी सहज शक्ति है, भारसे दबा देनेकी प्रबलता नहीं। इन गीतोंकी भाषा भावानुकूल कहीं तत्सम, कहीं उर्दू मिश्रित, कहीं अलंकृत, कहीं अनलंकृत है। इसी भावानुकूलताके कारण व्याकरणकी कहीं-कहीं उपेक्षा हुई है। चमत्कारपूर्ण और आलोकमय विशेषणोंसे ये गीत बड़े मार्मिक हो गये हैं। इन गीतोंकी भाषामें मनमें पैठी छवियोंको शब्दोंमें उतार देनेकी प्रबल कला है। छायावाद कालकी भाषामें जो कुछ कुहेलिका थी भी, वह छायावादोत्तर कालमें सुस्पष्ट हो गयी। व्यक्तिगत उत्कर्षके इस युगमें अनेक शैलियोंने जन्म लिये। नयी भंगिमा और नयी शैलीके कुछ न कुछ प्रयोग सभी कवियोंने किये। उर्दू काव्य और लोकगीतोंके अनेक छन्द नयी साज-सज्जा में उभरे।

अध्याय ८

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यपर प्रभावोंका आकलन

प्रभावित होना मानवका सहज स्वाभाविक गुण है। वह प्राकृतिक छटाओंपर मुग्ध होता है, वह मानव-रूपसे अनुप्राणित होता है, सामाजिक एवं राजनीतिक घटनाओंसे आन्दोलित होता है तथा पारिवारिक सदस्य और पड़ोसियोंके पारस्परिक सम्बन्धोंके सुख-दुखात्मक घात-प्रतिघातोंसे उसका हृदय झंकृत होता है। वस्तुतः मानव अपने व्यक्तित्वके आस-पास बननेवाले वातावरणकी अनुगूँज है। अध्ययन, मनन और चिन्तनके सभी उपादान, सभी क्षण उसे प्रभावित करते हैं। जीवितोंका ही नहीं, स्वर्गीय मनुष्योंकी जीवनियाँ, कहानियाँतक उसे उद्वेलित करती हैं। साहित्य तो वर्तमान और अतीत दोनोंकी प्रतिभाओंका प्रतिफल होता है। अतः साहित्यका प्रभाव सामान्य मानव और साहित्यकार दोनोंपर पड़ता है। अधिक भावुक और विज्ञ होनेके कारण साहित्यकारका अध्ययन उसे सामान्य पाठकोंसे दूसरे धरातलपर ले जाता है। संभव है, अधिक भावकुता उसे साधारण घटनाओंसे बहुत अधिक विह्वल कर दे, संभव है अधिक विज्ञ होने के कारण सामान्य विह्वलकारी घटनाएँ उसे नवीन न प्रतीत हों।

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यको प्रभावित करनेवाली दिशाएँ निम्नलिखित हो सकती हैं—

(क) स्वदेशी

—समयुगीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ
—लोकगीतों का प्रभाव
—अन्य भारतीय भाषाओं का प्रभाव
—चलचित्रों के गीतों का प्रभाव
—पूर्ववर्त्ती कवियों का प्रभाव
—समसामयिक कवियों का प्रभाव
    —पाठ्य सामग्रियों द्वारा
    —श्रव्य सामग्रियों द्वारा
    (आकाशवाणी, कविसम्मेलन)
    —मूल साहित्य द्वारा
    —अनूदित साहित्य द्वारा

(ख) विदेशी

समयुगीन परिस्थितियोंका विस्तृत विवरण द्वितीय प्रकरणमें दिया जा चुका है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें सामाजिक तथ्योंको

ग्रहण करनेकी अपूर्व क्षमता रही है, पर अधिकांश गीत मानवके चिरन्तन रागात्मक सम्बन्धोंकी ही अभिव्यक्ति करते हैं। सामयिकताका रंग जिन गीतोंमें बहुत अधिक गाढ़ा है, वे कलात्मक दृष्टिसे उतने सफल नहीं हुए। उदाहरणार्थ साम्यवादी प्रभावोंसे नाराबाजीके रूपमें लिखे गये गीत, चीनी आक्रमणके फलस्वरूप लिखे गये गीत अथवा भूदान-यज्ञ-सम्बन्धी गीत। बच्चनकी सूतकी मालामें गांधीजीकी मृत्युसे सम्बद्ध गीत काव्य-कलाकी दृष्टिसे नगण्य हैं।

यथा—

छाप पड़ता हर सभा-संघ के दफ्तर पर,
हो रही तलाशी स्वयं सेवकों के घर-घर
सब पुलिस सुराग लगाने में तत्पर है
किसने, कब, कैसे,
कहाँ मदद की कातिल की।[१]

अथवा,

अच्छा ही है मौजूद नहीं बा कस्तूरा,
यदि उनको लगता इस दुर्घटना का छूरा;
उनका अभ्यन्तर तो होता चूरा-चूरा,
बा ओ' बापू
की अरथी चलती
साथ-साथ ![२]

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें समसामयिकताका प्रभाव अनुभूतिकी सूक्ष्मता और तीव्रता ग्रहण करनेपर अधिक प्रभविष्णु हो गया है। ऐसे गीतोंमें काव्य-कला सर्वथा सुरक्षित रही है। अधिकांश राष्ट्रीय गीतोंमें यह बात ? कुछ राष्ट्रीय गीत इस दृष्टिसे बड़े सफल उतरे हैं। जग और जीवनकी तत्कालीन परिस्थितियाँ छनकर इन गीतोंमें बड़ी मार्मिकतासे आयी हैं—

१. वेश रूखे, अधर सूखे
पेट भूखे, आज आये।
हीन-जीवन, दीन चितवन
क्षीण आलम्बन बनाये
प्यास पानी से बुझाने को
बुझायी रक्त से जब,
आँख से आया लहू,
लोहा बजाया शान्त से जब

---

१. 'सूतकी माला', पृ० ४१।
२. वही, पृ० ६१।

रुण्ड मुण्डों से भरे हैं खेत
गोलों से बुझाये ।[1]

२. अब मेत्र मुक्त होता युग-मन
अटपट पड़ते कवि छन्द चरण,
बहता भावों में शब्द-चयन ।
जिन आदर्शों में उर सीमित,
जिन अभ्यासों से जन पीड़ित,
जिन स्थितियों से इच्छा कुंठित,
उनमें बढ़, निखर रहा नूतन ![2]

३. जग दीपक, युग जलती बाती ।
युग पीपल का हरित चपल दल,
जग बरगद की छाँह लुभाती !
जग कविता, युग कालिदास है,
मेघदूत जग, युग उसाँस है,
जग है रस, अनुभाव-भाव-युग,
जग विरही, युग नव-नव पाँती ।[3]

युगकी नयी चेतनाका स्वागत करते हुए जन-जीवनकी वास्तविक दशाका चित्रण कितना स्पष्ट है—काव्यत्व कथनकी भंगिमा और मानवीकरणमें है—

आज बहिन तुम कौन खड़ी हो युग खोले किरणोंके द्वारे ?
स्वप्न सृजन संहार यहाँ चीत्कर सत संघर्ष चिरन्तन,
सब कुछ सूख गया भीतर का मरु-सा शुष्क मनुज का जीवन ।
ले आयीं विद्रोह भरी तुम आज अमावस में चिनगारी,
चैन न लेने देगी जैसे ध्वंसक झंझा मूर्ति तुम्हारी ।
हँस-हँस अम्बर देख रहा था नीचे कंकालों की ज्वाला,
भूल गया था रक्त सिन्धु ले कौन क्षणों में आने वाला ।
कैसा यह शृंगार तुम्हारा टूट रहे यौवन के तारे ?[4]

धर्म-युद्धसे भागते एवं शान्ति-स्थापनसे विमुख मानव तथा निष्क्रिय धर्मका कितना प्रतीकमय चित्र इन पंक्तियोंमें मिलता है—

समर से भागते हम पार्थ
सुनकर पार्थ कर्म की गीता,

---

१. 'बेला', निराला, पृ० ६२ ।
२. 'उत्तरा', पन्त, पृ० ८९ ।
३. 'शिप्रा', जानकीवल्लभ, पृ० १०४ ।
४. 'किरण-वेला', अंचल, पृ० २५-२६ ।

अशोकों से भरे वन में
सशोका शान्ति की सीता।
यहाँ क्यों प्रश्न-चिह्नों से खड़े मन्दिर, खड़ी मस्जिद ?
अरी वाणी, प्रकट होकर हुआ क्या हाय, उत्तर दे !
अभय माँ शारदे, वर दे ![1]

तात्पर्य यह कि समसामयिकताके प्रभावकी प्रतिक्रिया वहीं सुन्दर और साहित्यिक रूपमें चित्रित हुई है, जहाँ कविकी अनुभूति उधार ली हुई नहीं है। अन्तःप्रेरणासे आलोकित ऐसे गीतोंमें प्रभविष्णुताकी महत्ता भी अधिक है। कवि युगका गायक होता है—केवल इस उद्देश्यको ध्यानमें रखकर धर्म-निर्वाह करनेवाले या राष्ट्रीय एवं प्रगतिशील कवियोंकी सूचीमें नाम गिनवानेवाले कवियोंके गीतमें न तो जग-जीवनके चित्रोंकी सचाई है और न काव्य-कला ! वे महज तुकबन्दियाँ कही जायेंगी।

लोकगीतोंका प्रभाव

लोकगीतोंका प्रभाव आधुनिक सभ्यताके विकासके साथ ही घटता जा रहा है। वे समस्याएँ जो लोकगीतोंमें मार्मिकता भर देती थीं, धीरे-धीरे मिटती या बदलती जा रही हैं। नगर और ग्रामके फासले मिटते जा रहे हैं। जन-जीवनकी सरलता और स्वाभाविकता विलुप्त होती जा रही है। ग्रामीण भी नागरिक होते जा रहे हैं। शिक्षाका प्रसार-प्रचार गाँवोंमें भी हो रहा है। अब अल्पायुमें विवाहकी प्रथा उठते जानेसे गौने-का प्रश्न भी कम होता जा रहा है; अब प्रायः पारिवारिक जीवन पति-पत्नी और बच्चोंमें सीमित हो जा रहा है। अतः सास-ननद आदिके अत्याचारोंका भी अन्त होता जा रहा है। डाक, तार, टेलीफोनकी व्यवस्था हो जानेके कारण पति-पत्नीके बीचके विरहकी दूरी भी कम होती जा रही है। चलचित्रोंका आकर्षण गाँवोंतक फैल गया है। ग्रामोफोन, रेडियो, ट्रांजिस्टर और लाउडस्पीकरसे सिनेमाके गीत घर-घरमें, कंठ-कंठमें प्रवेश पा रहे हैं। कलोंमें आटा पीसा जाता है—चक्कीके गीत कम गाये जा रहे हैं। बच्चोंके जन्मपर क्या, सत्यनारायणकी कथातकके अवसरपर लाउडस्पीकरोंपर फिल्मी गीत बजाये जाते हैं। तात्पर्य यह कि लोकगीतोंका प्रचार-प्रसार धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। जमींदार-प्रथाके उन्मूलनने अत्याचारोंकी एक लम्बी परम्पराको समाप्त कर दिया। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि राम-राज्य आ गया। आज भी मानवताके दुःख-दर्दकी गाथा बढ़तीपर है। आज भी गरीबी और बेकारीने जनताकी कमर तोड़ रखी है। आज भी भूख और बाढ़की समस्याएँ हृदय-विदारक हैं ! आज भी देहातों-के खेत गीत गाते हैं। हाँ, स्वाभाविक जीवन धीरे-धीरे जटिल होता जा रहा है।

ऐसी स्थितिमें साहित्यिक गीतोंपर लोकगीतोंके प्रभावका प्रश्न सीधा नहीं। आधु-निक हिन्दी गीतोंपर भोजपुरी, मगही, मैथिली, छत्तीसगढ़ी, व्रज आदि बोलियोंके

---

१. 'सूरज नया, पुरानी धरती', किशोर, पृ० २।

गीतोंका कितना प्रभाव पड़ा है, कहना कठिन है। जहाँ गाँवके लोक-जीवनमें लोक-गीतोंका वातावरण बदलता जा रहा है, वहाँ एक दूसरी प्रवृत्ति जोर पकड़ती जा रही है—और वह है, लोकभाषाओंके चलचित्रोंका निर्माण। भोजपुरी, मैथिली आदि भाषाओंमें फिल्में तैयार हो रही हैं और उनमें उन्हीं भाषाओंके गीत दिये जा रहे हैं। उनमें कुछ गीत तो सीधे प्रचलित लोकगीतोंमेंसे चुनकर दिये गये हैं और कुछको आधुनिक गीतकारोंने लिखा है। इन गीतोंके अध्ययनसे यह पता चलता है कि इनके गीतकार वे ही हैं, जो खड़ीबोली और भोजपुरी, मगही या मैथिली आदिके नवयुवक कवि हैं, जिनकी प्रतिभाका विकासपूर्ण मात्रामें नहीं हुआ है। अतः इन कृत्रिम (?) लोकगीतोंमें जीवनके स्वाभाविक प्रवाह और अनुभूतिके उद्दाम वेगका प्रायः अभाव-सा है।

दूसरे प्रकारके गीतकार वे हैं, जो लोकगीतोंकी धुनोंपर खड़ी बोलीमें गीत लिख रहे हैं। विभिन्न अवसरोंपर गाये जानेवाले लोकगीतोंमें विशेष-विशेष प्रकारकी धुनें रहती हैं। कुछ कवियोंने उनके अनुकरणपर 'साहित्यिक लोकगीतों'की रचना की है। इसका प्रारम्भ भारतेन्दुने किया। उन्होंने कजरी आदि लोकगीतोंके आधारपर कुछ साहित्यिक गीत लिखे हैं।

आधुनिक हिन्दी गीतोंमें निरालाने भी लोकगीतोंका प्रभाव ग्रहण किया। उनकी यह कजली उल्लेखनीय है—

> काले-काले बादल छाये न आये वीर जवाहरलाल
> कैसे-कैसे नाग मंडलाये, न आये वीर जवाहरलाल।
> बिजली फनके मन की कौंधी, कर ली सीधी खोपड़ी औंधी,
> सर पर सरसर करते धाए, न आये वीर जवाहरलाल।
> पुरवाई की हैं फुफकारें, छन-छन ये विषकी बौछारें,
> हम हैं जैसे गुफा में समाए, न आये वीर जवाहरलाल।
> महँगाई की बाढ़ बढ़ आई, गाँठ की छूटी गाढ़ी कमाई,
> भूखे नंगे खड़े शरमाये, न आये वीर जवाहरलाल।
> कैसे हम बच जाये निहत्थे, बहते गये हमारे जत्थे,
> राह देखते हैं भरमाये, न आये वीर जवाहरलाल।[१]

कजली प्रायः वर्षाकालमें गायी जाती है। बारहमासाका प्रारम्भ आषाढ़में और कजली सावनमें होती है। कजली और कजरी दोनों रूप प्रचलित हैं। प्रायः सावनसे भादोंतक यह गायी जाती है। कुछ-कुछ इससे मिलते गीत पंजाबीकी लोड़ी और गुजरातका गर्बा है। निरालाकी कजलीमें सावनी उपादानों—बादल, बिजली, पुरवाई आदिका उल्लेख तो है, पर वे प्राकृतिक दृश्योंके स्वाभाविक रूप न होकर समसामयिक लोक-जीवनकी विशेष परिस्थितिके प्रतीक हैं।

---

१. 'बेला', पृ० ५४।

आधुनिक हिन्दी गीतोंमें लोकगीतों जैसी स्वाभाविकता आ जानेपर एक विशेष मोहकता आ गयी है—इन्हें लोकगीतोंका प्रभाव भी माना जा सकता है और एक ही मनोदशामें उत्पन्न एकसे भावोंकी उत्पत्ति भी—

मुस्काता संकेत-भरा नभ
अलि, क्या प्रिय आने वाले हैं ?

—आधुनिक कवि, महादेवी, पृ० ६५

घिरि आइलि रे बदरिया सावन की,
सावन की मनभावन की, घिरि आइलि रे बदरिया सावन की,
रिमझिम रिमझिम बुनवाँ बरसे
आजु अवधि पिय आवन की !

(आकाशवाणी, पटना)

नेपालीका गीत 'पश्चिम नभसे कोलाहल कर मेघ उठे सखि काले-काले' इन पंक्तियों-के साथ तुलनीय है—

पश्चिम छिटके है रे बिजलिया
दक्खिन बरसे रे बदलिया।

(आकाशवाणी, पटना)

निरालाका यह गीत—

प्रिय के हाथ लगाये जागी,
ऐसी मैं सो गयी अभागी।

(अर्चना, पृ० ६८)

और

नकबेसर कागा ले भागा
सइयाँ अभागा ना जागा।

—मैथिली लोकगीत, राकेश, पृ० २७८

भाव-दिशामें कितना मिलता-जुलता है। आगेकी पंक्तियाँ—

कनक रश्मि से द्वार भर गये,
चिड़ियों के कल-कण्ठ भर गये,
भस्म रमाकर चला विरागी,
प्रियके हाथ लगाये जागी !

इस चैताके जोड़की है—

साँझे के सूतल पिआ उगले किरनिए, हे राम !
तबहू ना जागेला पिअवा निरमोहिया।[1]

बिहारके दो गीतकारोंकी पंक्तियाँ देखी जायँ तो यह पता चल सकता है कि समसामयिक कवि—हिन्दी और भोजपुरीके—किस प्रकार प्रभावित होते हैं। मनोरंजन

---

१. 'भोजपुरी लोक-साहित्य, एक अध्ययन', बैजनाथ सिंह विनोद, पृ० १४६।

प्रसाद सिंहकी फिरंगियोंसे प्रभावित जानकीवल्लभ शास्त्रीका एक गीत कितना मिलता-जुलता है—

अन्न धनजन बल बुद्धि सब नाश भइल
कोने के ना रहल निशान रे फिरंगिया।
जहवाँ थोड़े ही दिन पहिले ही होत रहे
लाखों मन गल्ला और धान रे फिरंगिया।[1]

(मनोरंजन)

और

अशन-वसन से हीन हम,
क्षुधित-तृषित हम, दीन हम,
रंगले होंठ रुधिर से, रखनी जो है मुँह की लाली।[2]

आज लोकगीतोंके संग्रह, उनके शोध और प्रकाशनकी एक लगन-सी है। फलतः सुनकर ही नहीं, पढ़कर प्रभावित होनेकी नयी संभावना सामने आयी है।

प्रभावकी दूसरी दिशा वह है, जिसमें हिन्दीके गीतकार लोकधुनोंके आधारपर गीत लिख रहे हैं। इस दिशामें सबसे अधिक और ताजे प्रयोग बच्चनने किये हैं। पत्र-पत्रिकाओं द्वारा प्रचारित, उनके द्वारा कवि-सम्मेलनों में गाये-गवाये गये गीतोंका संकलन त्रिभंगिमामें हुआ है।

बच्चनके ये गीत मात्रापर नहीं, लयपर आधारित हैं। इन लयोंके आधार उत्तर प्रदेशकी लोक-धुनें हैं। ये गीत संख्यामें २५ हैं। इसमें पाँच प्रकारके गीत हैं—एक वे जो सामूहिक हैं, दूसरे वे जो अकेला गाये जाने वाले हैं, तीसरे वे जो कई दलोंमें गाये जानेवाले हैं, चौथे वे जो कथनोपकथनकी शैलीमें हैं और पाँचवें वे हैं जो प्रतीकात्मक शैलीमें हैं। यथा—नैया जाती है, गंगाकी लहर आदि पहले प्रकारके; मैनादूत, आँगनका बिरवा आदि दूसरे प्रकारके; सोन मछरी तीसरे प्रकारका; लाठी और बाँसुरी चौथे प्रकारके और नील परी पाँचवें प्रकारका गीत है। मुख्यतः ये गीत ढोल और मजीरेपर गाये जानेवाले हैं।

त्रिभंगिमाके ये गीत लयोंपर ठीक बैठते हैं। शब्दोंका चुनाव लयोंको ठीक-ठीक उतार लेते हैं। लेकिन उनमें नागरिकता अधिक है, लोक-प्रवाहका सहज प्रवाह कम ! लोकगीतोंकी धुनोंपर लिखे जाकर भी मूलतः हैं ये कला-गीत ही ! सहस्रों वर्षोंसे जन-कंठमें उतर कर निखरे हुए गीतमें एक दूसरी ही मिठास होती है। एक तुलनात्मक उदाहरण प्रस्तुत है। गंगाका महत्त्व बच्चनने आँका है और लोकगीतमें भी गंगाका माहात्म्य वर्णित है, पर दोनोंकी प्रभावोत्पादकतामें कितना अन्तर है, नीचेके उद्धरणसे स्पष्ट है—

---

१. 'भोजपुरी लोक-साहित्य, एक अध्ययन' बैजनाथ सिंह विनोद, पृ० १५७।
२. 'शिप्रा', गौरी सरकार, पृ० ८८।

बच्चन गंगाका माहात्म्य इन सीधे-सादे शब्दोंमें वर्णित करते हैं—

गंगाकी लहर अमर है,
गंगा।
लक्षधार हो—
भू पर विचरो,
जगमें बहुत जहर है।
गंगा की,
गंगाकी लहर अमृत है,
गंगाकी लहर अमर है,
गंगा की।[१]

एक ग्रामीण नायिका बाँझ कही जानेके दुखसे गंगामें डूबने जाती है। गंगा मैयासे एक लहर डूबनेको भीख माँगती है। गंगा मैया पूछती हैं कि उसे किस चीजका दुख है कि वह डूब रही है—क्या सास-ससुर दुख देते हैं? क्या पति प्रवासी है? क्या मैका दूर है? आखिर क्यों डूबना चाहती है? उस स्त्रीने उत्तर दिया—सास मुझे बहू नहीं कहती, ननद भाभी नहीं कहती, मैका भी दूर नहीं—इनका मुझे कोई दुख नहीं। छाती फटती है तो सिर्फ इस बात से कि मुझे मेरे पति बाँझ कहकर पुकारते हैं। अन्तमें गंगा मैया उसे पुत्र-रत्नका आशीष देकर लौटा देती है। इस गीतमें अप्रत्यक्ष रूपसे गंगाकी दैवी शक्तिके साथ ही मातृ-हृदयकी अतृप्त लालसा एवं सामाजिक परिस्थितिका कितना सजीव चित्रण है! वार्त्ताशैलीके कारण कथनकी भंगिमा और प्रभावोत्पादकता और भी बढ़ जाती है। 'गंगाकी लहर अमृत है'—वह वाक्य मनसे फिसल जाता है, लेकिन गंगाजीका दिया हुआ उस नायिकाका यह वरदान पाठकोंको बड़ी शान्ति देता है—'राजे लौटि उलट घर जाउ, लाल तिहारे होइ, ललन तिहारे होइ'। सम्पूर्ण गीत इस प्रकार है—

राजे गंगा किनारे एक तिरिया सुठाड़ी अरज करे,
गंगे एक लहरि हमें देउ तो जामें डूबि जैयो, अरे
जामें डूबि जैयों।
के दुख री तोइ सासुरी-ससुरिको, कै तेरे पिया परदेस।
के दुख री तोय माता-पिताको, कै मा जाए वीर।
काहे दुख डूबि हो।
ना दुख री मोइ, सासुरि ससुरिको, नाई मेरे पिया परदेस।
ना दुख री मोइ, मात पिताको, न मा जाए वीर।
सासु बहू कहि नाएँ बोले, ननद भाभी ना कहे।
न हो राजे वे हरि बाँझ कहि टेरे तो छतियाँ जु फटि गई।

१. 'त्रिभंगिमा', पृ० २५।

जाई दुख डूबि हों सो जाई दुख डूबि हों,
राजे लौटि उलट घर जाउ, लाल तिहारे होंइ,
ललन तिहारे होंइ ।[1]

मार्मिकताकी दृष्टिसे 'लाठी और बाँसुरी' गीत लोक-गीतकी आत्माके पास पहुँचा हुआ माना जायगा, जिसमें एक ही बाँसके दो प्रतीकोंके सहारे उन दोनोंकी सार्थकता सिद्ध करते हुए स्त्री-पुरुषके बीच प्यारका वातावरण खड़ा हो जाता है।

पुरुषके प्रश्न—

लाडो बाँसकी बनाऊँ लठिया कि बँसिया ?
बँसिया कि लटिया ? लठिया कि बँसिया ?
लाडो बाँसकी बनाऊँ लठिया कि बँसिया ?

का उत्तर गुण-दोष-विवेचनके बाद सहज उपयोगितावादी है—

राजा, बाँसकी बनाले बँसिया और लठिया;
लठिया और बँसिया; बँसिया ओ' लठिया,
राज, बाँसकी बनाले बँसिया ओ' लठिया ।[2]

'या'का द्वन्द्व 'औ'में समाप्त हो जाता है और इस तरह लाठी और बाँसुरी—शक्ति और माधुर्य दोनों की जय होती है।

अन्य भारतीय भाषाओंके गीतोंके प्रभाव

समसामयिकताकी एक ही जलवायुमें पनपनेवाली भारतीय भाषाओंके गीतोंमें समान भावधाराओंका मिलन कुछ अस्वाभाविक नहीं। और वह भी आजके जमानेमें, जब आकाशवाणी, पत्र-पत्रिकाओं एवं सभा-सम्मेलनोंके माध्यमसे साक्षात्कार बढ़ता जाता है। प्रत्येक वर्ष स्वतंत्रता-दिवसके अवसरपर आकाशवाणीसे अनेक भाषा-भाषियों द्वारा पढ़ी जानेवाली रचनाओंमें पर्याप्त साम्य पाया जाता है। देवनागरी लिपिमें उर्दू, बंगला आदि भाषाओंके अनेक ग्रन्थ सामने आ गये हैं। दूसरे भाषा-भाषियोंने राष्ट्र-भाषा होनेके नाते हिन्दी सीख ली है। अतः पारस्परिक प्रभाव कुछ अंशोंमें अपना स्वाभाविक बन गया है।

सबसे पहले हिन्दी गीतों और उर्दू रचनाओंका पारस्परिक प्रभाव देखा जाये। हिन्दीमें उर्दूकी गजलों और रुबाइयोंकी छन्द-शब्दावलीका प्रभाव लेकर कुछ रचनाएँ लिखी गयी हैं। गजलके पहले शैरको 'मतला' और अन्तिमको 'मुक्ता' कहा जाता है। किसी-किसी गज़लमें मतला नहीं भी होता है। मुक्तामें कविका उपनाम रहता है। रुबाईमें चार मिसरे होते हैं। मिसरा कविताके एक चरणको कहते हैं। इसमें पहले, दूसरे और चौथे मिसरोंके तुक मिले होते हैं। उमरख़ैय्यामका प्रभाव लेकर नये ढंगसे पद लिखनेवाले हिन्दी कवियोंमें सर्वश्रेष्ठ स्थान बच्चनका है। उन्होंने उमरख़ैय्यामकी

१. 'ब्रजलोक-साहित्यका अध्ययन', डॉ० सत्येन्द्र, पृ० १२४।
२. 'त्रिभंगिमा', पृ० ३१-३२।

रुबाइयोंका अनुवाद किया है। मधुशालामें उनके प्रभावसे अनेक पद लिखे हैं। स्वतंत्र रूपसे रुबाइयाँ अन्य कवियोंने लिखी हैं—

(क) क्या करेगा प्यार वह भगवानको,
क्या करेगा प्यार वह ईमानको,
जन्म लेकर गोदमें इन्सान की
प्यार कर पाया न जो इन्सान को।[1]

(ख) क्या करूँगा अधरपर अधिकार कर
जीत उनकी ही रहेगी हारकर!
मैंने मनसे कह दिया है साफ-साफ—
'प्यार करना है तो केवल प्यार कर'।[2]

(ग) लिखता हूँ, बे लिखे न जब कहा जाता।
कहता हूँ बे कहे न जब रहा जाता,
यों खुदाकी बेरुखीका कुछ गिला न मुझे,
अपनोंका कुछ सितम सहा नहीं जाता।[3]

हिन्दीमें दोहेकी परम्परा, संक्षेपमें बहुत-कुछ कहने की दाहिका है, पर इधर कुछ लोगोंने शेर भी लिखने शुरू किये हैं। हिन्दीमें मुझे दमदार शेर पढ़नेको नहीं मिले। खानापूर्त्तिके लिए अधिकांश शेर लिखे हैं—

(क) किनारेकी किश्तीमें डूबा हुआ हूँ।
यह क्या जिन्दगी है कि ऊबा हुआ हूँ।

(ख) खुशीसे कहीं अच्छा गुस्सा तुम्हारा।
बिगड़ने तो आ जाते हो रोज घरपर॥

(ग) कहूँगा कि अपराध मेरे न भूलो
कि वे याद आयें कि मैं याद आऊँ।[4]

निरालाने कुछ अच्छी गजलें लिखी हैं—

हँसीके तारके होते हैं ये बहारके दिन।
हृदयके हारके होते हैं ये बहारके दिन।
निगाह रुकी कि केशरोंकी बेशिनीने कहा,
सुगन्ध भारके होते हैं ये बहारके दिन।
कहींकी बैठी हुई तितलीपर आँख गई
कहीं, सिंगारके होते हैं ये बहारके दिन।

---

१. 'प्राणगीत', नीरज, पृ० १।
२. 'चतुर्मुखी', नारायण, पृ० १५।
३. 'गीत अधूरे हैं', पृ० २०।
४. 'चतुर्मुखी', नारायण, पृ० ११-१२।

हवा चली, खुशबू लगी कि वे बोले,
समीर-सारके होते हैं ये बहारके दिन।
नवीनताकी आँख चार जो हुई उनसे,
कहा कि प्यारके होते हैं ये बहारके दिन।[1]

किन्तु सच्चाई यह है कि इसमें निराला-काव्यकी भावोच्चता, शब्द-सौन्दर्य और कलात्मकता नहीं मिलती। प्रयोगकी दृष्टिसे इसे अभिनन्दनीय माना जा सकता है।

गीतिकाव्यपर प्रभावकी दृष्टिसे बच्चनकी मधुकलश और मधुबाला उल्लेखनीय पुस्तकें हैं। इसमें उर्दू-फारसीके प्रतीकोंको खुलकर ग्रहण किया गया है। निम्नलिखित गीतोंमें हाला, प्यालाके समस्त हालावादी प्रतीकोंको ग्रहण किया गया है—

(क) मैं मधुबाला मधुशाला की,
मैं मधुशाला की मधुबाला!
(ख) मैं ही मधुशालाका मालिक
मैं ही मालिक-मधुशाला हूँ।
(ग) कल्पना सुरा औ' साकी है,
पीने वाला एकाकी है।
(घ) प्यालेमें क्या आयी हाला?
नहीं, नहीं उतरी मधुबाला!
(ङ) मैं मिट्टी की थी लाल हुई,
मधु पीकर और निहाल हुई,
जब चली मुझे ले मधुबाला,
छलछल करके वाचाल हुई,
(च) मिट्टीका तन, मस्तीका मन
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय!
(छ) प्रिय प्रकृति-परीके हाथोंसे
ऐसा मधुवन कराऊँगी,
चिर जरा-जीर्ण मानव फिरसे
पायेगा नूतन यौवन वय!
(ज) गूँजी मदिरालय भरमें लो 'पियो पियो' की बोली!

—मधुबाला, पृ० १५,३२,४३,४३,५४,५९,७५

(झ) मैं नाच रही मदिरालयमें,
मैं और नहीं कुछ कर सकती,
है आज गया कोई मेरे
वतनमें, प्राणोंमें यौवन भर! —मधुकलश, पृ० २९

---

१. 'बेला', निराला, पृ० ३१।

एक बात ध्यान देने की है कि बच्चनके हालावादी गीतोंके प्रतीक उर्दू-फारसी-अरबी परम्पराके हैं, पर उनके निर्वाह और हालावादी दर्शनके चित्रणकी भंगिमा सर्वथा नयी है और हिन्दीमें इस परम्पराका प्रवर्त्तन करनेका श्रेय भी इसी कविको है। जीवन-की नश्वरता, मस्ती और परमात्म-शक्तिकी मधुरताका पान इनके गीतों की विशेषताएँ हैं।

सूरदास की प्रसिद्ध पंक्ति—

पिया बिनु साँपिन कारी रात
कबहुँ जामिनी होत जुन्हैया
हँसि उलटी ह्वै जात !

का प्रभाव सीमा व अकबरावादीने ग्रहण तो किया है, पर सूरकी ध्वन्यात्मकता और चित्रात्मकताकी गहराई व्यंजित नहीं हो सकी है—

मुहब्बतमें एक ऐसा वक्त भी आता है इन्साँ पर।
सितारोंकी चमकसे चोट लगती है रगे जाँ पर ॥[१]

उर्दू-शायरीपर विचार करते हुए प्रसिद्ध शायर और आलोचक फिराक गोरखपुरीने लिखा है "जब तक ठेठ हिन्दीका ठाठ न देखा जायगा, न उर्दूमें लोच पैदा होगी, न हिन्दीमें। उर्दू कवियोंने फारसीका थोड़ा-सा सहारा लेते हुए, अधिकतर ठेठ हिन्दीका ठाठ ही दिखलाया है······खड़ी बोली और आज की हिन्दी भाषाके मामलेमें पुराने हिन्दी कवियोंसे जो मदद मिल सकती है उससे कहीं ज्यादा, कहीं बढ़चढ़ कर उर्दू कवियोंसे हिन्दी बोलीके रचे हुए प्रयोगोंमें मदद मिल सकती है।"[२]

उर्दूके शायर हिन्दीकी प्रकृतिके कितने पास हैं उसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—शब्द, क्रिया-पद सब हिन्दीके नजदीकी हैं—

(क) साथियो ! मैंने बरसों तुम्हारे लिये
चाँद, तारों, बहारोंके सपने बुने
हुस्न और इश्कके गीत गाता रहा
आरजूओंके ईवाँ सजाता रहा।[३]

(ख) मरते हैं आरजूमें मरने की
मौत आती है पर नहीं आती,
काबा किस मुँहसे जाओगे 'गालिब'
शर्म तुमको मगर नहीं आती।[४]

(ग) आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना।
वो बागकी बहारें वो सबका चहचहाना ॥

---

१. 'उर्दू कवितापर बातचीत', फिराक गोरखपुरी, पृ० १४।
२. वही, पृ० २५-२६।
३. 'साहिर लुधियानवी', प्रकाश पंडित, पृ० ८३।
४. 'इकबाल', सम्पादक, प्रकाश पंडित, पृ० ७३।

आजादियाँ कहाँ वो अब अपने घोंसला की।
अपनी खुशीसे आना, अपनी खुशीसे जाना ॥
लगती है चोट दिलपर, आता है याद जिस दम।
शबनमसे आँसुओंपर कलियोंका मुस्कुराना ॥
वो प्यारी-प्यारी सूरत वो कामनी-सी मूरत।
आबाद जिसके दमसे था मेरा आशियाना ॥[१]

(घ) गरदनका लोक पाँवकी जंजीर काट दे।
इतनी गुलाम कौममें हिम्मत कहाँ है जोश?
अपनी तबाहियों पै कभी गौर कर सके।
इतनी जलील मुल्कको फुर्सत कहाँ है जोश?[२]

(ङ) जान तो इक जहान रखता है
कौन मेरी सी जान रखता है,
तेरेमें ढंग और तुझसे मियाँ
दर्द क्या-क्या गुमान रखता है।[३]

(च) सलामत रहे काजलों की लकीर
सलामत रहें नर्म नजरोंके तीर
सलामत रहें चूड़ियों की खनक
सलामत रहे कंगनों की चमक
सलामत हसीनोंके सोलह सिंगार
ये जूड़े पे लिपटे चंबेलीके हार
सलामत रहें मिरग-नैनोंके बान
सलामत रहे मरनेवाली की शान
रहे धूम टैगोर-इकबाल की
रहे शान पंजाबसे बंगाल की
रहे नाम अपने अदबका बुलन्द
दिलोंमें समाया रहे 'प्रेमचन्द'।[४]

(छ) अरी कुछ सुना तूने क्या हो गया?
बहन नास-पीटा ये चूल्हा तेरा?
कभी एक पलको न ठंढा हुआ
अभी बरतनोंका भरा टोकरा,
तेरे सामने है पड़ा।

---

१. 'इकबाल', सम्पादक, प्रकाश पंडित, पृ० ७३।
२. 'जोश मलीहाबादी', वही, पृ० ९७।
३. 'दर्द', सं० वही, पृ० ८९।
४. 'आजके उर्दू शायर और उनकी शायरीमें', डॉ० निसार अख्तर, पृ० २५१।

बहन कुछ न पूछो हया उठ गयी
चहेतीके नाजों पली लाड़ली
नवेली बहू लाजपत राय की
करेगी कहीं आजकल नौकरी
नहीं लोभकी हद कोई ![1]

(ज) तू है एक पहेली जिसको जो बूझे सो जानसे जाय
तू है ऐसी मिट्टी, जिससे लाखों फूल चढ़े परवान
आ मैं तेरा अंग छू दूँ छोड़ ये भेद और भाव की बात
मैंने दो सरहद छूली है जहाँ अमर हो जाये प्रान ।[2]

(झ) ये सीनरी है, ये ताजमहल, ये कृष्ण हैं और ये राधा हैं,
ये कोच है, ये पाइप है मेरा, ये नावल है ये रिसाला है,
ये रेडियो है, ये कुमकुमे है, ये मेज है, ये गुलदस्ता है,
ये गांधी हैं, टैगोर हैं ये, ये शहनशाह, ये मलिका हैं ।[3]

'निराला'की प्रसिद्ध रचना 'वह तोड़ती पत्थर, देखा उसे मैंने इलाहाबादके पथपर'-का प्रभाव सलाम मछली शहरीकी कविता 'सड़क बन रही है', पर स्पष्ट है। कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

जमींपर कुदालोंको बरसा रहे हैं
पसीने-पसीने हुए जा रहे हैं,
मगर इस मशक्कतमें भी गा रहे हैं
सड़क बन रही है।

× × ×

जमादार साएमें बैठा हुआ है
किसीपर उसे कुछ इताब आ गया है
किसीकी तरफ देखकर हँस रहा है।
सड़क बन रही है।[4]

उपर्युक्त पंक्तियोंके उद्धरण देकर इस बातकी ओर संकेत किया गया है कि हिन्दी शब्दावलियों एवं रचना-पद्धतियोंसे आजकी उर्दू शायरी कितनी प्रभावित है। अब नीचे हिन्दी-गीतोंकी कुछ पंक्तियाँ दी जा रही हैं, जिसपर उर्दू-शब्दों और प्रवृत्तियोंका प्रभाव है—

(क) जिनकी नहीं मानी कान
रही उनकी भी जी की।

---

१. 'आजका उर्दू शायर और उनकी शायरी'में संगृहीत मख्मूर की रचनाएँ, पृ० ३५३।
२. वही, अख्तर उल ईमान की रचनाएँ, पृ० ३६४।
३. वही, सलाम मछलीशहरी की रचनाएँ, पृ० ३७३।
४. वही, पृ० ३७४।

जोबन की आन-बान
तभी दुनिया की फीकी।
राह कभी नहीं भूली तुम्हारी,
आँखसे आँखकी खाई करारी,
छोड़ी जो बाँधी अटारी-अटारी
नयी रोशनी, नयी तान;
रही उनकी भी जी की,
उनकी नहीं मानी कान।

—अर्चना, निराला, पृ० १८

(ख) समयकी बाटपर हाट जैसे लगी—
मोल चलता रहा, झोल जैसे दगी—

—वही, पृ० १९

(ग) जैसे जोबन,
दुहरे दुहरे बदन।
आँखोंमें साख भरी,
लाखोंपर राख पड़ी,
अनहारी खड़ी लड़ी
हाथके जतन!

—आराधना, निराला, पृ० ७६

(घ) कल होगा इन्साफ, यहाँ किसने क्या किस्मत पायी है।
अभी नींदसे जाग रहा युग, यह पहली अँगड़ाई है।
मंजिल दूर नहीं अपनी दुखका बोझा ढोने वाले!

—रामधारी सिंह 'दिनकर', सं० मन्मथनाथ गुप्त पृ० ६७

(ङ) काले-काले मेघ उमड़
आँधी वाले मेघ उमड़
भर रहे जहानको जिन्दगी की धार दे
चट्टानोंकी दीवारपर
छोटी-मोटी नालियोंकी रुक रहीं रवानियाँ
पत्थरोंके सामने झुक रहीं जवानियाँ
जिन्दगी उलझ रही है घाटियोंमें बार-बार
छोटी-छोटी लहरोंमें जिन्दगी है तार-तार
तू जलाके बिजलियाँ
तू उठाके बदलियाँ
आगे बढ़के ऐ जुनून, जुनूनको पुकार दे,

—नवीन, नैपाली, पृ० ९२-९३

(च) कौन यह तूफ़ान रोके !
आज मेरा दिल बढ़ा है,
आज मेरा दिल चढ़ा है,
हो गया बेकार सारा
जो लिखा है, जो पढ़ा है;
रुक नहीं सकते हृदयके
आज तो अरमान रोके !
—सतरंगिनी, बच्चन, पृ० ११३

(छ) इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो !
जमीन है न बोलती
न आसमान बोलता,
जहाँ न देखकर मुझे
नहीं जबान खोलता,
नहीं जगह कहीं जहाँ
न अजनबी गिना गया,
कहाँ-कहाँ न फिर चुका
दिमाग-दिल टटोलता,
कहाँ मनुष्य है कि जो
उमीद छोड़कर जिया,
इसीलिए अड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो !
—वही, पृ० १२७-२८

(ज) जिन्दगी तो मिल गयी चाही कि अनचाही
इस सफरमें तुम कहाँसे मिल गये राही ?
ठीक है दो क्षण हमारे कट गये, लेकिन—
तार सुधियोंके हमारे बट गये, लेकिन—
हर क्षणिक तूफानकी छाया सँवरती है,
दो घड़ीकी भेंट बरसों तक अखरती है।
—पर आँखें नहीं भरीं, सुमन, पृ० ६५

(झ) पाँव मेरी जिन्दगीके
अब उखड़ने जा रहे हैं।
—अन्तरा, रमण, पृ० ४२

(ञ) अब हो जाओ तय्यार साथियो ! देर न हो
दुश्मनने फिर बारूदी बिगुल बजाया है,
बेमौसम फिर इस नये चमनके फूलोंपर
सर कफन बाँधने वाला मौसम आया है।

फिर बननेवाला है जग मुरदोंका पड़ाव
फिर बिकनेवाला है लोहू बाजारोंमें
करनेवाली है मौत मरघटोंका सिंगार
सोनेवाली है फिर बहार पतझारोंमें।

—दर्द दिया है, नीरज, पृ० २३

(ट) भ्रम नहीं यह टूटती जंजीर है, और ही भूगोल की तस्वीर है,
रेशमी अन्यायकी अर्थी लिये मुस्कुराती जा रही है जिन्दगी।

—गौतम, वीरेन्द्र मिश्र, पृ० ८३

अब नीचे बंगला भाषी कवियोंके प्रभावका आकलन किया जा रहा है। हिन्दी और बंगला साहित्यने परस्पर एक-दूसरेको प्रभावित किया है। ऐतिहासिक ऐक्य, धार्मिक समानता, आचार-विचारकी एकरूपता, भौगोलिक समानता, भाषागत एवं सांस्कृतिक समता आदि अनेक ऐसे कारण हैं, जिनसे दोनों साहित्योंके बीच विचारों एवं भावोंके आदान-प्रदान संभव हुए। हिन्दीके प्राचीन कवि, विशेषतः कृष्णभक्त और संत कवियोंने ही नहीं, आधुनिककालीन हिन्दी गीतकार एवं संगीत-पद्धतिने बंगलाको प्रभावित किया है। इसी तरह बंगलाके कवियोंका प्रभाव हिन्दी गीतकारोंपर भी पड़ा है।

निरालाके गीत 'आओ मेरे आतुर उरपर, नवजीवनके आलोक सुघर' पर गीतांजलिके गीत 'तुमि नव नव रूपे राशो प्राणे'का, पंतकी ग्राम्याके गीत 'भारतमाता ग्राम्यवासिनी'पर द्विजेन्द्रलाल रायके गीत 'ये दिन सुनील जलधि हूहते उठिले जननी भारतवर्ष'का, माइकेल मधुसूदनकी चतुर्दशपदियोंका प्रभाव राकेश, त्रिलोचनकी चतुर्दशपदियोंपर, निरालाकी सरस्वती वन्दनाओंपर बिहारीलालके 'शारदा मंगल'की रचनाओंका प्रभाव माना जा सकता है। गीतांजलिके अतिरिक्त वीथिका, गीतिमाला, गीतवितान, ऋतुरंग, वर्षामंगल आदि कृतियोंका प्रभाव छायावादी कवियोंके गीतपर पड़ा। नोबेल पुरस्कार मिलनेके बाद हिन्दी कवियोंका ध्यान स्वभावतः गीतांजलि की ओर गया। छायावादी शैलीमें रहस्यवादी भावधाराके गीत लिखनेवालोंपर इसका यथेष्ट प्रभाव पड़ा।

पंतके गीतकी निम्नलिखित पंक्तियाँ

माँ मेरे जीवन की हार
तेरा मंजुल हृदय हार हो
अश्रु कणोंका यह उपहार,
तेरे मस्तकका हो उज्ज्वल
श्रम जलमय मुक्तालंकार।

रवीन्द्रनाथकी गीतांजलिकी इन पंक्तियोंसे पूर्णतः प्रभावित है—

तोमार सोनार थालाय साजावो आज
दुखेर अश्रुधार

जननी गो गांथवो तोमार
गलार मुक्ताहार
तोमार बुके शोभा पावे आमार
दुखेर अलंकार।

निरालाने 'पंतजी और पल्लव' शीर्षक लेखमें उनकी रचनाओंपर बंगला-प्रभावका विस्तृत विवेचन सोदाहरण प्रस्तुत किया है।[१] डॉ० रामकुमार वर्माने 'अंजलि'पर रवि ठाकुरका प्रभाव स्वीकार किया है।[२]

हिन्दीमें आधुनिक कालकी यह बहुत बड़ी विशेषता रही है कि अनेक बङ्गाली सज्जन हिन्दीके प्रबल पक्षधर रहे हैं। इस क्षेत्रमें सर्वश्री राजा राममोहन राय, तरुणीचन्द्र मित्र, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजनारायण बसु, सुनीति कुमार चटर्जी आदि विद्वानोंके नाम सादर उल्लेखनीय है। रवीन्द्र सङ्गीतपर हिन्दी सङ्गीतका प्रभाव स्पष्ट है। इस तथ्यका पूर्ण विवेचन बङ्गला साहित्यमें मिलता है। डॉ० ब्रह्मानन्दने अपने शोध-ग्रन्थ 'बङ्गला-पर हिन्दीका प्रभाव'में चतुर्थ अध्याय'के प्रारम्भमें इसका अच्छा विवेचन प्रस्तुत किया है। इसी तरह श्रीज्ञानेन्द्रमोहन दासने 'बाङ्गला भाषार अभिधान'में हिन्दीकी उन शब्दावलियोंको स्थान दिया है, जो बङ्गलामें प्रचलित है। डॉ० सुशीलकुमारने अपने ग्रन्थ 'बाङ्गला प्रवाद'में हिन्दी लोकोक्तियों और मुहावरोंके ऋणको स्वीकार किया है।[३]

हिन्दी-बँगलाके पारस्परिक सम्बन्धको देखते हुए यह लगता है कि प्राचीन हिन्दी काव्य एवं सङ्गीत पद्धतिका प्रभाव बँगला काव्यपर है, लेकिन आधुनिक काव्य-में हिन्दी गीतिकाव्यपर बँगला कवियों, विशेषतः रवीन्द्रनाथका विशेष प्रभाव लक्षित होता है। रवीन्द्र सङ्गीतका प्रभाव आधुनिक हिन्दी गीतिकारोंने नहीं ग्रहण किया है, उसकी अपनी ही परम्परा इतनी पुष्ट है कि दूसरोंकी आवश्यकता नहीं पड़ी।

अन्य देशी भाषाओंका कोई विशेष प्रभाव हिन्दी गीतकारोंपर नहीं है। इसका कारण यह है कि अधिकांश हिन्दी गीतकार इन सभी भाषाओंसे पूर्णतः परिचित नहीं और न उनका भरपूर प्रचार-प्रसार हिन्दी अनुवादके द्वारा ही हुआ है। फिर भी तेलगूके नोरिनरसिंह शास्त्रीकी गीतिमालिका, तुम्मल सीताराममूर्त्ति चौधरीके राष्ट्रगान; मराठीके भास्कर रामचन्द्र तांबेके संग्रह 'तांबेकी कविता' (द्वितीय खण्ड), चन्द्रशेखर द्वारा संकलित 'सुगी', यशवन्त दिनकर पेंढारकरकी भावलहरी, कुसुमाग्रजके 'पृथ्वीके प्रेम-गीति' और ऐसे ही अनेक कवियोंके गीतोंके अनुवाद होनेपर इस बातका पता चल सकता है कि समसामयिक कवियोंमें एकसे मिलते-जुलते भाव किस हदतक हैं। समाचार-

१. 'प्रबन्ध पद्म', पृ० ६६-१५३।

२. 'हिन्दी काव्यपर आंग्ल प्रभाव', (डॉ० रवीन्द्रसहाय वर्मा)के परिशिष्टमें साक्षात्कार की पंक्तियोंसे, पृ० २८०।

३. पृ० २७० से।

४. पृ० ७८।

पत्रों, देवनागरी लिपि एवं आकाशवाणीके माध्यमसे जो गीत सामने आये हैं, उन्हें देखते हुए यह निर्विवादरूपसे कहा जा सकता है कि आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यको इन सबको प्रभावित कर सकनेकी अपूर्व क्षमता है।

चलचित्रोंका प्रभाव

पौरस्त्य और पाश्चात्य संगीत एवं शास्त्रीय तथा लोक-संगीतके मिश्रणका सहारा पाकर चलचित्रोंके गीतोंका प्रचलन अधिकांश मात्रामें समाजमें है। चलचित्रोंसे मिलनेवाली मोटी रकमके लोभमें बहुतसे अच्छे हिन्दी गीतकार चलचित्रोंके क्षेत्रमें भाग्य आजमाने गये। महाकवि पंतने भी उदयशंकरकी सङ्गतिमें कुछ गीत लिखे। नेपालीने बिहारसे बाहर बम्बईमें ही स्वर्गवासके पूर्वतक गीत लिखे। नरेन्द्र शर्मा और भगवतीचरण वर्माके कुछ गीत भी इस क्षेत्रमें बहुत लोकप्रिय हुए। प्रदीप अबतक वहाँ जुटे हैं। नवयुवक कवियोंमें उर्दूसे साहिर लुधियानवीने हिन्दी गीतोंसे यश और पैसे अर्जित किये हैं। इधर नीरज भी फिल्मोंमें गीत लिख रहे हैं।

अधिकांश फिल्मी गीतोंमें सस्ते रोमांसकी प्रतिध्वनि मिलती है। हिन्दी फिल्में यों भी गीतोंके अतिरेकसे बेदम रहती हैं। उसपर प्यार और विरहके उधार लिये हुए भावोंसे भरे गीतोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रायः फिल्मोंमें धुनें पहले बन जाती हैं और शब्द बादमें बिठाये जाते हैं। फलतः कविकी प्रतिभा दब जाती है। दूसरे फिल्मी दुनियाका अधिकांश 'तुक्कड़ मुंशियों'से भरा है, जिनमें कवि-प्रतिभा नगण्य है। फलतः जो अच्छे कवि उधर जाते भी हैं, वे उनकी सस्ती प्रतियोगितामें ठहर नहीं पाते।

नरेन्द्र शर्मा, नेपाली और प्रदीपने कुछ उच्चकोटिके गीत चलचित्रोंको दिये हैं। जहाँतक प्रभावका प्रश्न है, आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें सामान्य स्तरको चित्रपटके गीतकारोंने प्रभावित नहीं किया है। हाँ, प्रदीप, नेपाली, भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, नीरज वीरेन्द्र मिश्र आदि कवियोंने चलचित्रोंके गीतके स्तरको ऊपर उठानेका प्रयास किया है और कुछ हदतक वहाँके तुक्कड़मुंशियोंमें स्वस्थ-स्पर्धाके भाव भरे हैं।

हिन्दीमें कुछ नवयुवक कवि (?) जिनका जीविका-निर्वाह सभा-सम्मेलनोंमें जाकर होता है, वे फिल्मी तर्जोंपर कुछ तुक बैठाते देखे जाते हैं।

पूर्ववर्त्ती कवियोंका प्रभाव

प्रत्येक युगका कवि अपने पूर्ववर्त्तीका विकास होता है, चाहे वह विकास क्षीण हो या प्रबल! अतीतका परम्परागत प्रभाव उसपर पड़ता ही है। वह प्रभाव उसके विचारों और भावोंके रक्त-मांसमें मिला हुआ होता है। आधुनिक हिन्दी गीतिकारोंपर प्राचीन गीतिकारोंका भी प्रभाव पड़ सकता है। इस दृष्टिसे केवल भक्तिकालका युग हमारे सामने आता है। कुछ पूर्वसे लें तो विद्यापतिसे लेकर कबीर, सूर, मीरा आदि गीतिकारोंका प्रभाव परिलक्षित होता है। रीतिकालमें गीतिकाव्यका विकास नगण्य ही था। आधुनिककालमें १९२०के पूर्व भारतेन्दु और द्विवेदी-युगके प्रभावका आकलन प्रथम प्रकरणमें ही प्रसङ्गवश संकेतित है।

आजका युग भक्त्यात्मक गीतोंके सर्वथा अनुपयुक्त है। फिर भी दार्शनिक भाव-भूमिपर निश्छल मनसे कुछ कवियोंने प्रार्थनापरक गीत लिखे हैं। प्राचीन धाराके गीतमें निरालाके अर्चना, आराधना, गीत-गुंज आदिके कुछ गीत आते हैं—जैसे भज भिखारी विश्वभरणा, भव-सागरसे पार करो, हरिका मनसे गुणगान करो, कौन गुमान करे जिन्दगीका, प्रियके हाथ लगाये जागी, गवना न करा, कैसे हुई हार तेरी निराकार, पतित हुआ हूँ भवसे तार, पतित पावनी गंगे, माँ अपने आलोक निहारो आदि (अर्चना) पम्पाके पदको पाकर हो, कृष्ण राम राम, रामके हुए तो बने काम, विपदा हरण हार हरि हे करो पार, अशरण शरण राम, हरि भजन करो, रहते दिन-दीन शरण भजले आदि (आराधना)। प्रश्न यह है कि क्या इन गीतोंमें वैसी ही तन्मयता आ सकी है, जैसी कबीर, तुलसीकी पंक्तियोंमें, क्या इनमें वैसी ही वेधकता है जैसी सूरकी आत्म-ग्लानिके पदोंमें, क्या इनमें वैसी ही साङ्गीतिकता है जैसी मीराके पदोंमें ?—उत्तर होगा नहीं। कारण है कि आजके कवि साधनाकी उस ऊँचाईपर पहुँच नहीं पाते। भक्तिकालीन कवियोंकी रचना 'स्वान्तः सुखाय' होती थी, जबकि इन कवियों-का कलाकार रूप गौण नहीं हो पाया है।

रीतिकालीन काव्य-पद्धतिका प्रभाव तो आधुनिक कालमें नहीं हुआ, पर श्रृङ्गारके क्षेत्रमें कामातुर मुद्राएँ आधुनिक हिन्दी गीतोंमें भी मिलती हैं। कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे—

(क) प्रिय-कर-कठिन उरोज-परस कस कसक मसक गयी चोली।

—निराला, गीतिका, पृ० ४६

(ख) मैं तुम्हें देखता रह जाता हूँ
और जरा-सा हँस देता हूँ;
और, और···मत पूछो, इसके
बाद कि क्या होता है?···

—आरसी, नयी दिशा, पृ० ९१

(ग) पहले तो रोज मिला करती थीं तुम छिप-छिपकर
अब है ये हाल कि खत तकसे मुलाकात नहीं,
रातके ख्वाब सुनाती थीं जिसे तुम दिनमें
उससे कहनेको तुम्हें आज कोई बात नहीं।

—नीरज, नीरजकी पाती, पृ० १

(घ) जब तलक तुम पास यौवन दास मेरा !
तुम पवन-सा व्याप्त होकर चूमने दो
तुम लहर-सा व्याप्त होकर झूमने दो !
है दरस ज्यों चाँदनी, चन्दन परस है
हर तुम्हारी साँस है मधुमास मेरा !

है तुम्हारी गोदमें हरिद्वार काशी
है तुम्हारी बाँहमें संन्यास मेरा।

—किशोर, गीत अधूरे हैं, पृ० ३५

(ङ) कहाँ छिपाऊँ अर्ध रात्रि-सी यह निर्बन्ध पिपासा

—अंचल, मधूलिका, 'मधुका पापी'

(च) किन्तु नारी सिर्फ नारी हो तुम्हें मैं जानता हूँ,
तुम प्रणयकी हो खेलाड़िन मैं तुम्हें पहचानता हूँ,

—वही, लालचूनर, पृ० २४

लेकिन प्रेमके क्षेत्रमें इतनी शृङ्गारिकता क्षम्य है। आधुनिक काव्यमें अधिक शृङ्गारिकता काव्यकी अन्य विधाओंमें है। प्रगतिवादी काव्यमें निर्धनता या स्पष्टवादिताके नामपर अनेक गर्हित चित्र आये हैं। अंचल, रमण कवि इस दिशामें उल्लेखनीय हैं। गीतोंमें प्रायः मर्यादित शृङ्गार ही है। आधुनिक गीतोंमें यत्र-तत्र शृङ्गारमें आसन्न शंकाके कारण शान्त रसका अच्छा आभास मिलता है—

गोदमें तुम हो, गगनमें चाँदनी है,
कालको यह भी निशा तो मापनी है,
मधु-सुधाकी धारमें दो याम बह ले!
है रुपहली रात, हैं सपने सुनहले।

—बच्चन, मिलनयामिनी, पृ० ३६

समसामयिक प्रभाव

एक ही परिस्थितिमें, एक ही भाषामें लिखनेवाले कवियोंका भाव-साम्य और भी स्वाभाविक है। उसपर भी राष्ट्रभाषा हिन्दीके व्यापक प्रचार-प्रसारके युगमें ये सम्भावनाएँ और भी सम्भव हैं। सूर-तुलसीके भाव क्या कई-कई चरण एक-से हैं। पर इसका यह अर्थ नहीं कि किसीने किसीका अनुकरण किया। पहले यह उतना इसलिए सम्भव नहीं था कि प्रचार-प्रसारके माध्यम नहीं थे। आज तो प्रकाशित पुस्तकोंके अतिरिक्त आकाशवाणी एवं कवि-सम्मेलनोंके कारण ये सम्भावनाएँ बहुत अधिक बढ़ गयी हैं। कवि-सम्मेलनोंमें तो अच्छे कवियोंके कविता-पाठके ढङ्गतकके अनुकरण मिलते हैं। प्रभावकी मात्रा अधिकांशतः उन कवियोंमें देखनेको मिलती है, जो नये हैं और जिनकी प्रतिभाका पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। प्रसिद्ध और श्रेष्ठ कवियोंमें भावोंका मिल जाना स्वाभाविक प्रक्रियाके वशीभूत है। समान मनःस्थितिमें होनेपर, या अचेतनमें किसीकी पंक्तिके घूमते रहनेसे एक-सी पंक्तियोंका निर्माण सम्भव है।

विदेशी साहित्यका प्रभाव

विदेशी साहित्यके प्रभावका प्रमुख साधन अंग्रेजी है। फ्रेंच, रूसी, जापानी या अन्य भाषाओंकी रचनाएँ भी अधिकांश हिन्दी कवियोंके पास अंग्रेजीके माध्यमसे आती हैं।

आधुनिक हिन्दी गीतिकारोंपर मुख्यतः अंग्रेजीके रोमाण्टिक कवियोंका प्रभाव है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अंग्रेजीमें रोमाण्टिक काव्यका युग अठारहवीं शतीके अन्तिम चरणसे लेकर १८३० ई०के आस-पासतक माना जाता है, जबकि छायावादका प्रारम्भ बीसवीं शतीके प्रारम्भमें हुआ। इतना ही नहीं, अंग्रेजी रोमाण्टिक कविता फ्रांसकी राज्यक्रान्तिकी सफलताकी पृष्ठभूमिमें पल्लवित हुई, पर छायावादका विकास १९११-२९ के बीच राष्ट्रीय आन्दोलनोंकी विफलताके बीच हुआ। कालक्रम और परिस्थितियोंके अन्तर होते हुए भी छायावाद और रोमाण्टिक कविताओंकी भावधाराओंमें बहुत-कुछ साम्य है। एक बात मूलतः दोनोंमें एक थी और वह भी "आन्तरिक सौन्दर्यके आदर्श और बाहरी जगत्के एकदम भिन्न परिस्थितिके संघर्षका परिणाम है।"[१]

इसके अतिरिक्त आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यपर प्रतीकवादका विशेष प्रभाव पड़ा—मैटरलिंक, ईसाई और फ्रांसीसी प्रतीकवादोंका। मैटरलिंक नाटककार था। उसने स्वप्निल चरित्रोंका निर्माण किया है। इसके प्रतीकोंका यह प्रभाव हिन्दीके गीतिकाव्यपर नहीं, 'कामना', 'ज्योत्स्ना' आदि नाटकोंपर है। बाइबिलके प्रतीकोंका भी बहुत कम प्रभाव हिन्दी गीतोंपर है। डब्ल्यू० बी० येट्स तथा उसके फ्रांसीसी रहस्यवादका अधिक प्रभाव हिन्दी गीतोंपर है। इसका कारण उसका सौन्दर्यशील दृष्टिकोण, सङ्गीतात्मकता और वैयक्तिकता है—जो गीतिकाव्यके विशेष गुण हैं। रवि ठाकुरपर येट्सकी रचना और व्यक्तित्वका प्रभाव था। हिन्दीके छायावादी कवियोंने बंगलाके माध्यमसे भी इस प्रभावको ग्रहण किया।

रोमाण्टिक कविताओंकी सौन्दर्यवादी चेतना, (प्रकृति और मानव दोनों क्षेत्रोंमें) निराशावाद, रहस्यवादी वृत्ति, प्रेम-भावना आदि अनेक तथ्योंके प्रभाव हिन्दी गीतोंपर पड़े हैं। अंग्रेजी कवियोंमें वर्ड्सवर्थके नवीन विषय-चयन और प्रकृति-प्रेमका; बायरनकी स्पष्टवादिता, कल्पना, संसारके प्रति आक्रोश; शेलीकी आध्यात्मिकता, नैतिकता, अपदार्थवाद; कीट्सकी कल्पनाशीलता, सौन्दर्यप्रवणता, अमूर्त्तता, पलायनवादीवृत्ति; टेनिसनकी सङ्गीतमयी-शब्दयोजना, आदर्शवाद; ब्राउनिंगका आत्मविश्लेषण, नाट्य-शैली; स्विनबर्नके ध्वनि-लालित्य, शब्द-माधुर्य आदिके प्रभाव आधुनिक हिन्दी गीतोंपर माने जा सकते हैं।

पंतपर शेलीका प्रभाव है।[२] प्रकृतिके सुख-दुखका अनुभव पंत वर्ड्सवर्थकी तरह

---

१. ...रोमाण्टिक साहित्य इसी प्रकारके कवि-चित्तके आन्तरिक सौन्दर्यके आदर्श और बाहरी जगत्के एकदम भिन्न परिस्थितिके संघर्षका परिणाम है।...वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स आदि कवियोंने जिस मोहक सौन्दर्य जगत्का निर्माण किया है, वह अपूर्व है। उसने हमारे देशके साहित्यको भी प्रभावित किया है।

—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी (डॉ० देवराज लिखित 'रोमाण्टिक साहित्यशास्त्रकी भूमिकामें'), पृ० ५-६।

२. उनपर (पन्तपर) सबसे अधिक ऋण कविवर शेलीका है ...।

—सुमित्रानन्दन पन्त, डॉ० नगेन्द्र, पृ० ७५।

करते हैं। शैलीके 'स्काईलार्क'में विनयकी जो मुद्रा है, वह पन्तमें भी है।[१] शैलीके आदर्शवाद (लेटोनिज्म)का प्रभाव उनके 'आँसू'में है। पन्तके अनंग सम्बोध गीतिमें कीट्सके 'ओड टू साइके'की प्रीति-अर्चना है। डॉ० रामकुमार वर्मापर—विशेषतः रूपराशिपर कीट्स और बायरनका प्रभाव है। कीट्सकी पंक्ति 'आवर स्वीटेस्ट सांग्स् आर दोस दैट टेल ऑफ सेडेस्ट थौट्स'का पर्याप्त प्रभाव आधुनिक हिन्दी गीतोंपर पड़ा, यथा 'रुदनका हँसना ही तो गान' (गुप्त), 'आह मेरा वह गीला गान[२]' (पन्त), 'अयि अमर शान्तिकी जननि जलन' (द्विज) आदि गीत !

कीट्सकी कविता 'औड आन मेलाङ्कली'का प्रभाव उन तमाम गीतोंमें है, जिनमें सौन्दर्यकी नश्वरता, सुखपर दुखकी छाया एवं उदासीका साम्राज्य है। महादेवीके गीत 'मधुर वह था मेरा जीवन'[२]पर उस कविताकी अन्तिम पंक्तियों[३]का व्यापक प्रभाव है। कीट्सकी कविता 'आन डेथ'[४]का प्रभाव नीरजकी इन पंक्तियोंपर है—

बज रही सरगम मरणकी भू, गगनमें
है चिताकी राख लिपटी हर चरणमें,
हँस रहा हर डालपर पतझर समयका,
एक विषकी बूँद है सबके नयनमें,
प्राण ! जीवन क्या, प्रणय क्या प्यार,
एक आँसू और एक अंगार।
आदमी है मौतसे लाचार,
जी रहा है इसलिए संसार।[५]

---

१. Teach me half the gladness
That thy brain must know.
× × ×
सिखा दो ना हे मधुप कुमारि
मुझे भी अपना मधुमय गान, —पल्लविनी, पृ० ८८।

२. 'आधुनिक कवि', पृ० १७।

३. Ay, in the very temple of delight
Veild meloncholy has he sovran shrine,
Though seen of none sare him whose strenuous tongue.
Can burst Joy's grate against his palate fine ;
His soul shall taste the sadness of her might,
And be among her cloudy trophies hung.
—*The Poetical Works of John Keats*, edited by H. B. Forman, p. 248.

४. How strange it is that man on earth should roam,
And lead a life of woe, but not forsake
His rugged path; nor dare he view alone.
His future doom which is but to awake. —Ibid, p. 283.

५. 'प्राण-गीत', पृ० ४५।

पन्तकी पल्लविनी[१] कवितापर कीट्सकी 'औड टू दि नाइटिंगेल'[२]का प्रभाव है। इसी तरह निरालाके गीत 'तुम जावगे चले[३]', और महादेवीके गीत 'सुनावे क्या वह मिलन प्रभात'[४]पर वर्ड्सवर्थके 'इमॉरटेलिटी औड'का प्रभाव माना जा सकता है। आधुनिक सम्बोध गीतियोंको शैली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ आदिके 'ओड्स'ने प्रभावित किये।

आधुनिक हिन्दी कविताको विशेषतः प्रगतिवादी कवियोंको मार्क्सवादी विचार-धाराने बहुत अधिक प्रभावित किया। प्रगतिशील लेखक संघकी स्थापनाके मूलमें ऐसे ही साहित्यका प्रचार था; लेकिन हिन्दी गीतिकाव्यके क्षेत्रमें बहुत कम रचनाएँ ऐसी हैं, जो उल्लेखनीय हों। इसका कारण यह है कि गीतिकाव्यमें आत्माभिव्यंजन और रागात्मक तीव्रता आवश्यक है। प्रगतिवादी विचारधाराओंके उधार लिये हुए भाव या पुस्तकीय ज्ञानपर आधारित जीवन-दर्शनमें सफल गीतोंकी सृष्टिकी शक्ति नहीं थी।

पश्चिमके मनोविश्लेषणवादका गीतपर विशेष प्रभाव पड़ा। मनोविज्ञानके प्रभावका विवेचन करते हुए सोदाहरण इसका उल्लेख किया गया है। यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि फ्रायड, युङ्ग या अन्यान्य मनोवैज्ञानिकोंका प्रभाव पुस्तकीय ज्ञानके आधारपर इन गीतोंपर नहीं है। स्वाभाविक प्रक्रियाके रूपमें उनके सिद्धान्तोंका उदाहरण बनकर हिन्दी गीतोंकी अनेक पंक्तियाँ सामने आ गयी हैं। मनोविज्ञानकी पुस्तकें पढ़कर उनका उदाहरण प्रस्तुत करनेके लिए गीतोंका निर्माण नहीं किया गया है। टी० एस० इलियटके प्रतीकों और मनोवैज्ञानिक दृष्टिका प्रभाव प्रयोगवादी कवियोंपर है। अज्ञेयकी रचनाओंपर उनका विशेष प्रभाव माना जा सकता है।

इन प्रभावोंके आकलनका अर्थ इतना ही दिखलाना था कि आधुनिक हिन्दी गीतकार अपने आस-पासके गीतकारों, अपनी परम्परा और विश्व-ज्ञानके प्रति सतर्क और जिज्ञासु हैं। वे विश्व-काव्यकी एक कड़ी हैं, विश्व-समाजमें फैली हुई विचारधारासे छूटे हुए नहीं हैं। आधुनिक हिन्दी गीतोंका अपना व्यक्तित्व है। उसकी विशेषता उसकी मौलिकतामें निहित है। उधार ली हुई भाव-धाराएँ प्रभावशालिनी होती भी नहीं हैं। प्रभावित होना कविकी जीवन-शक्ति और सहृदयताका परिचायक है, अनुकरण करना उसके मौलिक चिन्तनकी समाप्ति का। आधुनिक हिन्दी गीतकार देशी-विदेशी, प्राचीन-समकालीन कवियोंसे प्रभावित हैं, उनके भाष्यकार नहीं। वे प्रभावित होनेके साथ दूसरोंको प्रभावित करनेकी क्षमता भी रखते हैं। ज्यों-ज्यों राष्ट्रभाषा हिन्दीका प्रचार होगा, ज्यों-ज्यों हिन्दी गीत दूसरी भाषाओंमें अनूदित होंगे, प्रभावित करनेकी क्षमता बढ़ती जायगी।

---

१. पृ० ७२।

२. *Poetical Works of John Keats*, p. 231.

३. 'गीतिका', पृ० ९६।

४. 'यामा', पृ० ९३।

अध्याय ९

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका स्वरूप और विकास

कविता जीवन और जगत्के विभिन्न रागात्मक सम्बन्धोंकी अनुभूतिकी कलात्मक अभिव्यक्ति है। सत्यका अन्वेषण वैज्ञानिकों, दार्शनिकों एवं कवियोंका एक-सा महत्त्व-पूर्ण लक्ष्य है। अन्तर प्रक्रियाका है। वैज्ञानिक अपने अनुसन्धानको प्रयोगके द्वारा सिद्ध करना चाहता है, दार्शनिक तर्कका आश्रय लेता है और कवि अपनी अनुभूतिको साक्षी रखता है। वैज्ञानिक और दार्शनिक मस्तिष्कको छूते हैं, कवि हृदयको। विश्वकी सहस्रों भाषाओंके लाखों कवि निरन्तर सत्यके भावात्मक अनुसन्धान और अभिव्यक्तिमें तल्लीन हैं—अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार कविताके अत्यन्त कोमल कलेवर और मसृण भाषा-शैलीवाले गीतिकाव्यमें ये अनुभूतियाँ और भी आकर्षक रूपमें आती हैं।

मैंने पिछले आठ प्रकरणोंमें गीतिकाव्यके आधुनिक स्वरूप और उसके विकासका अध्ययन प्रस्तुत किया है। छायावाद और उसकी उत्तरवर्ती सीमा-भूमिमें उगनेवाली गीत-लताके रूप और गन्धकी पहचानका यह प्रयास सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों ही प्रकारकी आलोचनाओंसे सम्बद्ध है। मैंने चार दशकोंके हिन्दी गीतिकाव्यको प्राचीन गीतिकाव्यकी पृष्ठभूमिमें पढ़ा है। पाश्चात्य और पौरस्त्य दृष्टिबिन्दुओंसे उसके स्वरूप और विकासको जाँचनेकी चेष्टा की है। गीतिकाव्यके अन्तरङ्ग और बहिरङ्गका परीक्षण कर उसके वास्तविक स्वरूपकी पहचान की गयी है।

आधुनिक हिन्दी काव्ययुगमें गीतिविधा ही क्यों सबसे अधिक स्वीकृत एवं प्रमुख हुई इसके मूलभूत कारण हैं। द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकताके प्रतिक्रिया-स्वरूप काव्यकी जो निर्झरिणी फूटी उसे भावना एवं कल्पनाके योगसे सतरङ्गिनी विभायुक्त तो होनी ही थी। छायावादी काव्यकी सामाजिक पृष्ठभूमि बड़े ही उथल-पुथल एवं संघर्षकी थी। छायावादके भावुक 'कोमलप्राण' कवि इस संघर्ष कोलाहलसे दूर कल्पना-भावनाके शान्ति एवं स्नेह भरे जगत्में आश्रय-नीड़की तलाश कर रहे थे। बाह्य जगत्की प्रतिक्रिया कवि-मानसको करुणासजल गीतोंकी सृष्टिके लिए उपयुक्त परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत कर रही थी। स्वभावतः बीसवीं सदीके तृतीय-चतुर्थ दशकोंका हिन्दी काव्यका युग प्रगीत-युगके रूपमें ही उपस्थित हुआ।

इस कालकी उदय-बेलामें एक महत्त्वकी बात यह थी कि इसके अधिकतर गीतकार नववयस्क थे—"अंततः 'यह नववयके अलियोंका गुंजन'के ही रूपमें तो पहले-पहल मुखरित हुआ था। फिर इन कवियोंपर अंग्रेजीके रोमानी कवि शेली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ तथा विश्व कवि रवीन्द्रकी स्वरमाधुरीका प्रभाव भी प्रचुर था।"

भावनाके प्रबल वेग एवं उच्छ्वासने इस मधुर-तरल-सबल गीतिको जन्म दिया। इस केन्द्रीभूत प्रबल भावावेगके बिखर जानेपर गीतोंकी रचना संभव नहीं। जैसे प्रातःकालमें ओस-बिन्दु एकत्र होते हैं उसी प्रकार इस गीतिकाव्यमें कोमल भाव-संस्पर्श, सुकुमार रहस्य-रंजना एवं युग तथा जीवनकी मूक व्यथा अकस्मात् ही रूपायित हो उठी। वर्षा होनेपर ओस बिन्दुओंका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है, पर खुले आकाशमें उनकी शोभाका क्या कहना! आलोच्य काव्य-युगकी कुछ गीतिकाओं—जैसे प्रसादकी 'खोलो प्रियतम खोलो द्वार', निरालाकी 'कौन तमके पार रे कह', पन्तकी 'कौन-कौन तुम प्रतिहत वसना', रामकुमारकी 'करुणाका गहरा गुंजार' प्रभृति रचनाओंकी गूँज चिरकालतक सहृदय मानव-मनमें ध्वनित-प्रतिध्वनित होती रहेगी। आधुनिक काव्य-युगके गीतकारोंने भावनाओंके विश्लेषण तथा प्रतीकके माध्यमसे मानवीकरण करके एक अभिनव काव्य-विधाकी सृष्टि कर दी। वस्तुतः मनको किसी भावना-बिन्दुपर केन्द्रीभूत करनेकी जो शक्ति आयी उसीने गीतिकाव्यकी विधाको जन्म दिया।

गीतिकाव्य कलागीतोंका विकसित रूप है, जिसके निर्माणके पूर्व सैकड़ों वर्षोंके लोकगीतोंकी एक सुदीर्घ परम्परा है। हमारी संस्कृति, आस्था, धर्म, इतिहास और लोक-जीवनकी शत-शत छवियोंको लेकर जनकण्ठमें गूँजनेवाले इन लोकगीतोंके विकासकी कड़ीके रूपमें आनेवाले आधुनिक गीतिकाव्य विशेष महत्त्वके हैं। पारिवारिक परिपार्श्व और जीवनसे सम्बद्ध इन लोकगीतोंकी स्पष्ट छाप आधुनिक गीतोंपर है। प्रवहमान जीवन और जगत्के अगणित चित्र इन गीतोंमें मिलते हैं। मैंने प्रथम प्रकरणमें लोक-गीतोंके वर्गीकरणके बारह आधार बतलाये हैं। आधुनिक गीतोंको ध्यानमें रखते हुए यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि अब संस्कारों, धार्मिक अनुष्ठानों, कार्य-कलापों, जाति और आयुकी दृष्टिसे गीतोंकी रचना प्रायः नहीं होती है। संस्कारोंके प्रति आजके जन-समाजकी बहुत कम आस्था है, कवियोंका हृदय इनसे आन्दोलित नहीं होता। धार्मिक अनुष्ठानोंमें केवल दीपावलि और होलीके अवसरपर कुछ गीत पत्र-पत्रिकाओंमें देखनेको मिलते हैं, पर उनमें भी वैयक्तिकताका रङ्ग ही गाढ़ा रहता है। आधुनिक हिन्दी काव्यमें मुश्किलसे दो-चार होली-गीत मिलते हैं—एक 'गीतिका'में (नयनोंके डोरे लाल गुलाल भरी खेली होली), दूसरा 'साकेत'में (होली, होली, होली) और कुछ अन्य। वर्ण-व्यवस्थाको आजके जाग्रत युगने सुधारवादी प्रभाव और पाश्चात्य सम्पर्कके फलस्वरूप बहुत-कुछ भुला दिया है। फिर यह कैसे संभव है कि परम्परागत लोकगीतोंकी भाँति आज भी चमार, धोबी आदि जाति विशेषका ध्यान रखकर गीति-रचना की जाय। लोकगीत जन-जीवनसे इतना घनिष्ठ है कि काम करते हुए—धान रोपते हुए, चक्की चलाते हुए एक मस्तीका आलम झूमता रहता है—लोग गाते-गाते काम करते रहते हैं। आज मिलके शोषण-चक्र, चिमनीके धुएँ और मशीनी सभ्यताके इस युगमें गाते हुए काम करनेका सौभाग्य नहीं मिल पाता। अतः आधुनिक गीतिकाव्य इस दिशासे भी

विमुख-जैसा है। बोझ उठाते हुए, चर्खा चलाते हुए चित्रोंवाले दो-चार गीत प्रगतिवादी युगमें लिखे गये, किन्तु उनका कोई विशेष साहित्यिक महत्त्व नहीं है। आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका महत्त्व परिप्राणगत न होकर उसकी गहराईमें है। लोकगीतोंकी अपेक्षा उसकी परिधि छोटी है, पर आधुनिक नागरिक सभ्यताजन्य जीवनकी ग्रन्थियों और उनसे लिपटे हुए जटिल मनोभावोंके जितने विविध और स्पष्ट चित्र आधुनिक गीति-काव्यमें मिलते हैं, उतने लोकगीतोंमें नहीं मिल सकते। बीसवीं शताब्दीकी अपनी समस्याएँ हैं। आजके वैज्ञानिक युगकी अपनी उपलब्धियाँ और दुर्बलताएँ हैं। आजसे सैकड़ों वर्ष पूर्वके लोकगीतोंमें भय, कुतूहल और श्रद्धाके जो तत्त्व थे, वे अब नहीं रहे। अणु-परमाणु युगमें हमारे सपनोंके स्वरूप भी बदल रहे हैं। मानवीय मूल्य-मान आज जिस रूपमें खंडित हो रहे हैं, पारस्परिक विश्वासकी भूमि आज जितनी अस्थिर है, उतनी पहले कभी नहीं थी। फलतः आजके गीतोंकी भाव-दिशा बहुत अंशोंमें परिवर्तित है।

आधुनिक काव्यमें भक्ति-गीत कम नहीं लिखे गये हैं। यथास्थान उनका विवेचन किया गया है; पर आज सूर, तुलसीकी-सी तन्मयता नहीं दीखती। इन महान् कवियोंके पद आराध्यके चरणोंमें सहज समर्पित पुष्पांजलियोंकी तरह थे। उनका लक्ष्य काव्य-रचना मात्र नहीं था। वस्तुतः मध्यकालीन भक्त-कवियोंके गीति-पद उनकी अर्चनाके खेल और फूल थे। इनसे भिन्न आधुनिक गीतकारोंने भक्ति-गीत लिखे ही हैं बहुत कम और जो हैं भी वे काव्य-देवताके चरणोंमें पहले समर्पित हैं, आराध्य-देवके चरणोंमें बादको। अर्थात् भक्ति काव्यके उपादानोंसे बोझिल है, मुक्त नहीं। कबीरकी अटपटी बाणीमें जो सहजानुभूति है, वह आधुनिक रहस्यवादियोंकी कलामयी अभिव्यक्तिमें कहाँ मिलती है!

विषयकी दृष्टिसे आधुनिक गीतिकाव्यकी बहुत बड़ी उपलब्धि उसकी दाम्पत्य-दृष्टि-की समृद्धि है। सिन्दूरी सुषमा इन गीतोंको नयी दीप्ति दे सकी है और किसी युगके कलागीतोंमें ऐसी बात नहीं। यह स्वर है तो सिर्फ लोकगीतोंमें। किन्तु एक सूक्ष्म अन्तर इस क्षेत्रमें भी है—लोकगीतोंमें पत्नीके प्रेम, विरह और व्याकुलताके अधिक चित्र हैं, कलागीतोंमें पतिके। पहलेमें स्त्री-वर्ग अधिक सक्रिय है, दूसरेमें पुरुष-वर्ग। इसका प्रमुख कारण लोकगीतोंकी अपेक्षा कलागीतोंके लिए अधिक आवश्यक शिक्षा-दीक्षा है, जिसका व्यापक प्रसार पुरुषोंमें ही अधिक है और पुरुषोंका प्रणय-केन्द्र है नारी।

विषयकी दृष्टिसे दूसरी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है—राष्ट्रीय गीत। गांधीवादी आन्दोलनोंको सक्रिय बनानेमें काव्यकी विविध विधाओंमें सर्वाधिक महत्त्व गीतोंका है। अपनी सहज गेयता एवं सरलताके कारण ये जनकण्ठपर सुविधापूर्वक जम सके। आधुनिक कालमें ही मनोरंजनप्रसाद सिंहके 'फिरङ्गिया' और भोजपुरीके रघुवीर-नारायणके 'बटोहिया'ने जनतामें विद्रोहकी ज्वाला जगा दी थी। मैथिलीशरण, निराला, पन्त, नवीन, सुभद्राकुमारी, दिनकर आदि अनेक कवियोंके राष्ट्रभक्ति-दीप्त गीतोंने राष्ट्रीय-क्रान्तिमें समिधाका काम किया है।

विषयकी दृष्टिसे तीसरी उपलब्धि है—राष्ट्र-पुरुषके प्रति श्रद्धांजलि। आधुनिक कालके पूर्व राष्ट्रीय चेतनाको मूर्त्तरूप देनेवाले किसी व्यक्तिके प्रति इतने गीत नहीं लिखे गये। यद्यपि महाराणा प्रताप, शिवाजी आदि अनेक योद्धा और महापुरुष इस देशमें हो चुके हैं, पर एक व्यक्ति—महात्मा गांधीके प्रति उनके जीवन काल और स्वर्गारोहणके पश्चात् जितने गीत लिखे गये, पिछले सम्पूर्ण हिन्दी काव्यमें किसी एक व्यक्तिको लक्ष्य कर इतने गीत अर्पित नहीं हैं। यह इस तथ्यका प्रमाण है कि राष्ट्रीय चेतना आज जितनी घनीभूत हुई है, उसके पूर्व नहीं थी; न राष्ट्रीय भावनाके ऐसे प्रहरी ही पहले हुए थे और न गीतकारोंका राष्ट्रीय भाव ही इतना प्रबल हुआ था।

रसकी दृष्टिसे आधुनिक हिन्दी गीतोंमें सर्वाधिक प्रमुखता शृङ्गार की है। यही प्राचीन पदोंके सम्बन्धमें भी सत्य है। अन्तर इतना ही है कि प्राचीन पदोंमें अधिकता देव-विषयक-रति की थी, आधुनिक कालमें प्रधानता मानव-विषयक-रतिकी है। कामुकतापूर्ण वासनात्मक संयोग शृङ्गारके चित्र बहुत कम मिलते हैं। शृङ्गारमें भी अधिकता आजके गीतोंमें विप्रलंभ की ही है। कदाचित् मानव-जीवन सनातन कालसे विरह-व्यथित ही अधिक है। सभी अभिलाषाएँ किसकी पूर्ण होतीं! अधिकांश सपने बालूकी भीत ही प्रमाणित होते हैं। दो दिनका जीवन और उसमें भी यौवनकी घड़ियाँ कुछ क्षणों की! शान्तरसके गीत आजतक बहुत कम लिखे जाते हैं। पहलेकी अपेक्षा हास्य और व्यंग्यकी सीमाएँ विस्तृत हो गयी हैं। प्राचीन हिन्दी गीतोंमें आजकी अपेक्षा हास्यरसकी रचनाएँ बहुत कम हैं। राजनैतिक एवं सामाजिक जीवनकी प्रखरता और प्रमुखताके कारण हास्य और व्यंग्यके आलम्बन भी अधिक व्यापक हो गये हैं। १९४७ के पूर्व वीर-रसात्मक गीत अधिक लिखे गये। मेरी विषय-सीमा (सन् '२०–'६०) के बाद चीनी आक्रमणके सन्दर्भमें बड़े ओजपूर्ण गीत लिये गये। स्वतन्त्रताके बाद अधिकार-प्रमत्तताके चक्रमें उलझे हुए इस देशमें इतना अधिक संगठन, वीर्य और तेज शेष है, इसका बहुत सबल प्रमाण चीनी आक्रमणसे मिला। गर्वदीप्त भारतका उद्दाम आक्रोश बड़ी तीव्रतासे प्रकट हुआ। स्मरणीय है कि आधुनिक हिन्दी गीतोंमें स्थायी भावोंकी अपेक्षा संचारी भावोंकी प्रबलता मिलती है।

लयकी दृष्टिसे आधुनिक हिन्दी गीतोंमें अधिक विविधता है। प्राचीन, नवीन, स्वदेशी, विदेशी लयोंके साथ ही इनके अनेक मिश्रित रूप हमारे लिए विशेष महत्त्वके हैं। किन्तु सांगीतिकताकी दृष्टिसे—गायनकी शास्त्रीय पद्धतिकी दृष्टिसे आज भी प्राचीन, विशेषतः भक्तिकालीन पद अधिक सुगम और खरे उतरते हैं। आज भी अधिकांश गवैये जो सूर, तुलसी, मीरा, कबीर, दादू आदिके भजन गाते हैं उसके दो कारण हैं। एक तो यह कि ये गीत उन कवियोंकी रचनाएँ हैं जो स्वयं भी अच्छे गायक थे और प्रभु-प्रीतिसे विह्वल होकर कदाचित् गाते हुए इनकी रचना करते थे। उन सबके साथ भक्त-मण्डली होती थी, जिनमें वाद्य-यन्त्रोंके साथ उनके गायनकी भी व्यवस्था रही होगी। मेरी दृष्टिमें दूसरा कारण, पुण्यका लोभ है। भावसे आर्द्र इन पदोंको गाते हुए इहलोक

और परलोक दोनोंके सुधरनेकी आशा है। आजतक कुछ प्रयास खड़ी बोलीके गीतोंको सिद्ध गवैयों द्वारा गानेका चल रहा है, पर इसकी मात्रा थोड़ी है। हालमें ही बिहार विश्वविद्यालयकी एक सभामें संगीत-मार्तण्ड पं० ओंकारनाथ ठाकुरने भाव-भरे आरोह-अवरोहके साथ महादेवीके प्रसिद्ध गीत 'मैं नीर भरी दुःखकी बदली'को शुद्ध शास्त्रीय रीतिसे गाकर सुनाया था।

छन्दोंके प्रयोगकी दिशामें उर्दू छन्दोंके प्रयोगमें बहुत अधिक सफलता हिन्दीको नहीं मिली है। गजलों, शेरों, रुबाइयों या फिर अंग्रेजी छन्दोंमें चतुर्दशपदियोंकी रचनाएँ आज भी प्रयोगकी दिशामें अस्थिर हैं। आधुनिक हिन्दी गीतोंकी सफलता प्राचीन छन्दोंके नवीन संस्करण तथा दो छन्दोंके मिश्रणमें है। रस और वर्ण्य-विषयके अनुकूल छन्दोंकी योजना आधुनिक कालकी बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जायेगी।

हमारा आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य युग-चेतनाके प्रति सदैव जागरूक रहता है। दो महायुद्धोंके बीचमें संघर्ष, निराशा, विप्रण्णता और ओज सबकी अभिव्यक्ति इन गीतोंमें हुई है। न केवल छायावादके बल्कि प्रगतिवादी आन्दोलनने भी अपनी अभिव्यक्तिका प्रबल माध्यम गीत ही चुना। सफल गीतकी दृष्टिसे अक्षम रहा प्रयोगवादी साहित्य। इसके कारण प्रयोगशील अस्थिर मनोवृत्ति, सांगीतिक स्पन्दनका अभाव और अतिशय बौद्धिक चमत्कारप्रियता हैं।

गीतिकाव्यकी पाश्चात्य और पौरस्त्य सभी कसौटियोंपर आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य खरे उतरते हैं। तृतीय प्रकरणमें परिभाषाओंके विश्लेषण एवं गीतिकाव्यके प्रेरक तत्त्वोंका विवेचन करते हुए इस बातको सिद्ध किया जा चुका है। यहाँ इतना कहना आवश्यक है कि आधुनिक हिन्दी गीतकार भावात्मक तीव्रताको अधिकसे अधिक कलात्मक स्वरूपमें ढालनेमें सफल हुए हैं। यह एक कठिन साधना है। भावोंकी तीव्रता या तो कोरी रह जाती है या बहुत अधिक अलंकृत होनेसे बोझिल। सफल गीतिकारको मध्य मार्ग अपनाना पड़ता है, लेकिन इस कलाका अभ्यस्त हुए बिना उच्च कोटिके गीत नहीं लिखे जाते। कविको अपनी इस कलाके प्रति सजग होनेकी आवश्यकता नहीं होती। यह विशेषता जब गीतकारके स्वभावका अंग बन जायगी, तभी वह श्रेष्ठ रचना लिख सकेगा। प्रसाद, निराला, पन्त, रामकुमार, बच्चन आदि सभी श्रेष्ठ गीतकारोंमें यह गुण प्रचुर मात्रामें पाया जाता है।

जितनी सशक्त और सूक्ष्म सौन्दर्य-चेतनाका विकास आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें हुआ है, उतना पहले नहीं था। भक्तिकालीन सौन्दर्य-चेतना कुछ सीमित आलम्बनों—आराध्य देव-देवीमें निबद्ध थी। रीतिकालीन सौन्दर्य-दृष्टि अत्यन्त स्थूल और वासना-मूलक थी। द्विवेदी-युगमें सौन्दर्य-चेतना आदर्शोंकी बन्दिनी बनी थी। आदर्शोंकी कारासे मुक्त जीवन, युग और जगके सुविस्तृत धरातलपर इसका पूर्ण विकास छायावादी गीतोंमें ही हुआ। आधुनिक गीतिकाव्यकी सांकेतिक और चित्रात्मक शैली तथा भावपूर्ण चित्रणोंमें स्थूलताका अवकाश भी कम है। इन गीतोंमें प्रकृतिका मनोवैज्ञानिक

चित्रण मिलता है। ऐसे गीत बहुत कम हैं, जिनमें प्रकृति मानवीय भावोंसे मुक्त होकर अपने शुद्ध रूपमें आयी हो। उसे उद्दीपन, सौन्दर्य-चित्रणकी सहायिका, सुख-दुःखकी रागात्मक स्थितिकी पृष्ठभूमि आदि रूपोंमें आना पड़ा है। प्रकृति और मानवके एकात्मके भी अच्छे उदाहरण इन गीतोंमें मिलते हैं। आधुनिक गीतिकाव्यकी यह बहुत बड़ी विशेषता है कि इनमें रूप और गुणकी सम्मिलित अवस्थाका चित्रण मिलता है। केवल रूप पदकी रीतिकालीन एकांगिता बहुत कम मिलती है। इस तरह शिव और सुन्दरके समन्वयसे सत्यकी उपलब्धि एक श्रेष्ठ कला है।

स्वरूप-विधानकी दृष्टिसे आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें सामान्य गीतोंके अतिरिक्त अनेक अच्छे समूह-गान और नृत्य-गीत लिखे गये हैं। इसी तरह सभी श्रेष्ठ प्रयाण-गीत हिन्दीको आधुनिक कालने ही दिये हैं। परिवृत्ति गीत (पेरोडी) का प्रचलन भी सर्वथा नवीन है। गीति-प्रबन्ध आधुनिक कालकी देन है—एक सूक्ष्म भाव-सूत्रमें क्रमिक रूपसे गुम्फित गीत, जैसे निशा-निमन्त्रण। इसका पूर्वरूप भ्रमर गीतके शिल्पमें देखा जा सकता है।

आधुनिक कालमें ही हिन्दी प्रबन्ध काव्योंमें बहुत अधिक मार्मिक गीतोंके गुम्फन मिलते हैं। इस दृष्टिसे साकेत, कामायनी, यशोधरा, एकलव्य आदि काव्य अत्यन्त सफल हुए हैं। प्रबन्ध काव्योंमें गीतोंका उपयोग इस बातका प्रमाण है कि आज गीति-काव्य अभिव्यक्तिका अत्यन्त लोकप्रिय माध्यम है। इसी तरह आधुनिक हिन्दी नाटकोंमें भी उच्च कलात्मक गीत पिरोये गये हैं। इस दृष्टिसे प्रसादके नाटक अप्रतिम हैं। हिन्दी गीतिकाव्यके विकासकी दृष्टिसे ये गीत बड़े महत्त्वपूर्ण हैं।

निस्संदेह आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका स्वर्ण-काल छायावाद है। स्मरणीय है कि १९२० ई०के आस-पास छायावाद और गांधीवाद दोनोंके जन्म हुए। गांधीवादको यदि भारतीय राजनीति एवं दर्शनमें उदारवाद माना जाय तो छायावादको इस उदारवाद-की कलात्मक अभिव्यक्ति (भारतीय साहित्यमें उसका रूपायन) कहा जा सकता है। तत्कालीन सामाजिक एवम् राजनैतिक अस्तव्यस्तताकी सन्तति दोनों थे, लेकिन एकमें (छायावादमें) पलायन वृत्ति थी, दूसरेमें (गांधीवादमें) संघर्षवृत्ति; एकमें भाववृत्ति थी, दूसरेमें कर्मवृत्ति। अहिंसक वृत्ति दोनोंमें थी। मानव और प्रकृतिके सूक्ष्म सौन्दर्य-चित्रण एवं 'नश्वर स्वरसे अनश्वर गीत' गानेकी दृष्टिसे छायावादकी उपलब्धियाँ अनमोल हैं। मानव, प्रकृति और ब्रह्मके त्रिकोणात्मक सम्बन्धका निरूपण भी कुछ गीतोंमें अप्रतिम रूपसे मिलता है।

स्वरूप-विधानकी दृष्टिसे हिन्दी काव्यके आधुनिक कालको गीत-प्रधान काल कहना युक्तिसंगत है। प्रबन्ध उँगलियोंपर गिने जा सकते हैं, गीत किसी विराट् उपवनमें खिले असंख्य कुसुम-दलोंके समान असंख्य हैं। हार्दिक व्यापारोंकी अभिव्यंजना, संवेदनाओं-की पूर्णाभिव्यक्ति, कल्पनाकी रंगीनियों और प्रेरक अन्तर्दशाओंके राशि-राशि चित्र इन गीतोंमें मिलते हैं। प्रेमिल जीवनकी भावुक प्रतिक्रियाओंके बड़े तुनुक चित्र इन गीतोंमें

मिलते हैं। चिरन्तन सत्यकी सफल अभिव्यक्तिके कारण ये गीत विश्वजनीन और सार्वकालिक हैं। अर्थबोध, रसबोध और सौन्दर्यबोधकी वृत्तियाँ इन गीतोंको चमत्कार-पूर्ण बना देती हैं।

दुःख-प्रधान आधुनिक हिन्दी गीतोंकी बहुत बड़ी विशेषता वेदनाकी साधना है। अश्रु अमृतकी भाँति मूल्यवान माना गया है। पीड़ा प्रियतमका वरदान और दुःख-सुखका उज्ज्वल, मोहक रूप कहा गया है। पीड़ाको प्यार करने, अभावको दुलारने और आँसूको सँजोनेकी कलाकी दृष्टिसे आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य बेजोड़ माना जायगा।

आधुनिक गीत मुख्यतः धरतीके गीत हैं। रहस्यवादके आध्यात्मिक स्वरका मुख्याधार प्रकृति है, जो धरतीका ही शृंगार है। प्राचीन मान्यताओंके खंडनका प्रबल स्वर इन गीतोंमे मिलता है। नव मानवतावादकी स्थापनाकी दृष्टिसे इन गीतोंका महत्त्व बहुत अधिक है। सुख-दुःखके बीच संचरण करनेवाले मानवका सजीव एवम् मोहक चित्रण इस कालमें हुआ है। मनुष्य अपनी दुर्बलताओंके बीच भी महान् है, प्रिय है—यह आधुनिक हिन्दी गीतोंकी महत्त्वपूर्ण स्थापना है।

व्यक्तिके पाप-तापसे मुक्तिके स्थानपर राष्ट्रकी विदेशी दासता, उत्पीड़न एवम् शोषणसे मुक्तिका स्वर आधुनिक गीतोंकी देन है। इसका सर्वप्रथम आभास नवयुगके वैतालिक भारतेन्दुके गीतोंमें मिला था और इसकी परिपक्वता प्रसाद, निराला और पन्तमें हुई। हमारे गीतिकाव्यमें मुखरित राष्ट्रवादका यह स्वर भी कितना उदार एवं विलक्षण है। 'सर्वे सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः'का मन्त्रोच्चार करनेवाले ऋषियोंके देशमें संकीर्ण, उद्दाम वा आक्रामक किंवा असहिष्णुतापूर्ण राष्ट्रवादका स्वर अशोभन ही नहीं, अस्वाभाविक भी होता। हमारे गीतकार और कवियोंने राष्ट्र-प्रेमके तरानोंको विश्वमानवीय चेतनासे अभिमण्डित करके ही मुखरित किया। अतः यह राष्ट्रीयता भी विश्व-मानवताके उद्धारका सोपान मानी गयी है। अखण्ड मानवताके प्रति सच्ची सहानुभूति आधुनिक हिन्दी गीतोंकी विशेषता है।

छायावादके बादके गीतकारोंकी भाषा-शैलीमें अधिक स्पष्टता है। उनमे विचारोंका संबल भी मिलता है।

छायावादोत्तर कालमें प्रसिद्धि पानेवाले गीतकारोंमें बहुत बड़ा दल छायावादके उन्नायकोंका ही है। प्रगतिवाद और प्रयोगके क्षेत्रमें भी कुछ ऐसे गीत लिखे गये, जिनमें (प्रयोगवादमें यह मात्रा बहुत कम थी) जीवनके ठोस धरातलपर अनुभूत युग-सापेक्ष्य चित्र मिलते हैं। हँसिये-हथौड़ेके खुरदुरे गीत प्रगतिवादी साहित्यकी देन हैं। उपमाओंकी नवीनता, प्रयोगवादी गीतोंकी विशेषता है।

मैंने षष्ठ परिच्छेदमें उन तीन घटनाओंका उल्लेख किया है, जिनकी प्रतिक्रिया-स्वरूप १९४७-१९६० के बीच अनेक गीत लिखे गये हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गीतोंमें नव-निर्माणकी आकांक्षा, 'नयी उषा,' 'नयी दिशा'का कलरव और युगोंकी दासताकी

मुक्तिकी एक अद्‌भुत चहक मिलती है, जो कभी किसी युगके हिन्दी गीतोंमें नहीं मिलती। साथ ही, समय-समयपर राष्ट्रीय गत्यवरोध, राष्ट्रीय विभाजनके समयकी नृशंस अमानुषिकता, राष्ट्रपिताकी हत्या आदि घटनाओंके फलस्वरूप इस अवधिमें लिखे गये गीतोंमें एक करुणा, क्षोभ और घुटनका वातावरण भी मिलता है।

यद्यपि हिन्दी कवितामें राष्ट्रीय भावनाओंकी परम्परा सुदीर्घ है, किन्तु इतना निश्चित रूपमें मानना पड़ेगा कि राष्ट्रीयताके जितने मुखर-प्रखर स्वर और बृहत्तर आयाम आधुनिक हिन्दी गीतोंमें मिलते हैं, उतने पहले कभी नहीं थे। इस राष्ट्रीय धाराकी तीन शाखाएँ आधुनिक हिन्दी गीतोंमें मिलती हैं—एक, परतन्त्र देशके अवसादपूर्ण, गर्वित, शहीदोंके प्रति श्रद्धांजलि, किंचित् दबे हुए आक्रोश भरे गान; दूसरी, स्वतन्त्रता प्राप्तिके बादके उल्लासपूर्ण नवनिर्माण-प्रेरित, राष्ट्रभक्तिके त्यागके स्थानपर स्वार्थ-लिप्सापूर्ण राजनैतिक गतिविधिके प्रति व्यंग्य, क्षोभसे भरे गान और तीसरी, सन् १९६० के बाद चीनी आक्रमणके फलस्वरूप दुश्मनोंके प्रति क्रोध, आभूषण-द्रव्योंके दान और कर्तव्यनिष्ठाके प्रति श्रद्धा और भारतीय सैनिकोंकी वीरताके प्रशस्ति-गान।

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यमें भावोंके विभिन्न स्तर मिलते हैं। एक ही भावके गीत एक कवि द्वारा विभिन्न मानसिक स्थितियोंमें तथा स्तरोंपर रचे गये प्रतीत होते हैं। इसी तरह एक भाव अनेक कवियों द्वारा विभिन्न मानसिक स्तरोंका द्योतन करते हैं। सप्तम प्रकरणमें 'आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यके शास्त्रीय विवेचन'के अन्तर्गत मैंने इस तथ्यको सोदाहरण स्पष्ट करनेका प्रयास किया है।

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका दार्शनिक पक्ष अत्यन्त प्रबल है। आत्मा-परमात्माके प्रणय-सम्बन्धोंसे मुखर रहस्यवादी दर्शनके गीतकारोंकी पृथक् धारा ही है, जिसमें नश्वर स्वरसे अनश्वर गीत गानेका प्रयास मिलता है। वेदान्तके अद्वैतवाद और परा विद्याकी अपार्थिवताका सम्मिश्रण इन गीतोंमें मिलता है। एक बात ध्यान देने योग्य है कि रहस्यवादकी दो धाराओं—साधनात्मक और भावात्मकमें—केवल भावात्मक रहस्यवाद ही आधुनिक हिन्दी गीतोंमें मिलता है। कबीरके इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना आदिसे सम्बद्ध हठयोगकी पंक्तियाँ इन गीतोंमें नहीं मिलतीं। यौगिक क्रियाओंको सम्पन्न करने और अनहदनादके श्रवणकी न तो आधुनिक कालके मनुष्योंमें क्षमता है और न अभिरुचि। आधुनिक कालके इन गीतकारोंकी रहस्यवादी साधना भावकी उमंगभरी आध्यात्मिक विरहकी प्रतिच्छवियाँ हैं। गीत जीवनके कुछ क्षणोंकी पुलकका स्वर-बन्धन है और हिन्दीके आधुनिक रहस्यवादी गीत आध्यात्मिक चेतनाके उन्हीं क्षणोंकी अभिव्यक्तियाँ हैं। सर्व चेतनावादका प्रभाव छायावादी गीतोंमें सर्वत्र मिलता है। विराट् ब्रह्मकी प्रतिच्छवि प्रकृतिके कण-कणमें मिलती है—जड़-चेतनमें उस अखण्ड ज्योतिस्वरूपकी छवि मिलती है। यदि रहस्यवाद आत्मा-परमात्माके सम्बन्धोंका निरूपण करता है, तो छायावाद-आत्मा-आत्माके अनन्त सम्बन्धोंका गान! वेदनावादकी विवृत्ति आधुनिक हिन्दी गीतोंमें उसी आध्यात्मिक चेतनाका प्रसाद है, जिसकी अनुभूति या जिसकी

कल्पना अतिशय मात्रामें रहस्यवादी करते हैं। इसी तरह उमरखैय्यामके हालावाद और मार्क्सके द्वन्द्वात्मक भौतिकवादसे भी इस अवधिके कुछ कवि प्रभावित हैं। लेकिन दार्शनिक दृष्टिसे आधुनिक हिन्दी गीतोंका मूल स्वर शुद्ध भारतीय है—मुख्यतः आत्मा-आत्मा और आत्मा-परमात्माके सम्बन्धोंसे उच्छ्वसित-अनुप्राणित !

आधुनिक हिन्दी गीतोंकी बहुत बड़ी उपलब्धि उसकी मनोवैज्ञानिकता है। दमित इच्छाओंके उन्नयन, साहचर्य-सम्बन्ध, आत्मीकरण, अन्तर्द्वन्द्व, प्रक्षेपण, अन्तःक्षेपण, दिवा-स्वप्न, प्रतीकीकरण, घनीकरण आदिके अनेक उदाहरण मिलते हैं। एक बात और ध्यान देनेकी है कि आधुनिक हिन्दी गीतोंमें पुरुष कवि अपने प्रियके प्रति पुंलिंग सम्बोधन भी करते पाये गये हैं, कवयित्रियाँ इस दिशामें अधिक सचेष्ट हैं। ऐसे भी स्थल मिलते हैं, जहाँ कवियोंने स्त्रीके रूपमें अपनेको चित्रित किया है—जहाँ स्पष्ट स्त्रीलिंग क्रियापदोंके प्रयोग किये गये हैं। व्यक्तित्व-परिवर्तनके मनोवैज्ञानिक कारणोंके अतिरिक्त एक बात और है—प्रेमके सूक्ष्म भावोंके पारखी इन गीतकारोंका भाव-दशाकी अवस्थामें लिंग-ज्ञानकी व्यर्थताको भुला देना उनकी तन्मयताका बोधक है। रहस्यवादी गीतोंमें तो जीव अपनेको स्त्री मानता ही है। कबीरके पदोंमें ऐसी कितनी स्त्रीलिंग-बोधक पंक्तियाँ हैं—'लाली देखन मैं गयी', 'ये अँखियाँ अलसानी पिया हो सेज चलो' आदि।

ऋतु-वर्णनकी दृष्टिसे आधुनिक गीतोंकी विशेषता षड्ऋतु-वर्णनकी परम्पराके पालनमें नहीं, बल्कि उसे मनोभावोंके रंगमें रँगनेमें है। चर्वित-चर्वण और पिष्टपेषण मात्रसे बहुत आगे बढ़कर इन गीतकारोंने अपनी सूक्ष्म चेतनाका परिचय दिया है। इन गीतोंमें सर्वाधिक चित्रण पावस और वसन्तके मिलते हैं—वेदना और उल्लासके प्रतीकके रूपमें।

संगीतकी दृष्टिसे हिन्दुस्तानी संगीतका विशेष प्रभाव आधुनिक हिन्दी गीतोंपर है, कर्नाटकीयका नगण्य। पश्चिमी संगीतका थोड़ा-बहुत प्रभाव बंगलाके माध्यमसे है। चित्रपटके गीतोंमें पश्चिमी संगीतके अनुकरण भद्दे, सस्ते, रोमांसवादी गीतोंमें हुए हैं। आधुनिक गीतोंका मूल स्वर भारतीय ही है। तीन प्रकारके गीत हिन्दीमें मिलते हैं—एक शुद्ध शास्त्रीय राग-रागिनियोंके अनुकूल, उसके व्याकरणसे अनुमोदित; दूसरे जिनमें राग-रागिनियोंके मिश्रित प्रयोग मिलते हैं। तीसरे प्रकारकी रचनाएँ वे हैं, जिनमें शब्दोंकी झंकार और छन्दोंके सुष्ठु प्रयोगके कारण सुपाठ्य होनेकी क्षमता है, पर जिन्हें गाया नहीं जा सकता। लोकधुनोंपर आधारित गीतोंकी रचना भी की गयी है। गजल, ठुमरी और कव्वालियाँ भी लिखी गयी हैं। मेरी धारणा यह है कि आधुनिक हिन्दी गीतोंमें विविधताकी दृष्टिसे इनका उल्लेखनीय स्थान हो सकता है, पर लोकधुनोंपर आधारित गीत और उर्दूके छन्दोंपर लिखी गयी ये रचनाएँ हिन्दी गीतोंके महत्त्वको नहीं प्रतिपादित करतीं।

यह बतलाया जा चुका है कि छन्दोंकी दृष्टिसे आधुनिक हिन्दी गीतोंकी उपलब्धि

प्राचीन और नवीन छन्दोंका सम्मिश्रण एवं प्राचीन छन्दोंकी मात्राके संकोच और विस्तारसे नवीन स्वरूप देनेमें है। आधुनिक कालमें अधिकतर १२-१६ मात्राओंके गीत लिये गये हैं, किन्तु छन्दोंसे अधिक सफलता इन गीतोंकी भाषा-शैलीमें है। आधुनिक हिन्दी गीतिकारोंने शब्दोंकी आत्माकी अद्भुत पहचानका परिचय दिया है। इनकी श्रुति-चेतना अत्यन्त प्रबल है। तत्सम, तद्भव और विदेशी शब्दोंके उपयोग बड़ी ही कलात्मकताके साथ उन्होंने किये हैं। लाक्षणिक वैचित्र्य और कथनकी भंगिमाओंके अपूर्व उदाहरण मिलते हैं। मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय आदि अलंकारोंके अत्यन्त वेधक प्रयोग मिलते हैं। विशेषणोंके जितने मार्मिक और कुशल प्रयोग आधुनिक हिन्दी गीतोंमें मिलते हैं, उतने पूर्वके गीतोंमें नहीं मिलते। संवेदनाओंके आधारपर विशेषणोंके चुनावकी सर्वत्र नवीन दिशा आधुनिक गीतोंमें है। अलंकारोंके प्रयोग इन गीतोंको प्रभावशाली बनाते हैं। मात्र चमत्कार-वर्द्धनके लिए इनके प्रयोग नहीं मिलते। आलंकारिकता इन गीतोंमें सहज रूपमें मिलती है, कहीं उनका बोझ दृष्टिगोचर नहीं होता। मनोभावोंकी भिन्न दशाओं और जीवनकी विविध स्थितियोंके चित्रणके लिए अनेक नये-पुराने प्रतीकोंके सफल निर्वाहने आधुनिक गीतोंको प्राचीनकी अपेक्षा अधिक प्रशस्त भूमिपर ला दिया है। आत्म-प्रधान, चित्र-प्रधान, सांकेतिक, संबोधनात्मक, व्यंग्यात्मक, संलापात्मक, अभिधेयात्मक, प्रश्नवाचक, निषेधात्मक, प्रश्नोत्तरी आदि अनेक शैलियोंके शतशः उदाहरण आधुनिक कालमें मिलते हैं। भाषा-शैलीकी विविधता-की दृष्टिसे यह काल अत्यन्त समृद्ध है।

आधुनिक गीतोंमें समसामयिकताका प्रभाव साहित्यिक रूपमें प्रकट हुआ है, उसमें इतिवृत्तात्मकताकी प्रतिध्वनि मिलती है, ध्वनि नहीं। क्षणभर सूक्ष्म भावोंके रूपमें घटनाएँ प्रतिबिम्बित हुई हैं। लोकगीतोंका प्रभाव आधुनिक हिन्दी गीतोंपर बहुत कम है। जीवनकी जटिलता और समसामयिकताकी ज्वलन्त समस्याओंने इन गीतोंको दूसरे रूपमें ढाल दिया है। उर्दूके शब्द-विधान और छन्दोंके संयोगसे इन गीतोंमें सहजता और प्रेषणीयताकी मात्रा बढ़ गयी है। यह स्मरणीय है कि उर्दू बहरोंसे अधिक उर्दू शब्दोंको हिन्दी गीतोंने ग्रहण किया है। उर्दू शब्दोंका आयात हिन्दी गीतोंमें अधिकतर छायावादोत्तर कालमें हुआ। इसके पूर्व तत्सम शब्दोंका प्राधान्य है—निराला, पन्त, महादेवी, रामकुमारके गीतोंमें तत्समताकी ही प्रधानता है। बंगलाकी आधुनिक काव्य-प्रवृत्ति और अंग्रेजीके रोमाण्टिक कवियोंके स्पष्ट प्रभाव आधुनिक गीतोंपर परिलक्षित होते हैं। लेकिन ध्यान देनेकी बात है कि हिन्दीके आधुनिक गीतकारोंने उर्दू, बंगलाके अतिरिक्त अन्य प्रान्तीय भाषाओंको भी पर्याप्त रूपसे प्रभावित किया है। रेडियो, पत्र-पत्रिकाओं, अनुवादों आदिकी वैज्ञानिक सुविधाओं और सांस्कृतिक आदान-प्रदानके कारण राष्ट्रीय साहित्यकी अधिक समृद्धि हुई है। आधुनिक हिन्दी गीतकार अपनी परम्परा, अपने वातावरण और ज्ञान-विज्ञानके प्रति अत्यन्त जागरूक हैं। इनके प्रभावने इन गीतोंकी मौलिकताको घटाया नहीं है, उसे बढ़ाया ही है।

हिन्दी गीतोंका भविष्य

अतीतकी भाँति भविष्य भी कालके अन्तरालमें छिपा रहता है। फर्क इतना है कि अतीत अन्धकारमय रहता है, भविष्य प्रकाशमय। एकको समझनेकी आकांक्षा रहती है, दूसरेको जानने की। यूनानी देवता जैनसकी आँखोंकी भाँति एक पीछेकी ओर देखती है, दूसरी आगेकी ओर। एकसे प्रेरणा मिलती है, दूसरेसे आशाका संचार होता है। चेतनाकी विश्राम-भूमि अतीत और भविष्य दोनों ही हैं। श्रान्त-क्लान्त मानव वर्तमानके संघर्षकी ओर भागता है। अतीत और भविष्यका संयोजक ही तो है वर्तमान। इसीलिए वर्तमानका ज्ञानी अतीतकी जिज्ञासा और भविष्यकी अनुमितिमें लीन रहा करता है। स्वभावतः यह प्रश्न भी उठता है कि आधुनिक हिन्दी गीतोंका भविष्य क्या होगा?

जनताकी जिह्वा, कण्ठ और हृदयको झंकृत करनेकी जितनी सहज शक्ति गीतिकाव्यमें है, उतनी बहुत कम अन्य साहित्य-विधाओंमें। इसलिए मानवको आह्लादित और अनुप्राणित करनेकी इसमें विशिष्ट एवं अशेष क्षमता है और आज ऐसे साहित्यकी आवश्यकता है, जो जाति, वर्ग और भौगोलिक सीमाओंमें विभाजित-खण्डित मानवताको एक रूप कर दे, जो अणु-युगकी भीषण विध्वंस-संभावनाओंके भयसे त्रस्त मानव-समाजको अभय-दान देकर आश्वस्त कर सके और जो दुःख संतप्त मनको कुछ क्षणके लिए ही सही, आनन्द-विभोर कर दे।

आज जो सबसे बड़ी दुर्घटना है, वह है मानवकी अनुभूतिकी जड़ता, संवेदना-शक्तिका ह्रास। 'हमारी अनुभूति आज बुरी तरह भोथी हो गयी है।'[१] इसका प्रमाण यह है कि हम एक विस्फोटक पदार्थसे लाखों व्यक्तियोंकी मृत्युका समाचार सुनकर भी बहुत अधिक प्रभावित नहीं होते। इसे सहज भावसे ग्रहण कर दैनिक कार्यमें जुट जाते हैं। दूरकी आगकी लपटोंका अनुभव हम नहीं करते, जब अपना घर जलने लगता है, तब विकलता होती है। भविष्यके गीतकारोंका प्रधान लक्ष्य भी यही होना चाहिये कि वह 'भोथी कल्पनावृत्तिको पैनी कर सके।'[२] उद्देश्य होगा मानवको देवताके आसनपर प्रतिष्ठित कर देना[३]—सद्वृत्तियोंको जाग्रत करना।

आज कवि-सम्मेलनोंके माध्यमसे कुछ ऐसे साधारण गीतकार भी यशस्वी बन जाते हैं, जो सुकण्ठ होते हैं। साधारण भावनाओंवाले गीतोंको संगीतके पंखोंपर उड़ा ले चलनेवाले ये गीतकार जनताको मुग्ध भी कर देते हैं; पर उनका स्वर उनके गीतोंपर

---

१. 'हमारी साहित्यिक समस्याएँ', डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ५९।

२. वही।

३. 'मनुष्यको देवता बनाना ही छन्दका काम है।'

× × ×

हमें अभीसे अपनेको दुर्गत मानवताके बचानेके प्रयत्नमें लगा देना चाहिये। साहित्य-निर्माणका यही एकमात्र उद्देश्य होना चाहिये।—वही, पृ० ९२, १०३।

ऊपरसे लदा हुआ होता है। जैसे-जैसे जनताका मानसिक स्तर ऊँचा उठता जायगा, ऐसी रचनाओंका मान घटता जायगा। कवि-सम्मेलनोंका जैसा आयोजन भारतमें होता है, वैसा विदेशोंमें बहुत कम होता या देखा-सुना जाता है। भविष्यके गीतकारको विचारों और भावोंके संगीतका नियोजन अपने गीतोंमें करना पड़ेगा। उसका स्वर आत्मासे निकला होगा, मात्र कण्ठसे नहीं। उसका गीत शब्दों, भावों और लक्ष्यार्थ-व्यंग्यार्थकी झंकारसे ओत-प्रोत होगा।

हिन्दीके महान् गीतकार डॉ० रामकुमार वर्माने गीतोंके जिस आदर्श रूपका उल्लेख किया है[1], वह भविष्यके गीतकारोंके लिए प्रकाश-स्तम्भ है। भविष्यका गीतकार केवल सुख-दुःखात्मक अनुभूतियोंका चितेरा नहीं; आनन्द और आशाकी अजस्र वर्षा करनेवाला होगा। उसके गीत जन-जनके प्राणोंको पुलकित करनेवाले और विश्वात्माकी मौन रसानुभूतिकी मुखर झंकार होंगे।

———

१. यदि गीतिकाव्य लिखा जावे तो वह ऐसा हो, जिसमें जीवनके अन्तरतम भागकी मूर्त्त अभिव्यक्ति हमारे सांस्कृतिक दृष्टिकोणसे सामंजस्य रखती हुई प्रकट की जावे। इस अभिव्यक्तिमें आशावादकी प्रखर ज्योति होनी चाहिये।—विचार-दर्शन, पृ० ११२।

चित्रपट जगतके गीत

आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्यका एक लोकप्रिय क्षेत्र चित्रपट जगत भी है। नाटक दृश्य काव्य माना जाता है और इसमें गीतोंकी योजना भी रहती है। चित्रपट नाटक का ही वैज्ञानिक रूपान्तर है। इसमें भी गीत होते हैं। ध्यान देनेसे पता चलता है कि ये गीत चित्रपट जगतमें निम्नलिखित रूपोंमें प्रयुक्त होते हैं :—

१. मानसिक स्थितिके परिचायकके रूपमें।
२. चरित्र-चित्रणके लिए।
३. घटनाकी मार्मिकताको बढ़ानेके लिए।
४. क्लब, पार्टी, डान्स आदिके अवसरपर महज मनोरंजन और वातावरणको उद्दीप्त करनेके लिए।
५. पूर्वाभासके लिए।

यद्यपि उपयोगकी दिशाएँ पाँच रूपोंमें विभक्त हैं, फिर भी इन गीतोंका सर्वाधिक प्रयोग महज मनोरंजनके लिए ही किया जाता है। हिन्दी चलचित्रोंका सबसे बड़ा दुर्भाग्य उसकी अतिशय गीतात्मकता है। अधिकांश चलचित्र फालतू, प्रसंगहीन गीतोंसे भरे मिलते हैं। उन गीतोंकी सबसे बड़ी दुर्बलता अवसरकी अनुपयुक्तता है। पिता या प्रेमीकी मृत्युके तत्काल बाद ही नायिका रो-रोकर गाने लगती है। आत्महत्या करनेके लिए तीव्रगतिसे जाती हुई नायिका भी गीत गाती जाती है। निर्देशकको इतना भी ज्ञान नहीं होता कि व्यावहारिक जगतमें सामान्य व्यक्ति तो क्या स्वयं कवि भी अपने आत्मीयकी मृत्युके अवसरपर तत्क्षण गाने नहीं लगते। सभ्य समाजमें तो गानेकी प्रथा है ही नहीं, गँवारोंके समाजमें भी स्त्रियाँ ऐसे अवसरोंपर गुण-कथन करती हुई रोती हैं— छन्दबद्ध गीत नहीं गातीं। फिर आत्महत्याके लिए कृतसंकल्प व्यक्ति गा ही नहीं सकता। मनोविज्ञान साक्षी है कि गाते ही उसकी मुद्रा बदल जायगी और उसमें आत्महत्याकी दृढ़ता नहीं रह सकती। मराठी, गुजराती या बंगला चलचित्रोंमें हिन्दीकी अपेक्षा बहुत कम ही गीत रहते हैं। जैसी स्वाभाविकता बंगला चलचित्रोंके कथानक वेश-भूषा, वातावरण और अभिनयमें रहती है, वैसी ही गीत-योजनामें भी। प्रसंग-प्रेरित दो-तीन मार्मिक गीत रहते हैं, जो नायक-नायिका या प्रमुख पात्र-पात्रीकी मनोदशाको पार्श्व-संगीत (जो पूरे चित्रपटका मूल भाव लिये रहता है) के रूपमें बार-बार गाया जाता है। मार्मिकता, कथाके साथ उस गीतके अनिवार्य सम्बन्ध और परिस्थितियोंकी लयात्मकताके कारण पुनरावृत्त होकर भी ये गीत अपनी सुन्दरता नहीं खोते।

हिन्दी चित्रपटोंके अधिकांश गीत मात्राकी त्रुटियों एवं यतिभंगकी दृष्टिसे आदर्श उदाहरण हैं। लयों और आलापोंसे इन मात्राओंकी पूर्त्ति की जाती है। इसलिए चित्र-पट-भवनमें जिस गीतको सुनकर मन आस्वादित होता है, उसे ही बाहर बिकते हुए सस्ते गीतोंकी सस्ती पुस्तिकाएँ लेकर पढ़नेपर भारी निराशा होती है। इससे यह सिद्ध

होता है कि कुशलता गानेवालोंकी स्वर-लहरी और संगीत निर्देशककी धुनकी है, न कि गीतकारकी।

इन चित्रपटोंमें शास्त्रीय-संगीतके आधारपर भी कुछ गीत लिखे जाते हैं। 'विविध भारती' या 'सिलोन' रेडियोसे प्रति सप्ताह 'शास्त्रीय संगीतपर आधारित फिल्मी गाने' प्रसारित किये जाते हैं। इन शास्त्रीय गीतोंमें धुनें शास्त्रीय रहती हैं, पर गीतोंके बोल प्रायः साधारण स्तरके होते हैं।

फिल्मी गीतोंमें प्रायः नृत्य-गीतोंका भी आयोजन रहता है। प्रेक्षकोंकी कुप्रवृत्तियोंको उभारकर भीड़ इकट्ठी करनेमें ये दृश्य बड़े कारगर होते हैं। दुर्भाग्य यह है कि ऐसे अवसरोंपर प्रयुक्त गीत प्रायः पाश्चात्य संगीतपर आधारित रहते हैं, विशेषतः 'रॉक एण्ड रोल' जैसी पद्धतियोंपर।

फिल्मी गीतोंके सस्तेपनका कारण है उस क्षेत्रमें अनधिकारी व्यक्तियोंकी खपत। वहाँके मुंशी, कवि और शायर (गीतकारके तीन प्रचलित नाम) अधिकतर वे ही हैं, जो फर्माइशी गीत लिखते हैं। प्रायः धुनें पहले बनती हैं और गीत बादमें। धुन संगीत-निर्देशक बनाता है और बेचारा गीतकार उसीमें शब्दोंको ढकेलकर बैठानेकी चेष्टा करता है। कभी-कभी गायकोंकी सुविधाके लिए शब्दोंको बदलना भी पड़ता है। ऐसा भी होता है कि मनचले निर्माता या निर्देशकके आदेशपर काव्यात्मक पंक्तियोंको हटाकर सस्ते भावकी पंक्तियाँ भी गढ़नी पड़ती हैं। वहाँके अधिकांश गीतकार रोटीके लिए कवि धर्मको एक साधन मानते हैं।

मैंने सर्वत्र 'अधिकांश' शब्दका प्रयोग जान-बूझकर किया है। हिन्दी फिल्मोंमें बहुत अच्छे गीत भी लिखे गये हैं। नेपालीका गीत "जो तुमने गेसू बिखराये, बादल आये झूमके", भगवतीचरण वर्माका "तुम जाओ बड़े भगवान बने, इन्सान बनो तो जानूँ", प्रदीपका 'ऐ मेरे वतनके लोगो', नरेन्द्र शर्माका "जगमग दीप जले", नीरजका "कारवाँ गुजर गया, गुबार देखते रहे", साहिर लुधियानवीका "ये महलों, ये तख्तों, ये ताजोंकी दुनियाँ" आदि गीत बड़े अच्छे हैं। ऐसे ही कभी-कभी किसी अप्रसिद्ध गीतकारकी लिखी कव्वाली, गजल या गीत भी मन को छू लेते हैं। लेकिन ऐसा होता बहुत कम है।

जनताकी रुचि परिमार्जित होनेसे ही हिन्दी चित्रपटके गीतोंका भविष्य उज्ज्वल होगा, जब वहाँ अच्छे गीतकारोंकी रचनाएँ सम्मान पायेंगी। कभी-कभी सूर, तुलसी या मीराके भजन ज्योंके त्यों मीठी स्वर लहरीमें इन चित्रोंमें सुननेको मिल जाते हैं। एक बात ध्यान देने योग्य है कि विदेशोंमें हिन्दीका प्रचार फिल्मी गीतोंके कारण भी हुआ है। डॉ० रामधारी सिंह दिनकर कहा करते हैं कि रूसमें "आवारा हूँ, आवारा हूँ" गीत गाते हुए बच्चे उन्हें दीख पड़े। इस तथ्यसे इतना ही संकेत मिलता है कि वह दिन हिन्दीके प्रसार-प्रचार और चित्रपटोंके उन्नयनके लिए अत्यन्त शुभ होगा जब अच्छे गीतकारोंका सहयोग पा सकनेकी क्षमता चित्र-निर्माताओंमें होगी।

सहायक ग्रंथ-सूची

Abercrombie, Lascells : *The Theory of Poetry, Second Impression, London, 1926.*
The Idea of Great Poetry, Third Impression, 1928.
Poetry, Its Music and Meaning, 1932 ed.

Alam Ross : *Poetry 1945-50.*

Buck, C.S. : *Faiths, Fairs and Festivals of India, 1917.*

Butcher : *Aristotle's Theory of Poetry and Fine Arts, Fonta Ed., London, 1907.*

Caudwell, Christopher : *Illusion and Reality*
Studies in a Dying Culture.

Collins, A.S. : *English Literature of the 20th Century,*

Drinkwater, John : *The Lyric, London, 1922.*

Eliot, T.S. : *What is Classic*
Essays Ancient and Modern
Point of View, Second Edition.

Evans, B.Ifor : *English Literature Between the Wars.*

Forman, H.B. : *The Poetical Works of John Keats, 1953.*

Gorkey, M : *Literature and Life.*

Grierson, H.J.C. : *Lyrical Poetry from Blake to Hardy.*

Gupta, Balmukund, Dr. : *Development of Krishnite Poetry in Hindi (Agra University Library.)*

Hernhon, C. : *Six Living Poets.*

Hepple, Norman : *Lyrical Forms in English.*

Hadow, W.H., Sir : *A Comparison of Poetry and Music.*

Hudson, W.H. : *The Study of Literature, London, 1925.*

Ladd, G.T. (Translated) : *Outlines of Aesthetics.*

Marx, K. and Engels F. : *Literature and Art.*

Mills, Charlo Dr. : *Methods and Materials of Literary Criticism.*

Molton : *World Literature, New York, 1919.*

Palgrave : *Golden Treasury of Songs and Lyrics.*

Read, Herbert : *Collected Essays on Literary Criticism.*

Reed, Edward Bliss : *English Lyrical Poetry.*

Read, Herbert : *Forms in Modern Poetry, London, 1912.*

Richman Kenneth : *Poetry and People.*

Santayana, George : *Little Essays.*
Shakespeare : *Hamlet.*
Stephen Spender : *Poetry Since 1939.*
Sherrif, A.S. : *Hindi Folk Songs.*
Vajpayee, Ambika Prasad : *Persian Influence on Hindi, Calcutta University 1936.*
Weber, A, : *A History of Indian Literature Popular Release.*
Winternitz, M : *A History of Indian Literature, Vol. I 1914, Calcutta, 1927.*
Wordsworth, William : *Preface to the Lyrical Ballads, 1815.*

DICTIONARIES, ANTHOLOGIES AND JOURNALS

Carlyle T. : *An Anthology of Critical statement.*
Edgar Allen Poe : *An Anthology of Critical statement.*
Edwards : *The New Dictionary of Thoughts, London, First Ed. (Revised and enlarged by Catrevas and J. Edwards)*
Emerson, G. R. : *Burton's Dictionary of Universal Information, New Ed.*
Encyclopaedia Britannica : Revised Edition, 9th Ed. Edinburgh and 1949 Edn. U.S.A., Vol. 8 and Vol. 18.
Joseph T. Shipley : *Dictionary of World Literature, New York, 1943.*
Hamnston, J. A. : *The Concise Universal Encyclopaedia,*
Modern Review : December, 1938.
Oxford Junior Encyclopaedia, Vol. XII, London, 1954.
Paul Harvey : *The Oxford Companion to English Literature, Oxford, 1939.*
The Columbia Encyclopaedia, 19th Edition, 1946.

संस्कृत

अग्निपुराण
नाट्यशास्त्र—भरतमुनि, चौखम्बा सीरीज
काव्यालंकार, भामह,
काव्यादर्श, दण्डी—ओरियण्टल बुक एजेन्सी, पूना
काव्यालंकार, रुद्रट—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
हिन्दी ध्वन्यालोक—आनन्दवर्द्धन—व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, दिल्ली
अभिनव भारती—अभिनवगुप्त, गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा
हिन्दी साहित्य-दर्पण—विश्वनाथ, व्याख्याकार, डॉ० सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
काव्यमीमांसा, राजशेखर—व्याख्याकार पं० केदारनाथ शर्मा सारस्वत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
हिन्दी वक्रोक्ति जीवित—कुन्तक, व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली

हिन्दी

अग्रवाल, भारतभूषण — छबिके बन्धन
मुक्तिमार्ग
ओ प्रस्तुत मन
अमन गोपीनाथ — उर्दू और उसका साहित्य
अमृतराय — नयी समीक्षा
अंचल, रामेश्वर शुक्ल — अपराजिता
किरण-बेला
करील
लाल चूनर
वर्जन्तके बादल
अयाचित, हनुमाच्छास्त्री — तेलुगू और उसका साहित्य
अज्ञेय, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन — चिन्ता
इत्यलम्
बावरा अहेरी
हरी घास पर क्षण भर
अरी ओ करुणा प्रभामय
आंगनके पार द्वार
त्रिशंकु
तार सप्तक (तीनों खण्ड) सम्पादित
पुष्करिणी (सम्पादित)
अवस्थी, रमानाथ — रात और शहनाई
आरसीप्रसाद सिंह — कलापी
संचयिता
नयी दिशा
आरसी
ओम्प्रकाश — हिन्दी गीतिकाव्य
उपाध्याय, विश्वंभरनाथ, डॉ० — आधुनिक हिन्दी कविता : सिद्धान्त और समीक्षा
महाकवि निराला, काव्य-कला और कृतियाँ
ओझा, दशरथ, डॉ० — समीक्षा-शास्त्र, प्र० सं० १९५५
हिन्दी नाटक, उद्भव और विकास
कमलेश, पद्मसिंह शर्मा, डॉ० — मैं इनसे मिला था, खण्ड १,२
किशोर, श्यामनन्दन, डॉ० — शेफालिका
विभावरी
जवानी और जमाना
ज्वारभाटा, षष्ठ संस्करण
गीत अधूरे है
सूरज नया, पुरानी धरती
आधुनिक हिन्दी महाकाव्योंका शिल्पविधान
खत्री, एस० पी० डॉ० — काव्यकी परख

गुप्त, मन्मथनाथ	रामधारी सिंह 'दिनकर'
गुप्त, प्रकाशचन्द्र	नया हिन्दी-साहित्य, एक भूमिका'
गुप्त, मैथिलीशरण	हिन्दू, द्वितीय संस्करण
	झंकार
	अनघ, षष्ठ संस्करण
	साकेत, २०२१ वि०
	यशोधरा, २०२० वि०
	विष्णुप्रिया
	मंगलघट
	स्वदेश-संगीत
	भारत भारती, चौबीसवां सं०
	कुणाल-गीत
गुप्त, सियारामशरण	पुण्यपर्व
गुप्त, सुरेश, डॉ०	आधुनिक हिन्दी कवियोंके काव्य-सिद्धान्त
गुर्टू, शचीरानी	सुमित्रानन्दन पंत, (सम्पादित)
	महादेवी वर्मा, (सम्पादित)
गुलाबराय, डॉ०	सिद्धान्त और अध्ययन, पंचम संस्करण, २०१७ संवत्
	प्रसादजीकी कला (सम्पादित), द्वितीय सं०
गोरखपुरी, फिराक	उर्दू कवितापर बातचीत, द्वितीयावृत्ति, १९४५
गोयल, उमाकान्त, डॉ०	मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृतिके आख्याता
गौतम, मनमोहन, डॉ०	सूरकी काव्य-कला
क्षेम, श्रीपाल सिंह	छायावादके गौरव चिह्न
	छायावादकी काव्य-साधना
चतुर्वेदी, माखनलाल	हिमकिरीटिनी
	हिमतरंगिनी, द्वितीय सं०, सं० २०१२
	माता
	समर्पण
	युगचरण
चतुर्वेदी, वृजकिशोर	आधुनिक कविताकी भाषा, प्रथम सं० १९५१
चन्द्रगुप्त, विद्यालंकार	हरिवंशराय 'बच्चन'
चोंच, कान्तानाथ पाण्डेय	महाकवि सांड
चौहान, शिवदानसिंह	हिन्दी-साहित्यके अस्सी वर्ष
चौहान, सुभद्राकुमारी	मुकुल
	बिखरे मोती
जोशी, इलाचन्द्र	साहित्य-सर्जना, चतुर्थ सं०, १९४८
तिवारी, हंसकुमार	रिमझिम
	अनागत
	बंगला और उसका साहित्य
तिवारी, गिरीशचन्द्र	कवि निराला और उनका काव्य-साहित्य
तिवारी, भोलानाथ, डॉ०	कवि प्रसाद

तिवारी, बलभद्र, डॉ०	आधुनिक साहित्य, व्यक्तित्ववादी भूमिका
त्रिपाठी, रामनरेश	कविता-कौमुदी, भाग १, २, ३
	हमारा ग्राम-साहित्य, भाग १, २, ३ (१९४० ई०)
त्रिपाठी, जगदीशनारायण, डॉ०	आधुनिक हिन्दी कवितामें अलंकार-विधान
तुलसीदास	विनयपत्रिका, गीता प्रेस, गोरखपुर, उन्नीसवाँ सं०
दास, श्यामसुन्दर, डॉ०	साहित्यालोचन
	रूपक-रहस्य, चतुर्थ सं०, २००८ वि०
दास, श्रीकृष्ण	लोकगीतोंकी सामाजिक व्याख्या, १९५६
'दिनकर', रामधारी सिंह, डॉ०	हुंकार
	रेणुका
	रसवंती
	चक्रवाल
	नीलकुसुम
	सामधेनी
	धूप और धुआँ
	मिट्टीकी ओर
	संस्कृतिके चार अध्याय
	पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण
	काव्यकी भूमिका
द्विवेदी, महावीरप्रसाद	द्विवेदी काव्य-माला
द्विवेदी, रामअवध, डॉ०	साहित्य-रूप, सं० २०१८
द्विवेदी, हजारीप्रसाद, डॉ०	हमारी साहित्यिक समस्याएँ
	हिन्दी-साहित्य, उद्भव और विकास, १९५२ ई०
	साहित्यका मर्म
	सभ्यता और संस्कृति
	हिन्दी-साहित्यकी भूमिका
	सूर-साहित्य, संशोधित संस्करण, १९२६
	अशोकके फूल
द्विवेदी, सोहनलाल	भैरवी, चतुर्थ सं०, १९५१
	कुणाल
	पूजा-गीत
द्विवेदी, शान्तिप्रिय	कवि और काव्य, द्वितीय संस्करण, १९४९ ई०
	ज्योति-विहग
	युग और साहित्य, द्वितीय संस्करण, १९५० ई०
	साकल्य
द्विज, जनार्दन झा	अनुभूति
देवराज, डॉ०	छायावादका पतन
	रोमाण्टिक साहित्य-शास्त्र
दीक्षित, त्रिलोकीनारायण	अवधी और उसका साहित्य
नवीन, बालकृष्ण शर्मा	अपलक

लेखक	कृति
नवीन, बालकृष्ण शर्मा	क्वासि
	रश्मि-रेखा
नगेन्द्र, डॉ०	छन्दमयी
	विचार और विवेचन
	विचार और विश्लेषण
	विचार और अनुभूति
	सुमित्रानन्दन पंत, नवाँ संस्करण
	आधुनिक हिन्दी कविताकी मुख्य प्रवृतियाँ.
	अरस्तूका काव्य-शास्त्र
नारायण, ब्रजकिशोर	चतुर्मुखी
निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी	परिमल
	अनामिका, सम्वत् १९९५
	गीतिका, चतुर्थ संस्करण, २०१२ सम्वत्
	अणिमा
	बेला
	नये पत्ते
	अर्चना
	आराधना, २०१० वि०
	गीत-गुंज
	अपरा
	प्रबन्ध-पद्म
	रवीन्द्र-कविता-कानन
नीरज, गोपालदास	विभावरी
	प्राणगीत, द्वितीय संस्करण, १९५७
	दर्द दिया है, १९५६
	नीरजकी पाती
नेपाली, गोपालसिंह	रागिनी
	पंचमी
	नवीन
	हिमालयने पुकारा
नेहरू, जवाहरलाल	हिन्दुस्तानकी कहानी, द्वितीय संस्करण
परमार, श्याम	मालवी और उसका साहित्य
पंत, गोविन्दवल्लभ	राजमुकुट
	वीणा
पंत, सुमित्रानन्दन	गुंजन, चतुर्थ संस्करण, सं० २००३
	युगान्त
	युगवाणी
	पल्लव
	ग्राम्या
	स्वर्ण किरण

पंत, सुमित्रानन्दन	स्वर्ण धूलि
	ज्योत्स्ना
	पल्लविनी
	रश्मि-बन्ध
	आधुनिक कवि, चतुर्थ संस्करण
	उत्तरा
	सौवर्ण
	चिदम्बरा
	कवि-भारती (सम्पादित)
प्रसाद, जयशंकर	लहर, चतुर्थ संस्करण, सं० २००९
	झरना, षष्ठ संस्करण, सं० २००८
	कामायनी
	चन्द्रगुप्त, अष्टम संस्करण, २००९ वि०
	स्कन्दगुप्त
	राज्यश्री
	जनमेजयका नागयज्ञ
	एक घूँट
	कामना
	ध्रुवस्वामिनी
	काव्यकला और अन्य निबन्ध, चतुर्थ संस्करण, २०
प्रवासी, लालधर त्रिपाठी	गीति काव्यका विकास
प्रकाश पण्डित (सम्पादक)	आजके उर्दू शायर और उनकी शायरी, द्वितीय संस्करण, १९६०
	गालिब
	इक़बाल
	जोश मलीहाबादी
	दर्द
	साहिर लुधियानवी
पाठक, वाचस्पति (सम्पादक)	प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवीकी श्रेष्ठ रचनाएँ
पाठक, श्रीधर	भारत-गीत, द्वितीय संस्करण, लखनऊ
	गोपिका-गीत, सम्वत् १९७३, प्रयाग
पाण्डेय, गंगाप्रसाद	महादेवीका विवेचनात्मक गद्य
	निबन्धिनी
	महाप्राण निराला
पाण्डेय, रामखेलावन, डॉ०	गीतिकाव्य
पाण्डेय, सुधाकर	जो मै गाता हूँ
प्रेमी, हरिकृष्ण	विदा
	रक्षाबन्धन
प्रेमशंकर, डॉ०	प्रसादका काव्य
'बच्चन', हरिवंशराय, डॉ०	प्रारम्भिक रचनाएँ, भाग १, २
	धारके इधर-उधर

'बच्चन', हरिवंशराय, डॉ०	आरती और अंगारे
	मिलनयामिनी, द्वितीय संस्करण, १९६१
	सोपान
	मधुशाला
	मधुबाला, दसवाँ संस्करण, १९६२
	मधुकलश, सातवाँ संस्करण, १९६०
	आकुल अन्तर, चतुर्थ संस्करण, १९५८
	निशा-निमंत्रण, अष्टम संस्करण, १९६०
	एकान्त संगीत
	सतरंगिनी, द्वितीय संस्करण, १९५१
	सूतकी माला
	बंगालका काल
	प्रणय-पत्रिका, द्वितीय संस्करण, १९६१
	बुद्ध और नाचघर
	त्रिभंगिमा
	सुमित्रानन्दन पंत (सम्पादित)
बाली, चन्द्रकान्त	पंजाबप्रान्तीय हिन्दी-साहित्यका इतिहास
बाहरी, हरदेव, डॉ०	हिन्दीकी काव्यशैलियोंका विकास
ब्रह्मानन्द, डॉ०	बंगलापर हिन्दीका प्रभाव
भारती, धर्मवीर, डॉ०	सात गीत वर्ष
भोलानाथ, डॉ०	हिन्दी-साहित्य
मानव, विश्वम्भर	सुमित्रानन्दन पंत
	हमारे प्रतिनिधि कवि
	महादेवी
	काव्यका देवता 'निराला'
माचवे, प्रभाकर, डॉ०	मराठी और उसका साहित्य
	संतुलन, १९५४
मिश्र, उमा, डॉ०	काव्य और संगीतका पारस्परिक सम्बन्ध
मिश्र, भगीरथ, डॉ०	साहित्य, साधना और समाज
मिश्र, भवानीप्रसाद	गीत फरोश
मिश्र, रामदहिन	काव्यमें अप्रस्तुत-योजना
	काव्य-दर्पण
मिश्र, रामचन्द्र	श्रीधर पाठक तथा हिन्दीका पूर्व-स्वच्छन्दतावादी काव्य
मिश्र, रामचन्द्र, डॉ०	हिन्दी पद-परम्परा और तुलसीदास
मिश्र, विश्वनाथप्रसाद	हिन्दीका सामयिक साहित्य, द्वितीय आवृत्ति
	वाङ्मय विमर्श, सं० २०१४ संस्करण
मिश्र, शिवकुमार, डॉ०	नया हिन्दी काव्य
मेहरा, रमेशचन्द्र	निरालाका परवर्ती काव्य
यशदेव शल्य	पन्तका काव्य और युग

रमण	अन्तरा
	संकेत (सम्पादित)
ठाकुर, रवीन्द्रनाथ	एकोत्तरशती
राकेश, रामइकबाल सिंह	चट्टान
	गाण्डीव
	मैथिली लोकगीत
रांगेय, राघव, डॉ०	आधुनिक हिन्दी कवितामें प्रेम और श्रृंगार
	आधुनिक हिन्दी कवितामें विषय और शैली
लाल, श्रीकृष्ण, डॉ०	आधुनिक हिन्दी-साहित्यका विकास, १९५२ संस्करण
वर्मा, भगवतीचरण	विस्मृतिके फूल
	मधुकण
	मानव, द्वितीय सं०
	प्रेम-संगीत, चतुर्थ सं०
	त्रिपथगा
वर्मा, महादेवी	यामा
	दीप-शिखा
	नीहार
	नीरजा
	रश्मि
	आधुनिक कवि, आठवाँ संस्करण, शक १८८४
	सन्धिनी
	साहित्यकारकी आस्था तथा अन्य निबन्ध
वर्मा, रवीन्द्रसहाय, डॉ०	हिन्दी काव्यपर आंग्ल प्रभाव
वर्मा, रामकुमार, डॉ०	एकलव्य
	रूपराशि, १९३३
	अंजलि
	संकेत
	चित्ररेखा
	आधुनिक कवि
	आकाश-गंगा
	चन्द्रकिरण
	चित्तौड़की चिता
	निशीथ
	हिन्दी-साहित्यकी रूप-रेखा, चतुर्थ सं०
	हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास
	साहित्य-शास्त्र
	विचार-दर्शन
	कबीरका रहस्यवाद
	अनुशीलन
	साहित्य-समालोचना, १९५० ई०

वर्मा, लक्ष्मीकान्त	नयी कविताके प्रतिमान
वर्मा, धीरेन्द्र, डॉ०	विचार-धारा, द्वितीय सं०, सं० २००१
वर्मा, धनंजय	निराला, काव्य और व्यक्तित्व
वाजपेयी, नंददुलारे आचार्य	हिन्दी-साहित्य, बीसवीं शताब्दी
	आधुनिक साहित्य
	नया साहित्य, नये प्रश्न
	जयशंकरप्रसाद
	साहित्य-सुषमा (सम्पादित)
	सूरसागर (सम्पादित), नागरी प्र० सभा
	महाकवि सूरदास
वाजपेयी, लक्ष्मीधर	काव्य और संगीत
वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर, डॉ०	आधुनिक हिन्दी-साहित्य, तृतीय संस्करण
वियोगी, मोहनलाल महतो	निर्माल्य
व्यास, गोपालप्रसाद	अजी सुनो···
विनयकुमार	तुलसीदासका प्रगीत-काव्य
शरण, दीनानाथ	हिन्दी-काव्यमें छायावाद
शर्मा, विनयमोहन आचार्य	हिन्दीको मराठी संतोंकी देन
शर्मा, नरेन्द्र	प्रभातफेरी
	प्रवासीके गीत, तृतीय सं०, २००२ वि०
	पलाश-वन
	रक्तचन्दन
	मिट्टीकी ओर
	हंसमाला
शर्मा, नलिन विलोचन	दृष्टिकोण, द्वितीय संस्करण
शर्मा, रामविलास, डॉ०	संस्कृति और साहित्य
	स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य
	लोक-जीवन और साहित्य
	निराला
शर्मा, हरिवंशलाल, डॉ०	सूर और उनका साहित्य
शास्त्री, जानकीवल्लभ आचार्य	रूप-अरूप
	तीर-तरंग
	शिप्रा, तृतीय संस्करण, १९५७ ई
	मेघगीत, १९५२
	अवन्तिका
	संगम पाषाणी, १९५८
	साहित्य-दर्शन
शुक्ल, केसरीनारायण, डॉ०	आधुनिक काव्यधाराका सांस्कृतिक स्रोत
	किंजल्क (सम्पादित)
शुक्ल, पुत्तूलाल, डॉ०	आधुनिक हिन्दी-काव्यमें छन्द-योजना
शुक्ल, रामचन्द्र, आचार्य	हिन्दी-साहित्यका इतिहास

शुक्ल, रामचन्द्र, आचार्य	चिन्तामणि, खण्ड १, २
शिवनन्दनप्रसाद, डॉ०	हिन्दी छन्द-शास्त्र
	साहित्यके रूप और तत्व, १९५४ संस्करण
	कवि सुमित्रानन्दन पंत और उनका प्रतिनिधि-काव्य
सम्पूर्णानन्द, डॉ०	चिद्विलास
सक्सेना, राजेश्वरदयाल, डॉ०	छायावादका स्वरूप और व्याख्या
सत्येन्द्र, डॉ०	लोक-साहित्य-विज्ञान
	ब्रजलोक-साहित्यका अध्ययन
सरनाम सिंह, डॉ०	हिन्दी-साहित्यपर संस्कृत-साहित्यका प्रभाव
सारस्वत, गोपालदत्त, डॉ०	आधुनिक हिन्दी-काव्यमें परम्परा तथा प्रयोग
सिंह, उदयभानु, डॉ०	महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग
सिंह, नामवर, डॉ०	आधुनिक हिन्दी-साहित्यकी प्रवृत्तियाँ
	छायावाद
सिंह, मनोरंजनप्रसाद	गुनगुन
सिंह, त्रिभुवन	आधुनिक हिन्दी-कविताकी स्वच्छन्द-धारा
सिंह, शम्भुनाथ, डॉ०	रूपरश्मि
	मन्वन्तर
	छायावाद-युग
सुधीन्द्र, डॉ०	हिन्दी-कवितामें युगान्तर (सन् १९३०)
सुधांशु, लक्ष्मीनारायण, डॉ०	काव्यमें अभिव्यंजनावाद
	जीवनके तत्त्व और काव्यके सिद्धान्त
सुमन, क्षेमेन्द्र तथा मलिक योगेन्द्रकुमार	साहित्य-विवेचन (सम्पादित), १९५५
हरिऔध, अयोध्यासिंह 'उपाध्याय'	आधुनिक कवि, पंचम खण्ड
हिकमत अली, असगर खाँ, डॉ०	फारसी साहित्यकी रूप-रेखा

पत्र-पत्रिकाएँ

सरस्वती, अप्रैल १९१५, अप्रैल १९१९, मई-दिसम्बर १९२०, मई १९२७

माधुरी, जून १९२६

आलोचना, अंक २, इतिहास विशेषांक

अवन्तिका, काव्यलोचनांक, अगस्त-अक्तूबर १९५३, अक्तूबर १९५६

आरती, मई-जून १९४१

आजकल, अक्तूबर १९५६, फरवरी १९५७

दृष्टि, डॉ० रामकुमार वर्मा, विशेषांक

साहित्य-सन्देश, निराला अंक

मतवाला, वर्ष ४, अंक ३

छायावाद, फाल्गुन, संवत् १९९६

नयी कविता, अंक १, २, ३

स्याम, फरवरी, १९३९

साप्ताहिक हिन्दुस्तान, फरवरी, १९५७

हिमालय, दिसम्बर, जनवरी, १९४८
प्रसाद-साहित्य-कोष—डॉ० हरदेव बाहरी
उन्नीसवें बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन (कवि सम्मेलन) में डॉ० किशोरका
अध्यक्षीय भाषण
परिषद्-पत्रिका (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्), वर्ष ४, अंक ३
हिन्दी-निबन्धावली, बिहार विश्वविद्यालय
साहित्यिक-निबन्धावली, हिन्दी परिषद्, पटना विश्वविद्यालय
छायावाद और प्रगतिवाद, हिन्दी परिषद्, पटना विश्वविद्यालय
द्विवेदी अभिनन्दन-ग्रन्थ, काशी
हरिऔध अभिनन्दन-ग्रन्थ, काशी
सनेही अभिनन्दन-ग्रन्थ, कानपुर

——